अनुवादक

डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन

भगवान बुद्ध और उनका धर्म



बोधिसत्त्व डॉ. भीमराव रामजी [illegible]डकर

भगवान बुद्ध और उनका धर्म

लेखक

डॉ. भीमराव रामजी आंबेडकर

एम्.ए., पी-एच्.डी., डी.एस्.सी., एल्.एल्.डी., डी.लिट्., बार-ॲट-लॉ

अनुवादक

डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन

विद्यावारिधि (सा. सम्मेलन)

साहित्य वाचस्पति (नवनालंदा महाविहार)

बुद्धवर्ष - २५४१-१९९७



बुद्धभूमि प्रकाशन

नागपुर

Reprinted for free distribution by
The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation
11 F., 55 Hang Chow South Road Sec 1, Taipei, Taiwan, R.O.C.
Tel: 886-2-23951198 , Fax: 886-2-23913415
Email: overseas@budaedu.org.tw
Website: http://www.budaedu.org.tw

यह संस्करण

इस महान ग्रंथ के अनुवादक पू. डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन (५.१.१९०५-२२.६.१९८८) सन् ५८ में थाईलेंड जाने के लिए बम्बई से कलकत्ता जा रहे थे। स्टेशन पर उन्हें **The Buddha and His Dhamma** की एक प्रति उपलब्ध कराई गई थी। कलकत्ता पहुंचते पहुंचते उन्होंने उसे अधिकांश पढ़ डाला और अनुवाद आरंभ कर दिया।

विश्व बौद्ध सम्मेलन के उत्सव के अनन्तर वे थाईलेंड में दो महीने तक इस ग्रंथ का अनुवाद समाप्त करने की कामना से रूके रहे। वट महाधात, बैंकाक के उनके स्नेही भिक्षु एवं सद्गृहस्थों ने उनके निवास एवं भोजन आदि की समुचित व्यवस्था कर इस ग्रंथ के अनुवाद कार्य में हर तरह से सहायता की।

अनुवाद का कार्य समाप्त कर वे बैंकाक से जापान और बर्मा गये। वहां उनको पता चला कि जिस विद्यालंकार परिवेण कैलानिया, श्रीलंका में वे ५ फरवरी सन २८ में परिवेणाधिपति लुणुपोकुणे धम्मानंद महास्थविर से प्रव्रज्या-उपसंपदा प्राप्त कर पालि-बौद्ध धर्म का अध्ययन किया था, अब उसे विश्वविद्यालय का दर्जा दिया गया है और उन्हें हिन्दी विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया है। वे बर्मा से भारत आये एवं सन ५९ जून महीने में श्रीलंका रवाना हो गये। इन पंक्तियों का लेखक भी उस समय उनके साथ गया था।

जब सन ५७ में **The Buddha and His Dhamma** सर्व प्रथम प्रकाशित हुआ तो भारत में ही नहीं बौद्ध देशों में भी इस की कडी आलोचना हुई। लोग यहांतक कहने लगे थे कि इस पुस्तक में बुद्धिझम् नहीं आम्बेडकरीझम् है। बोधिसत्त्व डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर ने मूल अंग्रेजी ग्रंथ में किसी प्रकार के फूट नोट्स या उध्दरण नहीं दिये थे। आलोचकों का मुंह बंद करने के लिये प्राचीन ग्रंथो में से आधार खोजे गये। भन्तेजी ने श्रीलंका में मूल पालि संस्कृत ग्रंथों को देखकर फूट नोट्स तैयार किये। अब इसके अंग्रेजी अनुवाद तैयार कर अंग्रेजी संस्करण में जोडे गये हैं। इस प्रकार इस महान ग्रंथ की प्रामाणिकता सिद्ध की गई।

सन ६० में विश्व विद्यालय के अवकाश के दिनों में भन्तेजी भारत आये। 'भगवान बुद्ध और उनका धर्म' की पांडुलिपि उनके साथ थी। वे मुम्बई गये और उस समय के पिपुल्स् एज्युकेशन सोसाईटी के अध्यक्ष न्यायमूर्ति आर. आर. भोले से कहा कि मैंने बाबा साहब के ग्रंथ का अनुवाद किया है। आप इसको छपवाने की व्यवस्था करें।

उन्होंने कहा "इस अनुवाद को देखना होगा".

भन्तेजी ने कहा, "बाबासाहब की पुस्तक और आनंद कौसल्यायन जिसके अनुवादक उसे तीसरा कौन देख सकता है।"

भोले साहब ने भन्तेजी की ओर देखा और मूल अंग्रेजी ग्रंथ को खोलकर कहा कि इस पृष्ठ को पढ़िये। इसी प्रकार दो तीन जगह से अनुवाद पढ़वाकर सुना और कहा कि मैं संतुष्ट हूँ। पुस्तक जल्दी ही छपेंगी।

इस का पहला हिन्दी संस्करण सन ६१ में निकला। तब से अब तक इसके कई संस्करण निकले। इस ग्रंथ की कीमत इतनी अधिक होती है कि सामान्य पाठक इसको खरीद ही नहीं सकता।

भन्तेजी ने इस ग्रंथ का पंजाबी भाषा में भी अनुवाद किया है। गत वर्ष अगस्त में जब मैं ताईवान गया था तो **The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation, Taiwan** के पदाधिकारीओं ने इसका हिन्दी एवं अंग्रेजी संस्करण छपवाकर बिना मूल्य वितरित करने की इच्छा व्यक्त की थी। इस बार मैं जुलाई में ताईपेई गया और उन्हें दोनों पुस्तके सौंप दी।

मैं भारतीय बौद्धों की ओर से **The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation, Taiwan** का उनके इस पुण्यमय कार्य के लिये अत्यंत कृतज्ञ हूं।

सब्बे सत्ता सुखी होंतु।

भिक्षु मेधंकर
१.०७.१९९६

अध्यक्ष
बौद्ध प्रशिक्षण संस्थान, बुद्ध भूमि,
जी. एन. रोड, कामठी, नागपुर. (भारत)
फोन नं : ०७१०९-८८७३२

समर्पण

यो हवे दहरो भिक्खु युञ्जति बुद्धसासने
सो मं लोकं पभासेति अब्भामुत्तो व चन्दिमा।।

जब कोई तरूण भिक्षु बुद्ध-शासन की सेवा में रत हो जाता है तो वह बादलों से मुक्त चन्द्रमा की तरह इस संसार को प्रकाशित करता है।

नम्र निवेदन

जिस प्रकार डा० भीमराव आम्बेडकर का क्रान्तिकारी जीवन अनेक असमर्थ और अविकलित मस्तिष्कों के लिये दुर्बोध और चर्चा का विषय रहा है, उसी प्रकार उनकी अनेक कृतियों में से यह उनकी अन्तिम, अनुपम तथा सर्वलोक हितकारी कृति भी काफी लोगों के लिये दुर्बोध और 'किन्तु परन्तु' का विषय बन गई है।

इस प्रकार के कार्य के लिये कितने सतत परिश्रम, कितनी सूझ-बूझ, कितनी पैनी दृष्टि की आवश्यकता हो सकती है, इसका अनुभव वही कर सकता है कि जिसने इस प्रकार का कार्य करने का कभी विचार भी किया हो। आप कल्पना कीजिये—

(१) आपके सम्मुख सारा त्रिपिटक है। त्रिपिटक का मतलब है सुत्त पिटक, विनय पिटक तथा अभिधम्म पिटक। सुत्त पिटक में पांच निकाय हैं—(१) दीघ निकाय, (२) मज्झिम निकाय, (३) संयुत्त निकाय, (४) अंगुत्तर निकाय तथा (५) खुद्दक निकाय। अकेले खुद्दक निकाय में ही धम्मपद, सुत्तनिपात जैसी पन्द्रह पुस्तकें हैं। विनय पिटक में भी महावग्ग, चुल्लवग्ग आदि पांच ग्रन्थों से कम नहीं हैं और अभिधम्म पिटक में तो पूरे सात ग्रन्थ हैं।

इन सभी ग्रन्थों पर पृथक पृथक अर्थकथायें हैं जो अपने अपने मूलग्रन्थ से प्रायः कई गुनी हैं।

त्रिपिटिक-बाह्य किन्तु त्रिपिटक के ही समान आदृत मिलिन्द-प्रश्न तथा विसुद्धिमग्गो सदृश ग्रन्थ हैं।

बुद्ध-चरित तथा दूसरा अवदान साहित्य है।

अनेक समानतायें रहने पर भी, विषम प्रतीत होने वाले कथनों की भी कमी नहीं है।

आप इस विशाल वाङ्मय में से एक ऐसा चयन तैयार करना चाहते हैं जिसमें जो कुछ भी हो यथासंभव बुद्धिगम्य हो, जिसमें 'भगवान बुद्ध और उनकी शिक्षाओं' की एक पूरी रूप-रेखा आ जाय, जिसमें यथासंभव पुनरुक्ति भी कम से कम हो और जो न केवल बुद्धि-प्रधान मस्तिष्कों को बल्कि भावना-प्रधान प्रवृत्तियों को भी कल्याणमार्गी बना सकने में समर्थ हो सके—क्या यह कार्य सहज कार्य है?

यह कार्य डाक्टर आम्बेडकर के लिये भी सहज कार्य नहीं ही रहा होगा। इस कठिनाई की प्रतिध्वनि उनके इस कथन में स्पष्ट है—

"बौद्ध त्रिपिटक और उसकी अट्ठकथायें समुद्र की तरह विशाल हैं। उन्हें कण्ठस्थ कर सकना सचमुच एक बड़ी असाधारण बात थी।

एक से अधिक बार ऐसा हुआ है कि भगवान् बुद्ध ने जो कुछ कहा है, उसकी रिपोर्ट ठीक ठीक नहीं हुई।

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में ही कई बार उनके वचनों की 'गलत रिपोर्ट' उन तक पहुंची थी। उदाहरण के तौर पर ऐसे पांच अवसरों का उल्लेख किया जा सकता है।. . .

शायद इस तरह के और भी अनेक अवसर आये हों जब तथागत के वचनों की ठीक 'रिपोर्ट' न हुई हो। क्योंकि हम देखते हैं कि भिक्षु भी भगवान् बुद्ध के पास गये हैं और प्रश्न किया है कि ऐसी परिस्थिति में उन्हें क्या करना चाहिये?

'कर्म' और 'पुनर्जन्म' (तक) के बारे में जब जब 'गलत रिपोर्ट' हुई है, उसके अनेक अवसर हैं।

इसलिये त्रिपिटक में भी जो 'बुद्ध-वचन' करके माना गया है, उसे भी 'बुद्ध-वचन' स्वीकार करने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। (पृ० २७८)"

परिस्थिति सचमुच विकट है। किन्तु डा० आम्बेडकर के ही शब्दों में, सौभाग्य से, त्रिपिटक में ही एक कसौटी विद्यमान है जिससे किसी भी वचन के सम्बन्ध में यथार्थ निर्णय पर पहुंचने में सहायता ली जा सकती है। वह कसौटी है—

"भगवान् बुद्ध के बारे में एक बात बड़े ही विश्वास के साथ कही जा सकती है; वे कुछ नहीं थे, यदि उनका कथन बुद्धि-संगत, तर्क-संगत नहीं होता था। दूसरी बातों का यथायोग्य मूल्यांकन करते हुए यह बात कही जा सकती है कि जो बात बुद्धि-संगत है, जो बात तर्क-संगत है, वही 'बुद्ध-वचन' है।

"दूसरी बात यह है कि भगवान् बुद्ध ने कभी ऐसी बेकार की चर्चा में नहीं पड़ना चाहा जिसका आदमी के कल्याण से कोई सम्बन्ध न हो। इसलिये कोई भी ऐसी बात जिसका आदमी के कल्याण से कोई सम्बन्ध नहीं, यदि भगवान् बुद्ध के सिर मढ़ी जाती है, तो उसे 'बुद्धवचन' स्वीकार नहीं करना चाहिये। (पृ० २७८-२७९)"

इसी कसौटी पर परख परख कर, लगता है कि डा० आम्बेडकर ने परम्परागत 'बुद्ध-वचन' को 'बुद्ध-वचन' स्वीकार करने या स्वीकार न करने का रास्ता अपनाया है।

पहली ही बात जो उन्होंने अपने इस ग्रन्थ में परम्परागत मान्यता के विरुद्ध अथवा उससे भिन्न लिखी है वह है तथागत की 'प्रव्रज्या' अथवा उनके 'अभि-निष्क्रमण' के कथानक को ही लेकर। सिद्धार्थ कुमार प्रव्रजित हुए थे, यह सत्य है किन्तु प्रश्न है वह क्यों प्रव्रजित हुए थे? परम्परागत मान्यता है कि एक बूढ़े, एक रोगी, एक मृत तथा एक साधु को देखकर। यदि इन्हें संसार के दुःखमय जीवन

का प्रतीक मानकर इस कथानक को एक अलंकारिक रूपक मात्र स्वीकार कर लिया जाय, तब तो बात दूसरी है किन्तु यदि २९ वर्ष की आयु होने तक भी सिद्धार्थ द्वारा एक बूढ़े, एक रोगी और एक मृत व्यक्ति को न देखे रहने की बात को 'ऐतिहासिक-सत्य' माना जाय तो यह 'ऐतिहासिक-सत्य' ऐसा ही 'सत्य' होगा जिस पर हर विचारवान् का प्रश्नचिह्न लगेगा और अवश्य लगेगा। आखिर इस 'ऐतिहासिक सत्य' की प्राचीनतम साहित्यिक साक्षी क्या है? इसकी साहित्यिक साक्षी केवल वे अट्ठकथायें हैं जिन्हें बुद्धघोष तथा अन्य आचार्यों ने भगवान् बुद्ध के एक हजार वर्ष बाद परम्परागत सिंहल अट्ठकथाओं का आश्रय ग्रहण कर पालि भाषा में लिखा। क्या त्रिपिटक के अन्तर्गत गिने जाने वाले ग्रन्थों में से किसी भी ग्रन्थ में इस 'बूढ़े-रोगी-मृत-साधु' को देखकर अभिनिष्क्रमण किये जाने वाले कथानक का कहीं उल्लेख नहीं है? हमारी सीमित जानकारी में कहीं भी नहीं है। खुद्दकनिकाय के सुत्तनिपात के अट्ठकवग्ग में अत्तदण्डसुत्त है। उसमें प्रव्रज्या का ठीक कारण व्यक्त हुआ प्रतीत होता है। उस सुत्त में है—

अत्तदण्डा भयं जातं, जनं पस्सथ मेधगं।
संवेगं कित्तयिस्सामि यथा संविजितं मया॥ १॥
फन्दमानं पजं दिस्वा मच्छे अप्पोदके यथा।
अञ्ञमञ्ञेहि व्यारुद्धे दिस्वा मं भयमाविसि॥ २॥
समन्तमसारो लोको, दिसा सब्बा समेरिता।
इच्छं भवनमत्तनो नाद्दसासिं अनोसितं।
ओसाने त्वेव व्यारुद्धे दिस्वा मे अरति अहु॥ ३॥

(अर्थ—शस्त्र धारण भयावह लगा। (उससे) यह जनता कैसे झगड़ती है देखो। मुझमें संवेग (वैराग्य) कैसे उत्पन्न हुआ, यह मैं बताता हूँ। (२) अपर्याप्त पानी में जैसे मछलियां छटपटाती हैं वैसे एक-दूसरे से विरोध करके छटपटाने वाली प्रजा को देखकर मेरे अन्तःकरण में भय उत्पन्न हुआ। (३) चारों ओर का जगत् असार दिखाई देने लगा, सब दिशायें काँप रही हैं ऐसा लगा और उसमें आश्रय का स्थान खोजने पर निर्भय स्थान नहीं मिला, क्योंकि अन्त तक सारी जनता को परस्पर विरुद्ध हुए देखकर मेरा जी ऊब गया।[1])

फिर 'सुत्तनिपात' के पब्बज्जा सुत्त के प्रारम्भ में ही निम्नलिखित गाथायें हैं:-

पब्बज्जं कित्तयिस्सामि यथा पब्बजि चक्खुमा।
यथावीमंसमानो सो पब्बज्जं समरोचयि॥१॥
संबाधोऽयं घरावासो रजस्सायतनं इति।
अब्भोकासो च पब्बज्जा इति दिस्वान पब्बजि॥२॥

१. देखो प्रो० धम्मानंद कोसम्बी कृत 'भगवान् बुद्ध' का हिन्दी अनुवाद।

(अर्थ—वक्कुष्मन्त ने प्रव्रज्या क्यों ली और उसे वह किस विचार से प्रिय लगी यह बतलाकर उसकी प्रव्रज्या का मैं वर्णन करता हूँ। (२) गृहस्थाश्रम तो अड़चनों और कूड़े-कचरे की जगह है तथा प्रव्रज्या खुली हवा है यह जानकर वह परिव्राजक बन गया।)

प्रो० धम्मानन्द कोसम्बी की ही मान्यता का समर्थन करते हुए डा० आम्बेडकर नें सिद्धार्थ की प्रव्रज्या या अभिनिष्क्रमण का जो मन-मोहक रूपक चित्रित किया है, हम नहीं जानते कि यह भी यथार्थ इतिहास के कितना समीप वा दूर है ? किन्तु हम इतना जरूर अनुभव करते हैं कि त्रिपिटक में उनके प्रव्रजित होने के कारणों की ओर जो भी छुट-पुट संकेत हैं वह 'बूढ़े-रोगी-मृत-साधु' कथानक की अपेक्षा इस 'एक दूसरे से विरोध करके छटपटाने वाली प्रजा को देखकर' कथानक से मेल खाते हैं। इस प्रकार इसकी कम सम्भावना नहीं है कि सिद्धार्थ कुमार के अभिनिष्क्रमण के मूल में इस 'छटपटाने वाली प्रजा' के दुःख के मूल कारण को पता लगाने की आकांक्षा ही प्रधान रही हो। क्या इसमें कुछ भी आश्चर्य हो सकता है कि लोग उसे यह कह कर याद करते रहे हों कि "यह उच्च कुलोत्पन्न था, श्रेष्ठ माता-पिता की सन्तान था, सम्पन्न था, तारुण्य के मध्य में था, सुन्दर शरीर और बुद्धि से युक्त था, सुख-भोग में पला था और वही अपने संबंधियों से इसलिये लड़ा कि पृथ्वी पर शान्ति बनी रहे और जनता का कल्याण हो।" (पृ० ३३) लोगों का कहना था कि यह "इसका स्वेच्छा से किया हुआ महान् त्याग है। यह बड़ी ही वीरता और साहस का कार्य है। संसार के इतिहास में इसकी उपमा नहीं। यह शाक्य-मुनि अथवा शाक्य-सिंह कहलाने का अधिकारी है।" (पृ० ३३)

जिस प्रकार जंजीर की एक कड़ी से दूसरी कड़ी जुड़ी रहती है उसी प्रकार भगवान् बुद्ध के इस गृह-त्याग के उद्देश्य और उसकी पूर्ति की पुण्य-गाथा का ही नाम 'भगवान् बुद्ध का धर्म' होना ही चाहिए। यह मान्य ही है कि भगवान् बुद्ध ने जनता के दुःख के कारणों की गहराई में जाकर उन कारणों को नष्ट करने का उपाय जान कर, जनता को उसकी जानकारी करा कर दुःख का मूलोच्छेद करने के उद्देश्य से ही गृह त्याग किया। अब यह दुःख दो तरह का हो सकता है—(१) सम्परायिक दुःख; (२) सांदिट्ठिक दुःख। (१) वह दुःख जो किसी को नरक या अपाय में जन्म ग्रहण करने पर भोगना पड़ता है तथा वह दुःख जो किसी को बार बार जन्म ग्रहण करने से भोगना पड़ता है तथा वह दुःख भी जो जन्म लेने मात्र का ही अवश्यम्भावी परिणाम है अर्थात् जो दुःख जन्म ग्रहण करनें का ही दूसरा पर्याय है। (२) वह दुःख जो राग, द्वेष तथा मोह के कारण उत्पन्न होता है और राग द्वेष तथा मोह का क्षय कर देने से यहीं इसी छः फुट के शरीर में ही जिसका अन्त किया जा सकता है।

बौद्ध वाङ्मय में दोनों प्रकार के दुःखों की चर्चा है। मान लेने की बात दूसरी है

किन्तु सम्प्रदायिक दुःखों की उलझन में उलझने के बाद आदमी को नरक के अस्तित्व को—भले ही वह सिद्ध हो चाहे असिद्ध हो—स्वीकार करना ही पड़ता है; मरणान्तर जन्म ग्रहण को–भले ही वह भी सिद्ध हो चाहे असिद्ध हो—स्वीकार करना ही पड़ता है तथा जीवन को ही स्वभाव से दुःख रूप मान लेना होता है। यह सभी मान्यतायें किसी के गले उतर सकती हैं और किसी के गले नहीं भी उतर सकती हैं। किन्तु सांदिट्ठिक दुःख का जो रूप है, उसकी जो अनुभूति है और उसके क्षय की भी जो पूरी सम्भावना है उसके लिए उक्त किन्हीं भी मान्यताओं का आश्रय लेने की अपेक्षा नहीं। भगवान् बुद्ध ने अपने धर्म को "सांदृष्टिक धर्म" ही कहा है। हमारा नित्य प्रति का धर्मानुस्मरण इसी प्रकार का है—

"स्वाक्खातो भगवता धम्मो **संदिट्ठिको**, अकालिको, एहि पस्सिको, ओपनयिको, पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूहिति"

(भिक्षुओ! यह धर्म अच्छी तरह समझा कर कहा गया है, यह **सांदृष्टिक** है, यह अकालिक है, इसके बारे में कहा जा सकता है कि आओ और स्वयं देख लो, यह ऊपर उठाने वाला है और हर विज्ञ (पुरुष) इसका स्वयं साक्षात् कर सकता है।)

हमारी दृष्टि में डा० आम्बेडकर के इस ग्रन्थ की यह बड़ी विशेषता है कि उन्होंने बौद्ध वाङमय में धर्म का जो सांदृष्टिक-अंश है उसी को अपने ग्रन्थ में प्रधानता दी है।

प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय की साम्प्रदायिक शिक्षाओं की यही विशेषता है कि यदि कोई उन्हें सिद्ध नहीं कर सकता तो उन्हें कोई असिद्ध भी नहीं कर सकता। पक्षपाती एक तरह के तर्क देते रहते हैं, विरोधी दूसरी तरह के। न उनके तर्कों से कुछ सिद्ध होता है और न इनके तर्कों से कुछ खण्डित। लाभ इतना ही है कि जबान की लपालपी अथवा शास्त्र-चर्चा युग-युगान्त तक बनी रहती है।

हमें किसी की साम्प्रदायिक मान्यताओं का खण्डन करते फिरने की आवश्यकता नहीं, किन्तु यदि वे हमारे सांदृष्टिक धर्म-पालन के मार्ग में बाधा बन कर खड़ी होती है तो उन्हें भी कदाचित् आड़े हाथों लेना ही पड़ सकता है।

जिन्हें भारतीय विचार-धारा और यहां की साम्प्रदायिक मान्यताओं का उतना परिचय नहीं वे जहां भी **पुनर्जन्म**, **कर्म**, **मोक्ष** आदि भारतीय संस्कृति के सुपरिचित शब्दों को देखते हैं वहां उनके मनमाने अर्थ करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि सभी धार्मिक परम्पराओं में इन शब्दों का अपना अपना अर्थ-वैशेष्य सुरक्षित रहते हुए भी शब्द साम्य ही वह रज्जु है जो उन्हें एक-रूपता के सूत्र में बांधे हुए है। डा० आम्बेडकर ने अतपने इस ग्रन्थ के द्वारा **पुनर्जन्म**, **कर्म**, **मोक्ष** आदि सर्वजन परिचित शब्दों के बौद्ध अर्थों की विशेषता को प्रकट करने का प्रयास किया है। कोई उनके अर्थों से असहमति प्रकट कर सकता है, किन्तु

डा० आम्बेडकर का यह प्रयास हर तरह से श्लाघ्य माना जायगा ।

इतना तो हम भी कहना ही चाहेंगे कि यदि बौद्ध पुनर्जन्म तथा अबौद्ध पुनर्जन्म में कोई अन्तर नहीं, यदि बौद्ध कर्म तथा अबौद्ध कर्म में कोई अन्तर नहीं और यदि बौद्ध मोक्ष या निर्वाण तथा अबौद्ध मोक्ष में कोई अन्तर नहीं तो फिर बौद्ध-धर्म की अपनी कुछ भी विशेषता है ही नहीं । इन विषयों में शब्द-साम्य भले ही कितना ही हो, अर्थ-साम्य हो ही नहीं सकता। बौद्ध परम्परा सम्पूर्णतया अनात्मवादी है और अबौद्ध 'समय' प्राय: सभी आत्मवादी।

अनीश्वरवाद तथा अनात्मवाद बौद्ध-धर्म के दो ऐसे कुल्हाड़े हैं कि बिना उनकी सहायता के अबौद्ध मान्यताओं के झाड़-झंखाड़ को साफ किये, बौद्ध धर्म के भवन की आधार-शिला रखी ही नहीं जा सकती ।

यूं हम सभी मानते हैं कि आदमी सामाजिक प्राणी है और यह भी मानते हैं कि मनुष्येत्तर प्राणियों के भी अपने अपने समाज हैं, किन्तु पता नहीं जब हम किसी आदमी का उसके धार्मिक रूप में अध्ययन करना चाहते हैं तो उसे क्यों इतना एकाकी मान बैठते हैं ? हर आदमी में एक 'आत्मा' मान ली जाती है और सब आदमियों के ऊपर एक 'परमात्मा' मान लिया जाता है उस 'आत्मा' का उस 'परमात्मा' में लीन कर सकना जीवन का 'परं उद्देश्य' घोषित कर दिया जाता है। आदमी जितना ही 'परमात्मा' के समीप सरकता जाता है उतना ही अपने निकट सम्बन्धियों तक से दूर होता चला जाता है। ऐसा क्यों न हो, जब गुढ़ती के साथ ही यह शिक्षा दी जाती है—

> जाके हृदय न राम-बैदेही
> तजो ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परं सनेही
> तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषण बन्धु, भरत महतारी. . .

किन्तु भगवान् बुद्ध के धर्म की आधार-शिला आदमी आदमी का परस्पर का योग्य सम्बन्ध ही है ।

यह सचमुच खेद की बात है कि इस विषय में बौद्ध धर्म तक के बारे में लोगों के मन में सर्वथा गलत धारणायें घर किये हुए हैं । पहले तो केवल इसलिये कि बुद्ध ने जो कहा वह प्राय: 'भिक्षुओं' को ही सम्बोधित करके कहा, दूसरे शायद इसलिये भी कि संगीतिकारक भिक्षु ही थे और उन्होंने स्वभावत: उन्हीं बातों को अधिक महत्व दिया होगा जो उनसे संबंधित थीं, लोगों ने बुद्ध-धर्म को भिक्षुओं का ही धर्म समझ लिया ।

भिक्षुओं की संख्या कितनी भी अधिक रही हो । भगवान् बुद्ध के गृहस्थ उपासकों की संख्या उनसे अधिक ही रही होगी । इसलिये बौद्ध-धर्म जितना भिक्षुओं का धर्म था, उतना ही गृहस्थों का धर्म । फिर उन भिक्षुओं को चीवर, पिण्डपात, शयनासन

तथा रोगी होने पर दवाई आदि देने वाले गृहस्थ लोग ही थे। यह ठीक है कि भिक्षु गृहस्थों को शिक्षा देते थे, किन्तु भिक्षुओं को भिक्षा देने वाले तो गृहस्थ ही रहे होंगे। इसलिये बुद्ध-शासन जितनी मात्रा में भिक्षुओं पर निर्भर करता था उससे कम मात्रा में गृहस्थों पर नहीं।

डा० आम्बेडकर का यह कथन कि बौद्धों का एक पृथक् समाज न होना बौद्ध धर्म के भारत से लुप्त होने के कारणों में से एक कारण है (पृ० ३५६) किसी हद तक सचमुच विचारणीय है; किन्तु यह वर्तमान युग की ऐसी अवश्यकता नहीं दी है कि देश में जितने धर्म हों उतने ही पृथक् पृथक् समाज हों।

प्राचीन काल से बौद्ध-समाज की ये कुछ विशेषतायें रही हैं—

(१) बौद्ध समाज के सभी सदस्य परस्पर एक दूसरे को समान मानते रहे हैं।

(२) बौद्ध समाज के सभी सदस्यों को शिक्षा प्राप्त करने की समान स्वतन्त्रता रही है।

(३) बौद्ध समाज के सभी सदस्यों को कोई भी पेशा कर सकने की स्वतन्त्रता रही है।

(४) बौद्ध समाज की स्त्रियों को पुरुषों के समान ही अधिकार रहे हैं।

संक्षेप में कहना तो यही कह सकते हैं कि बौद्ध समाज वर्णाश्रम धर्मरूपी बेड़ियों से सर्वथा स्वतन्त्र रहा है।

डा० आम्बेडकर ने अपने इस ग्रन्थ में बौद्ध-धर्म के जनतांत्रिक रूप को स्पष्ट करने के लिये एक 'भिक्षु' और एक 'ब्राह्मण' के भेद को तथा एक भिक्षु' और एक 'उपासक' के भेद को जिस स्पष्टता के साथ दरसाया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। (देखो पृ० ३४४—३४६)।

प्रश्न है और महत्वपूर्ण प्रश्न है कि एक भिक्षु का जीवन-कार्य क्या है? क्या भिक्षु जीवन व्यक्तिगत साधना के लिये ही है अथवा उसे लोगों की सेवा तथा उनका मार्ग दर्शन भी करना ही है? उत्तर है—"ये दोनों ही उसके जीवन-कार्य हैं। बिना व्यक्तिगत साधना के वह नेतृत्व कर नहीं सकता। इसलिये उसे अपने में एक सम्पूर्ण सर्वश्रेष्ठ, धार्मिक और ज्ञान-सम्पन्न व्यक्ति बनना ही होगा। इसके लिये उसे व्यक्तिगत साधना करनी ही होगी। (पृ० ३४७)

"एक भिक्षु गृहत्याग करता है। वह संसार त्याग नहीं करता। वह अपने घर को इसलिये छोड़ता है ताकि उसे उन लोगों की सेवा करने का अवसर मिल सके जो अपने अपने घर में बुरी तरह आसक्त हैं और जो दुःख में पड़े हैं, जो चिन्ता में पड़े हैं, जिन्हें चैन नहीं है और जिन्हें सहायता की अपेक्षा है।" (पृ० ३४७)

यदि भिक्षुसंघ में ऐसे ही बहुसंख्यक भिक्षु नहीं होंगे तो यह कह सकना कठिन है कि तब भिक्षु-संघ की क्या सामाजिक उपयोगिता बनी रहेगी? और यदि सामाजिक

उपयोगिता बनी नहीं रहेगी तो यह भी कह सकना कठिन है कि स्वयं भी बना ही रहेगा या नहीं ?

इस पुस्तक का जिस रूप में संकलन किया गया है उससे पाठकों के मन में एक भ्रम भी हो सकता है। हमें यह स्पष्ट जान लेना चाहिये कि पुस्तक में जिन ऐतिहासिक घटनाओं का जिस क्रम से उल्लेख किया गया है, वही उनका पूर्वापर नहीं है। आरम्भिक अंश के बाद का संकलन तो एक प्रकार से ऐतिहासिक संकलन न होकर विषयवार संकलन ही है।

अब से इस ग्रन्थ का मूल अंग्रेजी प्रकाशित हुआ है, इसकी कुछ आलोचना भी पढ़ने-सुनने को मिली है। रंगून से प्रकाशित होने वाले Light of the Dhamma नामक पत्र में एक आस्ट्रेलियन सज्जन द्वारा की गई आलोचना देखने में आई और अंग्रेजी 'Mahabodhi' में एक अंग्रेज सज्जन द्वारा की गई आलोचना भी। इन आलोचनाओं को पढ़कर न्यूटन के बारे में सुनी या पढ़ी एक घटना याद आ गई। बड़े परिश्रम से उसने गणित का एक प्रश्न हल करके रखा था। पास बैठे पिल्ले ने स्याही की दवात लुढ़का दी। न्यूटन ने इतना ही कहा—"तू क्या जाने तूने कितनी बड़ी हानि की है !"

इस ग्रन्थ की जिस मानने योग्य कमी की ओर अनेक मित्रों ने ध्यान आकर्षित किया है वह यह है कि यदि मूल ग्रन्थ में उन सभी स्थलों के संकेत या प्रतीक भी दे दिये गये होते जिन से यह सारी सामग्री चयन की गई है तो यह अच्छा होता। जिन डा० आम्बेडकर ने अपने अन्य ग्रन्थों में अपने हर कथन के समर्थन में इतनी पाद-टिप्पणियां दी हैं उन्होंने अपने इस ग्रन्थ को किसी एक भी पादटिप्पणी या संकेत द्वारा बोझल नहीं बनाया। ऐसा स्पष्ट है कि उन्होंने यह जान-बूझकर ही किया है।

पाद टिप्पणियों का भी अपना मूल्य है किन्तु जिन पाठकों को ध्यान में रखकर यह पुस्तक लिखी गई है उनके लिये डा० आम्बेडकर का लेखन ही इतना बड़ा प्रमाण है कि फिर किसी अन्य प्रमाण की अपेक्षा रह ही नहीं जाती।

यदि तुलसीदास का 'रामचरितमानस' बिना किसी एक भी प्रमाण या पाद-टिप्पणी के उत्तर-भारत के घर घर में बांचा जा सकता है तो डा० आम्बेडकर द्वारा लिखित इस 'भगवान् बुद्ध और उनका धर्म' को भी कौन भारतीय-बौद्धों का एक सम्मानित ग्रन्थ होने से रोक सकता है ?

तो भी अधिक जिज्ञासु पाठकों के लिये ग्रन्थ की उपादेयता बढ़ाने की दृष्टि से अनुवादक ने अपने इस अनुवाद में बौद्ध वाङमय के उन सब सूत्रों के प्रतीक दे दिये हैं जहां जहां से डा० आम्बेडकर ने स्पष्ट ही अपनी सामग्री जुटाई है।

पुस्तक को सुपाठ्य बनाये के लिये उन्होंने 'मक्खी पर मक्खी मार' अनुवादों को नहीं अपनाया है। ऐसा करते तो पुस्तक की भाषा कभी भी उतनी प्राञ्जल और सजीव हो ही न पाती, जितनी वह इस समय बन पड़ी है।

कहीं कहीं उन्होंने विषय को स्पष्ट करने के लिये अपनी ओर से भी कोई बात जोड़ दी है, किन्तु कहीं एक भी जगह ऐसी बात नहीं जहां धर्म का अपघात हुआ हो।

ऐसे स्थलों की भी कमी नहीं जहां डा० आम्बेडकर ने अपना स्वतन्त्र मत व्यक्त किया है। वे सभी कथन मान्य हों या न हों, किन्तु एक भी ऐसा नहीं जो गम्भीरतापूर्वक विचार करने योग्य न हो।

अपने लाखों अनुयायियों सहित बोधिसत्व-चरित डा० भीमराव आम्बेडकर ने जब नागपुर में धर्म-दीक्षा ग्रहण की थी तो महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने कहा था कि आम्बेडकर ने भारत में नये सिरे से बौद्ध धर्म का एक ऐसा खम्भा गाड़ दिया है कि जैसे कोई नहीं हिला सकता।

बौद्ध-धर्म और बौद्धसमाज के पक्ष में जितना महान् कार्य नागपुर की वह दीक्षा थी, उतना ही बल्कि उससे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य डा० भीमराव की पुण्य-लेखनी ने इस ग्रन्थ-रत्न की रचना करके किया है।

कोई भी ग्रन्थ अपनी पृष्ठसंख्या से बड़ा या छोटा नहीं माना जा सकता। प्रज्ञा के अनुवीक्षण यन्त्र से देखने पर और जन-हित के माप दण्ड से मापने पर जो ग्रन्थ जितना ही खरा उतरे, वह उतना ही महान् या छोटा-बड़ा होता है।

इस ग्रन्थ की मूल अंग्रेजी प्रति मुझे People's Education Society के वर्तमान अध्यक्ष की ही कृपा से बम्बई से थाईलैण्ड जाते समय बम्बई स्टेशन पर ही प्राप्त हो गई थी। मैंने रास्ते में ही उसे अधिकांश पढ़ डाला और कलकत्ते पहुंचते पहुंचते अनुवाद आरम्भ कर दिया।

विश्व बौद्ध सम्मेलन के उत्सव के अनन्तर मैं थाईलैण्ड में दो महीने तक इस ग्रन्थ का अनुवाद समाप्त कर डालने की कामना से ही रुका रहा। वट महाधातु, बंकाक के उन सब स्नेही भिक्षुओं तथा सद्गृहस्थों का कृतज्ञ हूँ जिन्होंने बंकाक में रहते समय मेरे निवास तथा भोजन आदि की समुचित व्यवस्था कर इस ग्रन्थ के अनुवाद कार्य में हर तरह से सहायता पहुंचाई।

थाईलैण्ड से ही मेरे बर्मा, जापान और फिर सिंहलद्वीप चले आने के कारण ग्रन्थ का मुद्रण तथा प्रकाशन कुछ विलम्ब से ही हो रहा है।

इसकी प्रेस-कापी की तैयारी के समय भिक्षु सुमेध, भिक्षु प्रज्ञानंद तथा भिक्षु मेधंकर की भी अनल्प सहायता रही। यूं अपनों को धन्यवाद देना न जाने कैसा लगता है!

People's Education Society का मैं विशेष आभारी हूं कि उसने मूल अंग्रेजी ग्रन्थ की तरह उसके हिन्दी अनुवाद को प्रकाशित करने की उदारता तथा सदाशयता का परिचय दिया।

विद्यालंकार विश्वविद्यालय, कैलनिय

आनंद कौसल्यायन

भगवान बुद्ध
और
उनका धर्म

डॉ. भीमराव रामजी आंबेडकर



जन्म
१४ एप्रिल १८९१

महापरिनिर्वाण
६ डिसेंबर १९५६

धम्मदीक्षा
अशोक विजयादशमी
१४ ऑक्टोबर १९५६

परिचय

भारतीय जनता के एक वर्ग की बौद्ध-धर्म में दिलचस्पी बढ़ती चली जा रही है— इसके लक्षण स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इसके साथ साथ एक और स्वाभाविक मांग भी उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है और वह है भगवान् बुद्ध के चरित्र और उनकी शिक्षाओं के सम्बन्ध में एक स्पष्ट तथा संगत ग्रन्थ की।

किसी भी अबौद्ध के लिये यह कार्य अत्यन्त कठिन है कि वह भगवान् बुद्ध के चरित्र और उनकी शिक्षाओं को एक ऐसे रूप में पेश कर सके कि उनमें सम्पूर्णता के साथ साथ कुछ भी असंगति न रहे। जब हम दीघनिकाय आदि पालि ग्रन्थों के आधार पर भगवान् बुद्ध का जीवन-चरित्र लिखने का प्रयास करते हैं तो हमें यह कार्य सहज प्रतीत नहीं होता, और उनकी शिक्षाओं की सुसंगत अभिव्यक्ति तो और भी कठिन हो जाती है। यथार्थ बात है और ऐसा कहने में कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं कि संसार में जितने भी धर्मों के संस्थापक हुए हैं, उनमें भगवान् बुद्ध की चर्या का लेखा-जोखा हमारे सामने कई ऐसी समस्यायें पैदा करता है जिनका निराकरण यदि असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। क्या यह आवश्यक नहीं कि इन समस्याओं का निराकरण किया जाय और बौद्ध-धर्म के समझने-समझाने के मार्ग को निष्कण्टक किया जाय? क्या अब वह समय नहीं आ गया है कि बौद्धजन उन समस्याओं को लें, उन पर खुला विचार-विमर्श करें और उन पर जितना भी प्रकाश डाला जा सके डालने का प्रयास करें?

इन समस्याओं की ही चर्चा को उत्तेजित करने के लिये मैं उन (में से कुछ) का यहां उल्लेख कर रहा हूँ।

पहली समस्या भगवान् बुद्ध के जीवन की प्रधान घटना प्रव्रज्या के ही सम्बन्ध में है। बुद्ध ने प्रव्रज्या क्यों ग्रहण की? परम्परागत उत्तर है कि उन्होंने प्रव्रज्या इसलिये ग्रहण की क्योंकि उन्होंने एक वृद्ध पुरुष, एक रोगी व्यक्ति तथा एक मुर्दे की लाश को देखा था। स्पष्ट ही यह उत्तर गले के नीचे उतरने वाला नहीं। जिस समय सिद्धार्थ (बुद्ध) ने प्रव्रज्या ग्रहण की थी उस समय उनकी आयु २९ वर्ष की थी। यदि सिद्धार्थ ने इन्हीं तीन दृश्यों को देखकर प्रव्रज्या ग्रहण की तो यह कैसे हो सकता है कि २९ वर्ष की आयु तक सिद्धार्थ ने कभी किसी बूढ़े, रोगी तथा मृत व्यक्ति को देखा ही न हो? यह जीवन की ऐसी घटनायें हैं जो रोज ही सैकड़ों हजारों घटती रहती हैं और सिद्धार्थ ने २९ वर्ष की आयु होने से पहले भी इन्हें देखा ही होगा।

इस परम्परागत मान्यता को स्वीकार करना असम्भव है कि २९ वर्ष की आयु होने तक सिद्धार्थ ने एक बूढ़े, रोगी और मृत व्यक्ति को देखा ही नहीं था और २९ वर्ष की आयु होने पर ही प्रथम बार देखा। यह व्याख्या तर्क की कसौटी पर कसने पर खरी उतरती प्रतीत नहीं होती। तब प्रश्न पैदा होता है कि यदि यह व्याख्या ठीक नहीं तो फिर इस प्रश्न का यथार्थ उत्तर क्या है ?

दूसरी समस्या चारों आर्य-सत्यों से ही उत्पन्न होती है। प्रथम सत्य है दुःख आर्य सत्य ? तो क्या मैं चारों सत्य भगवान् बुद्ध की मूल शिक्षाओं में समाविष्ट होते हैं ? जीवन स्वभावतः दुःख है, यह सिद्धान्त जैसे बुद्ध-धर्म की जड़ पर ही कुठाराघात करता प्रतीत होता है। यदि जीवन ही दुःख है, मरण भी दुःख है, पुनरुत्पत्ति भी दुःख है, तब तो सभी कुछ समाप्त है। न धर्म ही किसी आदमी को इस संसार में सुखी बना सकता है और न दर्शन ही। यदि दुःख से मुक्ति ही नहीं है तो फिर धर्म भी क्या कर सकता है और बुद्ध भी किसी आदमी को दुःख से मुक्ति दिलाने के लिये क्या कर सकता है क्योंकि जन्म ही स्वभावतः दुःखमय है। यह चारों आर्य-सत्य—जिनमें प्रथम आर्य-सत्य ही दुःख-सत्य है—अबौद्धों द्वारा बौद्ध-धर्म ग्रहण किये जाने के मार्ग में बड़ी बाधा है। ये उनके गले आसानी से नहीं उतरते। ऐसा लगता है कि ये सत्य मनुष्य को निराशावाद के गढ़े में ढकेल देते हैं। ये 'सत्य' भगवान् बुद्ध के धर्म को एक निराशावादी धर्म के रूप में उपस्थित करते हैं। प्रश्न पूछा जा सकता है कि क्या ये चारों आर्य-सत्य भगवान् बुद्ध की मूल-शिक्षायें ही हैं अथवा ये बाद का भिक्षुओं द्वारा किया गया प्रक्षिप्तांश है ?

एक तीसरी समस्या आत्मा, कर्म तथा पुनर्जन्म के सिद्धान्त को लेकर है। भगवान् बुद्ध ने 'आत्मा' के अस्तित्व से इनकार किया। लेकिन साथ ही कहा जाता है कि उन्होंने 'कर्म' तथा 'पुनर्जन्म' के सिद्धान्त का भी समर्थन किया है। प्रश्न पैदा हो सकता है, 'आत्मा' ही नहीं तो कर्म कैसा ? 'आत्मा' ही नहीं तो पुनर्जन्म कैसा ? ये सचमुच टेढ़े प्रश्न हैं। भगवान् बुद्ध ने 'कर्म' तथा 'पुनर्जन्म' शब्दों का प्रयोग किन विशिष्ट अर्थों में किया है? क्या भगवान् बुद्ध ने इन शब्दों का किन्हीं ऐसे विशिष्ट अर्थों में प्रयोग किया, जो अर्थ उन अर्थों से सर्वथा भिन्न थे, जिन अर्थों में भगवान् बुद्ध के समकालीन ब्राह्मण इन शब्दों का प्रयोग करते थे ? यदि हां, तो वह अर्थ-भेद क्या था ? अथवा उन्होंने उन्हीं अर्थों में इन शब्दों का प्रयोग किया जिन अर्थों में ब्राह्मणजन इनका प्रयोग करते थे ? यदि हां तो क्या 'आत्मा' के अस्तित्व के अस्वीकार करने तथा 'कर्म' और 'पुनर्जन्म' के सिद्धान्त को मान्य करने में भयानक असंगति नहीं है ?

एक चौथी समस्या भिक्षु को ही लेकर है। भगवान् बुद्ध ने किस उद्देश्य से भिक्षु-संघ की स्थापना की ? क्या उनका उद्देश्य एक (समाज-निरपेक्ष) आदर्श मनुष्य का निर्माण मात्र था ? अथवा उनका उद्देश्य आदर्श समाज-सेवकों की रचना था

जो जन सहायक के मित्र, मार्ग-दर्शक तथा दार्शनिक एक साथ हों। यह एक अत्यन्त महत्व का प्रश्न है। इस पर बौद्ध-धर्म का भविष्य तक निर्भर करता है। यदि भिक्षु एक "सम्पूर्ण मनुष्य" मात्र बना रहेगा तो उसका धर्मप्रचार-कार्य में कोई उपयोग नहीं, क्योंकि वह एक "सम्पूर्ण मनुष्य" होने के बावजूद एक "स्वार्थी" आदमी ही बना रहेगा। दूसरी ओर, यदि वह समाज-सेवक भी है तो उससे बौद्ध-धर्म भी कुछ आशा रख सकता है। इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया ही जाना चाहिये; सैद्धान्तिक संगति बैठाने के लिये ही नहीं, भावी बौद्ध-धर्म के हिताहित की दृष्टि से भी।

मैं समझता हूँ कि मेरे द्वारा उठाये गये ये प्रश्न (जिन का उत्तर आप इस पुस्तक में पायेंगे—अनु.) पाठकों को कुछ सोचने-विचारने पर मजबूर करेंगे और वे भी यथासमय अपना मत व्यक्त करेंगे ही।

विषय-सूचि

प्रथम काण्ड

सिद्धार्थ गौतम—बोधिसत्व किस प्रकार बुद्ध बने ?

पहला भाग

जन्म से प्रव्रज्या

दूसरा भाग

सदा के लिये अभिनिष्क्रमण

तीसरा भाग

नये प्रकार की खोज में

चौथा भाग

ज्ञान-लाभ और नवीन-मार्ग का दर्शन

पाँचवाँ भाग

बुद्ध और उनके पूर्वज

छठा भाग

बुद्ध तथा उनके समकालीन

सातवाँ भाग

समानता तथा विषमता

द्वितीय काण्ड

धर्म दीक्षाओं का आन्दोलन

पहला भाग

बुद्ध और उनका विषाद योग

दूसरा भाग

परिव्राजकों की दीक्षा

तीसरा भाग

कुलीनों तथा धार्मिकों की धर्म-दीक्षा

चौथा भाग

जन्म-भूमि का आवाहन

पाँचवाँ भाग

धर्म-दीक्षा का पुनरारम्भ

छठा भाग

निम्नस्तर के लोगों की धर्म-दीक्षा

सातवाँ भाग

स्त्रियों की धर्म-दीक्षा

आठवाँ भाग

पतितों तथा अपराधियों की धर्म-दीक्षा

तृतीय काण्ड

बुद्ध ने क्या सिखाया

पहला भाग

'धर्म' में भगवान बुद्ध का अपना स्थान

दूसरा भाग

भगवान् बुद्ध के धर्म के बारे में विविध मत

तीसरा भाग

धर्म क्या है !

चौथा भाग

अ-धर्म क्या है ?

पाँचवाँ भाग

सद्धर्म क्या है ?

(क) सद्धर्म के कार्य्य

(ख) धर्म तभी सद्धर्म कहला सकता है, जब वह प्रज्ञा को वृद्धि करे

(ग) धर्म तो तभी सद्धर्म कहला सकता है, जब वह मैत्री की वृद्धि करे

धर्म तभी सद्धर्म कहला सकता है, जब वह तमाम सामाजिक भेद-भावों को मिटा दे

चतुर्थ काण्ड

मज़हब और धर्म

पहला भाग

मज़हब और धर्म

दूसरा भाग

किस प्रकार शाब्दिक समानता तात्विक भेद को छिपाये रखती है

पुनर्जन्म

कर्म

अहिंसा

संसरण

तीसरा भाग

बौद्ध जीवन-मार्ग

चौथा भाग

बुद्ध-प्रवचन

गृहस्थों के लिये प्रवचन

सुचरित्र बने रहने के लिये प्रवचन

सदाचरण सम्बन्धी प्रवचन

निर्वाण-सम्बन्धी प्रवचन

सद्धर्म सम्बन्धी प्रवचन

सामाजिक-राजनीतिक प्रश्नों पर प्रवचन

पञ्चम काण्ड

संघ

पहला भाग

संघ

दूसरा भाग

भिक्षु भगवान् बुद्ध की कल्पना

तीसरा भाग

भिक्षु के कर्तव्य

चौथा भाग

भिक्षु और गृहस्थ

पाँचवाँ भाग

गृहस्थों के जीवन-नियम (विनय)

षष्ठ काण्ड

भगवान् बुद्ध और उनके समकालीन

पहला भाग

उनके समर्थक

दूसरा भाग

भगवान् बुद्ध के विरोधी

तीसरा भाग

उनके धर्म के आलोचक

चौथा भाग

समर्थक और प्रशंसक

सप्तम काण्ड

महान परिव्राजक की अन्तिम चारिका

पहला भाग

निकटस्थ जनों से भेंट

दूसरा भाग

वैशाली से विदाई

तीसरा भाग

महा-परिनिर्वाण

अष्टम काण्ड

महामानव सिद्धार्थ गौतम

पहला भाग

महामानव सिद्धार्थ गौतम

दूसरा भाग

उसकी मानवता

तीसरा भाग

उन्हें क्या नापसन्द था और क्या पसन्द !

समाप्ति



नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुध्दस्स

1

प्रथम काण्ड

सिद्धार्थ गौतम—बोधिसत्व किस प्रकार बुद्ध बने ?

पहला भाग	–	जन्म से प्रव्रज्या
दूसरा भाग	–	सदा के लिये अभिनिष्क्रमण
तीसरा भाग	–	नये प्रकाश की खोज
चौथा भाग	–	बुद्धत्व तथा नया-मार्ग
पाँचवा भाग	–	बुद्ध तथा उनके पूर्वज
छठा भाग	–	बुद्ध तथा उनके समकालीन
सातवां भाग	–	समानता तथा विषमता ।

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

प्रथम भाग

भगवान बुद्ध और उनका धर्म

१. कुल

१. ईसा पूर्व छठी शताब्दी में उत्तर भारत सर्व-प्रभुत्व सम्पन्न एक राज्य न था।

२. देश अनेक छोटे बड़े राज्यों में बँटा हुआ था। इनमें से किसी-किसी राज्य पर एक राजा का अधिकार था, किसी-किसी पर किसी एक राजा का अधिकार न था।

३. जो राज्य किसी एक राजा के अधीन थे उनकी संख्या सोलह थी। उनके नाम थे अंग, मगध, काशी, कोसल, वज्जि (वृज्जि), मल्ल, चेदि, वत्स, कुरु, पञ्चाल, मत्स्य, सौरसेन, अश्मक, अवन्ति, गन्धार तथा कम्बोज।[1]

४. जिन राज्यों में किसी एक 'राजा' का आधिपत्य न था, वे थे कपिलवस्तु के शाक्य, पावा तथा कुसीनारा के मल्ल, वैशाली के लिच्छवि, मिथिला के विदेह, रामगाम के कोलिय, अल्लकप्प के बुलि, केसपुत्त के कालाम, कलिंग, पिप्पलवन के मौर्य, तथा भग्ग (भर्ग) जिनकी राजधानी सिंसुमारगिरि थी।

५. जिन राज्यों पर किसी एक 'राजा' का अधिकार था वे जनपद कहलाते थे और जिन राज्यों पर किसी एक 'राजा' का अधिकार न था वे 'संघ' या 'गण' कहलाते थे।

६. कपिलवस्तु के शाक्यों की शासन-पद्धति के बारे में हमें विशेष जानकारी नहीं है। हम नहीं जानते कि वहाँ प्रजातन्त्र था अथवा कुछ लोगों का शासन था।

७. इतनी बात हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि शाक्यों के जनतन्त्र में कई राज-परिवार थे और वे एक दूसरे के बाद क्रमशः शासन करते थे।

८. राज-परिवार का मुखिया राजा कहलाता था।

९. सिद्धार्थ गौतम के जन्म के समय शुद्धोदन की 'राजा' बनने की बारी थी।

१०. शाक्य राज्य भारत के उत्तर-पूर्व कोने में था। यह एक स्वतन्त्र राज्य

था। लेकिन आगे चलकर कोशल-नरेश ने इसे अपने शासन-क्षेत्र में शामिल कर लिया था।

११. इस 'अधिराजिक-प्रभाव-क्षेत्र' में रहने का परिणाम यह था कि कोशल-नरेश की स्वीकृति के बिना शाक्य-राज्य स्वतन्त्र रीति से अपने कुछ राजकीय अधिकारों का उपयोग न कर सकता था।

१२. उस समय के राज्यों में कोशल एक शक्तिशाली राज्य था। मगध-राज्य भी ऐसा ही था। कोशल-नरेश प्रसेनजित् और मगध-नरेश बिम्बिसार सिद्धार्थ गौतम के समकालीन थे।

२. पूर्वज

१. शाक्यों की राजधानी का नाम कपिलवस्तु था। हो सकता है कि इस नगर का यह नाम महान बुद्धिवादी मुनि कपिल के ही नाम पर पड़ा हो।

२. कपिलवस्तु में जयसेन नाम का एक शाक्य रहता था। सिंह-हनु उसका पुत्र था। सिंह-हनु का विवाह हुआ था कच्चाना से। उसके पांच पुत्र थे। शुद्धोदन, धौतोदन, शुक्लोदन, शाक्योदन तथा अमितोदन[१]। पांच पुत्रों के अतिरिक्त सिंह-हनु की दो लड़कियां थीं—अमिता तथा प्रमिता।

३. परिवार का गोत्र आदित्य था।

४. शुद्धोदन का विवाह महामाया से हुआ था। उसके पिता का नाम अञ्जन था और मां का सुलक्षणा। अञ्जन कोलिय था और देवदह नाम की बस्ती में रहता था।

५. शुद्धोदन बड़ा योद्धा था। जब शुद्धोदन ने अपनी वीरता का परिचय दिया तो उसे एक और विवाह करने की भी अनुमति मिल गई। उसने महाप्रजापति को चुना। महाप्रजापति महामाया की बड़ी बहन थी।

६. शुद्धोदन बड़ा धनी आदमी था। उसके पास बहुत बड़े-बड़े खेत थे और नौकर-चाकर भी अनगिनत थे। कहा जाता है कि अपने खेतों को जोतने के लिये उसे एक हजार हल चलवाने पड़ते थे।

७. वह बड़े अमन-चैन की जिन्दगी बसर करता था। उसके कई महल थे।

३. जन्म

१. सिद्धार्थ गौतम ने शुद्धोदन के घर में जन्म ग्रहण किया था। उनके जन्म की कथा इस प्रकार है।

२. शाक्य-राज्य के लोग असाढ़ के महीने में एक महोत्सव मनाया करते थे। इस उत्सव में क्या राजा, क्या प्रजा सभी सम्मिलित होते थे।

३. सामान्यरूप से यह महोत्सव सात दिन तक मनाया जाता था।

४. एक बार महामाया ने इस उत्सव को बड़े ही आमोद-प्रमोद के साथ, बड़ी ही शान-शौकत के साथ, फूलों के साथ और सुगन्धियों के साथ मनाने का निश्चय किया। हां उसमें सुरामेरय आदि नशीली वस्तुओं का सर्वथा परित्याग था।

५. सातवें दिन वह प्रातःकाल उठी। सुगन्धित जल से स्नान किया। चार लाख कार्षापणों का दान दिया। अच्छे से अच्छे गहने-कपड़े पहने। अच्छे से अच्छे खाने खाये। व्रत रखे। तदनन्तर वह खूब सजे-सजाये शयनागार में सोने के लिये चली गई।

६. उस रात शुद्धोदन और महामाया निकट हुए और महामाया ने गर्भ धारण किया। राजकीय शय्या पर पड़े पड़े उसे नींद आ गई। निद्रा-ग्रस्त महामाया ने एक स्वप्न देखा।

७. उसे दिखाई दिया कि चतुर्दिक महाराजिक देवता उसकी शय्या को उठा ले गये हैं और उन्होंने उसे हिमवन्त प्रदेश में एक शाल-वृक्ष के नीचे रख दिया है। वे देवता पास खड़े हैं।

८. तब चतुर्दिक महाराजिक देवताओं की देवियां वहां आईं और उसे उठाकर मानसरोवर ले गईं।

९. उन्होंने उसे स्नान कराया, स्वच्छ वस्त्र पहनाये, सुगन्धियों का लेप किया और फूलों से ऐसा और इतना सजाया कि वह किसी दिव्यात्मा का स्वागत कर सके।

१०. तब सुमेध नाम का एक बोधिसत्व उसके पास आया और उसने प्रश्न किया, "मैंने अपना अन्तिम जन्म पृथ्वी पर धारण करने का निश्चय किया है, क्या तुम मेरी माता बनना स्वीकार करोगी?" उसका उत्तर था—"बड़ी प्रसन्नता से।" उसी समय महामाया देवी की आंख खुल गई।

११. दूसरे दिन महामाया ने शुद्धोदन से अपने स्वप्न की चर्चा की। इस स्वप्न की व्याख्या करने में असमर्थ राजा ने स्वप्न-विद्या में प्रसिद्ध आठ ब्राह्मणों को बुला भेजा।

१२. उनके नाम थे राम, ध्वज, लक्ष्मण, मन्त्री, कोडञ्ज, भोज, सुयाम और सुदत्त। राजा ने उनके योग्य स्वागत की तैयारी की।

१३. उसने जमीन पर पुष्पवर्षा कराई और उनके लिये सम्मानित आसन बिछवाये।

१४. उसने ब्राह्मणों के पात्र चांदी-सोने से भर दिये और उन्हें घी, मधु, शक्कर, बढ़िया चावल तथा दूध से पके पकवानों से संतर्पित किया।

१५. जब ब्राह्मण खा-पीकर प्रसन्न हो गये, शुद्धोदन ने उन्हें महामाया का स्वप्न कह सुनाया और पूछा—"मुझे इसका अर्थ बताओ।"

१६. ब्राह्मणों का उत्तर था, "महाराज ! निश्चिन्त रहें । आपके यहाँ एक पुत्र होगा । यदि वह घर में रहेगा तो वह चक्रवर्ती राजा होगा; यदि गृह-त्याग कर संन्यासी होगा तो वह बुद्ध बनेगा—संसार के अन्धकार का नाश करने वाला ।"

१७. पात्र में तेल धारण किये रहने की तरह महामाया बोधिसत्व को दस महीने तक अपने गर्भ में धारण किये रही । समय समीप आया जान उसने अपने मायके जाने की इच्छा प्रकट की । अपने पति को सम्बोधित करके उसने कहा—"मैं अपने मायके देवदह जाना चाहती हूँ ।"

१८. शुद्धोदन का उत्तर था—"तुम जानती हो कि तुम्हारी इच्छा की पूर्ति होगी ।" कहारों के कन्धों पर ढोई जाने वाली सुनहरी पालकी में बिठवा कर अनेक सेवक-सेविकाओं के साथ शुद्धोदन ने महामाया को उसके मायके भिजवा दिया ।

१९. देवदह के मार्ग में महामाया को शाल-वृक्षों के एक उद्यान-वन में से गुजरना था, जिसके कुछ वृक्ष पुष्पित थे कुछ अपुष्पित । यह लुम्बिनी-वन कहलाता था ।

२०. जिस समय पालकी लुम्बिनी-वन में से गुजर रही थी, सारा लुम्बिनी-वन दिव्य चित्र-लता की तरह अथवा किसी प्रतापी राजा के सुसज्जित बाजार जैसा प्रतीत होता था ।

२१. जड़ से वृक्षों की शाखाओं के छोर तक पेड़ फलों और फूलों से लदे थे । नाना रंग के भ्रमर-गण गुञ्जार कर रहे थे । पक्षी चहचहा रहे थे ।

२२. यह मनोरम दृश्य देखकर महामाया के मन में इच्छा उत्पन्न हुई कि वह कुछ समय वहाँ रहे और क्रीड़ा करे । उसने पालकी ढोने वालों को आज्ञा दी कि वह उसकी पालकी को शाल-उद्यान में ले चलें और वहाँ प्रतीक्षा करें ।

२३. महामाया पालकी से उतरी और एक सुन्दर शाल-वृक्ष की ओर बढ़ी । मन्द पवन बह रहा था, जिससे वृक्ष की शाखायें ऊपर-नीचे हिल डोल रही थीं । महामाया ने उनमें से एक को पकड़ना चाहा ।

२४. भाग्यवश एक शाखा काफी नीचे झुक गई । महामाया ने पंजों के बल खड़ी होकर उसे पकड़ लिया । तुरन्त शाखा ऊपर की ओर उठी और उसका हलका सा झटका लगने से महामाया को प्रसव-वेदना आरम्भ हुई । उस शाल-वृक्ष की शाखा पकड़े, खड़े ही खड़े महामाया ने एक पुत्र को जन्म दिया[३] ।

२५. ५६३ ई. पू. में वैशाख पूर्णिमा के दिन बालक ने जन्म ग्रहण किया ।

२६. शुद्धोदन और महामाया का विवाह हुए बहुत समय बीत गया था । लेकिन उन्हें कोई सन्तान न हुई थी । आखिर जब पुत्र-लाभ हुआ तो न केवल शुद्धोदन और उसके परिवार द्वारा बल्कि सभी शाक्यों द्वारा पुत्र जन्मोत्सव बड़ी

ही शान-बान और बड़े ही ठाट-बाट के साथ अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक मनाया गया।

२७. बालक के जन्म के समय अपनी बारी से, शुद्धोदन पर कपिलवस्तु का शासन करने की जिम्मेदारी थी। वह 'राजा' कहलाया, और इसीलिये स्वाभाविक तौर पर बालक भी राजकुमार।

४. असित का आगमन

१. जिस समय बालक का जन्म हुआ, उस समय हिमालय में असित नाम के एक बड़े ऋषि रहते थे।

२. असित ने सुना कि आकाश-स्थित देवता "बुद्ध" शब्द की घोषणा कर रहे हैं। उसने देखा कि वह अपने वस्त्रों को ऊपर उछाल-उछाल प्रसन्नता के मारे इधर-उधर घूम रहे हैं। वह सोचने लगा कि मैं वहाँ क्यों न जाऊँ, जहाँ 'बुद्ध' ने जन्म ग्रहण किया है।

३. जब असित ऋषि ने समस्त जम्बुद्वीप पर अपनी दिव्यदृष्टि डाली, तो देखा कि शुद्धोदन के घर में एक दिव्य बालक ने जन्म ग्रहण किया है और देवताओं की भी इतनी अधिक प्रसन्नता का यही कारण है।

४. इसलिये वह महान ऋषि असित अपने भानजे नाळक के साथ राजा शुद्धोदन के घर आये और उसके महल के द्वार पर खड़े हुए।

५. अब असित ऋषि ने देखा कि शुद्धोदन के द्वार पर लाखों आदमियों की भीड़ एकत्रित है। वह द्वारपाल के पास गये और कहा—"अरे! जाकर राजा से कहो कि दरवाज़े पर एक ऋषि खड़े हैं।"

६. द्वारपाल राजा के पास गया और हाथ जोड़कर विनती की—"राजन्! द्वार पर एक वृद्ध ऋषि पधारे हैं और आप से भेंट करना चाहते हैं।"

७. राजा ने असित ऋषि के बैठने के लिये आसन की व्यवस्था की और द्वारपाल को कहा—"ऋषि को आने दो।" महल के बाहर आकर द्वारपाल ने असित से कहा—"कृपया भीतर पधारें।"

८. असित ऋषि राजा के सामने उपस्थित हुए और उसे खड़े-खड़े आशीर्वाद दिया—"राजन्! आपकी जय हो। राजन्! आपकी जय हो। आप चिरकाल तक जियें और अपने राज्य पर धर्मानुसार शासन करें।"

९. तब शुद्धोदन ने असित ऋषि को साष्टांग दण्डवत् किया और उन्हें बैठने के लिये आसन दिया। जब उसने देखा कि असित ऋषि सुखपूर्वक आसीन हैं तो शुद्धोदन ने कहा—"ऋषिवर! मुझे स्मरण नहीं है कि इसके पूर्व आपके दर्शन हुए हों। आपके यहाँ आगमन का क्या उद्देश्य है? आपके यहाँ पधारने का क्या कारण है?"

१०. तब असित ऋषि ने राजा शुद्धोदन से कहा, "राजन् ! तुम्हें पुत्र-लाभ हुआ है। मैं उसे देखने के लिये आया हूँ।"

११. शुद्धोदन बोला, "ऋषिवर ! बालक सोया है। क्या आप थोड़ी देर प्रतीक्षा करने की कृपा करेंगे ?" ऋषि का उत्तर था, "राजन् ! इस तरह की दिव्य विभूतियाँ देर तक सोती नहीं रहतीं। वे स्वभाव से ही जागरूक होती हैं।"

१२. तब बालक ने ऋषि पर अनुकम्पा करके अपने जागते रहने का संकेत किया।

१३. यह देख कि बालक जाग उठा है, शुद्धोदन ने उसे दृढ़तापूर्वक दोनों हाथों में लिया और असित ऋषि के सामने ले आया।

१४. असित ने देखा कि बालक बत्तीस महापुरुष-लक्षणों तथा अस्सी अनु-व्यञ्जनों से युक्त है। उसने देखा कि उसका शरीर शुक्र और ब्रह्मा के शरीर से भी अधिक दीप्त है और उसका तेजोमण्डल उनके तेजोमण्डल से लाख गुणा अधिक प्रदीप्त है। उसके मुंह से तुरन्त यह वाक्य निकला—"निस्सन्देह यह अद्भुत् पुरुष है।" वे अपने आसन से उठे, दोनों हाथ जोड़े और उसके पैरों पर गिर पड़े। उन्होंने बालक की परिक्रमा की और उसे अपने हाथों में लेकर विचार-मग्न हो गये।

१५. असित ऋषि पुरानी भविष्यद्वाणी से परिचित थे कि जिसके शरीर में गौतम की ही तरह के बत्तीस महापुरुष-लक्षण होंगे, वह इन दो गतियों में से एक को निश्चित रूप से प्राप्त होगा, तीसरी को नहीं। "यदि वह गृहस्थ रहेगा, तो वह चक्रवर्ती नरेश होगा। लेकिन यदि वह गृह त्याग कर प्रव्रजित हो जायगा तो वह सम्यक् सम्बुद्ध होगा।"

१६. असित ऋषि को निश्चय था कि यह बालक गृहस्थ नहीं बनेगा।

१७. बालक की ओर देखकर, वह सिसकियाँ भर-भर रोने लगा।

१८. शुद्धोदन ने देखा कि असित ऋषि सिसकियाँ भर-भर कर रो रहा है।

१९. उसे इस प्रकार रोता देखकर, शुद्धोदन के रोंगटे खड़े हो गये। उसने असित ऋषि से निवेदन किया—"ऋषिवर ! आप इस प्रकार रो क्यों रहे हैं ? आंसू क्यों बहा रहे हैं ? ठंडी साँस क्यों ले रहे हैं ? मैं समझता हूँ कि बालक का भविष्य तो निर्विघ्न ही है ?"

२०. असित ऋषि ने राजा को उत्तर दिया—"राजन् ! मैं बच्चे के लिये नहीं रो रहा हूँ। इसका तो भविष्य निर्विघ्न है। मैं अपने लिये रो रहा हूँ।"

२१. "ऐसा क्यों ?" शुद्धोदन ने पूछा। असित ऋषि का उत्तर था, "मैं जराजीर्ण हूँ, वय:प्राप्त हूँ और यह बालक निश्चयात्मक रूप से 'बोधि' लाभ करेगा, सम्यक्सम्बुद्ध होगा। तदनन्तर वह लोक-कल्याण के लिये अपना धर्म-चक्र प्रवर्तित करेगा, जो इससे पहले इस संसार में कभी प्रवर्तित नहीं हुआ है।

२२. "जिस श्रेष्ठ जीवन की, जिस सद्धर्म की वह घोषणा करेगा वह आदि में कल्याणकारक होगा, मध्य में कल्याणकारक होगा और अन्त में कल्याण-कारक होगा। वह अर्थ तथा व्यञ्जन की दृष्टि से निर्दोष होगा। वह परिशुद्ध होगा। वह परिपूर्ण होगा।

२३. "जिस प्रकार राजन्! कभी कहीं इस संसार में उदुम्बर (गूलर) पुष्पित होता है, उसी प्रकार अनंत युगों के अनन्तर इस संसार में कहीं बुद्धोत्पाद होता है। राजन्! इसी प्रकार निश्चय से यह बालक 'बोधि' लाभ करेगा, सम्यक् सम्बुद्ध होगा और तदनन्तर अनन्त प्राणियों को इस दुःखमय-सागर के पार ले जाकर सुखी करेगा।

२४. "लेकिन राजन्! मैं उस बुद्ध को नहीं देख सकूंगा। इसलिये राजन्! मैं इस दुःख से दुखी हूँ और रो रहा हूँ। मेरे भाग्य में उस 'बुद्ध' की पूजा करना नहीं बदा है।"

२५. तब राजा ने असित ऋषि और उसके भानजे नाळक (=नरदत्त) को श्रेष्ठ भोजन से संतर्पित किया और वस्त्र दान दे उनकी परिक्रमा कर वन्दना की।

२६. तब असित ने अपने भानजे नाळक को कहा, "नरदस्त! जब कभी तुम्हें यह सुनने को मिले कि यह बालक 'बुद्ध' हो गया है तो जाकर शरण ग्रहण करना। यह तेरे सुख, कल्याण और प्रसन्नता के लिये होगा।" इतना कह कर असित ने राजा से बिदा ली और अपने आश्रम चला गया।[४]

५. महामाया की मृत्यु

१. पांचवें दिन नामकरण संस्कार किया गया। बालक का नाम सिद्धार्थ रखा गया। उसका गोत्र गौतम था। इसीलिये जनसाधारण में वह सिद्धार्थ गौतम नाम से प्रसिद्ध हुआ।

२. बालक के जन्म की खुशियाँ और उसके नामकरण की विधियाँ अभी समाप्त नहीं हुई थीं कि महामाया अचानक बीमार पड़ी और उसके रोग नें गम्भीर रूप धारण कर लिया।

३. अपना अन्त समय निकट आया जान उसने शुद्धोदन और प्रजापति को अपनी शय्या के समीप बुलाया और कहा—"मुझे विश्वास है कि असित ने मेरे बच्चे के बारे में जो भविष्यवाणी की है, वह सच्ची निकलेगी। मुझे यही अफसोस है कि मैं इस वाणी को पूरा हुआ न देख सकूंगी।

४. "प्रजापति! मैं अपना बच्चा तुम्हें सौंप जाती हूँ। मुझे विश्वास है कि उसके लिये तुम उसकी माँ से भी बढ़कर होगी।

५. "मेरा बालक शीघ्र ही मातृ-हीन बालक हो जायगा। लेकिन मुझे इसकी

तनिक चिन्ता नहीं है कि मेरे बाद यथायोग्य विधि से उसका लालन-पालन नहीं होगा।

६. "अब दुखी न हों। मुझे मरने दें। मेरा अन्त समय आ पहुँचा है। यम-दूत मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" इतना कहते-कहते महामाया ने अन्तिम सांस ले ली। शुद्धोदन और प्रजापति दोनों को ही बड़ा दुःख हुआ। दोनों फूट-फूट कर रोने लगे।

७. जब सिद्धार्थ की माता का देहान्त हुआ तो उसकी आयु केवल सात दिन की थी।[५]

८. सिद्धार्थ का एक छोटा भाई भी था। उसका नाम था नन्द। वह शुद्धोदन का महाप्रजापति से उत्पन्न पुत्र था।[६]

९. उसके ताया-चाचा की भी कई सन्तानें थीं। महानाम और अनुरुद्ध शुक्लोदनके पुत्र थे तथा आनन्द अमितोदन के। देवदत्त उसकी बुआ अमिता का पुत्र था। महानाम सिद्धार्थ की अपेक्षा बड़ा था और आनन्द छोटा।[७]

१०. सिद्धार्थ उनके साथ खेलता-खाता बड़ा हुआ।

६. बचपन तथा शिक्षा

१. जब सिद्धार्थ थोड़ा चलने-फिरने योग्य हो गया, शाक्य जनपद के मुखिया इकट्ठे हुए और उन्होंने शुद्धोदन से कहा कि बालक को ग्राम-देवी अभया के मन्दिर में ले चलना होगा।

२. शुद्धोदन ने स्वीकार किया और बालक को कपड़े पहना देने के लिये महाप्रजापति से कहा।

३. जब वह उसे वस्त्र पहना रही थी सिद्धार्थ ने अत्यन्त मधुर वाणी में अपनी मौसी से पूछा कि उसे कहाँ ले जाया जा रहा है ? जब उसे पता लगा कि उसे मन्दिर ले जाया जा रहा है तो वह मुस्कराया। लेकिन शाक्यों के रीति-रिवाज का ध्यान कर वह चला गया।

४. आठ वर्ष की आयु होने पर सिद्धार्थ ने अपनी शिक्षा आरम्भ की।

५. जिन्हें शुद्धोदन ने महामाया के स्वप्न की व्याख्या करने के लिये बुलाया था और जिन्होंने सिद्धार्थ के बारे में भविष्यवाणी की थी वे ही आठ ब्राह्मण उसके प्रथम आचार्य हुए।

६. जो कुछ वे जानते थे जब वे सब सिखा चुके तब शुद्धोदन ने उदिच्च देश के उच्च कुलोत्पन्न प्रथम कोटि के भाषा-विद् तथा वैयाकरण, वेद, वेदांग तथा उपनिषदों के पूरे जानकार सब्बमित्त को बुला भेजा। उसके हाथ पर समर्पण का जल सिंचन कर शुद्धोदन ने सब्बमित्त को ही शिक्षण के निमित्त सिद्धार्थ को सौंप दिया। वह उसका दूसरा आचार्य था।

७. उसकी अधीनता में सिद्धार्थ ने उस समय के सभी दर्शन-शास्त्रों पर अपना अधिकार कर लिया।

८. इसके अतिरिक्त उसने भारद्वाज से चित्त को एकाग्र तथा समाधिस्थ करने का मार्ग सीख लिया था। भारद्वाज आळार कालाम का शिष्य था। उसका अपना आश्रम कपिलवस्तु में ही था।

७. आरम्भिक प्रवृत्तियाँ

१. जब कभी वह अपने पिता की जमींदारी में जाता वहाँ कृषि-सम्बन्धी कोई काम न होता, वह किसी एकान्त कोने में जाकर ध्यानारूढ़ हो जाता।

२. निस्सन्देह उसे सभी प्रकार की शिक्षा मिल रही थी, किन्तु साथ-साथ एक क्षत्रिय के योग्य सैनिक शिक्षण की ओर से भी उदासीनता नहीं दिखाई जा रही थी।

३. शुद्धोदन को इस बात का ध्यान था कि कहीं ऐसा न हो कि सिद्धार्थ में मानसिक गुणों का ही विकास हो और वह क्षात्र-बल में पिछड़ जाय।

४. सिद्धार्थ स्वभाव से कारुणिक था। उसे यह अच्छा नहीं लगता था कि आदमी, आदमी का शोषण करे।

५. एक दिन अपने कुछ मित्रों सहित वह अपने पिता के खेत पर गया। वहाँ उसने देखा कि मजदूर खेत कोड़ रहे हैं, बांध बांध रहे हैं। किन्तु उनके तन पर पर्याप्त कपड़ा नहीं है। वे सूर्य के ताप से जल रहे हैं।

६. उस दृश्य का उसके चित्त पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

७. उसने अपने एक मित्र से कहा--एक आदमी दूसरे का शोषण करे, क्या इसे ठीक कहा जायगा? मजदूर मेहनत करे और मालिक उसकी मजदूरी पर गुलछर्रे-उड़ाये यह कैसे ठीक हो सकता है।

८. उसके मित्रों के पास उसके इस प्रश्न का कोई उत्तर न था, क्योंकि वे पुरानी विचार-परम्परा के मानने वाले थे कि किसान-मजदूर का जन्म अपने मालिकों की सेवा करने के लिये ही हुआ है और ऐसा करना ही उनका धर्म है।

९. शाक्य लोग वप्रमङ्गल नाम का एक उत्सव मनाया करते थे। धान बोने के प्रथम दिन मनाया जाने वाला यह एक ग्रामीण उत्सव था। शाक्यों की प्रथा के अनुसार उस दिन हर शाक्य को अपने हाथ से हल जोतना पड़ता था।

१०. सिद्धार्थ ने हमेशा इस प्रथा का पालन किया। वह अपने हाथ से हल चलाया करता था।

११. यद्यपि वह विद्वान् था, किन्तु उसे शरीर-श्रम से घृणा न थी।

१२. उसका "क्षत्रिय" कुल था, उसे धनुष चलाने तथा अन्य शस्त्रों का प्रयोग

करने की शिक्षा मिली थी। लेकिन वह किसी भी प्राणी को अनावश्यक कष्ट देना नहीं चाहता था।

१३. वह शिकारियों के दल के साथ जाने से इनकार कर देता था। उसके मित्र कहते—"क्या तुम्हें शेर-चीतों से डर लगता है?" वह प्रत्युत्तर देता—"मैं जानता हूँ कि तुम शेर-चीतों को मारने वाले नहीं हो, तुम हिरनो तथा खरगोशों जैसे निस्पृह जानवरों को ही मारने वाले हो।"

१४. "शिकार के लिये नहीं, तो अपने मित्रों का निशाना देखने के लिये ही आओ" उसके मित्र आग्रह करते। सिद्धार्थ इस तरह के निमंत्रणों को भी अस्वीकार कर देता—"मैं निर्दोष प्राणियों के वध का साक्षी नहीं होना चाहता।"

१५. उसकी इस प्रवृत्ति से प्रजापति गौतमी बड़ी चिन्तित हो उठी।

१६. वह उससे तर्क करती—"तुम भूल गये हो कि तुम एक क्षत्रिय कुमार हो। लड़ना तुम्हारा "धर्म" है। शिकार के माध्यम से ही युद्ध-विद्या में निष्णात हुआ जा सकता है, क्योंकि शिकार करके ही तुम ठीक-ठीक निशाना लगाना सीख सकते हो। शिकार-भूमि ही युद्ध-भूमि का अभ्यास-क्षेत्र है।"

१७. लेकिन सिद्धार्थ बहुधा गौतमी से पूछ बैठते, "तो मां! एक क्षत्रिय को क्यों लड़ना चाहिये?" और गौतमी का उत्तर होता, "क्योंकि यह उसका धर्म है।"

१८. सिद्धार्थ उसके उत्तर से संतुष्ट न होता। वह गौतमी से पूछता—"मां! यह तो बता कि आदमी का आदमी को मारना एक आदमी का ही "धर्म" कैसे हो सकता है?" गौतमी उत्तर देती—"यह सब तर्क एक संन्यासी के योग्य है। लेकिन क्षत्रिय का तो 'धर्म' लड़ना ही है। यदि क्षत्रिय भी नहीं लड़ेगा तो राष्ट्र का संरक्षण कौन करेगा।"

१९. "लेकिन मां! यदि सब क्षत्रिय परस्पर एक दूसरे को प्रेम करें तो क्या बिना कटे-मरे वे राष्ट्र का संरक्षण कर ही नहीं सकते?" गौतमी निरुत्तर हो जाती।

२०. वह अपने साथियों को अपने साथ बैठकर ध्यान लगाने की प्रेरणा करता। वह उन्हें बैठने का ठीक ढंग सिखाता। वह उन्हें किसी एक विषय पर चित्त एकाग्र करना सिखाता। वह उन्हें परामर्श देता कि ऐसी ही भावनाओं की भावना करनी चाहिये कि मैं सुखी रहूँ, मेरे सम्बन्धी सुखी रहे और सभी प्राणी सुखी रहें।

२१. उसके मित्र उसकी बातों को महत्व न देते थे। वे उस पर हँसते थे।

२२. वे आँखें बन्द करते तो उनका चित्त उनके ध्यान के विषय पर एकाग्र न होता। इसकी बजाय उनकी आंखों के सामने नाचते वे हिरन जिनका वे शिकार करना चाहते थे, अथवा वे मिठाइयां जिन्हें वे खाना चाहते थे।

२३. उसके माता-पिता को उसका यह ध्यानाभिमुख होना अच्छा नहीं लगता था। उन्हें लगता था कि यह क्षत्रिय जीवन के सर्वथा प्रतिकूल है।

२४. सिद्धार्थ का विश्वास था कि योग्य भावनाओं पर चित्त एकाग्र करने से हम अपनी मैत्री-भावना को बहुत व्यापक बना सकते हैं। उसका कहना था कि सामान्यरूप से जब भी कभी हम प्राणियों के बारे में कुछ भी विचार करते हैं, हमारे मन में भेद-विभेद घर कर जाते हैं। हम मित्रों को शत्रुओं से भिन्न कर लेते हैं। हम अपने पालतू पशुओं को मनुष्यों से भिन्न कर लेते हैं। हम अपने मित्रों से प्रेम करते हैं और प्रेम करते हैं अपने पालतू पशुओं से। हम अपने शत्रुओं से घृणा करते हैं और घृणा करते हैं सामान्य जन्तुओं से।

२५. "हमें इस विभाजक रेखा की सीमा के उस पार जाना चाहिये। हम यह कार्य तभी कर सकते हैं जब हम अपने ध्यान में इस व्यवहार-जगत की सीमाओं को लांघ सकें।"

२६. उसका बचपन करुणामय था।

२७. एक बार वह अपने पिता के खेतों पर गया। विश्राम के समय वह एक वृक्ष के नीचे लेटा हुआ प्राकृतिक शान्ति और सौन्दर्य का आनन्द लूट रहा था। उसी समय आकाश से एक पक्षी ठीक उसी के सामने आ गिरा।

२८. पक्षी को एक तीर लगा था, जिसने उसे बिंध दिया था और जिसके कारण वह तड़फड़ा रहा था।

२९. सिद्धार्थ पक्षी की सहायता के लिये उठ बैठा। उसने उसका तीर निकाला, जख्म पर पट्टी बांधी और पीने के लिये पानी दिया। उसने पक्षी को गोद में लिया और अपनी चादर के भीतर छिपाकर उसे अपनी छाती की गरमी पहुँचाने लगा।

३०. सिद्धार्थ को आश्चर्य था कि इस असहाय पक्षी को किसने बींधा होगा? शीघ्र ही उसका ममेरा भाई देवदत्त वहाँ आ पहुँचा। वह शिकार के सभी आयुधों से सन्नद्ध था। उसने सिद्धार्थ से कहा कि उसने उड़ते हुए पक्षी पर तीर चलाया था। पक्षी घायल हो गया था। कुछ दूर उड़कर वह वहीं आस-पास ही गिरा था। उसने सिद्धार्थ से पूछा—"क्या तुमने उसे देखा है?"

३१. सिद्धार्थ ने 'हाँ' कहकर स्वीकार किया और वह पक्षी भी उसे दिखाया जो अब बहुत कुछ स्वस्थ हो चला था।

३२. देवदत्त ने मांग की कि उसका पक्षी उसे दे दिया जाय। सिद्धार्थ ने इनकार किया। दोनों में घोर विवाद हुआ।

३३. देवदत्त का कहना था कि शिकार के नियमों के अनुसार जो पक्षी को मारता है वही उसका मालिक होता है। इसलिये वही उसका मालिक है।

३४. सिद्धार्थ का कहना था कि यह आधार ही सर्वथा गलत है। जो किसी की रक्षा करता है, वही उसका स्वामी हो सकता है। हत्यारा कैसे किसी का स्वामी हो सकता है?

३५. दोनों में से एक भी पक्ष झुकने के लिये तैयार न था। मामला न्यायालय तक आ पहुँचा। न्यायालय ने सिद्धार्थ के पक्ष में निर्णय दिया।

३६. देवदत्त सिद्धार्थ का बद्ध-वैरी बन गया। लेकिन सिद्धार्थ की करुणा ऐसी ही अनुपम थी कि वे ममेरे भाई को प्रसन्न बनाये रखने की बजाय एक पक्षी की जान बचाना अधिक श्रेयस्कर समझते थे।

३७. सिद्धार्थ गौतम का आरम्भिक जीवन कुछ-कुछ ऐसा ही था।

८. विवाह

१. दण्डपाणि नाम का एक शाक्य था। यशोधरा उसकी लड़की थी।[८] अपने सौन्दर्य और 'शील' के लिये वह प्रसिद्ध थी।

२. यशोधरा अपने सोलहवें वर्ष में पहुंच गई थी और दण्डपाणि को उसके विवाह की चिन्ता ने आ घेरा था।

३. प्रथा के अनुसार दण्डपाणि ने अपने सभी पड़ोसी 'देशों' के तरुणों को अपनी लड़की के 'स्वयंवर' में सम्मिलित होने का निमंत्रण भेजा।

४. सिद्धार्थ गौतम के नाम भी एक निमंत्रण भेजा गया था।

५. सिद्धार्थ गौतम का भी सोलहवां वर्ष पूरा हो चुका था। उसके माता-पिता भी उसकी शादी के लिये वैसे ही चिन्तित थे।

६. उन्होंने उसे 'स्वयंवर' में जाने को और यशोधरा का 'पाणि-ग्रहण' करने को कहा। उसने अपने माता-पिता का कहना माना।

७. आगत तरुणों में से यशोधरा ने सिद्धार्थ-गौतम को ही चुना।

८. दण्डपाणि बहुत प्रसन्न नहीं था। उसे उन दोनों के 'दाम्पत्य' जीवन की सफलता में सन्देह था।

९. उसे लगता था कि सिद्धार्थ को तो साधु-सन्तों की संगति ही अच्छी लगती है। उसे तो एकान्त प्रिय है। वह एक अच्छा सद्गृहस्थ कैसे बन सकेगा?

१०. यशोधरा सिद्धार्थ गौतम के अतिरिक्त और किसी दूसरे से विवाह न करना चाहती थी। उसने अपने पिता से पूछा क्या साधु-सन्तों की संगति को अच्छा समझना कोई अपराध है? यशोधरा का ऐसा ख्याल नहीं था।

११. यशोधरा की मां को जब मालूम हुआ कि यशोधरा सिद्धार्थ गौतम के अतिरिक्त और किसी दूसरे से विवाह करना ही नहीं चाहती, उसने दण्डपाणि से कहा कि उसे राजी हो जाना चाहिये। दण्डपाणि राजी हो गया।

१२. गौतम के प्रतिद्वन्द्वी निराश ही नहीं हुए बल्कि उन्हें लगता था कि उनका अपमान हो गया है।

१३. उन्हें लगता था कि कम से कम उनके प्रति 'न्याय' करने के लिये ही

यशोधरा को चाहिये था कि 'चुनाव' करने से पहले किसी न किसी तरह से सबकी 'परीक्षा' लेती ।

१४. कुछ समय तो वह चुप रहे। उनका विश्वास था कि दण्डपाणि यशोधरा को गौतम का चुनाव ही न करने देगा । उनका उद्देश्य यूं ही पूरा हो जायगा ।

१५. लेकिन जब उन्होंने देखा कि दण्डपाणि असफल रहा है, उन्होंने हिम्मत से काम लिया और इस बात की मांग की कि 'लक्ष्यबेध' की एक 'परीक्षा' होनी ही चाहिये। 'दण्डपाणि' को स्वीकार करना पड़ा।

१६. पहले तो सिद्धार्थ इसके लिये तैयार न था । लेकिन, उसके सारथी, छन्दक ने उसे समझाया कि यदि वह अस्वीकार करेगा तो यह उसके लिये, उसके परिवार के लिये तथा सबसे बढ़कर यशोधरा के लिये ही बड़ी लज्जा की बात होगी।

१७. सिद्धार्थ-गौतम के मन पर इस तर्क का बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने उस 'परीक्षण' में सम्मिलित होना स्वीकार किया।

१८. 'परीक्षण' आरम्भ हुआ । प्रत्येक प्रतिद्वन्द्वी ने अपना-अपना कौशल दिखाया।

१९. सबके अन्त में गौतम की बारी थी। किन्तु उसी का 'लक्ष्य-बेध' सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुआ ।

२०. इसके बाद विवाह हुआ । शुद्धोदन और दण्डपाणि दोनों को बड़ी प्रसन्नता थी । इसी प्रकार यशोधरा और महाप्रजापति भी बड़ी प्रसन्न थीं ।

२१ विवाह हो चुकने के काफी समय बाद यशोधरा ने एक पुत्र को जन्म दिया । उसका नाम राहुल रखा गया ।

९. पुत्र के संरक्षण के लिये पिता की योजना

१. राजा प्रसन्न था कि पुत्र का विवाह हो गया और वह गृहस्थ बन गया, किन्तु साथ ही असित ऋषि की भविष्यवाणी भूत की तरह उसका पीछा कर रही थी।

२. उस भविष्यवाणी को पूरा न होने देने के लिये उसने सोचा कि सिद्धार्थ गौतम को 'काम-भोगों' के बंधन से अच्छी तरह से बांध दिया जाय।

३. इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये शुद्धोदन ने अपने पुत्र के लिये तीन महल बनवाये—एक ग्रीष्म ऋतु में रहने के लिये, दूसरा वर्षा ऋतु में रहने के लिये और एक तीसरा शीत ऋतु में रहने के लिये। उसने इन महलों को हर तरह के भोगविलास के साधनों से सुसज्जित किया ।

४. हर महल के गिर्द एक-एक सुन्दर बाग था जिसमें नाना तरह के फूलों से लदे हुए पेड़ थे ।

५. अपने पुरोहित उदायी के परामर्श से उसने निश्चय किया कि कुमार के लिये एक 'अन्तःपुर' की व्यवस्था करनी चाहिये, जहाँ सुन्दरियों की कमी न हो।

६. शुद्धोदन ने तब उदायी को कहा कि वह उन षोड़शियों को संकेत कर दे कि वे कुमार का चित्त जीतने का प्रयास करें।

७. उदायी ने सुन्दरियों को इकट्ठा कर कुमार का चित्त लुभाने का संकेत ही नहीं किया, विधि भी बताई।

८. उन्हें सम्बोधित करके उसने कहा—"आप सब इस तरह की कला में दक्ष हैं, आप सबको रागरंजित चित्त की भाषा का अच्छा परिचय है। आप सब सुन्दर हैं, आकर्षक हैं। आप सब अपने कौशल में कुशल हैं।

९. "आप अपने चातुर्य से उन ऋषि-मुनियों को भी जीत सकती हैं जो काम-जित् माने जाते हैं। आप उन देवताओं को भी जीत सकती हैं, जिन्हें केवल दिव्य-लोक की अप्सराएँ ही लुभा सकती हैं।

१०. "अपनी कला, अपनी चतुराई, अपने आकर्षण से पुरुषों की तो बात ही क्या, आप स्त्रियों तक को मोह ले सकती हैं।

११. "अपने-अपने क्षेत्र में आप सब इतनी कुशल हैं कि आप सबके लिये कुमार को कामरूपी रज्जु में बांध कर अपने वश में कर लेना किसी भी तरह कठीन नहीं हो सकता।

१२. "नवागत वधुओं को—जिनकी आंखों पर लाज-शर्म का पर्दा पड़ा रहता है—तो यह शोभा देता है कि वे संकोच से काम लें। आप सबको नहीं।

१३. "निस्सन्देह यह वीर भी महान् है। लेकिन इससे तुम्हें क्या। स्त्री का बल भी तो महान् होता है। यही तुम्हारा दृढ़ संकल्प होना चाहिये।

१४. "पुराने समय में काशी की एक वेश्या ने एक ऋषि को पथ-भ्रष्ट कर दिया था और उसे अपने पैरों में लिटाया था।

१५. "और उस महान् ध्यानी प्रसिद्ध विश्वामित्र को घृताची नाम की अप्सरा ने दस वर्ष तक जंगल में बन्दी बनाकर रखा था।

१६. "इस प्रकार के अनेक ऋषि-मुनियों को स्त्रियाँ रास्ते पर ले आई हैं। इस कुमार ने तो अभी तारुण्य के प्रथम-प्रहर में पैर ही रखा है। इसका तो कहना ही क्या?

१७. "जब यह ऐसा है तो तुम निधड़क होकर प्रयास करो ताकि राज्य-परिवार की परम्परा बनी रहे।

१८. "सामान्य स्त्रियाँ सामान्य आदमियों को वशीभूत करती हैं, किन्तु धन्य हैं वे जो असाधारण मनुष्यों को वशीभूत करती हैं।।[१]

१०. स्त्रियाँ राजकुमार को अपने वश में न ला सकीं।

१. उदायी के ये शब्द स्त्रियों के हृदय को छू गये। उन्होंने कुमार को वशीभूत करने के लिये अपनी सारी शक्ति लगा देने का निश्चय किया।

२. लेकिन अपनी भ्रू-भंगिमाओं, अपने अक्षि-कटाक्षों, अपनी मुस्कराहटों, अपने कोमल अंग-संचालनों के बावजूद उन षोड़शियों को यह विश्वास न था कि उनका जादू कुमार पर चल सकेगा।

३. लेकिन पुरोहित उदायी की प्रेरणा के कारण, कुमार के कोमल स्वभाव के कारण तथा सुरा और प्रेम-मद के कारण उनका आत्म-विश्वास शीघ्र ही स्थिर हो गया।

४. तब स्त्रियाँ अपने काम में लग गईं। कुमार की स्थिति वैसी ही थी जैसी हथिनी-समूह से घिरे हुए हिमालय के जंगल में विचरते हुए हस्ति-राज की हो।

५. उन स्त्रियों से घिरा हुआ वह राजकुमार ऐसे ही सुशोभित होता था जैसे सूर्य-देवता अपने दिव्यभवन में अप्सराओं से घिरा हो।

६. उनमें से कुछ ने रागातिरेक से उसे अपने छातियों से दबाया।

७. कुछ दूसरियों ने लड़खड़ाने का बहाना बना उसे बड़ी जोर से अपनी छातियों से लगाया। उसके बाद उन्होंने अपने लताओं से कोमल करों को उसके कंधों पर ढीला छोड़ अपना भार भी उस पर डाल दिया।

८. कुछ दूसरियों ने अपने सुरा-गंध, रक्तवर्ण होठों वाले मुख से उसके कान में फुसफुसाया—मेरी रहस्यपूर्ण बातें सुनो।

९. कुछ दूसरियों ने—जिनके वस्त्र इतरों से भीगे थे—उसे आज्ञा देने की तरह कहा—"हमारी पूजा यहाँ करो।"

१०. दूसरी नीलाम्बरा सुरा से मत्त होने का बहाना बनाते हुए अपनी जीभ को बाहर करके खड़ी हो गई जैसे रात के समय बिजली कौंध रही हो।

११. कुछ दूसरी घुंघरुओं का निनाद करती हुई इधर-उधर घूमती थी और अपने अर्ध-आच्छादित शरीर का प्रदर्शन भी कर रही थी।

१२. कुछ दूसरी एक आम्र-शाखा को पकड़े खड़ी थी और अपनी कलश-सदृश छातियों का प्रदर्शन कर रही थी।

१३. कुछ किसी पद्म-सरोवर से आई थीं, हाथों में पद्म थे, आँखें भी पद्मों के ही समान थीं, वे पद्म-पाणि की तरह उस पद्म-मुख राजकुमार के पास खड़ी थीं।

१४. एक दूसरी ने उचित हाव-भाव के साथ एक गीत गाया ताकि वह संयत भी उत्तेजित हो सके। उसकी दृष्टि कह रही थी—अरे! तुम किस भ्रम में पड़े हो!

१५. दूसरी ने अपने प्रकाशपूर्ण चेहरे पर अपनी भ्रूरूपी कमान को पूरा तान कर उसकी मुख-मुद्रा की नकल बनाई।

१६. एक दूसरी जिसकी छाती पूरी उभरी थी और जिसके कानों की बालियाँ हवा में झूम रही थीं ज़ोर से हँसी और बोली–"यदि सकें तो मुझे पकड़ें।"

१७. कुछ दूसरियों ने उसे फूल-मालाओं के बंधन में बाँधने की कोशिश की। कुछ दूसरियों ने उस पर मधुर किन्तु अंकुश के समान चुभने वाले शब्दों का प्रहार किया।

१८. एक दूसरी ने उसे बुलाने के लिये, एक आम्र-वृक्ष की शाखा को हाथ में लेकर एक फूल दिखाया और प्रश्न किया—"यह किसका फूल है ?"

१९. एक दूसरी ने आदमी की-सी चाल-ढाल बनाकर कहा–"हे स्त्री-जित् जा इस पृथ्वी को जीत।"

२०. एक दूसरी ने एक नील-पद्म की गंध लेते हुए और अपनी गोल-गोल आँखें मटकाते हुए कुछ अस्पष्ट शब्दों में राजकुमार को सम्बोधित किया—

२१. "स्वामी ! मधु-गन्धी पुष्पों से आच्छादित इस आम्र-फल को देखें। स्वर्ण-पिंजर में बन्द की तरह कोकिल यहाँ गाती है।

२२. "यहाँ आयें और इस अशोक-वृक्ष को देखें जो प्रेमियों का शोकवर्धक है और जहाँ मधु-मक्खियाँ ऐसे गुञ्जार करती हैं मानों वे अग्नि-दग्ध हों।

२३. "यहाँ आयें और आम्र-लतिका लिपटे इस तिलक वृक्ष को देखें मानों कोई पीतवस्त्रधारिणी किसी श्वेत वस्त्र आच्छादित पुरुष से लिपटी हो।

२४. "अंगूरी-रस की तरह प्रकाशमान् पुष्पित कुरवक वृक्ष को देखें जो कि इस प्रकार झुका हुआ है, मानों स्त्रियों के नखों की लाली से आहत हुआ हो !

२५. "इस तरुण अशोक को आकर देखें, जिसकी नई-नई शाखायें चारों ओर फैली हुई हैं। ऐसा लगता है मानों यह हमारे हाथों के सौन्दर्य को देखकर ही लज्जा से गड़ा जाता हो।

२६. "इस झील को ही देखें, जिसके तट पर सिन्दवार उगी है, मानों श्वेत वस्त्र पर एक सुन्दर रमणी लेटी हुई है।

२७. "स्त्री जाति की सामर्थ्य देखो। पानी में वह चकवी आगे-आगे जाती है और उसका पति पीछे-पीछे मानों वह उसका दास हो।

२८. "मत्त कोकिल का संगीत सुनो, और दूसरे का भी उसका अक्षरशः अनुकरण करते हुए।

२९. "अच्छा होता यदि वसन्त ऋतु में पक्षियों में पैदा होने वाले उन्माद का कुछ अंश आप में भी होता और यह अपने आपको सदा बुद्धिमान समझते रहने वाले पण्डितों के विचार न होते।"[१०]

३०. इस प्रकार इन प्रेमासक्त स्त्रियों ने राजकुमार के विरुद्ध हर तरह की युद्ध-नीति बरती।

३१. इतने आक्रमण किये जाने पर भी वह संयतेन्द्रिय न प्रसन्न हुआ, न मुस्कराया।

३२. उनकी वास्तविक अवस्था से परिचय प्राप्त होने के कारण राजकुमार स्थिर एकाग्रचित्त से विचार करता रहा।

३३. "इन स्त्रियों में किस बात को ऐसी कमी है कि ये इतना भी नहीं देख सकतीं कि यौवन चञ्चल है। वार्धक्य समस्त सौन्दर्य का नाश कर देगा।"[११]

३४. इस प्रकार यह बे-मेल मेल महीनों-वर्षों चलता रहा। किन्तु इसका कुछ फल न हुआ।

११. प्रधान मंत्री का कुमार को समझाना

१. उदायी समझ गया कि तरुणियाँ असफल रही हैं और राजकुमार ने उनमें कोई दिलचस्पी नहीं ली।

२. नीतिकुशल उदायी ने राजकुमार से स्वयं बातचीत करने की सोची।

३. राजकुमार से एकान्त में उदायी ने कहा—"क्योंकि मुझे राजा ने आपके सुहृद्-पद पर नियुक्त किया है। इसलिये मैं एक मित्र की हैसियत से ही आपसे दो बातें करना चाहता हूँ।

४. "किसी अहित-काम से बचाना, हितकर काम में लगाना, विपत्ति में साथ न छोड़ना—मित्र के यही तीन लक्षण हैं।

५. "यदि मैं अपनी मैत्री की घोषणा करने के अनन्तर भी पुरुषार्थ से विमुख आपको न समझाऊँ तो मैं अपने मैत्री-धर्म से च्युत होता हूँ।

६. "ऊपरी मन से भी स्त्रियों से सम्बन्ध जोड़ना अच्छा है। इससे आदमी का संकोच जाता रहता है और मन का रंजन भी होता ही है।

७. "निरादर न करना और उनका कहना मानना—इन दो बातों से ही स्त्रियाँ प्रेम के बन्धन में बँध जाती हैं। निस्सन्देह सद्गुण भी प्रेम का कारण होते हैं। स्त्रियाँ आदर चाहती हैं।

८. "हे विशालाक्ष! क्या आप ऊपरी मन से भी, उनके सौन्दर्य के अनुरूप शालीनता दिखाने के लिये, उन्हें प्रसन्न रखने का कुछ प्रयास न करेंगे?

९. "दाक्षिण्य ही स्त्रियों की औषध है। दाक्षिण्य ही उनका अलंकार है। बिना दाक्षिण्य का सौन्दर्य पुष्प-विहीन उद्यान के समान है।

१०. "लेकिन अकेले दाक्षिण्य से भी क्या! उसके साथ हृदय की भावना का भी मेल होना चाहिये। इतनी कठिनाई से हस्तगत हो सकने वाले कामभोग जब आपकी मुट्ठी में हैं तो निश्चय से आप उनका तिरस्कार न करेंगे।

११. "काम को ही सर्वप्रथम पुरुषार्थ मान कर, प्राचीन काल में, इन्द्र तक ने गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या का आलिंगन किया।

१२. "इसी प्रकार अगस्त्य ऋषि ने भी सोमभार्या रोहिणी के साथ रमण किया और श्रुति अनुसार लोपमुद्रा के साथ भी यही बीती।

१३. "औतथ्य-पत्नी मरुत की पुत्री ममता के साथ ऋषि बृहस्पति ने सहभोग किया और भरद्वाज को जन्म दिया।

१४. "अर्घ्य अर्पण करती हुई बृहस्पति की पत्नी को चन्द्रमा ने ग्रहण किया और दिव्य बुध को जन्म दिया।

१५. "इसी प्रकार पुरातन समय में रागातिरेक से पराशर ऋषि ने यमुना तट पर वरुण-पुत्र की पुत्री काली के साथ सहवास किया।

१६. "वसिष्ठ ऋषि ने अक्षमाला नाम की एक नीच जाति की स्त्री से सहवास किया और कपिंजलाद नाम के पुत्र को जन्म दिया।

१७. "और बड़ी आयु हो जाने पर भी राजर्षि ययाति ने चैत्ररथ वन में अप्सरा विश्वाची के साथ संभोग किया।

१८. "यद्यपि वह जानता था कि पत्नी के साथ सहवास उसकी मृत्यु का कारण होगा तो भी कौरव-नरेश पाण्डु माद्री के रूप और गुणों पर मुग्ध हो, प्रेम के वशीभूत हो गया।

१९. "इस प्रकार के महान् पुरुषों तक ने जुगुप्सित काम-भोगों का सेवन किया है। तब प्रशंसनीय काम-भोगों के सेवन में तो दोष ही क्या है?

२०. "यह सब होने पर भी, आश्चर्य है कि शक्ति, तारुण्य और सौन्दर्य से सम्पन्न आप उन काम-भोगों की उपेक्षा कर रहे हैं जिन पर न्यायतः आपका अधिकार है और जिनमें सारा जगत आसक्त है।"[१२]

१२. राजकुमार का प्रधान मन्त्री को उत्तर

१. पवित्र परम्परा से समर्थित, उचित ही प्रतीत होने वाले इन वचनों को सुनकर मेघ-गर्जन सदृश स्वर में राजकुमार ने उत्तर दिया—

२. "आपकी स्नेह-सिक्त भाषा तो आपके योग्य ही है, लेकिन मैं आपको बताऊंगा कि आप कहां गलती पर हैं।

३. "मैं संसार के विषयों की अवज्ञा नहीं करता। मैं जानता हूँ कि सारा जगत इन्हीं में आसक्त है। लेकिन क्योंकि मैं जानता हूँ कि सारा संसार अनित्य है, इसलिये मेरा मन उनमें रमण नहीं करता।

४. "यदि यह स्त्री-सौन्दर्य स्थायी भी रहे, तो भी यह किसी बुद्धिमान् आदमी के योग्य नहीं कि उसका मन विषयों में रमण करे।

५. "और जहां तक तुम कहते हो कि वे बडे-बडे महात्मा भी विषयों के वशीभूत हुए हैं तो वे इस विषय में प्रमाण नहीं हैं, क्योंकि अन्त में वे भी क्षय को प्राप्त हुए हैं।

६. "जहां क्षय है वहां वास्तविक महानता नहीं है, जहां विषयासक्ति है वहाँ वास्तविक महानता नहीं है, जहां असंयम है वहां वास्तविक महानता नहीं है।

७. "और यह जो आपका कहना है कि ऊपरी मन से ही स्त्रियों से स्नेह करना चाहिये तो चाहे यह दक्षता से भी हो तो भी मुझे यह रुचिकर नहीं है।

८. "यदि यह यथार्थ नहीं है तो मुझे स्त्रियों की इच्छा के अनुसार अनुवर्तन भी प्रिय नहीं। यदि आदमी का मन उसमें नहीं है तो ऐसे अनुवर्तन पर भी धिक्कार है।

९. "जहां राग का अतिशय है, जहां मिथ्यात्व में विश्वास है, जहां असीम आसक्ति है और जहां विषयों की सदोषता का यथार्थ दर्शन नहीं—ऐसी वञ्चना में भी क्या धरा है ?

१०. "और यदि राग के वशीभूत हुए प्राणी परस्पर एक दूसरे को ठगते हैं तो क्या ऐसे पुरुष भी इस योग्य नहीं कि स्त्रियां उनकी ओर देखें तक नहीं और क्या स्त्रियाँ भी इस योग्य नहीं कि पुरुष उनकी ओर देखें तक नहीं ?

११. "क्योंकि यह सब ऐसा ही है, इसलिये मुझे विश्वास है कि तुम मुझे विषय-भोग के अशोभन कुपथ पर नहीं ले जाओगे।"[१३]

१२. राजकुमार के सुनिश्चित दृढ़ संकल्प ने उदायी को निरुत्तर कर दिया। उसने राजा को सारा वृत्तान्त जा सुनाया।

१३. जब शुद्धोदन को यह मालूम हुआ कि उसके पुत्र का चित्त किस प्रकार विषयों से सर्वथा विमुख है तो उसे सारी रात नींद नहीं आई। उसके दिल में वैसा ही दर्द था जैसा किसी हाथी की छाती में जिसे तीर लगा हो।

१४. अपने मंत्रियों के साथ उसने बहुत-सा समय यह विचार करने पर खर्च किया कि वह किस उपाय से सिद्धार्थ को संसार के विषयों की ओर अभिमुख कर सके और उस जीवन से विमुख कर सके जिसकी ओर अग्रसर होने की उसकी पूरी संभावना थी। लेकिन उन उपायों के अतिरिक्त जिन्हें करके वे मात खा चुके थे, उन्हें कोई दूसरा उपाय नहीं सूझा।

१५. जिनकी पुष्पमालायें और अलंकार व्यर्थ सिद्ध हो चुके थे, जिनके हाव-भाव और आकर्षण-कौशल निष्प्रयोजन सिद्ध हो चुके थे, जिनके हृदय में निगूढ़ प्रेम था, उन तरुणियों की सारी मण्डली विदा कर दी गई।

१३. शाक्य संघ में दीक्षा

१. शाक्यों का अपना संघ था। बीस वर्ष की आयु होने पर हर शाक्य तरुण को शाक्य संघ में दीक्षित होना पड़ता था और संघ का सदस्य होना होता था।

२. सिद्धार्थ गौतम बीस वर्ष का हो चुका था। अब यह समय था कि वह संघ में दीक्षित हो और उसका सदस्य बने।

३. शाक्यों का अपना एक संघ-भवन था, जिसे वह संथागार कहते थे। यह कपिलवस्तु में ही था। संघ-सभायें संथागार में ही होती थीं।

४. सिद्धार्थ को संघ में दीक्षित कराने के लिये शुद्धोदन ने शाक्य-पुरोहित को संघ की एक सभा बुलाने के लिये कहा।

५. तदनुसार कपिलवस्तु में शाक्यों के संथागार में संघ एकत्रित हुआ।

६. सभा में पुरोहित ने प्रस्ताव किया कि सिद्धार्थ को संघ का सदस्य बनाया जाय।

७. शाक्य-सेनापति अपने स्थान पर खड़ा हुआ और उसने संघ को सम्बोधित किया—"शाक्य कुल के शुद्धोदन के परिवार में उत्पन्न गौतम संघ का सदस्य बनना चाहता है। उसकी आयु पूरे बीस वर्ष की है और वह हर तरह से संघ का सदस्य बनने के योग्य है। इसलिये मेरा प्रस्ताव है कि उसे शाक्य-संघ का सदस्य बनाया जाय। यदि कोई इस प्रस्ताव के विरुद्ध हो तो बोले।"

८. किसी ने प्रस्ताव का विरोध नहीं किया। सेनापति बोला—"मैं दूसरी बार भी पूछता हूँ कि यदि कोई प्रस्ताव के विरुद्ध हो तो बोले।"

९. प्रस्ताव के विरुद्ध बोलने के लिये कोई खड़ा नहीं हुआ। सेनापति ने फिर कहा—"मैं तीसरी बार भी पूछता हूँ कि यदि कोई प्रस्ताव के विरुद्ध हो तो बोले।"

१०. तीसरी बार भी कोई प्रस्ताव के विरुद्ध नहीं बोला।

११. शाक्यों में यह नियम था कि बिना प्रस्ताव के कोई कारंवाई न हो सकती थी और जब तक कोई प्रस्ताव तीन बार पास न हो तब तक वह कार्य रूप में परिणत नहीं किया जा सकता था।

१२: क्योंकि सेनापति का प्रस्ताव तीन बार निर्विरोध पास हो गया था, इसलिये सिद्धार्थ के विधिवत् शाक्य-संघ का सदस्य बन जाने की घोषणा कर दी गई।

१३. तब शाक्यों के पुरोहित ने खड़े होकर सिद्धार्थ को अपने स्थान पर खड़े होने के लिये कहा।

१४. सिद्धार्थ को सम्बोधन करके उसने पूछा—"क्या आप इसका अनुभव करते हैं कि संघ ने आपको अपना सदस्य बनाकर सम्मानित किया है?" सिद्धार्थ का उत्तर था—"मैं अनुभव करता हूँ।"

१५. "क्या आप संघ के सदस्यों के कर्तव्य जानते हैं?" "मुझे खेद है कि मैं उनसे अपरिचित हूँ, किन्तु उन्हें जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।"

१६. पुरोहित बोला—"मैं सर्वप्रथम आपको बताऊँगा कि संघ के सदस्य की हैसियत से आपके क्या कर्तव्य हैं?" उसने उन्हें एक एक करके क्रमशः गिनाया—"(१) आपको अपने तन, मन और धन से शाक्यों के स्वार्थ की रक्षा करनी होगी। (२) आपको संघ की सभाओं में उपस्थित रहना होगा। (३) आपको बिना

किसी भी भय या पक्षपात के किसी भी शाक्य का दोष खुलकर कह देना होगा । (४) यदि आप पर कभी कोई दोषारोपण किया जाय तो आप को क्रोधित नहीं होना होगा, दोष होने पर अपना दोष स्वीकार कर लेना होगा, निर्दोष होने पर वैसा कहना होगा ।"

१७. इसके आगे पुरोहित ने कहा—"मैं आपको बताना चाहता हूँ कि क्या करने से आप संघ के सदस्य न रह सकेंगे—(१) व्यभिचार करने पर आप संघ के सदस्य न रह सकेंगे, (२) किसी की हत्या करने पर आप संघ के सदस्य न रह सकेंगे, (३) चोरी करने पर आप संघ के सदस्य न रह सकेंगे, (४) झूठी साक्षी देने पर आप संघ के सदस्य न रह सकेंगे ।"

१८. सिद्धार्थ का उत्तर था—"मान्यवर! मैं आपका कृतज्ञ हूँ कि आपने मुझे संघ के नियमों से परिचित कराया। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं उनके अर्थ और व्यञ्जन सहित उन्हें पालन करने का प्रयास करूँगा ।"

१४. संघ से संघर्ष

१. सिद्धार्थ को शाक्य-संघ का सदस्य बने आठ वर्ष बीत चुके थे ।

२. वह संघ का बड़ा ही वफादार और दृढ़ सदस्य था। जितनी दिलचस्पी उसे निजी मामलों में थी, उतनी ही दिलचस्पी उसे संघ के मामलों में भी थी । संघ के सदस्य की हैसियत से उसका आचरण आदर्श था। वह सबका प्रिय-भाजन बन गया था ।

३. उसकी सदस्यता के आठवें वर्ष में एक ऐसी घटना घटी जो सिद्धार्थ के परिवार के लिये दुर्घटना बन गई और उसके अपने लिये जीवन-मरण का प्रश्न ।

४. इस दुःखान्त प्रकरण का आरम्भ इस प्रकार हुआ ।

५. शाक्यों के राज्य से सटा हुआ कोलियों का राज्य था। रोहिणी नदी दोनों राज्यों की विभाजक-रेखा थी ।

६. शाक्य और कोलिय दोनों ही रोहिणी नदी के पानी से अपने अपने खेत सींचते थे। हर फसल पर उनका आपस में विवाद होता था कि रोहिणी के जल का पहले और कितना उपयोग कौन करेगा ? यह विवाद कभी-कभी झगड़ों में परिणत हो जाते और झगड़े लड़ाइयों में ।

७. जिस वर्ष सिद्धार्थ की आयु २८ वर्ष की हुई उस वर्ष रोहिणी के पानी को लेकर शाक्यों के नौकरों में और कोलियों के नौकरों में बड़ा झगड़ा हो गया। दोनों पक्षों ने चोट खाई ।

८. जब शाक्यों और कोलियों को इसका पता लगा तो उन्होंने सोचा कि इस प्रश्न का युद्ध के द्वारा हमेशा के लिये निर्णय कर लिया जाय ।

९. शाक्यों के सेनापति ने कोलियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ देने की बात पर विचार करने के लिये संघ का एक अधिवेशन बुलाया।

१०. संघ के सदस्यों को सम्बोधित करके सेनापति ने कहा—"कोलियों ने हमारे लोगों पर आक्रमण किया। हमारे लोगों को पीछे हट जाना पड़ा। कोलियों ने इससे पहले भी अनेक बार ऐसी आक्रमणात्मक कारंवाइयाँ की हैं। हमने आज तक उन्हें सहन किया। लेकिन यह इसी तरह नहीं चल सकता। यह रुकना चाहिये और इसे रोकने का एक ही तरीका है कि कोलियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी जाय। मेरा प्रस्ताव है कि कोलियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी जाय। जो विरोध करना चाहें वे बोलें।"

११. सिद्धार्थ गौतम अपने स्थान पर खड़ा हुआ बोला—"मैं इस प्रस्ताव का विरोध करता हूँ। युद्ध से कभी किसी समस्या का हल नहीं होता। युद्ध छेड़ देने से हमारे उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी। इससे एक दूसरे युद्ध का बीजारोपण हो जायगा। जो किसी की हत्या करता है, उसे कोई दूसरा हत्या करने वाला मिल जाता है; जो किसी को जीतता है उसे कोई दूसरा जीतने वाला मिल जाता है; जो किसी को लूटता है उसे कोई दूसरा लूटने वाला मिल जाता है।"

१२. सिद्धार्थ गौतम ने अपनी बात जारी रखी—"मुझे ऐसा लगता है कि शाक्यों को कोलियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ने में जल्दबाजी से काम नहीं लेना चाहिये। पहले सावधानी से इस बात की जाँच करनी चाहिये कि वास्तव में दोषी पक्ष कौन-सा है? मैंने सुना है कि हमारे आदमियों ने भी ज्यादती की है। यदि ऐसा है तो हम भी निर्दोष नहीं हैं।"

१३. सेनापति ने उत्तर दिया—"यह ठीक है कि हमारे आदमियों ने ही पहल की थी। लेकिन यह याद रहना चाहिये कि पहले पानी लेने की भी यह हमारी ही बारी थी।"

१४. सिद्धार्थ गौतम ने कहा—"इससे स्पष्ट है कि हम भी सर्वथा निर्दोष नहीं हैं। इसलिये मेरा प्रस्ताव है कि हम अपने में से दो आदमी चुनें और कोलियों से भी कहा जाय कि वे भी अपने में से दो आदमी चुनें और फिर यह चारों मिलकर एक पाँचवाँ आदमी चुनें। ये पाँचों आदमी मिलकर झगड़े का निपटारा कर दें।"

१५. सिद्धार्थ गौतम ने प्रस्ताव में जो परिवर्तन सुझाया था उसका विधिवत् समर्थन हो गया। किन्तु सेनापति ने विरोध किया। कहा—"मुझे निश्चय है कि जब तक कोलियों को कड़ा दण्ड नहीं दिया जाता तब तक उनका यह टण्टा समाप्त नहीं होगा।"

१६. प्रस्ताव और उसमें सुझाये हुए परिवर्तन पर मत लेने आवश्यक हो गये। पहले सिद्धार्थ के सुझाये परिवर्तन पर ही मत लिये गये। बहुत बड़े बहुमत से सिद्धार्थ का सुझाव अमान्य हो गया।

१७. इसके बाद सेनापति ने स्वयं अपने प्रस्ताव पर मत माँगे। सिद्धार्थ गौतम ने फिर खड़े होकर विरोध किया। उसने कहा—"मेरी प्रार्थना है कि संघ इस प्रस्ताव को स्वीकार न करे। शाक्य और कोलिय निकट-सम्बन्धी हैं। परस्पर एक दूसरे का नाश करने में बुद्धिमानी नहीं है।"

१८. सेनापति ने सिद्धार्थ गौतम की स्थापना का सर्वथा विरोध किया। उसने इस बात पर ज़ोर दिया कि युद्ध में क्षत्रियों के लिये कोई अपना-पराया नहीं होता। राज्य के लिये उन्हें अपने सगे भाइयों से भी लड़ना ही चाहिये।

१९. ब्राह्मणों का धर्म है यज्ञ करना, क्षत्रियों का धर्म है युद्ध करना, वैश्यों का धर्म है व्यापार करना और शूद्रों का धर्म है सेवा करना। हर किसी को अपना अपना धर्म निभाने में ही पुण्य है। यही शास्त्रों की आज्ञा है।

२०. सिद्धार्थ का उत्तर था–"जहाँ तक मैं समझ सका हूं, धर्म तो इस बात के हृदयंगम करने में है कि वैर से वैर कभी शान्त नहीं होता। यह केवल अवैर से ही शान्त हो सकता है।

२१. सेनापति बेसबर हो उठा। बोला—"इस दार्शनिक शास्त्रार्थ में पड़ना बेकार है। स्पष्ट बात यह है कि सिद्धार्थ को मेरा प्रस्ताव अमान्य है। हम संघ का मत लेकर इसका निश्चय करें कि संघ का क्या विचार है?"

२२. तदनुसार सेनापति ने अपने प्रस्ताव पर लोगों के मत माँगे। बड़े भारी बहुमत से प्रस्ताव पास हो गया।

१५. देश छोड जाने का सुझाव

१. दूसरे दिन सेनापति ने शाक्य संघ की दूसरी सभा बुलाई। इसका उद्देश्य था कि उसके अनिवार्य सैनिक-भर्ती के प्रस्ताव पर विचार हो।

२. जब संघ एकत्र हुआ उसने प्रस्ताव किया कि उसे आज्ञा दी जाय कि वह बीस वर्ष और पचास वर्ष के बीच के प्रत्येक शाक्य के लिये कोलियों के विरुद्ध लड़ने के निमित्त सेना में भर्ती होना अनिवार्य होने की घोषणा कर दे।

३. सभा में दोनों पक्ष उपस्थित थे–वे भी जिन्होंने संघ की पहली सभा में युद्ध-घोषणा के पक्ष में मत दिया था और वे भी जिन्होंने इसके विरुद्ध मत दिया था।

४. जिन्होंने इसके पक्ष में मत दिया था, उनके लिये सेनापति का प्रस्ताव स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं थी। यह उनके पूर्व निश्चय का स्वाभाविक परिणाम था।

५. लेकिन जिस अल्पमत ने उक्त निर्णय के विरुद्ध मत दिया था, उसके सामने एक कठिनाई थी। उसकी समस्या थी—बहुमत के आगे सर झुकाना अथवा नहीं झुकाना?

६. अल्पमत का निश्चय था कि बहुमत के आगे सिर न झुकाया जाय। इसी-

लिये उन्होंने उस सभा में उपस्थित रहने का भी निर्णय किया था। दुर्भाग्य से किसी में यह साहस नहीं था कि यही बात खुल कर कह सके। कदाचित् वे बहुमत का विरोध करने के परिणामों से परिचित थे।

७. जब सिद्धार्थ ने देखा कि उसके समर्थक मौन हैं तो वह उठ खड़ा हुआ। और उसने संघ को सम्बोधित करके कहा–"मित्रो ! आप जो चाहें कर सकते हैं। आपके साथ बहुमत है। लेकिन मुझे खेद के साथ यह कहना पड़ता है कि मैं अनिवार्य सैनिक भर्ती का विरोध करूँगा। मैं आपकी सेना में सम्मिलित नहीं होऊँगा। मैं युद्ध में भाग नहीं लूंगा।"

८. सिद्धार्थ गौतम को उत्तर देते हुए सेनापति ने कहा–"उस शपथ की याद करो जो तुमने संघ का सदस्य बनते समय ग्रहण की थी। यदि तुम अपने दिये गये वचनों में से किसी एक का भी पालन न करोगे तो तुम सार्वजनिक निन्दा के भाजन बनोगे।"

९. सिद्धार्थ का उत्तर था–"निस्सन्देह मैंने अपने तन, मत, धन से शाक्यों के हितों की रक्षा करने का वचन दिया है। लेकिन मैं नहीं समझता कि यह युद्ध शाक्यों के हित में है। शाक्यों के हित के मुकाबले में सार्वजनिक निन्दा का मेरे लिये कोई मूल्य नहीं।"

१०. सिद्धार्थ ने संघ को इस बात की याद दिलाई और सावधान किया कि कोलियों से निरन्तर झगड़ते रहने के कारण शाक्य-संघ बहुत कुछ कोशल-नरेश के हाथ का खिलौना बन गया है। इसकी कल्पना करना आसान है कि यह युद्ध शाक्य-संघ को और भी अधिक दुर्बल बना देगा और इससे कोशल-नरेश को एक और ऐसा अवसर मिल जायगा कि वह शाक्य-संघ के स्वातन्त्र्य को और भी अधिक घटा दे।

११. सेनापति को क्रोध आ गया। वह बोला–"तुम्हारा यह भाषण-कौशल तुम्हारे किसी काम न आयेगा। तुम्हें संघ के बहुमत के सामने सिर झुकाना होगा। शायद तुम्हें इस बात का बहुत भरोसा है कि कोशल-नरेश की अनुमति के बिना संघ अपनी आज्ञा की अवहेलना करने वाले को फांसी या देश से निकल जाने की सज़ा नहीं दे सकता और यदि इनमें से कोई भी एक दण्ड तुम्हें दिया जाय तो कोशल-नरेश इसकी अनुमति नहीं देगा।

१२. "लेकिन याद रखो। संघ तुम्हें दूसरे अनेक तरीकों से दण्डित कर सकता है। संघ तुम्हारे परिवार के सामाजिक बहिष्कार का निर्णय कर सकता है और संघ तुम्हारे परिवार के खेतों को जब्त कर सकता है। इसके लिये संघ को कोशल-नरेश की अनुमति की आवश्यकता नहीं।"

१३. सिद्धार्थ ने समझ लिया कि यदि उसने कोलियों के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करने के प्रस्ताव का अपना विरोध जारी रखा तो उसके क्या क्या दुष्परिणाम हो

सकते हैं। इसलिये वह तीन बातों में से एक का चुनाव कर सकता था—(१) सेना में भर्ती होकर युद्ध में भाग ले सकता था, (२) फांसी पर लटकना या देश से निकाल दिया जाना स्वीकार कर सकता था, (३) अपने परिवार के लोगों का सामाजिक बहिष्कार और उनके खेतों की जब्ती के लिये राज़ी हो सकता था।

१४. पहली बात वह किसी भी हालत में स्वीकार नहीं कर सकता था। वह इस विषय में दृढ़ था। तीसरी बात पर तो वह विचार तक न कर सकता था। इस परिस्थिति में उसने सोचा कि उसके लिये दूसरी बात ही सर्वाधिक मान्य हो सकती है।

१५. तदनुसार सिद्धार्थ ने संघ को सम्बोधित किया–"कृपया मेरे परिवार को दण्डित न करें। सामाजिक बहिष्कार द्वारा उन्हें कष्ट न दें। उनके खेत जब्त करके उन्हें जीविकाविहीन न करें। वे निर्दोष हैं। अपराधी मैं ही हूँ। मुझे अकेले ही अपने अपराध का दण्ड भोगने दें। चाहे आप मुझे फांसी पर लटका दें और चाहे देश से निकाल दें–आप जो चाहें दण्ड दें। मैं खुशी से इसे स्वीकार कर लूंगा। और मैं इस बात का वचन देता हूँ कि मैं इस की शिकायत कोशल-नरेश से न करूँगा।"

१६. प्रव्रज्या—अभिनिष्क्रमण

१. सेनापति बोला—"तुम्हारी बात मानना कठिन है। क्योंकि यदि तुम स्वेच्छा से भी 'मृत्यु' अथवा 'देश-निकाले' का वरण करो, तो भी कोशल-नरेश को इसका पता लग ही जायगा। वह निश्चयपूर्वक इसी परिणाम पर पहुँचेगा कि शाक्य-संघ ने ही यह दण्ड दिया होगा और वह शाक्य-संघ के विरुद्ध कार्रवाई करेगा।"

२. "यदि यह कठिनाई है, तो मैं आसानी से एक उपाय सुझा सकता हूँ", सिद्धार्थ-गौतम का उत्तर था। "मैं परिव्राजक बन सकता हूँ और देश के बाहर चला जा सकता हूँ। यह भी एक प्रकार का 'देश-निकाला' ही है।"

३. सेनापति ने सोचा कि यह एक अच्छा सुझाव है। किन्तु उसे इसके कार्य-रूप में परिणत होने में सन्देह था।

४. इसलिये सेनापति ने सिद्धार्थ से पूछा—"बिना अपने माता-पिता और पत्नी की अनुज्ञा के तुम परिव्राजक कैसे बन सकते हो?"

५. सिद्धार्थ ने उसे विश्वास दिलाया कि वह भरसक अनुमति प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा और कहा, 'मैं वचन देता हूँ कि चाहे अनुमति मिले और चाहे न मिले, मैं तुरन्त देश छोड़ दूंगा।"

६. संघ को लगा कि सिद्धार्थ का सुझाव ही इस विकट समस्या का सर्वश्रेष्ठ हल है। संघ ने इसे स्वीकार कर लिया।

७. सभा के सम्मुख जो कार्य-क्रम था उसे समाप्त कर संघ विसर्जित होने को ही था कि एक तरुण शाक्य ने अपने स्थान पर खड़े होकर कहा—"कृपया मेरी बात सुनें। मैं कुछ महत्व की सूचना देना चाहता हूँ।"

८. उसे बोलने की अनुमति मिली तो उसने कहा—"मुझे इसमें तनिक सन्देह नहीं कि सिद्धार्थ गौतम अपने वचन का पालन करेगा और तुरन्त देश के बाहर चल जायगा। लेकिन एक बात है, जिससे मैं थोड़ा चिन्तित हूँ।

९. अब जब कि सिद्धार्थ आंखों से अदृश्य हो जायगा तो क्या संघ का यही इरादा है कि कोलियों के विरुद्ध की घोषणा कर दी जाय।

१०. मैं चाहता हूँ कि संघ पुनः इस बात पर गम्भीरतापूर्वक विचार करे। कुछ भी हो कोशल-नरेश को सिद्धार्थ-गौतम के देश-निकाले का तो पता ही लग जायगा। यदि शाक्य तुरन्त कोलियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देंगे तो कोशल-नरेश समझ जायगा कि सिद्धार्थ गौतम ने इसीलिये देश का त्याग किया होगा क्योंकि वह कोलियों के विरुद्ध युद्ध छेड़-देने का विरोधी था। यह हमारे लिये अच्छा न होगा।

११. इसलिये मेरा प्रस्ताव है कि हमें सिद्धार्थ-गौतम को गृह-त्याग और कोलियों के विरुद्ध वास्तविक युद्ध छेड़ देने के बीच कुछ समय को यूं ही गुजार देना चाहिये। अन्यथा कोशल-नरेश इन दोनों घटनाओं में सम्बन्ध स्थापित कर लेगा।"

१२. संघ को लगा कि निश्चय से यह बात महत्त्वपूर्ण है। नीति की दृष्टि से यह मान ली गई।

१३. इस प्रकार शाक्य-संघ की यह दुःखान्त सभा समाप्त हुई और उस अल्प-मत ने भी जो युद्ध का विरोधी था किन्तु जिसमें अपनी बात साफ-साफ कहने का साहस न था संतोष की सांस ली कि एक अत्यन्त भयानक स्थिति से किसी न किसी तरह पार हो गये।

१७. बिदाई के शब्द

१. शाक्य संघ की सभा में जो कुछ हुआ उसकी सूचना सिद्धार्थ गौतम के वापिस लौटने से बहुत पहले राजा के महल में पहुँच गई थी।

२. घर पहुँचने पर सिद्धार्थ गौतम ने देखा कि उसके माता-पिता बहुत दुःखी हैं और रो रहे हैं।

३. शुद्धोदन ने कहा—"हम युद्ध के दुष्परिणामों की चर्चा किया करते थे। लेकिन मैं नहीं जानता था कि तुम इस सीमा तक चले जाओगे।"

४. सिद्धार्थ का उत्तर था—"मैं भी नहीं सोचता था कि ऐसी स्थिति आ पहुँचेगी। मैं समझता था कि समझाने से शाक्य शान्ति के समर्थक बन जायेंगे।

५. "किन्तु दुर्भाग्य से, सैनिक अधिकारियों ने लोगों को इतना उत्तेजित कर दिया था कि मेरी बातों का उन पर कोई प्रभाव न पड़ा।

६. "लेकिन मैं आशा करता हूँ कि इतना तो आप समझते ही होंगे कि मैंने कैसे परिस्थिति को अधिक बिगड़ने से बचा लिया। मैं सत्य और न्याय के पथ से विचलित नहीं हुआ और सत्य और न्याय का आग्रह करने का जो भी दण्ड था मैंने उसे अपने ही सिर पर ले लिया।"

७. लेकिन शुद्धोदन इससे संतुष्ट नहीं था। बोला—"तुमने यह नहीं सोचा कि इससे हमारे सिर पर क्या बितेगी ?" "लेकिन इसी कारण तो मैंने प्रव्रज्या लेना स्वीकार किया है। जरा सोचो तो सही यदि शाक्यों ने सारे खेत जब्त करने की आज्ञा दे दी होती तो इसका क्या दुष्परिणाम हुआ होता।"

८. "लेकिन, तुम्हारे बिना हम इन खेतों को रखकर क्या करेंगे ?" शुद्धोदन बोला। "सारा परिवार ही शाक्य जनपद का परित्याग कर देश से बाहर क्यों न चल दे ?"

९. रोती हुई प्रजापति गौतमी भी सहमत थी। बोली—"तुम हम सब को इस प्रकार छोड़ कर अकेले कैसे जा सकते हो ?"

१०. सिद्धार्थ ने सान्त्वना दी—"मां ! क्या तुमने हमेशा क्षत्राणी होने का दावा नहीं किया ? क्या यह ऐसा ही नहीं है ? तुम्हें वीरता का त्याग नहीं करना चाहिये। इस प्रकार दुखी होना तुम्हारे लिये अशोभनीय है। यदि मैं युद्ध-भूमि में गया होता और वहाँ जाकर मर गया होता तो तुम क्या करतीं ? क्या तब भी तुम इसी प्रकार दुःखी हुई होतीं।"

११. गौतमी बोली—"नहीं, यह तो एक क्षत्रिय के योग्य होता। लेकिन अब तुम लोगों से दूर जंगल में जंगली जानवरों के साथ रहने जा रहे हो। हम यहाँ शान्त कैसे रह सकते हैं ? मैं यही कहती हूँ कि तुम हमें भी साथ ले चलो।"

१२. सिद्धार्थ ने प्रश्न किया—"मैं तुम सबको कैसे साथ ले चल सकता हूँ ? नन्द केवल एक बच्चा है। मेरे पुत्र राहुल का अभी जन्म ही हुआ है। क्या तुम इन्हें छोड़कर मेरे साथ आ सकती हो ?"

१३. गौतमी को संतोष न हुआ। उसका कहना था: "हम सब शाक्यों का देश छोड़कर कोशल-नरेश की अधीनता में रहने के लिये कोशल जनपद में जा सकते हैं।"

१४. सिद्धार्थ ने आपत्ति की—"लेकिन मां ! शाक्य क्या कहेंगे ? क्या वे इसे देश-द्रोह न समझेंगे ? फिर मैंने वचन दिया है कि मैं वचन या कर्म से कोई ऐसी बात न कहूँगा, न करूँगा कि जिससे कोशल नरेश को मेरी प्रव्रज्या का यथार्थ कारण ज्ञात हो सके ?

१५. "यह सही है कि मुझे अकेले जंगल में रहना होगा। लेकिन कोलियों के

विरुद्ध लड़ाई में हिस्सा लेने और जंगल में रहने—इन दोनों में से अधिक श्रेयस्कर क्या है ?"

१६. इस बीच शुद्धोदन ने प्रश्न किया—"लेकिन इतनी जल्दी किस लिये शाक्य-संघ ने अभी कुछ समय के लिये लड़ाई को स्थगित कर दिया है।"

१७. "हो सकता है कि युद्ध कभी छिड़े ही नहीं। तुम अपनी प्रव्रज्या भी क्यों स्थगित नहीं करते ? हो सकता है कि शाक्य-संघ तुम्हें यहाँ बने रहने की ही अनुमति दे दे।"

१८. सिद्धार्थ को यह विचार सर्वथा नापसन्द था। इसलिये उसने कहा— "क्योंकि मैंने प्रव्रजित हो जाने का वचन दिया इसीलिये शाक्य संघ ने अभी कोलियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ना स्थगित किया है।

१९. "यह भी संभव है कि मेरे प्रव्रज्या ग्रहण कर लेने पर शाक्य-संघ अपनी युद्ध की घोषणा को वापिस ले ले। किन्तु यह सब कुछ मेरे पहले प्रव्रज्या ले लेने पर ही निर्भर करता है।

२०. "मैंने वचन दिया है और मुझे उसे अवश्य पूरा करना चाहिये। वचन-भंग का बड़ा बुरा परिणाम हो सकता है—हमारे लिये भी और शान्ति-पक्ष के लिये भी।

२१. "मां, अब मेरे मार्ग में बाधक न बनो। मुझे आज्ञा दो और अपना आशीर्वाद। जो कुछ हो रहा है, अच्छे के लिये ही हो रहा है।"

२२. गौतमी और शुद्धोदन मूक थे।

२३. तब सिद्धार्थ यशोधरा के कमरे में पहुंचे। उसे देख कर सिद्धार्थ के मुंह से वचन नहीं निकला। वह नहीं जानता था कि क्या कहे और कैसे कहे ? यशोधरा ने ही मौन भंग किया। बोली—"कपिलवस्तु में शाक्य-संघ की सभा में जो कुछ हुआ वह सब मैं सुन चुकी हूँ।"

२४. सिद्धार्थ ने पूछा—"यशोधरा ! मुझे बता कि तुझे मेरा प्रव्रजित होने का निश्चय कैसा लगा है ?"

२५. सिद्धार्थ समझता था कि शायद यशोधरा बेहोश हो जायगी। किन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ।

२६. अपनी भावनाओं को अच्छी तरह अपने वश में रख कर उसने उत्तर दिया—"यदि मैं ही तुम्हारी स्थिति में होती तो और दूसरा मैं कर ही क्या सकती थी ? निश्चय से मैं कोलियों के विरुद्ध छेड़े जाने वाले युद्ध में हिस्सा नहीं ले सकती थी।

२७. "तुम्हारा निर्णय ठीक है। तुम्हें मेरी अनुमति और समर्थन प्राप्त है। मैं भी तुम्हारे साथ प्रव्रजित हो जाती। यदि मैं नहीं हो रही हूँ तो इसका मात्र यही कारण है कि मुझे राहुल का पालन-पोषण करना है।

२८. "अच्छा होता यदि ऐसा न हुआ होता । लेकिन हमें वीरतापूर्वक स्थिति का मुकाबला करना चाहिये । अपने माता-पिता तथा पुत्र की चिन्ता न करना। मैं जब तक जीऊँगी उनकी देख-भाल करूँगी।

२९. "अब मैं इतना ही चाहती हूँ कि अपने प्रिय सम्बन्धियों को छोड़-छाड़ कर जो तुम प्रव्रजित होने जा रहे हो, तुम किसी ऐसे नये पथ का आविष्कार कर सको जो मानवता के लिये कल्याणकारी हो।"

३०. सिद्धार्थ इससे बड़ा प्रभावित हुआ । इससे पहले उसने कभी नहीं जाना थी कि यशोधरा इतनी दृढ़ थी, इतने वीर-भाव से समन्वित थी और इतनी अधिक उदाराशया थी। आज ही उसे पता लगा कि वह कितना भाग्यवान् था कि उसे यशोधरा जैसी पत्नी मिली थी। आज भाग्य ने दोनों को पृथक्-पृथक् कर दिया था। उसने उसे राहुल को लाने को कहा। एक पिता की वात्सल्यपूर्ण दृष्टि डाल कर वह वहाँ से बिदा हो गया।

१८. गृह-त्याग

१. सिद्धार्थ ने सोचा कि वह भारद्वाज के पास जाकर प्रव्रजित हो जायगा। भारद्वाज का आश्रम कपिलवस्तु में ही था। तदनुसार वह अपने सारथी छन्न को साथ लेकर और अपने प्रिय अश्व कन्थक पर चढ़कर आश्रम की ओर चला।

२. ज्योंही वह आश्रम के समीप पहुँचा, द्वार पर ही एकत्र हुए पुरुषों और स्त्रियों ने उसे ऐसे घेर लिया मानो वह एक नयी-नवेली वधू का स्वागत कर रहे हों।

३. जब वे उसके सामने आये, उनकी आंखें आश्चर्य से खुली रह गईं। उन्होंने बन्द कमल की तरह हाथ जोड़कर उसे नमस्कार किया।

४. वे उसे घेरे खड़े थे। उनके हृदय भावाविष्ट थे। वे ऐसे खड़े थे कि मानो वे अपने अर्ध-खिले नेत्रों से उसका पान ही कर रहे हों।

५. कुछ स्त्रियों ने तो यही समझा कि वह कामदेव का साकार-रूप है। क्योंकि वह अपने लक्षणों तथा अलंकारों से ऐसा ही अलंकृत था।

६. कुछ दूसरी स्त्रियों ने उसकी कोमलता और ऐश्वर्य की ओर ध्यान देकर सोचा कि अपनी अमृतमयी किरणों के साथ चन्द्रमा पर उतर आया है।

७. कुछ दूसरी स्त्रियां उसके सौन्दर्य से इतनी पराभूत थीं कि वह मुँह बाये खड़ी थीं, मानो वे उसे निगल ही जायेंगी। वे लम्बे आश्वास ले रही थीं।

८. इस प्रकार स्त्रियां केवल उसकी ओर देख ही रही थीं। न उनके मुंह में शब्द था, न चेहरे पर मुस्कराहट। वे उसे घेरे खड़ी थीं और उसके प्रव्रजित होने के निश्चय पर आश्चर्य से विचार कर रही थीं।

९. बड़ी कठिनाई से उसने उस भीड़ में से अपने लिये रास्ता निकाला और आश्रम के द्वार में प्रवेश किया।

१०. सिद्धार्थ को यह अच्छा नहीं लगता था कि शुद्धोदन और प्रजापति गौतमी उसके प्रव्रजित होने के समय उपस्थित रहें। क्योंकि वह जानता था कि ऐसे समय वे अपने को संभाले न रख सकेंगे। लेकिन उसकी जानकारी के बिना ही वे पहले से आश्रम आ पहुँचे थे।

११. ज्योंही उसने आश्रम में प्रवेश किया उसने देखा कि उपस्थित मण्डली में उसके माता-पिता भी हैं।

१२. अपने माता-पिता को वहाँ उपस्थित देखकर वह सर्वप्रथम उनके पास गया और उनका आशीर्वाद चाहा। वे भावना से इतने अधिक अभिभूत थे कि उनके मुंह से एक शब्द नहीं निकल रहा था। वे लगातार रोते रहे। उन्होंने उसे छाती से लगाया और आँसुओं से उनका अभिषेक किया।

१३. छन्न नें कन्थक को एक पेड़ से बांध दिया था और पास खड़ा था। जब उसनें देखा कि शुद्धोदन और प्रजापति आँसू बहा रहे हैं तो वह भी भावनावश अपने आँसुओं को न रोक सका।

१४. बड़ी कठिनाई से अपने माता-पिता से पृथक् हो सिद्धार्थ वहाँ गया जहाँ छन्न खड़ा था। उसने वापिस घर ले जाने के लिये उसे अपने वस्त्र और गहने-कपड़े दे दिये।

१५. तब उसने अपना सिर मुण्डवाया। ऐसा करना परिव्राजक के लिये आवश्यक था। उसका चचेरा भाई महानाम परिव्राजक के योग्य वस्त्र और भिक्षापात्र ले आया था। सिद्धार्थ ने उन्हें पहन लिया।

१६. इस प्रकार परिव्राजक का जीवन व्यतीत करने की पूरी तैयारी करके वह भारद्वाज के पास गया कि वह उसे विधिवत् प्रव्रजित कर दे।

१७. अपने शिष्यों की सहायता से भारद्वाज ने आवश्यक संस्कार किये और सिद्धार्थ गौतम के परिव्राजक बनने की घोषणा कर दी।

१८. यह याद करके कि उसनें शाक्य संघ के सम्मुख दोहरी प्रतिज्ञा की थी, एक तो प्रव्रज्या लेने की और दूसरे अविलम्ब ही शाक्य जनपद की सीमा से बाहर हो जाने की; सिद्धार्थ गौतम ने प्रव्रज्या का संस्कार समाप्त होते ही अपनी यात्रा आरम्भ कर दी।

१९. जो जनसमूह आश्रम में इकट्ठा हो गया था वह असामान्य था। सिद्धार्थ गौतम की प्रव्रज्या की परिस्थिति भी असामान्य ही थी। जब राजकुमार आश्रम से बाहर निकला, जनता भी उसके पीछे-पीछे हो ली।

२०. उसने कपिलवस्तु से बिदा ली और अनोमा नदी की ओर लोग बढ़ा। पीछे मुड़कर देखा तो जनता अभी भी पीछे-पीछे चली आ रही थी।

२१. उसने उन्हें रोका और कहा—"बहनो और भाइयों! मेरे पीछे-पीछे चले आने से क्या लाभ है? मैं शाक्यों और कोलियों के बीच का झगड़ा न निपटा

सका। लेकिन यदि तुम समझौते के पक्ष में जनमत तैयार कर लो, तो तुम सफल हो सकते हो। इसलिये कृपा करके वापिस लौट जाओ।" उसकी प्रार्थना सुनी तो लोग पीछे लौटने लगे।

२२. शुद्धोधन और गौतमी भी महल को वापस चले गये।

२३. सिद्धार्थ के त्यागे वस्त्रों और गहनों को देखना गौतमी के लिये असह्य था। उसने उन्हें एक कँवल के तालाब में फिंकवा दिया।

२४. प्रव्रज्या ग्रहण करने के समय सिद्धार्थ गौतम की आयु केवल २९ वर्ष की थी।

२५. लोग उसे याद करते थे और यह कह कह कर प्रशंसा करते थे कि "यह उच्च कुलोत्पन्न है, यह श्रेष्ठ माता-पिता की सन्तान है, यह सम्पन्न है, यह तारुण्य के मध्य में है, यह सुन्दर शरीर और बुद्धि से युक्त है, सुख-भोग में पला है और वही अपने सम्बन्धियों से इसलिये लड़ा कि पृथ्वी पर शान्ति बनी रहे और जनता का कल्याण हो।

२६. "यह एक शाक्य तरुण था जिसने बहुमत के आगे झुकने के बजाय स्वेच्छा से दण्ड स्वीकार किया जिसका मतलब था ऐश्वर्य के स्थान पर दरिद्रता, सुख-समृद्धि के स्थान पर भिक्षाटन, गृह-निवास के स्थान पर गृह-त्याग। और यह जा रहा है जब कोई इसकी चिन्ता करनेवाला नहीं, और यह जा रहा है बिना किसी भी ऐसी एक चीज़ को साथ लिये जिसे यह अपनी कह सके।

२७. "इसका यह स्वेच्छा से किया हुआ महान् त्याग है। यह बड़ी ही वीरता और साहस का कार्य है। संसार के इतिहास में इसकी उपमा नहीं। यह शाक्य-मुनि अथवा शाक्य-सिंह कहलाने का अधिकारी है।"

२८. शाक्य-कुमारी कृषा गौतमी का कथन कितना सही था। सिद्धार्थ गौतम के ही सम्बन्ध में उसने कहा था। "धन्य हैं वे माता-पिता जिन्होंने ऐसे पुत्र को जन्म दिया और धन्य है वह नारी जिसका ऐसा पति है।"[१४]

१९. राजकुमार और उनका सेवक

१. छन्न को भी कन्थक के साथ वापस लौट जाना चाहिये था। लेकिन उसने वापस जाना अस्वीकार किया। उसने आग्रह किया कि कन्थक को लिए वह कम से कम अनोमा नदी के तट तक अवश्य साथ चलेगा। छन्न का यह आग्रह इतना अधिक था कि सिद्धार्थ गौतम को उसकी बात माननी पड़ी।

२. अन्त में वे अनोमा नदी के तट पर पहुँचे।

३. तब छन्न को सम्बोधित करके सिद्धार्थ बोला—"मित्र ! इस प्रकार यहाँ तक साथ-साथ आने से मेरे प्रति तुम्हारा स्नेह प्रमाणित हो गया। तुम्हारी भक्ति ने मेरे हृदय को सर्वथा जीत लिया है।

४. "तुम्हारा मेरे प्रति जो भाव है उससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। खेद है कि मैं इस समय ऐसी स्थिति में हूँ कि तुम्हारे लिये कुछ कर नहीं सकता।

५. "जिससे उपकार की आशा हो उसके प्रति कौन अनुरक्त नहीं होगा ? लेकिन विपत्ति के समय आदमी के अपने सगे-सम्बन्धी तक पराये बन जाते हैं।

६. "परिवार के लिये पुत्र का पालन-पोषण किया जाता है, अपने भावी-सुख के लिये पुत्र पिता को मानता है, किसी न किसी आशा से ही संसार के लोग बन्धे रहते हैं; बिना आशा का निस्वार्थ भाव कहीं नहीं है।

७. "केवल एक तुम्हीं इसके अपवाद हो। इस घोड़े को लो और वापस हो जाओ।[१५]

८. "राजा के स्नेह में अभी किसी तरह की कमी नहीं आई होगी। उसे किसी न किसी तरह इस दुःख को सह लेने में सहायता करनी होगी।

९. "उसे कहना कि मैं जो उसे छोड़कर चला आया हूँ वह न किसी स्वर्ग की कामना से, न स्नेह की कमी से और न क्रोध की अधिकता से।

१०. "इस प्रकार घर छोड़कर चले आये मेरे लिये उसे अनुताप नहीं करना चाहिये, संयोग कितना भी दीर्घकालीन हो एक न एक दिन वियोग में परिणत होता ही है।

११. "जब वियोग अनिवार्य ही है तो यह कैसे हो सकता है कि सम्बन्धियों से वियोग न हो।

१२. "आदमी के मरने पर उसकी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी तो बहुत होते हैं, किन्तु उसके पुण्य का उत्तराधिकारी मिलना कठिन है, शायद होता ही नहीं।

१३. "राजा—मेरे पिता—की देख-भाल रखनी होगी। हो सकता है कि वह कहे कि मैंने अनुपयुक्त समय पर गृह-त्याग किया है; किन्तु धर्म करने के लिये कोई भी समय अनुपयुक्त समय है ही नहीं।

१४. "मित्र ! मेरे पिता को इन और ऐसे ही शब्दों से समझाना। ऐसा प्रयास करना कि उसे मेरी याद भी बनी न रहे।"[१६]

१५. "हाँ, मेरी मां से भी कहना कि मैं उसके स्नेह के अयोग्य सिद्ध हुआ। उसका वात्सल्य वचनातीत था।"

१६. इन शब्दों को सुना तो छन्न ने भावावेश से रुंधे कंठ से हाथ जोड़कर कहा—

१७. "स्वामी ! यह देखकर कि आप अपने सम्बन्धियों को वियोग-दुःख देकर जा रहे हैं मेरा हृदय ऐसे बैठा जा रहा है जैसे दलदल में फँसा हुआ हाथी।

१८. "आपका ऐसा निर्णय किसकी आंखों से अश्रु-धारा न बहायेगा, चाहे उसका हृदय लोह-निर्मित भी क्यों न हो, स्नेह-सिक्त हृदय का तो कहना ही क्या ?

१९. "कहाँ तो यह प्रासाद में ही रहने योग्य कोमलाङ्ग और कहाँ वह तीक्ष्ण कुशाग्रास से ढकी हुई पृथ्वी ?

२०. "हे कुमार ! आप का ऐसा निर्णय जानकर मैं अब कपिलवस्तु के लोगों के लिये दुःखदायक इस कन्यक घोड़े को वापस कैसे ले जा सकता हूँ ?

२१. "निश्चय से आप इस स्नेह-सिक्त वृद्ध राजा को ऐसे ही छोड़कर नहीं जायेंगे जैसे कोई नास्तिक सद्धर्म को।

२२. "और अपनी उस मौसी को—जिसने पाल-पोस कर इतना बड़ा किया—आप उसी तरह नहीं ही भूलेंगे जैसे कोई कृतघ्न अपने उपकारी को भूल जाता है।

२३. "और अपनी उस भार्या को तो आप छोड़ेंगे ही नहीं, जो गुणवती है, जो श्रेष्ठ कुलोत्पन्न है, जो पतिव्रता है और जो एक बालक की मां है।"

२४. "और हे धर्म तथा यश की सर्वाधिक चिन्ता करनेवाले ! आप यशोधरा के उस पुत्र को तो उसी प्रकार छोड़ेंगे ही नहीं, जैसे कोई जुआरी अपने यश छोड़ देता है।"

२५. "स्वामिन ! यदि आपने अपने राज्य और सम्बन्धियों को त्याग देने का दृढ़ संकल्प ही कर लिया है तो आप मुझे तो छोड़ेंगे ही नहीं, क्योंकि आप ही मेरे शरण-स्थान हैं।

२६. "मैं आपको इस प्रकार जंगल में अकेला छोड़कर इस दग्ध-हृदय के साथ नगर को वापस नहीं लौट सकता।

२७. "जब मैं अकेला वहाँ जाऊँगा तो राजा मुझे क्या कहेगा और मैं आपकी सहधर्मिणी को ही क्या शुभ-संवाद सुनाऊंगा ?

२८. "और आपका जो यह कहना है कि मैं राजा को आपके अवगुण सुना.. ताकि उसका स्नेह कम हो जाय, तो यदि मैं तालु से सटी जिह्वा से निर्लज्ज बनकर आपके अवगुण कहने का प्रयास भी करूं तो उन पर कौन विश्वास करेगा ?

२९. "जो दया-मूर्ति है और जिसने सदा करुणा दिखाई है, यह उसके योग्य नहीं कि अपने स्नेह का परित्याग कर दे। मुझ पर दया करें। लौट चलें।"[१७]

३०. छन्न के इन दुःखभरे शब्दों को सुनकर सिद्धार्थ गौतम ने अत्यन्त कोमलता से उत्तर दिया—

३१. "छन्न ! "मेरे वियोग से उत्पन्न होने वाले दुःख का परित्याग करो। नाना जन्म ग्रहण करने वाले प्राणियों के लिये परस्पर का वियोग अनिवार्य है।

३२. "यदि मैं स्नेह के कारण आज अपने सम्बन्धियों का परित्याग न भी करूँ, तो भी एक न एक दिन मृत्यु हमें एक दूसरे से अनिवार्य तौर पर पृथक् कर ही देगी।

३३. "जिस मेरी मां ने, मुझे इतना कष्ट सहन करके जन्म दिया था, अब वह कहाँ है ? और मैं कहाँ हूँ ?

३४. "जैसे पक्षी अपने विश्राम-वृक्ष पर इकट्ठे होते हैं, किन्तु फिर नाना दिशाओं में उड़ जाते हैं, यही प्राणियों की दशा है। उनका भी वियोग अवश्यम्भावी है।

३५. "जैसे बादल एकत्र होकर फिर पृथक् पृथक् नाना दिशाओं में चले जाते हैं, यही प्राणियों की दशा है। उनका भी वियोग अवश्यम्भावी है।

३६. "और क्योंकि यह संसार इसी प्रकार परस्पर एक दूसरे की वञ्चना करता हुआ गतिमान है। इसलिये संयोग के समय किसी भी चीज को अपना समझ बैठना भयावह है।

३७. "क्योंकि यह ऐसा ही है, इसलिये मित्र ! शोक मत करो। वापिस लौट जाओ। यदि मन नहीं ही माने तो जाकर फिर वापस चले आना"[१८]

३८. "बिना मुझे कुछ और कहे, कपिलवस्तु के लोगों से जाकर कहना कि उसके लिये जो तुम्हारा स्नेह है, उसे छोड़ दें, क्योंकि उसका निश्चय दृढ़ है।"

३९. जब स्वामी और सेवक के बीच की यह बातचीत कन्थक ने सुनी तो उस श्रेष्ठ अश्व ने अपनी जिह्वा से स्वामी के चरण चाटे और आँखों से गरम-गरम आँसू गिराये।

४०. उस हाथ स जिसकी अँगुलियाँ जुड़ी हुई थीं, उस हाथ से जिसमें मंगल स्वस्ति अंकित था, उस हाथ से जिसकी हथेली अन्दर को थी, गौतम ने उसे थपथपाया और एक मित्र की तरह सम्बोधित करके कहा—

४१. "कन्थक ! सहन कर। अश्रु मत बहा। तेरा परिश्रम शीघ्र ही सफल होगा।[१९]

४२. जब छन्न ने देखा कि अब शीघ्र विदा होना ही होगा, तो उसने गौतम के उस परिव्राजक रूप को नमस्कार किया।

४३. कन्थक और छन्न से विदा लेकर गौतम भी अपने मार्ग पर चल दिये।

४४. छन्न ने जब देखा कि उसका स्वामी राज्य त्याग कर, परिव्राजक का वेष धारण किये चला जा रहा है, उससे न रहा गया। वह अपने हाथ उठाकर जोर से चिल्लाया और जमीन पर गिर पड़ा।

४५. जब उसने पीछे मुड़कर देखा वह एक बार फिर जोर से चिल्लाया। उसने अपने कन्थक के गले में हाथ डाले। वह निराश और भग्न-हृदय फिर अपने मार्ग पर आगे बढ़ा।

४६. रास्ते में कभी वह चिन्तित हो उठता, कभी पश्चात्ताप करता, कभी लड़खड़ाता, कभी गिर पड़ता। इस प्रकार स्नेह-विदीर्ण हृदय से उसने रास्ते भर नाना तरह की बातें कीं। वह स्वयं नहीं जानता था कि वह क्या कर रहा है?

२०. छन्न की वापसी

१. स्वामी के वनगमन के बाद वापस लौटते समय छन्न ने अपने दुखी मन का भार हलका करने का भरसक प्रयास किया।

२. उसका दिल इतना भारी था कि जिस दूरी को वह पहले एक दिन में पूरा कर लेता था अब अपने स्वामी के वियोग की चिन्ता करते-करते उसी दूरी को पूरा करने में उसे आठ दिन लगे।

३. कन्थक, यद्यपि वह अभी भी धैर्यपूर्वक चला जा रहा था, किन्तु वह अत्यन्त क्लान्त और श्रान्त हो गया था। निस्सन्देह वह अभी भी अलंकारों से अलंकृत था, तो भी स्वामी-विहीन होने के कारण सर्वथा तेज-विहीन हो गया था।

४. और जिस दिशा में उसका स्वामी गया था उधर घूम-घूम कर बड़े ही शोक-संतप्त स्वर में वह बार-बार हिनहिनाया। यद्यपि वह क्षुधा से परेशान था तो भी उसने पहले की तरह न रास्ते भर घास चरी और न पानी पिया।

५. अन्त में दोनों उस कपिलवस्तु पहुँचे जो सिद्धार्थ के चले जाने के कारण एकदम सूना हो गया था। वे दोनों भी प्राण-विहीन शरीर की तरह ही वहाँ पहुँचे।

६. पद्म-पुष्पित जलाशय थे, फूलों से लदे हुए वृक्ष थे; किन्तु नागरिकों के हृदय प्रसन्नता से शून्य थे।

७. तेज-विहीन आँखों में अश्रु लिये हुए जब उन दोनों ने कपिलवस्तु में प्रवेश किया तो उन्हें सारा नगर अन्धकारावृत प्रतीत हुआ।

८. जब लोगों ने सुना कि शाक्य-जाति के उस अभिमान को बिना साथ लाये ही वे दोनों अकेले लौटे हैं, तो लोगों की आँखें आँसू बरसाने लगीं।

९. आवेश से उन्मत्त हुए लोग छन्न का पीछा कर रहे थे और आँसू बहाते हुए चिल्ला रहे थे—"जाति और राज्य का गौरव राजकुमार कहाँ है?"

१०. जहाँ वह नहीं है वह नगर हमारे लिये जंगल है, और जिस जंगल में वह है वह जंगल ही हमारे लिये नगर है। सिद्धार्थ-विहीन नगर का हमारे लिये कोई आकर्षण नहीं।[२०]

११. स्त्रियाँ खिड़कियों पर आकर जुट गईं। वे एक दूसरे को कह रही थीं—"राजकुमार लौट आया है।" लेकिन जब उन्होंने देखा कि घोड़े की पीठ नंगी है, उन्होंने खिड़कियाँ बन्द कर लीं और जोर-जोर से विलाप करने लगीं।

२१. परिवार का विलाप

१. शुद्धोदन के परिवार के लोग बड़ी उत्सुकतापूर्वक इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि सम्भव है छन्न सिद्धार्थ को समझा-बुझा कर वापस लाने में सफल हो जाय।

२. राजकीय अस्तबल में प्रवेश करते ही कन्थक बड़े जोर से हिनहिनाया। इस प्रकार उसने महल के लोगों को अपना दुःख व्यक्त कर दिया।

३. जो लोग राज-महल के भीतरी भाग में थे, उन्होंने सोचा—"क्योंकि कन्थक हिनहिना रहा है, इसलिये राजकुमार वापस आ गया होगा।"

४. और वे स्त्रियां जो दुःख के मारे होश-हवास भुलाये बैठी थीं, अब प्रसन्नता से पागल हो गईं। वे राजकुमार को देखने की आशा में बड़ी तेजी से महल से बाहर आईं। वे निराश हुईं। वहां कन्थक था। राजकुमार न था।

५. सारा आत्म-संयम भूल कर गौतमी चिल्ला उठी। वह बेहोश हो गई। जोर-जोर रोती हुई कहने लगी:—

६. "जिसके वैसे लम्बे-लम्बे बाहु हों, जिसकी सिंह समान चाल हो, जिसकी वृषभ जैसी आंखें हों, जो स्वर्ण समान सुन्दर हो, जिसका वक्षस्थल खूब चौड़ा हो, जिसका स्वर मेघ-गर्जन के समान गम्भीर हो—क्या ऐसे वीर को किसी आश्रम में रहना चाहिये?

७. "यह वसुन्धरा ही रहने योग्य नहीं है क्योंकि वह अनुपम श्रेष्ट कर्मी हमें छोड़ कर चला गया है।

८. "उसके वे दो पांव—जिनके चरणों की अँगुलियों के बीच में सुन्दर जाली है, जिनके गिट्टे नील कँवल की तरह कोमल और आच्छादित हैं, जिनके बीच चक्र-चिन्ह अंकित है, वन की कठोर-भूमि पर कैसे चल सकेंगे?

९. "वह शरीर—जो महलों में रहने या लेटने के योग्य है, जो मूल्यवान् भेष-भूषा तथा चन्दन आदि के लेप से अलंकृत रहता है—उन जंगलों में कैसे रहेगा, जहां शीत, उष्णता और वर्षा से बचने का कोई उपाय नहीं।

१०. "जिसे अपना कुल, शील, शौर्य, बल, विद्या, सौन्दर्य और तारुण्य का अभिमान था; जिसे हमेशा देने का ही अभ्यास रहा, लेने का नहीं; वह दूसरों से भिक्षा कैसे मांग सकेगा?

११. "जो स्वच्छ सुनहरी शैया पर सोता था और जिसे मधुर वाद्य के संगीत से उठाया जाता था, वह मेरा तपस्वी अब केवल एक वस्त्र बिछाकर कठोर पृथ्वी पर कैसे सोयेगा?"[२१]

१२. "इस प्रकार के करुण विलाप को सुनकर स्त्रियां परस्पर एक दूसरे का आलिङ्गन कर आंसू बहाने लगीं। उनकी आंखों से आंसू क्या बरस रहे थे, हिलाई गई लताओं के फूलों से मधु बरस रहा था।

१३. "यह भूलकर कि उसने उसे सहर्ष जाने की अनुमति दे दी थी वियोगा-हत यशोधरा भी एक बार ही भूमि पर गिर पड़ी।

१४. "अपनी धर्मपत्नी को—मुझे—वह कैसे छोड़ गया? वह मुझे विधवा बना गया। वह अपनी धर्मपत्नी को अपने नये-जीवन का संगी-साथी बना सकता था।

१५. "मुझे स्वर्ग की कामना नहीं है। मेरी एक ही इच्छा रही है कि मेरा पति मुझे इस लोक वा परलोक में कभी न छोड़े।

१६. "यदि मैं उसके विशालाक्ष तेजस्वी मुख की ओर देखने की अधिकारिणी नहीं हूँ तो क्या यह विचारा राहुल भी अपने पिता की गोद में लेटने का अधिकारी नहीं है!

१७. "खेद है कि उस वीर के कोमल सौन्दर्य के भीतर उसका हृदय अत्यन्त कठोर है, अत्यन्त निर्दय है। कौन ऐसा है जो शत्रु को भी मुग्ध कर लेने वाले, तोतली बोली बोलने वाले इस प्रकार के बच्चे तक को छोड़ कर चला जाय?

१८. "निश्चय से मेरा हृदय भी अत्यन्त दारुण है—शायद पत्थर का बना हुआ अथवा लोह-निर्मित है जो अपने स्वामी के वनगमन पर, अनाथवत् छोड़कर चले जाने पर भी विदीर्ण नहीं होता। लेकिन मैं करूँ क्या? मेरा दुःख असह्य है।"[२२]

१९. इस प्रकार अपने दुःख में अपने होश-हवास गँवाये हुए यशोधरा रोई और जोर-जोर से रोई। यद्यपि वह स्वभाव से बड़ी धैर्यवान् थी, लेकिन इस समय दुःख में वह अपना धैर्य गँवा बैठी थी।

२०. इस प्रकार जमीन पर पड़ी यशोधरा को, दुःख के मारे अपने होश-हवास गँवाये देखकर और उसका करुण विलाप सुनकर सारी स्त्रियाँ भी चिल्लाने लगीं। आँसुओं के मारे उनके चेहरे ऐसे हो गये थे जैसे वर्षा से प्रताड़ित कमल हों।

२१. छन्न और कन्थक दोनों के वापस लौट आने की बात सुनकर और अपने पुत्र के दृढ़ निश्चय की बात सुनकर, शुद्धोदन के चित्त को बड़ी चोट पहुँची।

२२. अपने पुत्र के वियोग से अत्यन्त दुःखी शुद्धोदन ने नौकर-चाकरों से सँभाले जाकर जरा देर के लिये घोड़े की ओर देखा। उस समय उसकी आँखें आँसुओं से भरी थीं। इसके बाद वह जमीन पर गिर पड़ा और जोर-जोर से चिल्लाने लगा।

२३. तब शुद्धोदन अपने मन्दिर में गया, प्रार्थना की और कई माङ्गलिक क्रियाएँ कीं। उसने अपने पुत्र के सकुशल लौट आने के लिये कई मिन्नतें मानीं।

२४. इस प्रकार शुद्धोदन, गौतमी और यशोधरा यही मनाते-मनाते अपने दिन गिनने लगे कि हे देव! हम उसे जल्दी-से-जल्दी फिर कब देखेंगे?

१. अंगुत्तर निकाय।
२. मज्झिमनिकाय के चूलदुक्खक्खन्ध सुत्त की अट्ठकथा।
३. जातक निदानट्ठकथा।
४. बुद्धचरित (अश्वघोष) सर्ग १—४९ से ८९ तक।
५. जातक-निदान अट्ठकथा।
६. अंगुत्तर निकाय १ : २ : १—७।
७. मज्झिमनिकाय के चूलदुक्खक्खन्ध सुत्त की अट्ठकथा।
८. पालि-परम्परा के अनुसार भद्दकच्चाना—यशोधरा—सुप्रबुद्ध शाक्य की कन्या थी।
९. अश्वघोषकृत बुद्धचरित सर्ग ४, श्लोक संख्या ९ से २२ तक।
१०. अश्वघोषकृत बुद्धचरित सर्ग ४, श्लोक संख्या २३ से ५२ तक।
११. बुद्धचरित सर्ग ४ के ही श्लोक ५६, ५७।
१२. अश्वघोषकृत बुद्धचरित सर्ग ४ के श्लोक ६५ से ८२ तक।
१३. अश्वघोषकृत बुद्धचरित सर्ग ४ के श्लोक ८४ से ९६ तक।
१४. जातकट्ठकथा (निदान)।
१५. अश्वघोषकृत बुद्धचरित सर्ग ६ के श्लोक ७ से ११ तक।
१६. अश्वघोषकृत बुद्धचरित सर्ग ६ के श्लोक १५ से २३ तक।
१७. अश्वघोषकृत बुद्धचरित सर्ग ६ के श्लोक २६ से ४१ तक।
१८. अश्वघोषकृत बुद्धचरित सर्ग ६ के श्लोक ४३ से ५० तक।
१९. अश्वघोषकृत बुद्धचरित सर्ग ६ के श्लोक ५४, ५५।
२०. बुद्धचरित सर्ग ८, श्लोक १३।
२१. बुद्धचरित सर्ग ८ के श्लोक ५३ से ५८ तक।
२२. बुद्धचरित सर्ग ८ के श्लोक ६१ से ६९ तक।

दूसरा भाग

सदा के लिये अभिनिष्क्रमण

१. कपिलवस्तु से राजगृह

१. कपिलवस्तु से निकलकर सिद्धार्थ गौतम ने मगध राज्य की राजधानी राजगृह जाने का विचार किया।

२. उस समय राजा बिम्बिसार का राज्य था। यह एक ऐसा स्थान था जहाँ बड़े-बड़े दार्शनिक और पण्डित रहते थे।

३. इस विचार से उसने गंगा पार की। उसने गंगा की तेज़ धारा तक की परवाह नहीं की।

४. रास्ते में वह एक ब्राह्मण स्त्री सकी के आश्रम पर रुका, इसके बाद पद्मा नाम की एक दूसरी ब्राह्मण स्त्री के आश्रम पर रुका और तब रैवत नाम के ब्राह्मण ऋषि के आश्रम पर। सभी ने उसका आतिथ्य किया।

५. उसका व्यक्तित्व, उसकी तेजस्विता और उसका अनुपम सौन्दर्य ऐसा था कि उस प्रदेश के सभी लोगों को आश्चर्य हो रहा था कि उसने संन्यासी के वस्त्र कैसे धारण किये हैं ?

६. उसे देखकर, अन्यत्र जाता हुआ कोई-कोई वहीं खड़ा रह गया, वहीं खड़ा खड़ा कोई शीघ्रता से उसके पीछे हो लिया, जो धीरे-धीरे चल रहा था वह तेजी से दौड़ने लगा और जो बैठा था वह तुरन्त खड़ा हो गया।[1]

७. कुछ ने उसे हाथ जोड़कर नमस्कार किया, कुछ ने सिर झुकाकर आदर प्रदर्शित किया, कुछ ने उसे प्रिय-वचनों से सम्बोधित किया; कोई एक भी ऐसा नहीं था जिसने उसके प्रति अपना आदर का भाव न दिखाया हो।[2]

८. जो रंग-बिरंगे कपड़े पहने थे उन्हें उसे देखकर संकोच हुआ, जो व्यर्थ प्रलाप कर रहे थे वे चुप हो गये; कोई भी ऐसा न था जो व्यर्थ के संकल्प-विकल्पों में लगा रहा हो।[3]

९. उसकी भौंहें, उसका माथा, उसका मुंह, उसका शरीर, उसका हाथ, उसके पाँव, उसकी चाल—उसके शरीर का किसी ने कोई भी अंग देखा—वह मंत्र-मुग्ध की तरह खड़ा रह गया।[4]

१०. बड़ी लम्बी और कठिन यात्रा के बाद गौतम राजगृह पहुँचे, जो कि पांच पहाड़ियों से घिरी हुई थी, जो कि पर्वतों से सम्यक सुरक्षित और अलंकृत थी और जहाँ चारों ओर मंगलकारी पवित्र स्थान थे।

११. राजगृह पहुँच कर उसने वहाँ पाण्डव पर्वत के नीचे एक जगह चुनी और वहाँ अपने रहने के लिये पत्तों की एक छोटी-सी झोंपड़ी बना ली।

१२. कपिलवस्तु से राजगृह पैदल चलकर कोई ४०० मील की दूरी पर है।

१३. सिद्धार्थ गौतम ने यह सारी यात्रा पैदल की।

२. राजा बिम्बिसार और उसका परामर्श

१. दूसरे दिन वह उठा और उस ने भिक्षापात्र हाथ में ले भिक्षाटन के लिये नगर में जाने की तैयारी की। उसके इर्द-गिर्द बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई।

२. मगध-नरेश श्रेणिय बिम्बिसार ने अपने महल के बाहर लोगों का जमघट देखा। उसने कारण जानना चाहा। एक दरबारी ने उसे इस प्रकार कारण बताया।

३. "जिसके बारे में ब्राह्मणों ने भविष्यद्वाणी की थी कि 'या तो यह बुद्ध होगा या चक्रवर्ती राजा होगा'—यह वही शाक्य-पुत्र है जो अब संन्यासी हो गया है। उसी पर लोग नज़र गड़ाये हैं।"

४. राजा ने यह बात सुनी और इसके अर्थ पर विचार किया तो उसने तुरन्त दरबारी को कहा—"पता लगाओ, यह किधर जा रहा है?" दरबारी आज्ञा पाकर राजकुमार के पीछे-पीछे चला।

५. स्थिर-दृष्टि, मात्र दो गज़ ही आगे देखते हुए, शान्त-स्वर, नपे-तुले क़दम वाला वह श्रेष्ठ परिव्राजक भिक्षाटन के लिये चला तो उसकी इंद्रियाँ तथा चित्त पूर्णरूप से संयत थे।[1]

६. जैसी भी कुछ भिक्षा मिली उसे ग्रहण कर वह पर्वत के एक एकान्त कोने में जा बैठा और भिक्षान्न खा चुकने के बाद पाण्डव-पहाड़ी पर चढ़ गया।[2]

७. लोध्र वृक्षों से भरे जंगल में, जहाँ मयूरों का स्वर गूंज रहा था, वह काषाय-वस्त्रधारी, मानवता का सूर्य ऐसे चमक रहा था जैसे पूर्व-दिशा के पर्वतों पर प्रातःकालीन सूर्य।[3]

८. उस राज-दरबारी ने यह सब देखकर, जाकर राजा को सारा वृत्तान्त सुनाया। राजा ने जब यह सब सुना तो अपने साथ कुछ थोड़े-से अनुयायी ले वह गौरवपूर्ण भाव सहित उसी ओर चला।

९. पर्वत के समान व्यक्तित्व वाले उस राजा ने पर्वतारोहण किया।[4]

१०. वहाँ उसने जितेन्द्रिय गौतम को पर्यङ्कासन लगाये बैठे देखा। वह ऐसा प्रतीत होता था मानों चलायमान पर्वत का शिखर हो।[5]

११. उसके पास जो सौन्दर्य और शान्त-भाव में विशेष था, आश्चर्य और स्नेह की भावना से परिपूर्ण राजा गया।[१]

१२. विनम्रतापूर्वक उसके समीप पहुँचकर बिम्बिसार ने उसका कुशल-क्षेम पूछा और गौतम ने भी वैसी ही शालीनता के साथ अपने सकुशल होने की बात कही।[२]

१३. तब राजा एक स्वच्छ चट्टान पर बैठ गया और अपना मनोभाव व्यक्त करने के लिये इस प्रकार बोला—

१४. "तुम्हारे कुल से मेरी वंशानुगत प्रगाढ़ मैत्री है। इसीसे मेरे मन में तुम्हें दो शब्द कहने की इच्छा उत्पन्न हुई है। मेरी बात ध्यान से सुनें।[३]

१५. "जब मैं तुम्हारे सूर्य-वंश का विचार करता हूँ, तुम्हारे तारुण्य का विचार करता हूँ, तुम्हारे अनुपम सौन्दर्य का विचार करता हूँ तो मैं सोचता हूँ कि तुम्हारे मन में संन्यासी का जीवन व्यतीत करने का यह सर्वथा बेमेल संकल्प कहाँ से घर कर गया?[४]

१६. "तुम्हारे अंग रक्त चन्दन से चर्चित होने के योग्य हैं, रक्ताम्बर के नहीं; तुम्हारा यह हाथ प्रजा-रक्षण के योग्य है, भिक्षापात्र ग्रहण करने के योग्य नहीं।[५]

१७. "हे तरुण! यदि तू अपना पैतृक राज्य नहीं ही चाहता तो मैं तुझे अपना आधा राज्य देता हूँ। इसे ग्रहण करने की कृपा कर।"[६]

१८. "यदि तू ऐसा करेगा तो इससे तेरे स्वजनों को किसी प्रकार का दुःख न होगा। समय बीतने पर अन्त में लक्ष्मी स्थिर-चित्तों की ही शरण ग्रहण करती है। इसलिये कृपया मेरी बात मान ले। सत्पुरुषों की सहायता पाकर सत्पुरुषों की श्री बहुत बलवती हो जाती है।"[७]

१९. "यदि अपने कुलाभिमान से मेरा कहना अमान्य हो तो अनन्त सेना के साथ धनुष-बाण का उपयोग कर, मेरी सहायता से अपने विरोधियों पर विजय प्राप्त कर लो।[८]

२०. "इसलिये इन तीन पुरुषार्थों में से एक चुन लो। धर्मानुसार अर्थ और काम की प्राप्ति की कामना करो। काम और मोक्ष की उल्टे क्रम से अर्थात् पहले काम की और फिर मोक्ष की इच्छा करो। जीवन के धर्म, अर्थ, काम—यही तीन उद्देश्य हैं। आदमी मरता है तो जहाँ तक इस संसार का सम्बन्ध है सभी कुछ निरोध को प्राप्त हो जाता है।[९]

२१. "इसलिये इन तीनों पुरुषार्थों की प्राप्ति का प्रयास करके जीवन को सफल करो। कहा है कि धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति में ही जीवन की सफलता है।[१०]

२२. "इन धनुष-बाण धारण करने में समर्थ बाहुओं को बेकार न रहने दो। इस पृथ्वी का तो कहना ही क्या इनमें तीनों लोकों को जीत लेने का सामर्थ्य है।

२३. "मैं जो यह सब कह रहा हूँ, इसमें मात्र मेरा स्नेह ही कारण है, न तो मैं यह राज्य-लोभ से ही कह रहा हूँ और न तुम्हारा यह तपस्वी भेष देखकर उत्पन्न हुई अभिमान-भावना से ही कह रहा हूँ। मेरे दिल में दया है और आँखों में आँसू हैं।

२४. "हे अपने कुल के अभिमान ! हे तपस्या के इच्छुक ! अभी समय है काम-भोगों का आनन्द ले। बाद में बुढ़ापा आ जायगा और इस तेरे सौन्दर्य को म्लान कर देगा।

२५. "बुढ़ापे में आदमी 'पुण्य' करके धर्मार्जन कर सकता है? बुढ़ापे में आदमी विषय-भोग के अयोग्य हो जाता है। इसीलिये कहा है कि तरुण के लिये विषय-भोग है, मध्य-वयस्क के लिये धन है और वृद्ध के लिये धर्म है।[१]

२६ "इस संसार में तारुण्य का धन और धर्म से विरोध है—क्योंकि काम-सुखों को कितना ही सुरक्षित रखा जाय, वे सुरक्षित रखे ही नहीं जा सकते। इस-लिये जब और जहाँ भी सुख-भोग प्राप्य हों वहाँ उनका उपभोग कर लेना चाहिए।[२]

२७. "वार्धक्य विचार-प्रधान होता है। यह स्वभावत: गम्भीर और शान्त रहता है। बिना प्रयास के ही यह संयत-भाव को प्राप्त हो जाता है।[३]

२८. "इसलिये वञ्चक, अस्थिर बाह्य-विषयों में अनुरक्त, असावधान, अधैर्यवान्, अदूरदर्शी तारुण्य के गुजर जाने पर लोगों को ऐसा लगता है कि मानों किसी भयानक जंगल में से सुरक्षित निकल आये।[४]

२९. "इसलिये इस तिमिराच्छन्न तारुण्य को गुजर जाने दो। हमारा आर-म्भिक जीवन सुख-भोग के लिये ही है। इस समय इन्द्रियों को काबू में रखा ही नहीं जा सकता।[५]

३०. "और यदि धर्म में ही तेरी विशेष रुचि है तो अपने कुल-धर्म के अनुसार यज्ञ कर, क्योंकि यज्ञ करने से ऊँचे-से-ऊँचा स्वर्ग प्राप्त किया जा सकता है।[६]

३१. "बाहुओं पर स्वर्ण-निर्मित बाजू-बन्द बाँधे हुए और नाना वर्ण के आभा-पूर्ण रत्न जड़ित मुकुट धारण किये हुए राजर्षि-गण यज्ञों द्वारा उसी पद को प्राप्त कर सके हैं जिसे अनेक महर्षियों ने तपस्या द्वारा प्राप्त किया है।"[७]

३. बिम्बिसार को गौतम का उत्तर

१. इन्द्र की तरह स्पष्टता और दृढ़ता से जब मगध-नरेश ने यह कहा, तो उसकी भी बात सुनकर कुमार अपने निश्चय से विचलित नहीं हुआ। वह पर्वत के समान अचल था।[८]

२. मगध-नरेश से इस तरह सम्बोधित किये जाने पर संयत, स्थिर राजकुमार ने मैत्री-पूर्ण हृदय से यह उत्तर दिया—

३. "राजन् ! जो कुछ आप ने कहा है वह आपके योग्य है। आपका जन्म

उस महान् कुल में हुआ है, जिसका राज-चिन्ह सिंह है। आप मित्रों के हितचिन्तक हैं। आपके लिये यह स्वाभाविक है कि आप अपने एक मित्र को इस तरह कहें।

४. "दुश्शीलों की कुलागत मैत्री शीघ्र ही नष्ट हो जाती है, सुशील ही हैं जो नये-नये मैत्रीपूर्ण व्यवहार से पुरानी परम्परागत मैत्री को दीर्घकाल तक बनाये रखते हैं।[१]

५. "प्रतिकूल परिस्थिति में ही जो मैत्री का त्याग नहीं करते वे ही सच्चे मित्र हैं। सुख-पूर्ण अवस्था में, वैभव की स्थिति में तो कौन मित्र नहीं होता।"[२]

६. "सम्पत्ति प्राप्त होने पर अपने मित्रों के लिये तथा धर्म के निमित्त जो उसका उपयोग करते हैं उन्हीं की सम्पत्ति सार्थक है; जब इसका विनाश भी होता है तब भी यह दुःखजनक नहीं सिद्ध होती।"[३]

७. "हे राजन्! आपने जो कुछ भी मेरे बारे में कहा वह आपके औदार्य और मैत्री का ही परिणाम है। मैं भी मैत्री-पूर्ण ढंग से ही आपका समाधान करने का प्रयास करूँगा।[४]

८. "मुझे न साँपों से ही उतना भय लगता है और न आकाश से गिरने वाले वज्र से ही उतना भय लगता है, न वायु के झोंको से प्रेरित आग के शोलों से ही इतना भय लगता है, जितना भय इन इन्द्रियों के विषयों से लगता है।[५]

९. "यह अस्थिर विषय—हमारे सुख और सम्पत्ति के विनाशक, जो संसार में अन्तःशून्य और माया के सदृश हैं—आशाकाल में ही आदमी के चित्त को चंचल कर देते हैं, जब वे उसे ग्रस लेते हैं तब तो इनका कहना ही क्या?[६]

१०. "मर्त्य-लोक तो क्या, दिव्य-लोक में भी विषयानुरक्त को संतोष और सुख प्राप्त नहीं होता। जिस प्रकार इंधन से वायु-प्रेरित आग की कभी तुष्टि नहीं होती उसी प्रकार विषयों की कामना रखने वाले की कभी प्यास नहीं बुझती।[७]

११. "विषयों से बढ़कर संसार में विपत्ति नहीं है, अविद्या में ग्रसे रहने के ही कारण लोग उनमें अनुरक्त होते हैं। एक बार विषयों से भयभीत हो जाने पर कौन बुद्धिमान् फिर उनकी कामना करेगा?[८]

१२. "समुद्र से घिरी सारी पृथ्वी जीत लेने पर भी राजा लोग समुद्र के दूसरी ओर विजयी होने की कामना करते हैं। जिस प्रकार अपने में गिरनेवाली नदियों से समुद्र अतृप्त ही रहता है, उसी प्रकार आदमी की कभी भी विषयों से तृप्ति नहीं होती।[९]

१३. "आकाश से स्वर्ण-वर्षा हो चुकने पर भी, चारों समुद्रों को जीत लेने पर भी, शक्र का आधा राज्य हस्तगत हो जाने पर भी राजा मान्धाता विषयों में अतृप्त ही रहा।[१०]

१४. जब इन्द्र ने वृत्र के भय के मारे अपने आपको छिपा लिया था उस समय

नहुष स्वर्ग-लोक का सुख-भोग कर भी अहंकार के वशीभूत हो ऋषियों से अपनी पालकी उठवा कर भी विषयों में अतृप्त हो रहा था।[१]

१५. इन विषय-भोग नामधारी शत्रुओं का कौन स्वागत करेगा, जिन्होंने ऐसे ऋषियों पर भी काबू पा लिया जो दूसरे ही पुरुषार्थ में लगे थे, जो वल्कल वस्त्र धारण करते थे, जो फल-मूल खाकर ही गुजारा करते थे और जिनकी साँपों जैसी लम्बी-लम्बी जटाएँ थीं।[२]

१६. "विषयासक्त मनुष्यों के दुःखों की जानकारी हो जाने पर जो संयत है उनके लिये यही योग्य है कि वे विषयों के पास न फटकें।[३]

१७. विषयासक्त मनुष्य के लिये विषय-सम्बन्धी सफलता भी एक विपत्ति ही है, क्योंकि इच्छित विषय की प्राप्ति होने पर वह उससे मदमत्त हो जाने पर जो नहीं करना चाहिये, वह करता है और जो करना चाहिये वह नहीं करता, और इससे आहत होकर वह भयानक दुःख को प्राप्त होता है।[४]

१८. "ये काम-विषय जो बड़े ही प्रयास से सुरक्षित रख जाते हैं, जो विषयी की वञ्चना के अनन्तर जहाँ से आते हैं वहाँ लौट जाते है, जो थोड़ी देर के लिये ऋण लिये जैसे ही होते हैं, कौन बुद्धिमान् संयत आदमी इनमें आनन्द मनायेगा?[५]

१९. ये काम-विषय उल्का के समान हैं, इन के पीछे पड़ने पर ये पिपासा में वृद्धि का कारण होते हैं, कौन बुद्धिमान् संयत आदमी इन्हें प्राप्त कर सन्तुष्ट होगा।[६]

२०. ये काम-विषय फेंके हुए मांस के समान है, जो राजाओं से लेकर सभी के दुःख का कारण होते है, कौन बुद्धिमान् संयत आदमी इन्हें प्राप्त कर सन्तुष्ट होगा।

२१. "ये काम-विषय इन्द्रियों की ही तरह नाशवान् हैं, जो भी इनमें रमण करता है, ये उसके लिये विपत्तिजनक ही होते हैं, कौन बुद्धिमान् संयत आदमी इन्हें प्राप्त कर सन्तुष्ट होगा ?

२२. "जो संयमी आदमी इन काम-विषयों से डसा जाता है ये उसका सुख हर लेते हैं और उसके विनाश का कारण होते हैं। ये एक क्रुद्ध निर्दय सर्प के समान हैं, कौन बुद्धिमान् संयत आदमी इन्हें प्राप्त कर सन्तुष्ट होगा ?

२३. "जिन काम-विषयों को भोगने से भी वैसे ही तृप्ति नहीं होती जैसी एक कुत्ते की हड्डी चाटने से, जो सूखी हड्डियों के पंजर के समान है, कौन बुद्धिमान् संयत आदमी इन्हें प्राप्त कर सन्तुष्ट होगा ?[७]

२४. जो दरिद्र कामान्ध है, जो विषयाशा का दास है, वह इसी संसार में मृत्यु-दुःख का अधिकारी है।[८]

२५. गीतों के कारण हिरण विनाश को प्राप्त होते हैं, दीपक की चमक के कारण पतंगे आग में जल-भून कर जान गँवाते हैं, मांस-लोभी मछली लोहे का काँटा निगल जाती है; इसलिये संसार के काम-भोग अन्त में विनाश का ही कारण होते है।[९]

२६. यह जो सामान्यतया कहा जाता है कि 'काम-भोग भोगने के लिये हैं' यदि विचार कर देखा जाय तो उनमें से कोई भी भोग्य-पदार्थ नहीं है; अच्छे-अच्छे कपड़े और दूसरी भी वैसी ही सभी चीजें अधिक-से-अधिक दुःख के मार्जन मात्र हैं।[१]

२७. "पानी प्यास बुझाने के लिये होता है, भोजन भूख मिटाने के लिये, घर हवा-धूप और वर्षा से बचाने के लिये; और वस्त्र शीत से रक्षा करने के लिये तथा नग्नता ढकने के लिये।[२]

२८. "इस प्रकार शैया तन्द्रा के विघात के लिये है, वाहन यात्रा की थकावट मिटाने के लिये है, आसन खड़े रहने की थकावट दूर करने के लिये है, इसी प्रकार स्नान शरीर-शुद्धि और स्वास्थ्य का साधन है।[३]

२९. "जितने भी बाह्य-पदार्थ हैं वे आदमियों के दुःख हरण के ही साधन हैं—वे अपने में भोग्य पदार्थ नहीं है; कौन बुद्धिमान् आदमी इन दुःख के दूर करने के साधनों को भोग्य-वस्तुएँ मान कर भोगेगा?[४]

३०. जो आदमी सन्निपात ज्वर से ग्रस्त होने पर ठण्डी पट्टी आदि को भोग्यवस्तुएँ मानें—जो कि केवल वेदना को दूर करने के ही उपाय हैं—वही आदमी इन काम-विषयों को भोग्य वस्तुओं का नाम दे सकता है?[५]

३१. क्योंकि सभी काम-विषय अनित्य हैं, इसलिये मैं उन्हें भोग्य-विषय मान ही नहीं सकता। जो स्थितियाँ सुख-दायक प्रतीत होती हैं वही दुःखकारक भी बन जाती हैं।[६]

३२. गर्म-वस्त्र और सुगन्धित धूप शीत ऋतु में सुख पहुँचाते हैं; किन्तु ग्रीष्म ऋतु में वही अप्रिय बन जाते हैं; चन्द्रमा की किरणें और चन्दन का लेप गर्मी में सुखकारक होते हैं, किन्तु वही सरदी में अप्रिय बन जाते हैं।[७]

३३. क्योंकि संसार की सभी वस्तुएँ—हानि-लाभ, यश-अपयश, सुख-दुःख आदि—द्वन्द्वों के आधीन हैं। इसलिये कोई भी आदमी न नित्य सुखी रहता है और कोई भी आदमी न नित्य दुखी।[८]

३४. जब मैं इस सुख-दुःख के मिश्रण को देखता हूँ तो मैं राज्य और दासता को समान ही समझता हूँ। क्योंकि न तो राजा ही हमेशा हँसता रहता है और न दास ही हमेशा रोता रहता है।[९]

३५. क्योंकि राजा के सिर पर बड़ी जिम्मेदारी होती है, इसलिये राजा की चिन्ताएँ भी अधिक होती हैं। क्योंकि राजा तो कपड़े टाँगने की खूंटी के समान होता है, उसे दूसरों के लिये ही कष्ट सहन करना पड़ता है।[१०]

३६. जो राजा अपने 'राज्य' पर अत्यधिक निर्भर करता है वह अभागा ही है जो कि उसे एक-न-एक दिन त्याग देने वाला है और जिसे वक्रगति ही प्रिय है;

दूसरी ओर यदि राजा राज्याश्रित नहीं है तो ऐसे कायर नरेश को सुख ही क्या हो सकता है ?'[1]

३७. "और क्योंकि सारी पृथ्वी का राज्य जीत लेने पर भी राजा एक ही नगरी में रह सकता है और उसमें भी केवल एक ही महल में सो सकता है; बाकी सब कुछ क्या दूसरों के ही लिये नहीं हैं ?[2]

३८. "और राजा को भी एक जोड़ा कपड़ा ही लगता है और भूख मिटाने के लिये थोड़ा भोजन अपेक्षित होता है; इसी प्रकार एक शैंय्या और एक आसन की ही आवश्यकता होती है; शेष सब तो मद के लिये ही है।[3]

३९. "यदि इन सब वस्तुओं का उपयोग आदमी का सन्तोष ही है, तो मैं बिना राज्य के भी सन्तुष्ट हूँ। और यदि कोई इनके बिना ही सन्तुष्ट है तो क्या ये सब बेकार नहीं हैं ?[4]

४०. "जो मंगलकारी पथ का पथिक है, उसे काम-भोगों में का प्रलोभन देना योग्य नहीं। उस मैत्री का, जिसकी आपने घोषणा की है, ध्यान करके, मैं आपसे बार-बार पूछता हूँ कि आप मुझे बतायें कि क्या विषयों में कुछ भी सार है ?[5]

४१. मैंने रोष में आकर गृह-त्याग नहीं किया है और न इसलिये कि शत्रु के बाणों ने मेरे मुकुट को गिरा दिया है और न मेरी कोई दूसरी फल-आकांक्षा ही है, जिसके कारण मैं आपके प्रस्ताव का स्वागत नहीं कर रहा हूँ।[6]

४२. जो कोई किसी भयानक क्रुद्ध सर्प से एक बार बचकर फिर उसी को प्राप्त करने की इच्छा करे, जो तेज जलती हुई तुषाग्नि से एक बार बचकर फिर उसी में पड़ने की इच्छा करे, वही एक बार इन काम-विषयों से बचकर फिर इन्हीं में फँसने की इच्छा कर सकता है।[7]

४३. जो भली प्रकार देखता हुआ भी किसी अन्धे से ईर्षा करे, जो मुक्त होता-हुआ भी किसी बँधे हुए से ईर्षा करे, जो धनी होकर भी किसी दरिद्र से ईर्षा करे, जो स्वस्थ-चित्त होकर भी किसी पागल से ईर्षा करे—मैं कहता हूँ कि केवल ऐसा ही कोई किसी विषयासक्त से ईर्षा कर सकता है।

४४. "मित्र ! जो भिक्षाजीवी है, वह दया का पात्र नहीं है। उसे इस लोक में परं सुख प्राप्त है, शान्ति प्राप्त है और आगे के लिये भी उसके सब दुःखों का अन्त हो गया है।[9]

४५. "किन्तु वही दया का पात्र है जो विशाल धन राशि के बीच गड़ा हुआ होने पर भी तृष्णा के वशीभूत है, जिसे न इस लोक में परं सुख प्राप्त है, न शान्ति प्राप्त है और न आगे के लिये भी उसके दुःखों का अन्त हुआ है।[10]

४६. "जो कुछ तुमने मुझे कहा है वह तुम्हारे शील, तुम्हारी जीवन-चर्या और तुम्हारे कुल के अनुरूप है। किन्तु अपने निश्चय पर दृढ़ रहना मेरे भी शील, मेरी भी जीवन-चर्या और मेरे भी कुल के अनुरूप है।[11]

४. गौतम का उत्तर (समाप्त)

१. "मैं संसार के कलहों से आहत हूँ। मैं शान्ति की खोज में हूँ। मैं इस दुःख का अन्त करने के बदले में इस पृथ्वी का राज्य तो क्या दिव्य-लोक का राज्य भी न चाहूंगा।[१]

२. "और राजन्! यह जो तुमने कहा है कि धर्म, अर्थ और काम ही मनुष्य के तीन पुरुषार्थ हैं, और तुम्हारा यह भी कहना है कि मैं दुःख के मार्ग पर हूँ तो तुम्हारे तीनों पुरुषार्थ अनित्य हैं और असन्तोषकारक हैं।[२]

३. "और जहाँ आपका यह कहना है कि 'वार्धक्य आने तक प्रतीक्षा करनी चाहिये, क्योंकि तरुणाई का ठिकाना नहीं', तो आपका यह कथन ही सुनिश्चित नहीं क्योंकि तरुणाई में भी दृढ़ता हो सकती है और वार्धक्य में भी नहीं हो सकती।"[३]

४. "और जब मृत्यु किसी भी समय किसी को भी अपने वश में ले सकती है, तो कोई भी शान्ति का खोजी बुद्धिमान् किस प्रकार वार्धक्य की प्रतीक्षा कर सकता है जब वह यह जानता ही नहीं कि मृत्यु कब आ धर दबायेगी?[४]

५. "जब वार्धक्यरूपी शस्त्र हाथ में लिये, रोगों के तीर चारों ओर बिखेरे मृत्यु प्राणियों को निगल जाने के लिये तैयार खड़ी है और प्राणी भी उसके मुंह में ऐसे जाते हैं जैसे हिरण जंगल की ओर तो कोई भी दीर्घायु की भी क्या कामना कर सकता है?[५]

६. "चाहे तरुण हो, चाहे वृद्ध हो और चाहे लड़का हो, हर किसी के लिये यही योग्य है कि वह करुणा के धार्मिक-पथ पर अग्रसर हो।[६]

७. "और जहाँ तक तुम्हारा यह कहना है कि मैं यज्ञ करने में अप्रमादी बनूं, क्योंकि वे मेरे कुल के अनुकूल हैं और महान् फलदायी हैं, तो ऐसे यज्ञों को नमस्कार है जिनमें निरीह प्राणियों का वध होता है।[७]

८. "किसी भावी फल के लिये किसी भी निरीह प्राणी की हत्या करना किसी भी कारुणिक शील-सम्पन्न मनुष्य को योग्य नहीं, चाहे फिर वह यज्ञ का फल अनन्तकालीन ही क्यों न हो।[८]

९. "और यदि यह भी न स्वीकार किया जाय कि आत्म-संयम, सदाचार और कामजित् होना ही सद्धर्म का अनुकरण करना है, तो भी याज्ञिक होना ठीक नहीं, क्योंकि यज्ञ-धर्म के अनुसार ऊँचे-से-ऊँचा फल पशुओं की हत्या से ही मिल सकता है।[९]

१०. "दूसरों को दुःख देकर, इसी जन्म में, जो सुख आदमी को प्राप्त होता है वही जब कारुणिक बुद्धिमान् पुरुष के लिये काम्य नहीं तो फिर किसी अदृश्य दूसरे लोक में जो सुख मिलने की बात कही जाती है, उसके बारे में तो कहना ही क्या?[१०]

११. "मैं अगले जन्म में मिलने वाले किसी फल की आशा से कोई कर्म करने में प्रेरित नहीं हो सकता, हे राजन् ! मेरे मन को भावी जन्मों की कल्पना में सुख नहीं मिलता, क्योंकि ऐसे कर्मों की दिशा उसी तरह अनिश्चित और अस्थिर है जैसे बादलों से गिरी वर्षा से प्रताड़ित किसी पौधे की दिशा।"[१]

१२. राजा ने हाथ जोड़कर कहा—"बिना बाधा के आपका उद्देश्य सफल हो। जब भी कभी आप का जीवनोद्देश्य पूरा हो जाय तब फिर इधर पधारने की कृपा करना।[२]

१३. गौतम को फिर अपने राज्य में आने के लिये वचन-बद्ध कर अपने दरबारियों सहित राजा अपने महल को चला गया।

५. शान्ति का समाचार

१. जब गौतम राजगृह में एक कुटी बनाकर ठहरे हुए थे, उसी समय पांच दूसरे परिव्राजक भी आये और उन्होंने भी उसके पास ही एक कुटी बना ली।

२. इन पांच परिव्राजकों के नाम थे कौण्डिन्य, अश्वजित्, वाष्प, महानाम तथा भद्रिक।

३. वे भी गौतम के व्यक्तित्व सें प्रभावित हुए और सोचने लगे कि इसकी प्रव्रज्या का क्या कारण रहा होगा ?

४. राजा बिम्बिसार की भाँति ही उन्होंने भी इस विषय में प्रश्न किया।

५. जब उसने उन्हें वह सारी परिस्थिति समझाई जो कि उसके प्रव्रजित होने का कारण बनी थी, उन्होंने कहा, "हाँ, हमने यह सुना है, लेकिन क्या तुम जानते हो कि तुम्हारे चले आने के बाद क्या हुआ ?"

६. सिद्धार्थ का उत्तर था, "नहीं।"[१] तब उन्होंने उसे बताया कि उसके चले आने के बाद कोलियों से युद्ध ठानने के विरोध में शाक्यों में बड़ा आन्दोलन छिड़ा।

७. आदमियों, औरतों, लड़कों, लड़कियों ने प्रदर्शन किये और जुलूस निकाले। वे नारे लगा रहे थे कि 'कोलिय और शाक्य भाई-भाई हैं', 'भाई का भाई के विरुद्ध शस्त्र उठाना अनुचित है', 'गौतम के जलावतन हो जाने को याद करो' इत्यादि।"

८. आन्दोलन का यह परिणाम हुआ कि शाक्य-संघ को एक सभा बुलाकर पुन: अपने निर्णय पर विचार करना पड़ा। इस समय बहुमत कोलियों से समझौता कर लेने के पक्ष में था।

९. शाक्य-संघ ने पांच जनों को अपना दूत चुना और उन्हें यह काम सौंपा गया कि वे कोलियों के साथ सन्धि-वार्ता चलायें।

१०. जब कोलियों को इसका पता लगा वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने भी अपने में से पांच जन चुने जो शाक्यों के दूतों के साथ सन्धि-वार्ता चलायें।

११. दोनों ओर के दूत आपस में मिले और दोनों ने तय किया कि एक स्थायी

पंचायत की नियुक्ति की जाय और रोहिणी के जल को लेकर कभी भी यदि कोई झगड़ा हो तो इस पंचायत के सामने हीं रखा जाय और पंचायत का निर्णय मान्य किया जाय। इस प्रकार युद्ध का खतरा सदा के लिये शान्त हो गया।

१२. जो कुछ कपिलवस्तु में हुआ था उससे गौतम को सूचित करने के अनन्तर परिव्राजकों ने कहा—"अब तुम्हारे लिये परिव्राजक बने रहने की कोई आवश्यकता नहीं। अब तुम अपने परिवार के लोगों के पास वापस जा सकते हो।"

१३. सिद्धार्थ का उत्तर था—"इस शुभ समाचार से मुझे प्रसन्नता हुई है। यह मेरी विजय है। लेकिन मैं वापस घर नहीं जाऊँगा। मुझे नहीं जाना चाहिये। मुझे परिव्राजक ही बने रहना चाहिये।"

१४. गौतम ने उन पाँच परिव्राजकों से पूछा—"तुम्हारा क्या कार्यक्रम है?" उनका उत्तर था—"हमने तपस्या करने का निश्चय किया है। तुम भी क्यों हमारे साथ शामिल नहीं होते?" सिद्धार्थ ने कहा—"शनैः शनैः पहले मुझे दूसरे पथों की परीक्षा करनी है।"

१५. तब पाँचों परिव्राजक चले गये।

६. समस्या की नई पृष्ठ-भूमि

१. पाँच परिव्राजकों द्वारा लाये गये इस समाचार ने कि शाक्यों और कोलियों में युद्ध का होना रुक गया था, गौतम को बड़ा बेचैन बना दिया।

२. अकेला होने पर वह बड़ी गम्भीरता से सोचने लगा कि क्या अब भी परिव्राजक बने रहने का उसके लिये कोई उचित कारण रह गया है!

३. उसने अपने से प्रश्न किया—वह अपने बन्धु-बान्धवों को क्यों छोड़कर आया था?

४. उसने इसीलिये गृहत्याग किया था क्योंकि वह युद्ध का विरोधी था। "अब जब कि युद्ध समाप्त हो गया है, तब भी क्या मेरे लिये कोई समस्या शेष रह गई है! क्या युद्ध की समाप्ति के साथ-साथ मेरी समस्या भी समाप्त हो गई?"

५. गहराई से सोचने पर उसे उत्तर मिला—नहीं।

६. युद्ध की समस्या अनिवार्य तौर पर विरोध की समस्या है। यह एक बड़ी समस्या का एक अंग मात्र है।

७. "यह विरोध न केवल जातियों और राजाओं में ही विद्यमान है, यह विरोध यह संघर्ष विद्यमान है क्षत्रियों में, ब्राह्मणों में, गृहस्थों में, माता और पुत्र में, पुत्र और माँ में, पिता और पुत्र में, बहन और भाई में तथा साथी और साथी में।"

८. जातियों में जो संघर्ष होता है वह तो कभी-कभी होता है लेकिन वर्गों के बीच में जो संघर्ष होता है वह स्थायी है और लगातार जारी है। संसार के कष्टों और दुःख के मूल में यह वर्ग-संघर्ष ही है।

९. यह सत्य है कि मैंने युद्ध के कारण ही गृहत्याग किया था। लेकिन शाक्यों और कोलियों का युद्ध समाप्त हो जाने पर भी मैं घर वापस नहीं लौट सकता। मैं देखता हूँ कि मेरी समस्या ने व्यापक रूप धारण कर लिया है। मुझे उस सामाजिक-संघर्ष की समस्या का हल खोज निकालना है।

१०. पुराने परम्परागत दर्शनों के पास इस सामाजिक संघर्ष की समस्या का हल है या नहीं और यदि है तो कहाँ तक ?

११. क्या हम इन सामाजिक दर्शनों में से किसी एक को भी सही मान सकते हैं ?

१२. उसने हर परम्परा का—हर मत का—स्वयं परीक्षण करने का निश्चय किया।

पृष्ठ ४१ : १, २, ३, ४; अश्वघोषकृत बुद्धचरित सर्ग १० : श्लोक ४, ५, ६, ८।

पृष्ठ ४२ : १, २, ३, ४, ५; बुद्धचरित सर्ग १० : श्लोक १३, १४, १५, १६, १७।

पृष्ठ ४३ : १, २, ३, ४, ५, ६; ७, ८, ९, १०; बुद्धचरित सर्ग १० : श्लोक १७, १८, २२, २३, २४, २५, २६, २७, २८, ३०।

पृष्ठ ४४ : १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८; बुद्धचरित सर्ग १० : श्लोक ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१।

पृष्ठ ४५ : १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०; बुद्धचरित सर्ग ११ : श्लोक २, ३, ४, ५, ६, ८, ९, १०, ११, १२, १३।

पृष्ठ ४६ : १, २, ३, ४, ५, ६, ७. ८, ९; बुद्धचरित सर्ग ११ : श्लोक १४, १७, १८, २१, २२, २३, २५, ३४, ३५।

पृष्ठ ४७ : १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०; बुद्धचरित सर्ग ११ : श्लोक ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५।

पृष्ठ ४८ : १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११; बुद्धचरित सर्ग ११ : ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६।

पृष्ठ ४९ : १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०; बुद्धचरित सर्ग ११ : ५७, ५८, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७।

पृष्ठ ५० : १, २, बुद्धचरित ११ : ६८, ७२।

तीसरा भाग

नये प्रकाश की खोज में

१. भृगु आश्रम पर रुकना

१. अन्य पंथों का परीक्षण करने के उद्देश्य से सिद्धार्थ गौतम ने आलार आळाम से भेंट करने के लिये राजगृह को छोड़ दिया।

२. मार्ग में उसने भृगु ऋषि का आश्रम देखा और यूँ ही जरा देखने के लिये उसमें प्रवेश किया।

३. आश्रम के ब्राह्मण निवासी जंगल से लकड़ी चुन कर लाये थे। उनके हाथ 'तपस्या' की अत्यावश्यक वस्तुएँ समिधा, पुष्प, तथा कुश से भरे थे। वे बुद्धिमान् अपनी-अपनी कुटियों में न जाकर सिद्धार्थ गौतम की ही ओर मुड़े।

४. आश्रम निवासियों द्वारा समुचित रूप से सम्मानित होकर सिद्धार्थ गौतम ने भी आश्रम के बड़े-बूढ़ों के प्रति आदर प्रदर्शित किया।

५. उस मोक्ष-कामी बुद्धिमान् ने उन स्वर्ग-कामी तपस्वियों की विचित्र-विचित्र तपस्याओं का निरीक्षण करते हुए उस आश्रम को देखा।

६. उस सुकोमल संन्यासी ने उस पवित्र वन में उन तपस्वियों को वैसी नाना प्रकार की तपस्याएँ करते हुए प्रथम बार देखा।

७. तपस्याओं के रहस्य के श्रेष्ठ ज्ञाता भृगु ब्राह्मण ने उसे सभी प्रकार की तपस्याएँ समझायीं और प्रत्येक तपस्या का फल भी बताया।

८. पानी से उत्पन्न, निरग्नि-भोजन, मूल और फल––यही धर्मशास्त्रों के अनुसार तपस्वियों का भोजन है, लेकिन तपस्या के भिन्न-भिन्न नाना रूप हैं।

९. "कुछ पक्षियों की भाँति दाने चुग कर गुजारा करते हैं, दूसरे हिरणों की भाँति घास चुगते हैं और तीसरे साँपों की भाँति वायु-भक्षी होते हैं––मानो वे दीमक की बाम्बी ही बन गये हों।"[1]

१०. "दूसरे बड़ी कठिनाई से पत्थरों से अपने शरीर के लिये पोषण प्राप्त करते हैं, दूसरे अपने दाँतों से ही पीस कर अन्न खाते हैं, और तीसरे दूसरों के लिये उबालते हैं और उनके लिये भाग्यवश जो कुछ थोड़ा बच रहे उसी पर गुजारा करते हैं।[2]

११. "कुछ दूसरे निरन्तर पानी में भीगी जटाओं से दो बार अग्नि देवता को अर्घ्य अर्पण करते हैं, कुछ दूसरे मछलियों की तरह पानी में डूबे रहते हैं। उनके बदनों को कछुए नोचते रहते हैं।[1]

१२. "कुछ समय तक इस प्रकार के तपस्या के कष्ट सहने से—अधिक कष्ट सहने से स्वर्ग, मध्यम कष्ट सहने से मर्त्य-लोक—ये अन्त में सुख लाभ करते हैं। कहा गया है कि कष्ट सहन ही पुण्य का मूल है।[2]

१३. यह सब सुना तो गौतम ने उत्तर दिया—"किसी भी ऐसे आश्रम को देखने का यह मेरा पहला अवसर है। मेरी समझ में तुम्हारा यह तपस्या-क्रम नहीं आता।

१४. "अभी तो में केवल इतना ही कह सकता हूँ। आप की यह निष्ठा स्वर्ग-लाभ के लिये है, किन्तु मेरी इच्छा तो यही है कि संसार के दुःख के मूल कारण का और उसके दूर करने का उपाय खोज निकाला जाय। क्या में अब आप से विदा ले सकता हूँ? में सांख्य-दर्शन का ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ और योग-विधि का भी अभ्यास करना चाहता हूँ और देखना चाहता हूँ कि क्या यह दोनों पद्धतियाँ मेरी समस्या के हल में किसी प्रकार सहायक हो सकती हैं?

१५. "जब मैं सोचता हूँ कि मुझे आप लोगों से—जो ऐसी निष्ठा से अपने पथ पर अग्रसर हो रहे हैं, जिन्होंने मेरे प्रति इतने सौहार्द्र का परिचय दिया है—विदा लेनी होगी, तो मुझे बड़ा दुःख होता है; वैसा ही दुःख जैसा मुझे अपने सम्बन्धियों को छोड़ते समय हुआ था।

१६. "मैं जो इस वन से विदा ले रहा हूँ यह कोई आपकी कृति के प्रति वितृष्णा के कारण नहीं, क्योंकि आप तो अपने पूर्वज ऋषियों के पथ पर चलने वाले महान् ऋषि-गण हैं।

१७. "मैं मुनि आळार काळाम के पास जाना चाहता हू, जो सुविज्ञ माना जाता है।

१८. उसका यह संकल्प देखकर आश्रम-पति भृगु ने कहा—"राजकुमार! तुम्हारा संकल्प महान् है। तुमने तरुण होने के बावजूद स्वर्ग-सुख और मोक्ष के बारे में गम्भीरता से विचार कर लिया है और तुम स्वर्ग-सुख के स्थान पर मोक्ष लाभ करना चाहते हो। तुम निस्सन्देह वीर हो।

१९. "यदि जैसा तुम कहते हो, यही तुम्हारा दृढ़ निश्चय हो तो शीघ्र विन्ध्य-प्रदेश को जाओ। वहीं वह मुनि आळार काळाम रहता है जो निरपेक्ष सुख के रहस्य का ज्ञाता है।

२०. "उससे तुम मार्ग का ज्ञान प्राप्त करोगे। लेकिन जहाँ तक मैं देख सकता हूँ तुम वहाँ भी न रुकोगे। तुम उसके सिद्धान्त की भी जानकारी प्राप्त कर और आगे बढ़ जाओगे।"

२१. गौतम ने उसका धन्यवाद किया और ऋषि-मण्डली के प्रति आदर

प्रदर्शित कर वहां से विदा हुआ। वे ऋषि-गण भी उसके प्रति यथायोग्य सत्कार-सम्मान की भावना प्रदर्शित कर पुनः तपस्या करने के निमित्त वन में जा दाखिल हुए।

२. सांख्य-परम्परा का अध्ययन

१. भृगु के आश्रम से विदा ले चुकने पर गौतम आलार कालाम के आश्रम का पता लगाने के लिये निकल पड़ा।

२. आलार कालाम उस समय वैशाली में ठहरा हुआ था। गौतम उधर गया। वैशाली पहुँच कर वह उसके आश्रम पहुँचा।

३. आलार कालाम के पास पहुँच कर उसने कहा कि मैं आपके सिद्धान्त और अभ्यास में दीक्षित होना चाहता हूँ।

४. आलार कालाम ने उत्तर दिया—"तुम्हारा स्वागत है। मेरा सिद्धान्त ऐसा है कि तुम्हारे जैसा बुद्धिमान् आदमी इसे अचिरकाल में ही स्वयं समझ ले सकता है, मेरे सिद्धान्त का साक्षात् कर सकता है और तदनुसार जीवन बिताने लग सकता है।

५. "निश्चय से, तुम ऊँची-से-ऊँची शिक्षा ग्रहण करने के पात्र हो।"

६. आळार कालाम के ये शब्द सुनकर राजकुमार बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उत्तर दिया—

७. "इस असीम करुणा के कारण जो आप मेरे प्रति दिखा रहे हैं, सदोष होने पर भी मुझे लगता है कि ये निर्दोष हूँ।

८. "क्या आप कृपा कर मुझे अपना सिद्धान्त बतायेंगे?"

९. आलार कालाम बोला—"तुम्हारे शील, तुम्हारे चरित्र और तुम्हारे दृढ़ निश्चय का मेरे मन पर ऐसा प्रभाव पड़ा है कि ये तुम्हारी पात्रता जांचने के लिये तुम्हारी कोईप रीक्षा नहीं लेना चाहता।

१०. "हे सुनने वालों में श्रेष्ठ! हमारे सिद्धान्तों को सुनो।"

११. तब उसने गौतम को उन सिद्धान्तों से परिचित कराया जो उस समय सांख्य-दर्शन के नाम से ज्ञात थे।

१२. प्रवचन की समाप्ति पर आलार कालाम ने कहा—"गौतम! बस इतने ही हमारे सिद्धान्त हैं। मैं ने सार रूप में सब बता दिये हैं।

१३. गौतम आलार कालाम की स्पष्ट व्याख्या से बड़ा प्रसन्न हुआ।

३. समाधि-मार्ग का अभ्यास

१. जिस समय गौतम अपनी समस्या का हल ढूंढ़ निकालने के लिये नाना तरह के परीक्षण करने में लगा हुआ था, उसे विचार आया कि वह समाधि लगाने का ढंग भी क्यों न सीख ले?

२. ध्यान मार्ग की तीन पद्धतियाँ प्रचलित थीं।

३. तीनों पद्धतियों में एक बात समान थी। तीनों की मान्यता थी कि सांस पर काबू पा लेने से चित्त की एकाग्रता सिद्ध हो जाती है।

४. सांस को बस में रखने (?) की एक पद्धति आनापानसति कहलाती थी।

५. सांस को वश में रखने की एक दूसरी पद्धति प्रचलित थी जो प्राणायाम कहलाती थी। यह सांस लेने के तीन विभाग करती थी: (१) पूरक (अन्दर सांस खींचना), कुम्भक (सांस को अन्दर रोके रखना), रेचक (सांस को बाहर निकाल देना)। सांस को वश में करने का एक और तीसरा मार्ग समाधि-मार्ग कहलाता था।

६. आलार काळाम ध्यान-मार्ग में निष्णात समझा जाता था। गौतम को लगा यह अच्छा होगा कि यदि यह आलार काळाम की देख-रेख में ध्यान-मार्ग का कुछ अभ्यास कर ले।

७. इसलिये उसने आलार काळाम से बातचीत की और प्रार्थना की कि वह कृपया उसे ध्यान-मार्ग का अभ्यास करा दे।

८. आलार काळाम का उत्तर था–"बड़ी खुशी से।"

९. आलार काळाम ने उसे अपने ध्यान-मार्ग की विधि सिखाई। इसकी सात "सीढ़ियाँ" थीं।

१०. गौतम ने इस विधि का नियमित रूप से प्रतिदिन अभ्यास किया।

११. इस विधि पर पूरा अधिकार कर चुकने के बाद गौतम ने पूछा—"क्या सीखने के लिये कुछ और शेष है?"

१२. आलार काळाम का उत्तर था :–"मित्र! नहीं इसके अतिरिक्त मेरे पास सिखाने के लिये और कुछ नहीं।" गौतम ने आलार काळाम से बिदा ली।

१३. गौतम ने उद्दक रामपुत्त नाम के एक दूसरे योगी के बारे में सुना जिसकी ख्याति थी कि उसने एक ऐसी ध्यान-विधि का आविष्कार किया है कि उससे ध्यानी आलार-काळाम की ध्यान-विधि की अपेक्षा एक सीढ़ी ऊपर चढ़ जाता है।

१४. गौतम ने सोचा कि यह विधि भी सीख कर योगी की अन्तिम अवस्था तक पहुंचना चाहिये। तदनुसार वह उद्दक रामपुत्त के आश्रम में पहुंचा और उसके कथनानुसार योगाभ्यास आरम्भ किया।

१५. थोड़ी देर में ही गौतम ने उद्दक राम-पुत्त के आठवें दर्जे तक भी अधिकार प्राप्त कर लिया। उद्दक रामपुत्त की ध्यान विधि को पूर्णरूप से हस्तगत करने के अनन्तर गौतम ने उससे भी वही प्रश्न पूछा जो उसने आलार काळाम से पूछा था: —क्या आगे कुछ और भी सीखना शेष है?"

१६. उद्दक रामपुत्त का उत्तर भी पूर्ववत् ही था :—"मित्र! इसके अतिरिक्त तुम्हें सिखाने के लिये और मेरे पास कुछ नहीं।"

१७. आलार कालाम और उद्दक रामपुत्त दोनों ध्यानाचार्य्य के रूप में कोशल "जनपद" में प्रसिद्ध थे। लेकिन गौतम ने सुना था कि मगध जनपद में भी वैसे ही ध्यानाचार्य्य हैं। उसने सोचा कि उसे उनकी भी विधि सीख लेनी चाहिये।

१८. तदनुसार गौतम मगध गया।

१९. उसने देखा कि यद्यपि उनकी भी ध्यान-विधि का आधार सांस पर काबू पाना ही था, तो भी जो ध्यान-विधि कोशल जनपद में प्रचलित थी, उससे वह सर्वथा भिन्न थी।

२०. इस ध्यान-विधि की विशेषता यह थी कि यह सांस का सर्वथा निरोध करके चित्त की एकाग्रता का सम्पादन करती थी।

२१. गौतम ने यह विधि सीखी। जब उसने सांस को रोक कर चित्त को एकाग्र करने का प्रयास किया तो उसने देखा कि उसके कानों में से बड़ी तीव्र आवाज आती है और अपना सिर उसे ऐसा प्रतीत होने लगा मानों कोई तेज चाकू से चीर रहा हो।

२२. यह बड़ी कष्टदायक विधि थी। लेकिन गौतम ने इस पर भी अधिकार प्राप्त कर ही लिया।

२३. इस प्रकार उसने समाधि-मार्ग का अभ्यास किया।

४. तपस्या का परीक्षण

१. गौतम ने सांख्य-मार्ग तथा समाधि-मार्ग का परीक्षण कर लिया था। लेकिन वह तपश्चर्य्या का परीक्षण बिना किये ही भृगुओं के आश्रम से चला आया था।

२. उसे लगा कि इसके बारे में भी उसका स्वानुभाव होना चाहिए ताकि वह अधिकार से इसकी चर्चा कर सके।

३. तदनुसार गौतम गया पहुंचा। वहाँ पहुंच कर सबसे पहले उसने घूम फिर कर आस पास का इलाका देखा। बाद में उसने तपश्चर्य्या के लिये गया के राजर्षि नेंगरी के आश्रम में—जो कि ऊरुवेला में था—निवास करने का निश्चय किया। तपश्चर्य्या के लिये नेरञ्जरा नदी के तट पर यह एक एकान्त स्थान था।

४. ऊरुवेला में उसे वह पांच परिव्राजक भी मिले जो उसे राजगृह में मिले थे और जिन्होंने उसे 'शान्ति का समाचार' लाकर सुनाया था। वे भी तपश्चर्य्या का अभ्यास कर रहे थे।

५. उन तपस्वियों ने उसे देखा और उसके पास आकर कहा कि वह उन्हें भी साथ ले ले। गौतम ने स्वीकार किया।

६. इसके बाद से वे उसकी सेवा करते हुए उसकी आज्ञा में रहने लगे। वे उसके प्रति बड़े विनम्र थे और जैसा वह कहे वैसा करने वाले थे।

७. गौतम की तपस्या तथा आत्म-क्लेश की प्रक्रिया अत्यन्त उग्र रूप की थी।

८. कभी कभी वह केवल दो तीन घरों पर ही भिक्षाटन के लिए जाता, सात घरों से अधिक पर कभी नहीं ! और उन घरों में से भी एक एक घर से दो तीन कौर भोजन ही स्वीकार करता, सात कौर से अधिक किसी एक घर से नहीं।

९. वह दिन में एक दो कटोरी भर भोजन पर ही गुजारा करता; सात कटोरियों से अधिक किसी हालत में नहीं।

१०. कभी कभी वह सारे दिन में एक ही बार भोजन करता, कभी कभी दो दिनों में एक बार, इसी क्रम से—कभी कभी सात दिनों में एक बार, या पन्द्रह दिनों में भी एक बार और बड़ी ही नपी-तुली मात्रा में।

११. जब उसने तपश्चर्य्या में और प्रगति की तो उसका आहार जंगल से इकट्ठी की हुई हरी जड़ें मात्र रह गया था, या अपने से उगे हुए जौ या धान के दाने, या पेड़ों की छाल के टुकड़े, या काई, या चावल के गिर्द भूसी के अन्दर के लाल कण, या उबले हुए चावल की पीछ, या सरसों आदि की खली।

१२. वह जड़ें और जंगली फल खाकर रहता था, या जो स्वयं हवा से अपने आप गिरें।

१३. उसके कपड़े या तो सन के बने थे, या सन की रस्सी और कूड़े के ढेरों पर पड़े हुए चीथड़ों के, या पेड़ की छाल के, या आधी या पूरी मृग-छाल के या घास के या छाल की लकड़ी की पट्टियों के, या आदमियों या पशुओं के बालों से बने कम्बलों के और या उल्लू के परों के।

१४. वह अपने सिर और दाढ़ी के बाल नोच-नोच कर उखाड़ता था, वह हमेशा सीधा और पालथी मार कर बैठता था तथा वह पालथी मारे मारे आगे सरकता था—वह खड़ा नहीं होता था।

१५. इस तरह से तथा और भी नाना प्रकार से वह अपने शरीर को कष्ट और पीड़ा पहुँचाता था—उस की तपश्चर्य्या इस सीमा तक पहुंच गई थी।

१६. अपने शरीर के प्रति उपेक्षा के भाव को वह इस सीमा तक ले गया कि वर्षों तक उसके शरीर पर मैल जमती रही जो कि बाद में अपने आप गिरने लगी।

१७. वह भयानक घनघोर जंगल में रहता था, ऐसे घनघोर जंगल में कि उसके बारे में कहा जाता था कि एक पागल के सिवा और कोई उस जंगल में प्रवेश करने का साहस नहीं कर सकता। यदि करेगा तो उसके रोंगटे खड़े हो जायेंगे।

१८. शीत ऋतु में जब रातें भयानक ठण्डी हो जाती तो कृष्ण-पक्ष के दिनों में रात को वह खुले में रहता और दिन के समय घुप अन्धेरे में।

१९. और जब वर्षा के ठीक पहले ग्रीष्म ऋतु की भयानक गरमी पड़ने लगती तो दिन में वह सूर्य के नीचे रहते और रात को सांस घोट देने वाली गरमी में भीतर जंगल में।

२०. वह श्मशान-भूमि में मुर्दों की हड्डियों का तकिया बनाकर लेटता।

२१. इसके बाद गौतम एक दिन में एक ही फली खाकर दिन बिताने लगा—बाद में एक ही सरसों का दाना—बाद में एक ही चावल का दाना।

२२. जब वह एक दिन में केवल एक ही दाना खाकर गुज़ारा करने लगा तो उसका शरीर बहुत क्षीण हो गया।

२३. यदि वह अपने पेट को स्पर्श करता, तो उसका हाथ उसकी पीठ को जा लगता; यदि वह अपनी पीठ को स्पर्श करता, तो उसका हाथ उसके पेट को जा लगता। उसका पेट और पीठ एक दूसरे के इतने नज़दीक सट गये थे।[1] यह सब कुछ उसकी अत्यन्त अल्पाहारता के ही कारण हुआ था।

५. तपश्चर्या का त्याग

१. गौतम की तपश्चर्या और आत्म-पीड़न बड़े ही उग्र रूप का था—इतना उग्र जितना उग्र वह हो सकता था। यह छः वर्ष के लम्बे अर्से तक जारी रहा।

२. छः वर्ष बीतने पर उसका शरीर इतना दुर्बल हो गया था कि वह हिल-डोल तक न सकता था।

३. तब भी उसे कोई नया-प्रकाश नहीं दिखाई दिया था, और संसार में जो दुःख की समस्या है और जिस पर उसका मन केन्द्रित था, उस समस्या का कोई हल उसे दिखाई नहीं दिया था।

४. उसने अपने मन में सोचा—"यह न आत्म-विजय का मार्ग है, न पूर्ण-बोधि प्राप्त करने का मार्ग है और न मोक्ष का मार्ग है।"

५. "कुछ इस संसार के सुख-भोग के निमित्त कष्ट उठाते हैं, कुछ स्वर्ग-लाभ के निमित्त कष्ट सहन करते हैं; सभी प्राणी आशा के चक्कर में पड़कर अपने उद्देश्य को प्राप्त न हो, सुख को खोजते हैं, दुःख के गढ़े में जा गिरते हैं।

६. "क्या मेरे साथ भी कुछ कुछ ऐसा ही नहीं हुआ है ?

७. "मैंने जो प्रयास किया है मैं उसे दोष नहीं दे रहा हूँ, किन्तु यह आधार को छोड़ कर आकाश में उड़ने का प्रयास !

८. "मैं पूछता हूँ, क्या शरीर का अधिक से अधिक उत्तापन 'धर्म' हो सकता है ?

९. क्योंकि मन की प्रेरणा से ही शरीर या तो कार्य करता है अथवा कार्य करने से विरत रहता है, इसलिए मात्र मन की साधना ही योग्य है—बिना विचार के शरीर एक कुत्ते के समान है।

१०. "यदि केवल शरीर की ही बात होती, तो शायद भोजन की शुद्धि से ही पवित्रता आ सकती; किन्तु जो कर्त्ता है, जो मन है—उसका भी तो प्रश्न है। लेकिन यह सब किस काम का ?

११. "जिसके शरीर का बल जाता रहा, जो भूख तथा प्यास से परेशान है, जिसका मन थकावट के मारे एकाग्र और शान्त नहीं है—ऐसे आदमी को कभी नया-ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।

१२. "जो पूर्ण रूप से शान्त नहीं है वह ऐसे उद्देश्य को जो चित्त द्वारा ही प्राप्य है कैसे प्राप्त कर सकता है?

१३. "सच्ची शान्ति और चित्त की एकाग्रता शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति से ही ठीक ठीक प्राप्त हो सकती है।"

१४. इस समय उरूवेला में सेनानी नाम का एक गृहपति रहता था। उसकी कन्या का नाम था सुजाता।

१५. सुजाता ने एक न्यग्रोध वृक्ष के प्रति मिन्नत मान रखी थी और यदि उसे पुत्र-लाभ हो तो प्रति-वर्ष भेंट चढ़ाने का संकल्प किया था।

१६. क्योंकि उसकी इच्छा पूर्ण हुई थी, इसलिए उसने अपनी पुण्णा नाम की दासी को 'पूजा-स्थली' तैयार करने के लिये भेजा था।

१७. गौतम को न्यग्रोध वृक्ष के नीचे बैठा देख पुण्णा ने सोचा आज वृक्ष-देवता ही साकार हो गया है।

१८. सुजाता स्वयं आई और उसने अपनी बनाई हुई खीर स्वर्ण-पात्र में सिद्धार्थ गौतम को अर्पण की।

१९. उसने स्वर्ण-पात्र लिया और सुपतिट्ठ नाम के नदी-घाट पर स्नान करने के अनन्तर भोजन ग्रहण किया।

२०. इस प्रकार उसकी 'तपश्चर्या' का अन्त हुआ।

२१. जो पांच परिव्राजक सिद्धार्थ गौतम के साथ थे, वे उससे रुष्ट हो गये। क्योंकि, उसने तपस्वी तथा आत्म-पीड़न के जीवन का परित्याग कर दिया था। वे सिद्धार्थ गौतम को छोड़ कर चले गये।

पृष्ठ ५४ : १, २: बुद्धचरित सर्ग ७ : श्लोक १५, १६।
पृष्ठ ५५ : १, २; बुद्धचरित सर्ग ७ : श्लोक १७, १८।
पृष्ठ ६० : १; महासच्चक सुत्त (मज्झिम निकाय)।

चौथा भाग

ज्ञान-लाभ और नवीन-मार्ग का दर्शन

१. नये प्रकाश के निमित्त ध्यान-साधना

१. अपने आपको उस भोजन से तरो-ताजा करके, गौतम अपने पूर्व-अनुभवों पर विचार करने के लिए बैठा। उसको यह स्पष्ट हो गया कि अभी तक के अपनाये सभी मार्ग विफल रहे।

२. विफलता इतनी अधिक थी कि यह किसी को भी सम्पूर्ण रूप से निराश कर सकती थी। खेद तो उसे भी था। किन्तु निराशा उसे छू तक न गई थी।

३. उसे विश्वास था कि उसे रास्ता मिल कर रहेगा। इतना अधिक कि जिस दिन उसने सुजाता की दी हुई खीर ग्रहण की उसने पांच स्वप्न देखे। उसने अपने स्वप्नों की यही व्याख्या की कि उसे 'बोधि' प्राप्त होकर रहेगी।

४. उसने अपना भविष्य देखने की भी कोशिश की। जिस स्वर्ण-पात्र में सुजाता की दासी उसके लिए खीर लाई थी उसने उस स्वर्ण-पात्र को नेरंजरा नदी में फेंक दिया और कहा—"यदि मुझे 'बोधि' प्राप्त होने वाली है तो यह पात्र धारा के ऊपर की ओर जाय, अन्यथा नीचे की ओर।" पात्र सचमुच धारा के विरुद्ध ऊपर की ओर जाने लगा और तब काळ नाम के नाग-राजा के भवन के पास जाकर पानी में डूब गया।

५. आशा और दृढ़ संकल्प से सम्बद्ध होकर उसने उरुवेला छोड़ दिया और राज-पथ पर आगे बढ़ कर गया जा पहुंचा। वहां उसने एक पीपल का वृक्ष देखा। नये-प्रकाश की आशा में जिससे वह अपनी समस्या का हल निकाल सके उसने इस वृक्ष के नीचे ध्यान लगाकर बैठने की ठानी।

६. अन्य सभी दिशाओं का विचार कर के उसने पूर्व-दिशा का चुनाव किया। क्लेशों (= चित्तमलों) के क्षय के निमित्त ऋषियों ने प्रायः पूर्व दिशा को ही चुना है।

७. उस पीपल के वृक्ष के नीचे गौतम सीधा पद्मासन लगाकर बैठा। 'बोधि' प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प करते हुए उसने निश्चय किया—"चाहे मेरी त्वचा, नसें और हड्डियां ही बाकी रह जायें, चाहे मेरा सारा मांस और रक्त शरीर में

ही सूख जाय, किन्तु बिना 'बोधि' प्राप्त किये मैं इस स्थान का परित्याग नहीं करूंगा।"[1]

८. नाग-पति के समान तेजस्वी काळ नाम का नाग-राज और उसकी स्वर्ण-प्रभा नाम की पत्नी पीपल के वृक्ष के नीचे आसनस्थ गौतम के दर्शन से जाग्रत हो उठे थे। इस विश्वास के साथ कि वह निश्चयात्मक रूप से 'बोधि' लाभ करेगा, उन्होंने इस प्रकार उसकी स्तुति की—

९. "हे मुनि! क्योंकि तुम्हारे पांव के नीचे दबी पृथ्वी बार बार गुंजायमान होती है, और क्योंकि तुम सूर्य के समान तेजस्वी हो, इसलिए तुम निश्चय से 'बुद्ध' होगे।

१०. "क्योंकि आकाश में विचरने वाले पक्षी भी तुम्हें नमस्कार कर रहे हैं और क्योंकि आकाश में मन्द मन्द मलयानिल बह रहा है, इसलिए भी हे कमलाक्ष! तुम निश्चय से 'बुद्ध' होगे।"

११. जब वह ध्यान करने के लिये दृढ़ आसन लगा कर बैठा तो बुरे-विचारों और बुरी-चेतनाओं के झुण्ड के झुण्ड ने—जिन्हें पौराणिक भाषा में मार-पुत्र कहा गया है—उस पर आक्रमण किया।

१२. गौतम को डर लगा कि कहीं ये उस पर काबू न पा जायें और उसकी साधना को विफल न कर दें।

१३. वह जानता था कि इस मार-युद्ध में बहुत से ऋषि-ब्राह्मण पराजित हो चुके हैं।

१४. इसलिए उसने अपना सारा साहस बटोर कर मार से कहा—"मुझमें श्रद्धा है, मुझमें वीर्य्य है, मुझमें प्रज्ञा है। हे मार! तू मुझे कैसे पराजित कर सकता है? चाहे वायु इस नदी के स्रोत को सुखाने में भी सफल हो जाय किन्तु तू मुझे मेरे निश्चय से नहीं डिगा सकता। पराजित होकर जीते रहने की अपेक्षा संग्राम में मर जाना मेरे लिए अधिक श्रेयस्कर है।"

१५. उस कौए की भांति जो बहुत सी चर्बी प्राप्त करने की आशा से किसी पत्थर पर जाकर ठोंगे मारता है कि यहां से कुछ मधुर-मधुर मेरे हाथ लगेगा, मार ने भी गौतम पर आक्रमण किया था।

१६. जब कौये को कहीं भी कुछ मधुर नहीं प्राप्त होता तो वह वहां से चल देता है। ठीक उसी कौए की तरह जब मार को भी कहीं कुछ गुंजाइश न दिखाई दी तो वह निराश होकर गौतम को छोड़ कर चल दिया।

२. ज्ञान-लाभ

१. ध्यान करने के समय के लिये गौतम ने इतना भोजन इकट्ठा करके पास रख लिया था कि चालीस दिन तक कमी न पड़े।

२. विघ्नकारी अकुशल विचारों का मूलोच्छेद कर सिद्धार्थ गौतम ने अब भोजन ग्रहण करके अपने आप को तरो-ताज़ा कर लिया था और सशक्त हो गया था। इस प्रकार उसने 'बोधि' प्राप्त करने के निमित्त ध्यान करने की अपनी तैयारी कर ली थी।

३. ज्ञान-प्राप्ति के लिए गौतम को चार सप्ताह तक लगातार ध्यान-मग्न रहना पड़ा। उसे अन्तिम अवस्था तक पहुंचने के लिए चार सीढ़ियां पार करनी पड़ीं।

४. पहली अवस्था वितर्क और विचार प्रधान थी। एकान्त-वास के कारण वह इसे बड़ी सरलता से प्राप्त कर सका।

५. दूसरी अवस्था में इसमें एकाग्रता आ शामिल हुई।

६. तीसरी अवस्था में समचित्तता तथा जागरूकता का समावेश हो गया।

७. चौथी और अन्तिम अवस्था में समचित्तता तथा पवित्रता का संयोग हो गया और समचित्तता तथा जागरूकता का।

८. जब उसका चित्त एकाग्र हो गया था, जब वह पवित्र हो गया था, जब वह निर्दोष बन गया था, जब उसमें तनिक भी कलुष नहीं रह गया था, जब वह सुकोमल हो गया था, जब वह दक्ष हो गया था, जब उसमें दृढ़ता आ गई थी, जब वह सर्वथा राग-रहित हो गया था तथा जब उसकी नजर एक-मात्र अपने उद्देश्य पर ही थी, तब गौतम ने अपना सारा ध्यान उस एक समस्या के हल करने में लगाया जो उसे हैरान कर रही थी।

९. चौथे सप्ताह के अन्तिम दिन उसका पथ कुछ प्रकाशित हुआ। उसे स्पष्ट दिखाई दिया कि उसके सामने दो समस्यायें हैं—पहली समस्या यही थी कि संसार में दुःख है और दूसरी समस्या यही थी कि किस प्रकार इस दुःख का अन्त किया जाय और मानव-जाति को सुखी बनाया जाय ?

१०. इस तरह चार सप्ताह तक लगातार चिन्तन करते रहने के बाद अन्धकार विलीन हुआ, प्रकाश प्रकट हुआ, अविद्या का नाश हुआ, ज्ञान अस्तित्व में आया; उसे एक नया-पथ दिखाई दिया।

३. नये-धर्म का अविष्कार

१. जिस समय गौतम ध्यान लगाकर बैठा उस समय उस पर सांख्य-दर्शन का बड़ा प्रभाव था।

२. संसार में कष्ट और दुःख है—यह तो एक ऐसा यथार्थ सत्य था, जिससे इनकार नहीं किया जा सकता था।

३. लेकिन गौतम इस बात का पता लगाना चाहता था कि दुःख को दूर कैसे किया जाय ? सांख्य-दर्शन के पास इस प्रश्न का कोई उत्तर न था।

४. इसलिए उसने अपना सारा ध्यान इसी एक प्रश्न के हल करने में लगाया कि संसार के कष्ट और दुःख को कैसे दूर किया जाय ?

५. स्वाभाविक तौर पर पहला प्रश्न जो उसने अपने आप से पूछा, वह यही था कि वे कौन से कारण हैं, वे कौन से हेतु हैं जिनकी वजह से एक व्यक्ति कष्ट उठाता और दुःख भोगता है ?

६. उसका दूसरा प्रश्न था--दुःख का नाश कैसे किया जाय ?

७. इन दोनों प्रश्नों का ही उसे सही-सही उत्तर मिल गया--यही सम्यक् सम्बोधि कहलाता है ।

८. इसी कारण पीपल का वह वृक्ष भी--जिसके नीचे बैठ कर सिद्धार्थ गौतम ने ज्ञान प्राप्त किया था--बोधि-वृक्ष कहलाता है ।

४. सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करके बोधिसत्व गौतम सम्यक् सम्बुद्ध हो गये

१. ज्ञान-प्राप्ति के पूर्व गौतम केवल एक बोधिसत्व थे। ज्ञान-प्राप्ति के बाद ही वह बुद्ध बने ।

२. बोधिसत्व कौन और क्या होता है ?

३. जो प्राणी बुद्ध बनने के लिए प्रयत्नशील रहता है उसे 'बोधिसत्व' कहते हैं ।

४. एक बोधिसत्व 'बुद्ध' कैसे बनता है ?

५. बोधिसत्व को लगातार दस जन्मों तक 'बोधिसत्व' रहना पड़ता है 'बुद्ध बनने के लिए एक 'बोधिसत्व' को क्या करना होता है ?

६. एक जन्म में वह 'मुदिता' प्राप्त करता है । जैसे सुनार सोने-चांदी के मैल को दूर करता है । उसी प्रकार एक 'बोधिसत्व' अपने चित्त के मैल को दूर करके इस बात को स्पष्ट रूप से देखता है कि जो आदमी चाहे पहले प्रमादी रहा हो, लेकिन यदि वह प्रमाद का त्याग कर देता है तो वह बादल-मुक्त चन्द्रमा की तरह इस लोक को प्रकाशित करता है । जब उसे इस बात का बोध होता है तो उस के मन में मुदिता उत्पन्न होती है और उस के मन में सभी प्राणियों का कल्याण करने की उत्कट इच्छा उत्पन्न होती है ।

७. अपने दूसरे जन्म में वह 'विमल-भूमि' को प्राप्त होता है । इस समय बोधिसत्व काम-चेतना से सर्वथा मुक्त हुआ रहता है । वह कारुणिक होता है, सब के प्रति कारुणिक । न वह किसी के अवगुण को बढ़ावा देता है और न किसी के गुण को घटाता है ।

८ अपने तीसरे जीवन में वह प्रभाकारी-भूमि प्राप्त करता है। इस समय

बोधिसत्व की प्रज्ञा दर्पण के समान स्वच्छ हो जाती है। वह अनात्म और अनित्यता के सिद्धान्त को पूरी तरह से समझ लेता है और हृदयङ्गम कर लेता है। उसकी एकमात्र आकांक्षा ऊंची से ऊंची प्रज्ञा प्राप्त करने की होती है और इसके लिये वह बड़े से बड़े त्याग करने के लिये तैयार रहता है।

९. अपने चौथे जीवन में वह अर्चिष्मती-भूमि को प्राप्त करता है। इस जन्म में बोधिसत्व अपना सारा ध्यान अष्टांगिक मार्ग पर केन्द्रित करता है, चार सम्यक् व्यायामों पर केन्द्रित करता है, चार प्रयत्नों पर केन्द्रित करता है तथा चार प्रकार के ऋद्धि-बल पर केन्द्रित करता है और पांच प्रकार के शील पर केन्द्रित करता है।

१०. पांचवें जीवन में वह सुदुर्जया भूमि को प्राप्त करता है। वह सापेक्ष तथा निरपेक्ष के बीच के सम्बन्ध को अच्छी तरह हृदयङ्गम कर लेता है।

११. अपने छठे जीवन में वह अभिमुखी-भूमि प्राप्त होता है। अब इस अवस्था में चीजों के विकास, उनके कारण बारह निदानों को हृदयङ्गम करने की बोधिसत्व की पूरी पूरी तैयारी हो चुकी है, और यह 'अभिमुखी' नामक विद्या उसके मन में सभी अविद्या-ग्रस्त प्राणियों के लिये असीम करुणा का संचार कर देती है।

१२. अपने सातवें जीवन में बोधिसत्व दूरङ्गमा-भूमि प्राप्त करता है। अब बोधिसत्व देश, काल के बन्धनों से परे है, वह अनन्त के साथ एक हो गया है, किन्तु अभी भी वह सभी प्राणियों के प्रति करुणा का भाव रखने के कारण देह-धारी है। वह दूसरों से इसी बात में पृथक है कि अब उसे भव-तृष्णा उसी प्रकार स्पर्श नहीं करती जैसे पानी किसी कँवल को। वह तृष्णा-मुक्त होता है, वह दान-शील होता है, वह क्षमा-शील होता है, वह कुशल होता है, वह वीर्यवान् होता है, वह शान्त होता है, वह बुद्धिमान होता है तथा वह प्रज्ञावान् होता है।

१३. अपने इस जीवन में वह धर्म का जानकार होता है लेकिन लोगों के सामने वह उसे इस ढंग से रखता है कि उनकी समझ में आ जाय। वह जानता है कि उसे कुशल तथा क्षमाशील होना चाहिये। दूसरे आदमी उसके साथ कुछ भी व्यवहार करें वह उद्विग्नता-रहित होकर उसे सह लेता है क्योंकि वह जानता है कि अज्ञान के कारण ही वह उसके मंशा को ठीक-ठीक नहीं समझ पा रहे हैं। इसके साथ-साथ वह दूसरों का भला करने के अपने प्रयास में तनिक भी शिथिलता नहीं आने देता, और न वह अपने चित्त को प्रज्ञा से इधर-उधर भटकने देता है; इसलिये उस पर कितनी भी विपत्तियां आयें वे उसे सुपथ से कभी नहीं हटा सकतीं।

१४. अपने आठवें जीवन में वह 'अचल' हो जाता है। 'अचल' अवस्था में बोधिसत्व कोई प्रयास नहीं करता। वह कृत-कृत्य हो जाता है। उससे जो भी कुशल-कर्म होते हैं वे सब अनायास होते हैं। जो कुछ भी वह करता है उसमें सफल होता है।

१५. अपने नौवें जीवन में वह साधुमती-भूमि प्राप्त हो जाता है। जिसने

तमाम धर्मों को या पद्धतियों को जीत लिया है अथवा उनके भीतर प्रवेश पा लिया है, सब दिशाओं को जीत लिया है, समय की सीमाओं को लांघ गया है, वही 'साधु, मती' अवस्था प्राप्त कहलाता है।

१६. अपने दसवें जीवन में बोधिसत्व 'धर्म-मेधा' बन जाता है। उसे 'बुद्ध' की दिव्य-दृष्टि प्राप्त हो जाती है।

१७. बुद्ध होने की अवस्था के लिये आवश्यक इन दसों बलों (=भूमियों) को बोधिसत्व प्राप्त करता है।

१८. एक अवस्था से दूसरी अवस्था को प्राप्त होने पर बोधिसत्व को न केवल इन दस भूमियों को प्राप्त करना होता है बल्कि उसे दस पारमिताओं को भी पूर्णता को पहुंचाना होता है।

१९. एक जन्म में एक पारमिता की पूर्ति करनी होती है। पारमिताओं की पूर्ति क्रमशः करनी होती है। एक जीवन में एक पारमिता की पूर्ति करनी होती है, ऐसा नहीं कि थोड़ी एक, थोड़ी दूसरी।

२०. जब दोनों तरह से वह समर्थ सिद्ध होता है तभी एक बोधिसत्व बुद्ध बनता है। बोधिसत्व के जीवन की पराकाष्ठा ही 'बुद्ध' बनना है।

२१. जातकों का सिद्धान्त अथवा बोधिसत्व के अनेक जन्मों का सिद्धान्त ब्राह्मणों के अवतारवाद के सिद्धान्त से सर्वथा प्रतिकूल है अर्थात् ईश्वर के अवतार धारण करने के सिद्धान्त से।

२२. जातक कथाओं का आधार है कि बुद्ध के व्यक्तित्व में गुणों की पराकाष्ठा का समावेश हुआ है।

२३. अवतार-वाद के अनुसार भगवान् को अपने अस्तित्व में निर्मल होने की आवश्यकता नहीं। ब्राह्मणी अवतारवाद का ब्राह्मणी-सिद्धान्त यही कहता है कि ईश्वरावतार चाहे अपने आचरण में अपवित्र और अनैतिक ही क्यों न हो, किन्तु वह अपने अनुयायियों की—अपने भक्तों की—रक्षा करता है।

२४. बुद्ध बनने से पूर्व बोधिसत्व के लिये दस जन्मों तक श्रेष्ठतम जीवन की शर्त और किसी धर्म में भी नहीं है। यह अनुपम है। कोई भी दूसरा धर्म अपने संस्थापक के लिये इस प्रकार की परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक नहीं ठहराता।

१. निदान (जातक)

पाँचवाँ भाग

बुद्ध और उनके पूर्वज

१. बुद्ध और वैदिक ऋषि

१. वेद, मंत्रों अर्थात् ऋचाओं या स्तुतियों का संग्रह है। इन ऋचाओं का उच्चारण करने वालों को 'ऋषि' कहते हैं।

२. मन्त्र देवताओं को सम्बोधन करके की गई प्रार्थनाओं के अतिरिक्त कुछ नहीं है जैसे, इन्द्र, वरुण, अग्नि, सोम, ईशान, प्रजापति, ब्रह्म, महर्द्धि, यम तथा अन्य।

३. प्रार्थनायें प्राय: शत्रुओं से रक्षा वा शत्रुओं के विरुद्ध सहायता प्राप्त करने के लिये हैं, धन प्राप्ति के लिये हैं, भक्तों से भोजन, मांस और सुरा की भेंट स्वीकार करने के लिये हैं।

४. वेदों में दर्शन की मात्रा कुछ विशेष नहीं है। लेकिन कुछ वैदिक ऋषियों के गीत हैं जिनमें कुछ दार्शनिक ढंग की काल्पनिक उड़ान दिखाई देती है।

५. इन वैदिक ऋषियों के नाम हैं: (१) अघमर्षण, (२) प्रजापति परमेष्ठी, (३) ब्रह्मणस्पति वा बृहस्पति, (४) अनिल, (५) दीर्घतमा, (६) नारायण, (७) हिरण्यगर्भ तथा (८) विश्वकर्मा।

६. इन वैदिक दार्शनिकों की मुख्य समस्यायें थीं : यह संसार कैसे उत्पन्न हुआ? अलग-अलग चीजें कैसे उत्पन्न की गईं? उनकी एकता और अस्तित्व क्यों है? किसने उत्पन्न की और किसने व्यवस्था की? यह संसार किसमें से उत्पन्न हुआ और फिर किसमें विलीन हो जायगा?

७. अघमर्षण का कथन था कि संसार की उत्पत्ति तपस (ताप) से हुई है। तपस ही वह नित्य तत्व है जिससे नित्य धर्म और ऋत (=सत्य) की उत्पत्ति हुई है। इन्हीं से तम (अंधकार, रात्रि) की उत्पत्ति है। तम से जल की उत्पत्ति हुई और जल से काल की। काल से ही सूर्य तथा चन्द्रमा पैदा हुए तथा द्यौ और पृथ्वी ने जन्म धारण किया। काल ने ही अन्तरिक्ष को प्रकाश को जन्म दिया तथा रात और दिन की व्यवस्था की।

८. बहमणस्पति की कल्पना थी कि सृष्टि असत् के सत् रूप में आई। असत्

से कदाचित उसका आशय अनंत से था। सत् मूल रूप से असत् से ही उत्पन्न हुआ। समस्त सत् का मूलाधार असत् ही था और उस समस्त भावी सत् का जो इस समय असत् है।

९. प्रजापति परमेष्ठी ने जिस समस्या को उठाया वह थी कि क्या सत् की उत्पत्ति असत् से हुई ? उसका मत था कि इस प्रश्न का प्रस्तुत विषय से कोइ सम्बन्ध नहीं। उसके मत के अनुसार समस्त जगत का मूलाधार जल है। उसकी दृष्टि से जो जगत का मूलाधार---जल है वह न सत् के अन्तर्गत आता है और न असत् के।

१०. परमेष्ठी ने जड़तत्व और चेतन को लेकर कोई विभाजक रेखा नहीं खींची। उसके मत के अनुसार किसी निहित तत्व के ही कारण जल भिन्न-भिन्न वस्तुओं का आकार ग्रहण करता है। उसने इस निहित-तत्व को 'काम' कहा है--- विश्व-व्यापी इच्छा-शक्ति।

११. एक दूसरे वैदिक दार्शनिक का नाम था अनिल। उसके लिये वायु ही मुख्य तत्व था। इसमें चलन अन्तर्निहित था। उसीमें उत्पन्न करने की शक्ति है।

१२. दीर्घतमा का मत था कि अन्त में सभी चीजों का मूलाधार सूर्य है। सूर्य अपनी अन्तर्निहित शक्ति से ही आगे पीछे सरकता है।

१३. सूर्य किसी भूरी शक्ल के पदार्थ से निर्मित है और वैसे ही विद्युत तथा अग्नि।

१४. सूर्य, विद्युत और अग्नि में जल का बीजांकुर विद्यमान है और जल पौधों का बीजाङ्कुर है। ऐसा ही कुछ दीर्घतमा का मत था।

१५. नारायण के मत के अनुसार पुरुष ही जगत का आदि कारण है। पुरुष से ही सूर्य , चन्द्रमा, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष, आकाश, क्षेत्र, ऋतु, वायु के जीव, सभी प्राणी, सभी वर्गों के मनुष्य तथा सभी मानवीय संस्थान उत्पन्न हुए हैं।

१६. हिरण्य-गर्भ सिद्धान्त की दृष्टि से हिरण्य-गर्भ परमेष्ठी और नारायण के बीच में था। हिरण्य-गर्भ का मतलब है स्वर्ण-गर्भ। यही विश्व की वह महान् शक्ति थी, जिसे तमाम दूसरी पार्थिव तथा दिव्य शक्तियों तथा अस्तित्व का मूल स्रोत माना जाता था।

१७. हिरण्य-गर्भ का अर्थ अग्नि भी है। यह अग्नि ही है जो सौर-मण्डल का उपादान-कारण है, विश्व की उत्पादक शक्ति।

१८. विश्वकर्मा की सृष्टि में यह मानना की जल ही हर वस्तु के मूल में है और जल ही से समस्त संसार की उत्पत्ति हुई है ऐसा समझना और यह समझना कि संचरण उसका स्वभाव-धर्म ही है, योग्य नहीं था। यदि हम जल को ही मूल उपादान मानें तो पहले हमें यह बताना होगा कि जल की उत्पत्ति कैसे हुई और

जल में वह शक्ति, यह उत्पादक-शक्ति कहाँ से आई और पृथ्वी, आप, तेज, आदि की यह शक्तियां, अन्य नियम और शेष सब कुछ कैसे अस्तित्व में आये ?

१९. विश्वकर्मा का कहना था कि 'पुरुष' ही है जो सब किसी का मूलाधार है। 'पुरुष' आदि में है, 'पुरुष' अन्त में है। वह इस दृश्य संसार के पहले से है, इन सभी विश्व-शक्तियों के अस्तित्व में आने से भी पहले से उसका अस्तित्व है। अकेले पुरुष द्वारा ही यह विश्व उत्पन्न है और संचलित है। पुरुष एक और केवल एक है। वह अज है और उसीमें सभी उत्पन्न चीजों का निवास है। वही है जिसका चेतस् भी महान् है और सामर्थ्य भी महान् है। वही उत्पन्न करने वाला है, वही विनाश करने वाला है। पिता की हैसियत से उसने हमें उत्पन्न किया और यमराज की तरह वह हम सब के अन्त से परिचित है।

२०. बुद्ध सभी वैदिक ऋषियों को आदरणीय नहीं मानते थे। वह उनमें से कोई दस ही ऋषियों को सर्वाधिक प्राचीन तथा मन्त्र रचयिता मानते थे।

२१. लेकिन उन मन्त्रों में उन्हें ऐसा कुछ नहीं दिखाई दिया जो मानव के नैतिक उत्थान में सहायक हो सके।

२२. बुद्ध की दृष्टि में वेद बालू के कान्तार के समान निष्प्रयोजन थे।

२३. इसलिये बुद्ध ने वेदों को इस योग्य नहीं समझा कि उनसे कुछ सीखा जा सके वा ग्रहण भी किया जा सके।

२४. इसी प्रकार बुद्ध को वैदिक ऋषियों के दर्शन में भी कुछ सार नहीं दिखाई देता था। निस्सन्देह उन्हें (ऋषियों को) सत्य की खोज थी। वे उसे अन्धेरे में टटोल रहे थे। किन्तु उन्हें सत्य मिला न था।

२५. उनके सिद्धान्त केवल मानसिक उड़ाने थी, जिनका तर्क या यथार्थ बातों से कोई सम्बन्ध न था। दर्शन के क्षेत्र में उन्होंने किसी नये सामाजिक-चिन्तन की देन नहीं दी।

२६. इसलिये उसने वैदिक ऋषियों के दर्शन को बेकार जान उसकी सम्पूर्ण रूप से अवहेलना की।

२. कपिल—दार्शनिक

१. प्राचीन भारतीय दार्शनिकों में कपिल सर्वाधिक प्रधान है।

२. उसका दार्शनिक दृष्टिकोण अनुपम था। वह एक अकेला दार्शनिक नहीं था, वह अपने में मानो एक दार्शनिक वर्ग ही था।

३. उसका दर्शन सांख्य-दर्शन कहा जाता था।

३. उसकी दार्शनिक मान्यतायें चौंका देने वाली थीं।

४. सत्य के लिये प्रमाण आवश्यक है। सांख्य का यह प्रथम सिद्धान्त है। बिना प्रमाण के सत्य का अस्तित्व नहीं।

५. सत्य को सिद्ध करने के लिये कपिल ने केवल दो प्रमाण स्वीकार किये— (१) प्रत्यक्ष और अनुमान।[1]

६. प्रत्यक्ष से मतलब है (इन्द्रियों के माध्यम से) विद्यमान वस्तु की चित्त को जानकारी।

७. अनुमान तीन प्रकार का है—(१) कारण से कार्य का अनुमान, जैसे बादलों के अस्तित्व से वर्षा का अनुमान लगाया जा सकता है; (२) कार्य से कारण का अनुमान, जैसे यदि नीचे नदी में बाढ़ दिखाई दे तो हम ऊपर पहाड़ पर वर्षा होने का अनुमान लगा सकते हैं, (३) सामान्यतोदृष्ट अनुमान जैसे हम आदमी के एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने से यह समझते हैं कि वह स्थान-परिवर्तन करता है, उसी प्रकार हम तारों को भी भिन्न-भिन्न जगहों पर देखकर यह अनुमान लगाते हैं कि वे भी स्थान परिवर्तित होते हैं।

८. उसका अगला सिद्धान्त सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में था। सृष्टि की उत्पत्ति और उसका कारण।

९. कपिल को किसी सृष्टि-कर्त्ता का अस्तित्व स्वीकार न था। उसका मत था कि उत्पन्न वस्तु पहले से ही अपने कारण में विद्यमान रहती है जैसे मिट्टी से बरतन बनता है अथवा धागों से एक कपड़े का टुकड़ा बनता है।

१०. यह एक तर्क था जिसकी बजह से कपिल को किसी सृष्टि-कर्ता का अस्तित्व मान्य न था।

११. उसने अपने मत के समर्थन में और भी तर्क दिये हैं।

१२. असत् कभी किसी कार्य का कारण नहीं हो सकता। वास्तव में नई उत्पत्ति कुछ होती ही नहीं। वस्तु उस सामग्री के अतिरिक्त और कुछ नहीं है जिससे वह निर्मित हुई है: वस्तु अपने अस्तित्व में आने से पहले उस सामग्री के रूप में विद्यमान रहती है कि जिससे उसका निर्माण होता है। किसी एक निश्चित सामग्री से किसी एक निश्चित वस्तु का ही निर्माण हो सकता है। और केवल एक निश्चित सामग्री ही किसी निश्चित वस्तु के रूप में परिणति को प्राप्त हो सकती है।

१३. तो इस वास्तविक संसार का मूल स्रोत क्या है?

१४. कपिल का कहना था कि वास्तविक संसार के दो रूप हैं—(१) व्यक्त (=विकसित) तथा अव्यक्त (=अविकसित)।

१५. व्यक्त वस्तु अव्यक्त वस्तुओं का स्रोत नहीं हो सकती।

१६. व्यक्त वस्तुएँ ससीम होती हैं और यह सृष्टि के मूल स्रोत बेमेल हैं।

१७. तमाम व्यक्त वस्तुएँ परस्पर समान होती हैं। इसलिये कोई भी एक व्यक्त वस्तु किसी दूसरी व्यक्त वस्तु का स्रोत नहीं मानी जा सकती। और फिर क्योंकि वे स्वयं किसी एक ही मूल स्रोत से उत्पन्न होती हैं, इसलिये वे स्वयं वह मूल स्रोत नहीं हो सकती।

१८. कपिल का दूसरा तर्क था कि एक कार्य को अपने कारण से भिन्न होना ही चाहिये—यद्यपि उस कार्य में कारण निहित रहता ही है। जब यह ऐसा है तो विश्व स्वयं ही अन्तिम कारण नहीं हो सकता। इसे किसी अन्तिम कारण का परिणाम होना चाहिये।

१९. जब पूछा गया कि अव्यक्त की अनुभूति क्यों नहीं होती, इसकी कोई भी क्रिया इन्द्रिय-गोचर क्यों नहीं होती, तो कपिल का उत्तर था:—

२०. यह अनेक कारणों से हो सकता है। हो सकता है अनेक दूसरी अति-सूक्ष्म वस्तुओं की तरह जिनकी सीधी अनुभूति नहीं होती, इसकी भी अनुभूति न होती हो; अथवा अत्यधिक दूरी के कारण अनुभूति न होती हो; अथवा अनुभूति में कोई एक तिसरी वस्तु बाधक हो, अथवा किसी तादृश वस्तु की मिलावट हो; अथवा किसी तीव्रतर वेदना (=अनुभूति) के कारण अनुभूति न होती हो; अथवा अन्धेपन या किसी अन्य इन्द्रिय-दोष के कारण अनुभूति न होती हो अथवा द्रष्टा के मस्तिष्क की विकलता के ही कारण अनुभूति न होती हो।

२१. जब पूछा गया तो विश्व का मूल स्रोत क्या है? विश्व के व्यक्त-रूप तथा अव्यक्त-रूप में क्या अन्तर है?

२२. कपिल का उत्तर था—"व्यक्त-रूप का भी कारण होता है तथा अव्यक्त-रूप का भी कारण होता है। लेकिन दोनों के मूल स्रोत स्वतन्त्र हैं और उनका कोई कारण नहीं।"

२३. व्यक्त वस्तुओं की संख्या अनेक है। वे देश काल से सीमित हैं। उनका स्रोत एक ही है, वह नित्य है और सर्वव्यापक है। व्यक्त वस्तुएँ क्रियाशील होती हैं, उनके अंग व हिस्से होते हैं। सबका मूल-स्रोत सदा ही रहता है, लेकिन न वह क्रियाशील होता है और न उसके अंग व हिस्से होते हैं।

२४. कपिल का तर्क था कि अव्यक्त की व्यक्त में परिणति उन तीन गुणों की क्रियाशीलता का परिणाम है जिनसे उसका निर्माण हुआ है। वे तीन गुण हैं, सत्व, रज, तम।

२५. इन तीन गुणों में प्रथम अर्थात् सत्व प्रकृति में प्रकाश के समान है जो प्रकट करता है, जो मनुष्यों को सुख देता है; दूसरा गुण रज है जो प्रेरित करता है, जो संचालित करता है, जो क्रियाशीलता का कारण होता है; तीसरा गुण तम है जो भारीपन का द्योतक है, जो रोकता है, जो उपेक्षा या निष्क्रियता को उत्पन्न करता है।

२६. तीनों गुण परस्पर सम्बद्ध होकर ही क्रियाशील होते हैं। वे एक दूसरे पर हावी हो जाते हैं। वे एक दूसरे के सहायक होते हैं। वे एक दूसरे से मिले रहते हैं। जिस प्रकार लौ, तेल और बत्ती के परस्पर सहयोग से ही दीपक जलता है, उसी प्रकार यह तीनों गुण भी मिलकर ही क्रियाशील होते हैं।

२७. जब तीनों गुण एकदम बराबर मात्रा में होते हैं, कोई भी एक गुण दूसरे पर हावी नहीं होता, उस समय यह विश्व अचेतन प्रतीत होता है, उसमें विकास नहीं होता।

२८. जब तीनों गुण एकदम बराबर मात्रा में नहीं होते, एक गुण दूसरे पर हावी हो जाता है, तब विश्व सचेतन हो जाता है, उसमें विकास होना आरम्भ हो जाता है।

२९. यह पूछे जाने पर कि गुणों की मात्रा में कमी-बेशी क्यों हो जाती है, कपिल का उत्तर था कि उसका कारण दुःख है।[१]

३०. कपिल के दर्शन के सिद्धान्त कुछ-कुछ ऐसे ही थे।

३१. अन्य सभी दार्शनिकों की अपेक्षा बुद्ध कपिल के सिद्धान्तों से ही विशेष-रूप से प्रभावित थे।

३२. कपिल ही एक ऐसा दार्शनिक था जिसकी शिक्षायें बुद्ध को तर्कसंगत और कुछ-कुछ यथार्थता पर आश्रित जान पड़ीं।

३३. लेकिन बुद्ध ने कपिल की सभी शिक्षाओं को स्वीकार नहीं किया। कपिल की उन्हें केवल तीन ही बातें ग्राह्य थीं।

३४. उन्हें यह बात मान्य थी कि सत्य प्रमाणाश्रित होना चाहिये। यथार्थता का आधार बुद्धिवाद होना चाहिये।

३५. उन्हें यह बात मान्य थी कि किसी ईश्वर के अस्तित्व व उस के सृष्टिकर्त्ता होने का कोई तर्कानुकूल वा यथार्थताश्रित कारण विद्यमान नहीं है।

३६. उन्हें यह बात मान्य थी कि संसार में दुःख है।

३७. कपिल की शेष शिक्षाओं की उन्होंने उपेक्षा की क्योंकि उनका उनके लिये कोई उपयोग न था।

३. ब्राह्मण-ग्रन्थ

१. वेदों के बाद उस धार्मिक-साहित्य का नम्बर आता है जो ब्राह्मण-ग्रन्थों के नाम से प्रसिद्ध है। दोनों ही पवित्र ग्रन्थ माने जाते थे। वास्तव में ब्राह्मण भी वेदों का एक भाग ही हैं। दोनों साथ-साथ हैं और दोनों का एक सम्मिलित नाम 'श्रुति' है।

२. ब्राह्मणों के दर्शन के चार स्तम्भ है।

३. सब से पहला स्तम्भ है कि वेद न केवल पवित्र हैं, बल्कि अपौरुषेय हैं। उनके किसी एक भी शब्द पर प्रश्न-चिह्न नहीं लग सकता।

४. ब्राह्मणी-दर्शन का दूसरा स्तम्भ वा दूसरी आधार-शिला थी कि आत्मा की मुक्ति जन्म-मरण के संबंध से वा संसरण से मुक्ति वैदिक यज्ञों तथा दूसरी धार्मिक क्रियाओं के उचित ढंग से पूरा करने और ब्राह्मणों को दान देने से ही हो सकती है।

५. 'ब्राह्मणों' के पास न केवल एक आदर्श-धर्म की ही कल्पना थी, बल्कि उन्हों ने अपनी एक 'आदर्श-समाज" की कल्पना भी गढ़ रखी थी।

६. इस "आदर्श-समाज" के ढांचे का उनका अपना नाम था चातुर्वर्ण। यह्य वेदों में जड़ा हुआ है, और क्योंकि वेद तर्कातीत हैं और क्योंकि वेदों के किसी भी शब्द पर प्रश्न-चिन्ह लग ही नहीं सकता, इसलिए एक आदर्श-समाज के नमूने के रूप में चातुर्वर्ण भी तर्कातीत है और उस पर भी अंगुली नहीं उठाई जा सकती।

७. समाज के इस नमूने के कुछ आधार-भूत नियम हैं।

८. पहला नियम था कि समाज चार भागों में विभक्त होना चाहिए। (१) ब्राह्मण; (२) क्षत्रिय; (३) वैश्य; और (४) शूद्र।

९. दूसरा नियम था कि इन चारों वर्गों में सामाजिक समानता नहीं हो सकती। इन सबको क्रमिक असमानता के नियम से परस्पर बंधा रहना होगा।

१०. ब्राह्मण सर्वोपरि। ब्राह्मणों के नीचे क्षत्रिय, किन्तु वैश्यों से ऊपर। क्षत्रियों के नीच वैश्य किन्तु शूद्रों से ऊपर। सब के नीचे शूद्र।

११. यह चारों वर्ग अधिकार और विशेष सुविधाओं के मामले में एक दूसरे से समानता का दावा नहीं कर सकते थे। अधिकारों और विशेष-सुविधाओं का उपयोग क्रमिक असमानता के नियम के अनुसार ही हो सकता था।

१२. ब्राह्मण को वह सभी अधिकार और विशेष-सुविधाएँ प्राप्य थीं जिन की वह इच्छा कर सकता था। लेकिन एक क्षत्रिय उन्हीं अधिकारों और विशेष सुविधाओं की मांग नहीं कर सकता था जो एक ब्राह्मण को प्राप्त थीं। एक वैश्य की अपेक्षा उसे अधिक अधिकार और विशेष-सुविधायें प्राप्य थीं। वैश्य को एक शूद्र की अपेक्षा अधिक अधिकार और सुविधायें प्राप्त थीं। लेकिन वह उन्हीं अधिकारों और विशेष-सुविधाओं की मांग नहीं कर सकता था जो एक क्षत्रिय को प्राप्य थीं। और जहां तक शूद्र की बात है, उसे किसी विशेष-सुविधा का तो कहना ही क्या कोई अधिकार ही नहीं प्राप्य था। उसके लिए यही बहुत था कि वह ऊपर के तीनों वर्गों को बिना रुष्ट किये किसी न किसी तरह जीता रहा सके।

१३. चातुर्वर्ण्य के तीसरे नियम का सम्बन्ध पेशों वा जीविका के साधनों से था ब्राह्मण का पेशा था पढ़ना, पढ़ाना और धार्मिक-संस्कार कराना। क्षत्रिय का पेशा था लड़ना, मरना-मारना। वैश्य का पेशा था व्यापार। शूद्र का पेशा था ऊपर के तीनों वर्गों की सेवा करना। इन चारों वर्गों का यह विभाजन ऐसा न था कि एक वर्ग किसी दूसरे का पेशा कर सके। हर वर्ग केवल अपना अपना ही पेशा कर सकता था। कोई भी एक वर्ग किसी दूसरे के पेशे में दखल न दे सकता था।

१४. चातुर्वर्ण्य का चौथा नियम शिक्षा के अधिकार से सम्बन्धित था। चातुर्वर्ण्य के नमूने के अनुसार केवल पहले तीन वर्ग—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ही

शिक्षा के अधिकारी थे। शूद्रों के लिये शिक्षित होना निषिद्ध था। इस चातुर्वर्ण्य के नियम ने केवल शूद्रों के ही शिक्षित होने को वर्जित नहीं किया था, बल्कि सभी स्त्रियों के शिक्षित होने को वर्जित किया था, जिनमें ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों की भी स्त्रियां शामिल थीं।

१५. एक पांचवां नियम भी था। इस के अनुसार आदमी के जीवन के चार हिस्से किये गये थे। पहली अवस्था ब्रह्मचर्य्याश्रम थी, दूसरी अवस्था गृहस्थाश्रम कहलाती थी, तीसरी वानप्रस्थाश्रम और चौथी संन्यासाश्रम।

१६. प्रथम आश्रम का उद्देश्य था अध्ययन और शिक्षा। दूसरे आश्रम का उद्देश्य था वैवाहिक जीवन व्यतीत करना। तीसरे आश्रम का उद्देश्य था आदमी को वन-वासी जीवन से परिचित कराना—बिना गृह-त्याग किये पारिवारिक बन्धनों से मुक्त हो जाना। चौथे आश्रम का उद्देश्य था ईश्वर की खोज और उससे मिलने का प्रयास।

१७. इन आश्रमों से तीनों ऊंचे वर्गों के पुरुष-मात्र लाभान्वित हो सकते थे। शूद्रों और स्त्रियों के लिये पहला आश्रम वर्जित था। इसी प्रकार शूद्रों और स्त्रियों के लिए अन्तिम आश्रम भी वर्जित था।

१८. ऐसा था यह दिव्य 'आदर्श-समाज' का नमूना जिसे चातुर्वर्ण्य का नाम दिया गया था। ब्राह्मणों ने इस नियम को ऊंचे आदर्शवाद में परिणत कर दिया था और इस बात की पूरी सावधानी रखी थी कि इसमें कही कोई कोर-कसर न बाकी रह जाय।

१९. ब्राह्मणी-दर्शन का एक चौथा स्तम्भ था 'कर्म' का सिद्धान्त। यह आत्मा के संसरण के सिद्धान्त का एक भाग था। ब्राह्मणों का 'कर्म-वाद' इस एक प्रश्न का उनकी ओर से दिया गया उत्तर था—"जन्मान्तर होने पर नये शरीर को लेकर आत्मा कहाँ नया जन्म ग्रहण करती है?" ब्राह्मणी-दर्शन का उत्तर था कि "यह उसके पिछले जन्म के कर्मों पर निर्भर करता है।" दूसरे शब्दों में इसका यही मतलब है कि यह उसके कर्मों का परिणाम है।

२०. ब्राह्मणी-धर्म के प्रथम सिद्धान्त के बुद्ध कड़े विरोधी थे। उन्होंने ब्राह्मणों के इस सिद्धान्त का खण्डन किया कि वेद अपौरुषेय हैं और उन पर प्रश्न चिह्न नहीं लग सकता।

२१. उनकी सम्मति में कोई बात ऐसी हो ही नहीं सकती जो गलत होने की सम्भावना से परे हो। किसी भी विषय में कोई बात अन्तिम हो ही नहीं सकती। यथावश्यकता समय-समय पर हर बात का परीक्षण हो सकना चाहिये।

२२. आदमी को सत्य और यथार्थ सत्य जानना चाहिये। बुद्ध के लिए विचार-स्वातन्त्र्य सर्वाधिक महत्व की बात थी। और उन्हें इस बात का निश्चय था कि विचार-स्वातन्त्र्य ही सत्य को प्राप्त करने का एकमात्र साधन है।

२३. वेदों की अपौरुषेयता को मान लेने का मतलब था विचार-स्वातन्त्र्य को सर्वथा अस्वीकार कर देना।

२४. इन्हीं कारणों से ब्राह्मणी-दर्शन की उक्त स्थापना उन्हें सर्वाधिक अप्रिय थी।

२५. बुद्ध को ब्राह्मणी-दर्शन की दूसरी स्थापना भी उतनी ही अप्रिय थी। बुद्ध ने यह तो स्वीकार किया कि "यज्ञ" करना भी उचित है, किन्तु उन्होंने 'सच्चे यज्ञ" और 'झूठे यज्ञ" में विभाजक रेखा खींच दी।

२६. दूसरों के कल्याण के लिये 'आत्म-परित्याग' को ही बुद्ध ने "सच्चा यज्ञ" माना। आत्म-स्वार्थ के लिये किसी देवता को प्रसन्न करने के उद्देश्य से किसी पशु की बलि देना बुद्ध ने "झूठा यज्ञ" बताया।

२७. अधिकांश ब्राह्मणी "यज्ञ" देवताओं को प्रसन्न करने के लिये दी जाने वाली पशुओं की बलियां ही थीं। बुद्ध ने इन्हें "झूठे यज्ञ" कह कर इनकी निन्दा की। यज्ञ यदि 'आत्मा' के 'मोक्ष' लाभ के लिए ही किये जायें तो भी बुद्ध उसके करने के पक्ष में न थे।

२८. यज्ञ-विरोधी लोग यह कह कर ब्राह्मणों का उपहास किया करते थे, "यदि कोई एक पशु की बलि देने से 'स्वर्ग' जा सकता है, तो फिर शीघ्रतर स्वर्ग जाने के लिये अपने पिता का ही बलिदान क्यों नहीं किया जाता ?"

२९. बुद्ध इस मत से सर्वथा सहमत थे।

३०. "यज्ञ" का सिद्धान्त बुद्ध को जितना बुरा लगता था उतनी ही बुरी बुद्ध को यह चातुर्वर्ण्य की स्थापना लगती थी।

३१. ब्राह्मणवाद ने चातुर्वर्ण्य के नाम पर जिस प्रकार के समाज-संगठन की कल्पना की, वह बुद्ध को सर्वथा अप्राकृतिक लगता था। इसका वर्गाश्रित स्वरूप अनिवार्य था और मनमाना था। यह किसी के हुक्म से रच दिये गये समाज के समान था। बुद्ध एक खुले और एक स्वतन्त्र-समाज के पक्षपाती थे।

३२. ब्राह्मण-वाद का चातुर्वर्ण्य एक जड़ समाज-रचना थी, अपरिवर्तनशील। एक बार ब्राह्मण के घर में जन्म ले लिया, हमेशा के लिये ब्राह्मण। एक बार क्षत्रिय के घर में जन्म ले लिया, हमेशा के लिए क्षत्रिय। एक बार वैश्य के घर में जन्म ले लिया, हमेशा के लिए वैश्य। और एक बार शूद्र के घर में जन्म ले लिया, हमेशा के लिये शूद्र। समाज-रचना का आधार व्यक्ति का वह पद था, वह दर्जा था जो उसे गृह-विशेष में जन्म ग्रहण कर लेने मात्र से प्राप्त था। कोई बड़े से बड़ा "पाप-कर्म" भी उसे उसके दर्जे से गिरा न सकता था, इसी प्रकार कोई बड़े से बड़ा "पुण्य-कर्म" भी किसी को ऊपर न उठा सकता था। न गुण की ही कहीं पूजा थी और न विकास की ही कहीं गुंजाइश थी।

३३. कोई भी समाज ऐसा नहीं है जिसमें असमानता न हो। लेकिन

ब्राह्मणवाद की बात ही दूसरी है। ब्राह्मण-वाद द्वारा जिस असमानता के सिद्धान्त का प्रचार किया गया है, वह उसका धार्मिक मान्य सिद्धान्त है। यह असमानता अपने आप यूंही प्रतिष्ठित नहीं हो गई है। ब्राह्मण-वाद समानता को मानता ही नहीं रहा। वास्तव में यह समानता के सिद्धान्त का शत्रु है।

३४. ब्राह्मण-वाद केवल असमानता से ही सन्तुष्ट नहीं रहा। ब्राह्मण-वाद का प्राण क्रमिक-असमानता में ही बसा था।

३५. समन्वय तथा मेल-जोल की भावना की बजाय, बुद्ध ने सोचा कि यह क्रमिक-असमानता एक तो नीचे, उसके ऊपर, उसके और ऊपर, सब के ऊपर के वर्गों में क्रमिक घृणा की भावना पैदा कर देगी, दूसरी ओर उसी तरह सब के ऊपर, उसके नीचे, उससे और नीचे तथा सब के नीचे के वर्ग में क्रमिक जुगुप्सा की भावना पैदा कर देगी और इससे समाज में स्थायी संघर्ष बना रह सकता है।

३६. चारों वर्गों के पेशे भी निश्चित थे। चुनाव की स्वतन्त्रता नहीं थी। इतना ही नहीं, यह पेशे कमोबेश सामर्थ्य या हुनर के हिसाब से निश्चित नहीं किये गये थे, बल्कि जन्म के हिसाब से।

३७. चातुर्वर्ण्य के नियमों को ध्यानपूर्वक समझने-बूझने से बुद्ध इस परिणाम पर पहुंचे कि ब्राह्मण-वाद की सामाजिक व्यवस्था का दार्शनिक आधार यदि स्वार्थाश्रित नहीं था, तो गलत अवश्य था।

३८. बुद्ध को स्पष्ट हो गया था कि इस व्यवस्था से सब के कल्याण की तो आशा की ही नहीं जा सकती, सब की स्वार्थपूर्ति भी नहीं हो सकती। निश्चय से जान बूझ कर इसकी कल्पना ही इस ढंग की की गई है कि बहुत से लोग चन्द लोगों के स्वार्थों की पूर्ति में निरत रहे। इस व्यवस्था में आदमी को स्वयं अपने आप मानव-प्रवर (=भू-सुर) बने हुए मानवों की सेवा में झोंक दिया गया था।

३९ इसका उद्देश्य कमजोरों को दबाना और उनका शोषण था और उनको सर्वथा गुलाम बनाये रखना।

४०. बुद्ध ने सोचा कि जिस "कर्म-वाद" की ब्राह्मण-वाद ने रचना की है वह भी विद्रोह की भावना को सर्वथा सोख जाने के लिए ही है। अपने दुःख के लिए स्वयं आदमी ही जिम्मेवार है। विद्रोह करने से भी कष्ट दूर नहीं किया जा सकता। क्योंकि उसके पूर्वजन्म के कर्म ने यह पहले ही निश्चय कर दिया है कि वह इस जन्म में दुखी रहेगा!

४१. शूद्र और स्त्रियां--जिनकी मानवता को ब्राह्मण-वाद ने बुरी तरह छिन्न-भिन्न कर दिया था--सर्वथा शक्तिहीन थीं। वह इस पद्धति के विरुद्ध जरा सिर न उठा सकती थीं।

४२. उन्हे ज्ञान-प्राप्त करने तक का अधिकार न था। इस जबर्दस्ती के अज्ञान का ही यह दुष्परिणाम था कि वे यह कभी जान ही न सकते थे कि किसने उन्हें इस

दुरवस्था तक पहुंचाया है ? वे यह जान नहीं सकते थे कि ब्राह्मण-वाद ने उनका सारा जीवन-रस सोख लिया है। ब्राह्मण-वाद के विरुद्ध विद्रोह कर उठने की बजाये वे ब्राह्मण-वाद के भक्त और समर्थक बन गये।

४३. स्वतन्त्रता-प्राप्ति के निमित्त शस्त्र उठाने का अधिकार आदमी का अन्तिम अधिकार है। लेकिन शूद्रों से शस्त्र धारण करने का अधिकार भी छीन लिया गया था।

४४. ब्राह्मण-वाद के अधीन बेचारे शूद्र स्वार्थी ब्राह्मणों, शक्तिशाली क्षत्रियों और धनी वैश्यों के एक भयानक षड़यन्त्र के शिकार-मात्र बन कर रह गये।

४५. क्या उसमें सुधार हो सकता था ? बुद्ध जानते थे कि यह 'भगवान् की बनाई हुई' सामाजिक व्यवस्था बताई जाती है, इसलिये इसमें सुधार नहीं हो सकता है। इसे केवल समाप्त ही किया जा सकता है।

४६. इन्हीं कारणों से बुद्ध ने ब्राह्मणवाद को सद्धर्म का—जीवन के सच्चे धर्म का—परम विरोधी मान कर अस्वीकार कर दिया।

४. उपनिषद् तथा उनकी शिक्षा

१. उपनिषद् भी वैदिक-वाङमय का एक हिस्सा माने जाते हैं। यह वेद का हिस्सा नहीं हैं। यह श्रुति-बाह्य से हैं।

२. यह सब होने पर भी यह धार्मिक वाङमय का एक हिस्सा है।

३. उपनिषदों की संख्या काफी बड़ी है। कुछ महत्त्व के, कुछ यूँ ही।

४. कुछ में वैदिक सिद्धान्तियों का—ब्राह्मण-पुरोहितों का काफी विरोध है।

५. सभी एक बात में सहमत थे कि वैदिक अध्ययन 'अविद्या' का ही अध्ययन है।

६. वेदों और वैदिक विज्ञान को सभी अपरा (नीचे दर्जे की) विद्या ही मानते थे।

७. वे सभी वेद को अपौरुषेय न मानने के समर्थक थे।

८. ब्राह्मणी-दर्शन की ऐसी प्रधान स्थापनाओं—जैसे यज्ञ और उनके फल, श्राद्ध, और ब्राह्मण-पुरोहितों को दिये जाने वाले दानों के माहात्म्य—को अस्वीकार करने में सभी एकमत थे।

९. किन्तु यह कोई उपनिषदों का मुख्य विषय न था। उनकी चर्चा का मुख्य विषय है ब्रह्म और आत्मा।

१०. ब्रह्म ही वह सर्वव्यापक तत्व है जो विश्व को बांधे हुए है और आदमी की मुक्ति भी इसी बात में है कि उसके आत्मा को इस बात का बोध हो जाय कि वह भी 'ब्रह्म' है।

११. उपनिषदों की मुख्य स्थापना यही थी कि 'ब्रह्म' ही सत्य है, तथा 'आत्मा'

और 'ब्रह्म' एक ही हैं। उपाधि-ग्रस्त होने के कारण ही 'आत्मा' को इस बात का बोध नहीं होता कि वह 'ब्रह्म' है।

१२. प्रश्न पैदा हुआ : क्या 'ब्रह्म' एक वास्तविकता है ? उपनिषदों की सारी स्थापना इसी एक प्रश्न के उत्तर पर निर्भर करती है।

१३. बुद्ध को 'ब्रह्म' की वास्तविकता का कोई प्रमाण नहीं मिला। इसलिए उन्होंने उपनिषदों की स्थापना को अस्वीकार कर दिया।

१४. ऐसा नहीं है कि स्वयं उपनिषदों के रचयिताओं से इस बारे में प्रश्न न पूछे गये हों। वे पूछे गये थे।

१५. इस तरह के प्रश्न याज्ञवल्क्य जैसे महान् ऋषि से भी पूछे गये थे, जिसका बृहदारण्यक उपनिषद् में उतना महत्वपूर्ण स्थान है।

१६. उससे पूछा गया था "ब्रह्म क्या है ? आत्मा क्या है ?" याज्ञवल्क्य इतना ही उत्तर दे सका था—"मैं नहीं जानता, मैं नहीं जानता—नेति, नेति।"

१७. बुद्ध को शंका थी कि जिसके विषय में कोई कुछ जानता ही नहीं, वह 'वास्तविकता' कैसे हो सकती है ? इसलिए उन्होंने उपनिषदों की स्थापना को भी शुद्ध कल्पना समझ अस्वीकार कर दिया।

१. वर्तमान ईश्वरकृष्णविरचित सांख्य-कारिका को तो तीन प्रमाण मान्य हैं,—शब्द, प्रत्यक्ष तथा अनुमान। शब्द प्रमाण पीछे की सूझ लगती है।

२. यह कारण चिन्त्य है।

छठाँ भाग

बुद्ध तथा उनके समकालीन

१. उनके समकालीन

१. जिस समय गौतम ने प्रव्रज्या ली, देश में बड़ी मानसिक उथल-पुथल मची हुई थी। ब्राह्मणी-दर्शन के अतिरिक्त कोई बासठ दार्शनिक मत और थे। ये सभी ब्राह्मणी-दर्शन के विरोधी थे। उनमें से कम से कम छः ध्यान देने योग्य थे।

२. इन दार्शनिक-परम्पराओं में से एक के मुखिया का नाम पूर्ण-काश्यप था। उसका मत अक्रिया-वाद कहलाता था। उसकी स्थापना थी कि 'कर्म' का 'आत्मा' पर किसी भी तरह से कोई प्रभाव नहीं पड़ता। चाहे कोई किसी काम को करे, चाहे कराये। चाहे कोई किसी को स्वयं मार डाले, चाहे मरवाये। चाहे कोई स्वयं चोरी करे और डाका डाले, चाहे किसी से चोरी कराये और डाका डलवाये। चाहे कोई स्वयं व्यभिचार करे, चाहे किसी से करवाये। चाहे कोई स्वयं झूठ बोले, चाहे किसी से बुलवाये। 'आत्मा' पर किसी बात का कोई प्रभाव नहीं पडता। कोई कार्य कितना भी जघन्य हो 'आत्मा' को पाप से लिप्त नहीं करता। कोई कार्य कितना भी अच्छा हो 'आत्मा' को पुण्य से युक्त नहीं करता। 'आत्मा' पर कोई 'क्रिया' ही नहीं होती। जब आदमी मरता है तो उसके शरीर के सभी तत्व उन मूल तत्वों से जा मिलते है, जिनसे उसका शरीर बना है। मरने के बाद कुछ नहीं बचता, न 'शरीर' और न 'आत्मा'।

३. एक दूसरी विचार-धारा का नाम था नियति-वाद। इसके मुख्य उपदेशक का नाम था मक्खली गोसाल। उसका मत एक प्रकार का 'पूर्व निश्चयवाद' था। उसका मत था कि न कोई कुछ कर सकता है और न होने से रोक ही सकता है। घटनायें घटती हैं। कोई स्वेच्छा से उन घटनाओं को घटा नहीं सकता है। न कोई दु:ख को दूर कर सकता है और न कोई उसे घटा-बढ़ा सकता है। आदमी पर, संसार में जो कुछ बीतने को हो, वह बीत कर रहता है।

४. तीसरा मत उच्छेदवाद कहलाता था। इसका मुख्य उपदेशक अजित केस-कम्बल था। उसका मत एक प्रकार का सम्पूर्ण-नाशवाद था। उसकी शिक्षा थी कि यदि यज्ञ और होम बेकार हैं। कर्मों के कोई ऐसे फल नहीं होते जिन्हे 'आत्मा'

भोग सके या उसे भुगतने पड़े। न कहीं कोई 'स्वर्ग' है और न 'नरक'। आदमी का निर्माण दुःख के कुछ तत्वों से हुआ है। 'आत्मा' उनसे बच नहीं सकता। संसार में जितना भी कष्ट है, जितना भी दुःख है, 'आत्मा' का उससे कहीं किसी तरह त्राण नहीं। यह कष्ट या दुःख स्वयं अनायास समाप्त हो जायगा। 'आत्मा' को चौरासी लाख योनियां धारण करनी पड़ेगी। तभी 'आत्मा' के कष्टों और दुःख का अवसान होगा, इससे पहले किसी तरह नहीं।

५. चौथा मत अन्योन्य-वाद कहलाता था। इस मत के मुखिया का नाम पकुध कच्चायन था। उसका उपदेश था कि सात तत्वों से प्राणी का निर्माण होता है—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, सुख, दुःख तथा आत्मा। प्रत्येक तत्व दूसरे से स्वतन्त्र है। एक का दूसरे पर प्रभाव नहीं पड़ता। वे अपने में सम्पूर्ण हैं और वे सभी नित्य हैं। उनका किसी भी तरह नाश हो ही नहीं सकता। यदि कोई आदमी किसी का सिर भी काट दे तो यह कोई "मारना" नहीं होता। यह तो इतना ही है कि शस्त्र सात तत्वों में प्रवेश कर गया है।

६. सञ्जय बेलट्ठिपुत्त का अपना ही एक निजी दार्शनिक मत था। यह 'विक्षेप-वाद' कहलाता था। यह अंतिम दर्जे का सन्देह-वाद था। उसका तर्क था, "यदि कोई मुझे पूछे कि स्वर्ग है, और यदि मुझे लगे कि है तो मैं कहूंगा कि हां है। यदि मुझे लगे कि स्वर्ग नहीं है तो में कहूंगा कि नहीं है। यदि कोई मुझे पूछे कि क्या आदमी बनाये जाते हैं, क्या आदमी को अच्छे-बुरे कर्मों का फल भोगना पडता है, क्या मृत्यु के अनन्तर 'आत्मा' रहती है, में इन सब का नकारात्मक उत्तर दूगा, क्योंकि मैं नहीं समझता कि ये हैं..।" कुछ कुछ इसी प्रकार संजय का तर्क चलता था।

७. छठा दार्शनिक मत चातुर्यामसंवर-वाद कहलाता था। इस मत के संस्थापक या मुख्याचार्य्य उस समय जीवित थे, जब गौतम प्रकाश की खोज में संलग्न थे। आचार्य का नाम महावीर था, वह जो निगण्ठनाथ पुत्त भी कहलाते थे। महावीर का शिक्षण था कि 'आत्मा' को अपने पूर्व-जन्मों के कर्म तथा इस जन्म के कर्मों के परिणाम-स्वरूप ही 'पुनर्जन्म' ग्रहण करना पड़ता है। इसलिये उसका कहना था कि तपश्चर्या के द्वारा पुण्यकर्मों का नाश कर डालना चाहिये। बुरे कर्मों का होना रोकने के लिये महावीर नें चातुर्याम धर्म का उपदेश दिया अर्थात् चार नियमों के पालन करने का—(१) हिंसा न करना, (२) चोरी न करना, (३) झूठ नहीं बोलना, (४) अपरिग्रह रखना और ब्रह्मचर्य्य-व्रत का पालन करना।

२. अपने समकालीनों के प्रति उनका भाव

१. बुद्ध ने इन नये दार्शनिकों के मत को स्वीकार नहीं किया।

२. बुद्ध का उनकी शिक्षाओं को अस्वीकार करना सकारण था। बुद्ध का कहना था :

३. यदि पूर्ण काश्यप या पकुध कच्चायन के सिद्धान्तों को सत्य माना जाय तो फिर आदमी कोई भी बुराई कर सकता है, किसी को कुछ भी हानि पहुंचा सकता है; बिना किसी भी तरह की सामाजिक जिम्मेदारी स्वीकार किये या बिना किसी भी तरह के सामाजिक परिणाम का विचार किये एक आदमी दूसरे की हत्या भी कर ही सकता है।

४. यदि मक्खली गोसाल का सिद्धान्त ठीक मान लिया जाय तो आदमी भाग्य के हाथ का खिलौना बन जाता है। आदमी किसी भी तरह अपने बंधनों को नहीं काट सकता।

५. यदि अजित केसकम्बल का सिद्धान्त ठीक माना जाय तो आदमी के लिये खाने, पीने और मौज उड़ाने के अतिरिक्त शेष कुछ करने के लिये रह ही नहीं जाता।

६. यदि सञ्जय बेलट्ठिपुत्त का सिद्धान्त सही हो तो फिर पानी पर यूं ही बहते रहने की तरह आदमी का जीवन निरुद्देश्य हो जायगा।

७. यदि निगण्ठनाथपुत्त का सिद्धान्त सही हो तो आदमी का जीवन काय-क्लेश तथा तपश्चर्या के आधीन हो जायेगा—आदमी की इच्छाओं और स्वाभाविक प्रवृत्तियों का सर्वथा मूलोच्छेद।

८. इसलिये उन दार्शनिकों का कोई एक भी मत बुद्ध को अच्छा नहीं लगा। उनको ऐसा लगा कि ये सब ऐसे आदमियों के ही विचार थे जो या तो निराशावादी थे, या असहाय थे या किसी भी भले-बुरे परिणाम की ओर से सर्वथा उदासीन थे। इसलिये उन्होंने अन्यत्र ही कहीं से प्रकाश पाने की आशा रखी।

सातवाँ भाग

समानता तथा विषमता

१. वे बातें जिनका बुद्ध ने सर्वथा त्याग किया

१. दार्शनिक तथा धार्मिक विचार-सारणी के इस पर्यवेक्षण से यह स्पष्ट है कि जिस समय बुद्ध ने अपने शासन की नींव रखी, उस समय कुछ विचार और मान्यतायें ऐसी थीं जिन्होंने लोगों के दिमाग में घर बना रखा था। वे विचार और मान्यतायें थीं :–

(क) वेदों को स्वत: प्रमाण मानना।

(ख) आत्मा के मोक्ष में विश्वास, अर्थात् इसका पुनर्जन्म न होना।

(ग) धार्मिक-संस्कारों तथा यज्ञादि के करने को 'आत्मा' के मोक्ष का साधन मानना।

(घ) सामाजिक-संगठन के निमित्त चातुर्वर्णी-व्यवस्था को आदर्श मानना।

(ङ) ईश्वर को सृष्टि-कर्त्ता और 'ब्रह्म' को विश्व का मूलाधार तत्व मानना।

(च) 'आत्मा' में विश्वास।

(छ) 'संसरण' अर्थात् 'आत्मा' के एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने पर विश्वास।

(ज) कर्म में विश्वास अर्थात् इस जन्म में आदमी की जो भी स्थिति-परिस्थिति है उस सब को पूर्व-जन्म का परिणाम मानना।

२. अपने बुद्ध शासन के स्तम्भों की स्थापना करते समय बुद्ध ने इन परम्परागत-मान्य विचारों के साथ अपने ही अनोखे ढंग से बरताव किया।

३. ये वे बातें हैं जिनका बुद्ध ने सर्वथा त्याग कर दिया।

(क) मैं कहाँ से आया हूँ, किधर से आया हूं, मैं क्या हूं—इस प्रकार के व्यर्थ के मानसिक संकल्प-विकल्प उठाते रहने की बुद्ध ने निन्दा की।

(ख) उन्होंने 'आत्मा' के बारे में सभी मान्यताओं का त्याग किया। उन्होंने 'आत्मा' को न शरीर ही माना, न वेदनाएं ही माना, न संज्ञा ही माना, न संस्कार ही माना और न विज्ञान ही माना।

(ग) कुछ धार्मिक उपदेशकों द्वारा प्रतिपादित सभी उच्छेदवादी मतों का तिरस्कार किया।

(घ) उन्होंने 'नास्तिकों' के मत का त्याग किया।

(ङ) उन्होंने इस बात को मान्य नहीं ठहराया कि विश्व के विकास का आरम्भ किसी के 'ज्ञान' से बंधा हुआ है।

(च) उन्होंने इस सिद्धान्त का खण्डन किया कि किसी ईश्वर नें आदमी का निर्माण किया है अथवा वह किसी 'ब्रह्म' के शरीर का अंश है।

(छ) 'आत्मा' के अस्तित्व की तो उन्होंनें उपेक्षा की और उससे सर्वथा इनकार किया।

२. वे बातें जिनमें बुद्ध ने परिवर्तन किया

(क) उन्होंने कार्य-कारण के महान् नियम को अपनी शाखाओं-प्रशाखाओं सहित प्रतीत्यसमुत्पाद के रूप में मान्य ठहराया।

(ख) उन्होंने जीवन के निराशावादी दृष्टि-कोण का खण्डन किया और साथ ही इस मूर्खतापूर्ण दृष्टिकोण का भी कि किसी ईश्वर ने आदमी और संसार का भविष्य पहले से निश्चित कर रखा है।

(ग) उन्होंने इस सिद्धान्त को भी अस्वीकार किया कि किसी पूर्व-जन्म में किये गये किन्हीं कार्यों में कुछ ऐसी सामर्थ्य है कि वे दुःख और कष्ट का कारण होते हैं और उन के रहते इस जन्म के कर्म कुछ नहीं कर सकते—वे सभी बेकार हैं। उन्होंने 'कर्म' के इस निराशावादी दृष्टि-कोण का त्याग किया। उन्होंने पुराने 'कर्म-वाद' के स्थान पर एक बहुत ही अधिक वैज्ञानिक 'कर्म-वाद' की स्थापना की—एक प्रकार से बोतल तो पुरानी थी, किन्तु भीतर की सुरा नई थी।

(घ) संसरण अर्थात् आत्मा के एक शरीर से निकल कर दूसरे में जाने की बात के स्थान पर संसरण-रहित पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार किया।

(ङ) उन्होंने 'मोक्ष' अथवा 'आत्मा' की मुक्ति के सिद्धान्त के स्थान पर बौद्ध 'निर्वाण' की स्थापना की।

(५) इस प्रकार बुद्ध का शासन अपनी मौलिकता लिये हुए है। इसमें जो कुछ थोड़ा-बहुत पुराना है वह या तो बदल दिया गया है या उसकी नई व्याख्या कर दी गई है।

३. वे बातें जिन्हें बुद्ध ने स्वीकार किया

१. उनकी शिक्षा की पहली विशेषता थी कि मन को सभी चीजों का केन्द्र-बिन्दु स्वीकार किया गया था।

२. मन चीजों का पूर्वगामी है वह उस पर प्रभाव डालता है। वह उन्हें उत्पन्न करता है। यदि मन काबू में है तो सब कुछ काबू में है।

३. मन ही सब मानसिक-क्रियाओं में प्रधान है। मन ही मुख्य है। मन उन चैतसिक-क्रियाओं की ही उपज है।

४. इसलिये सब से मुख्य बात मन की साधना है।

५. बुद्ध की शिक्षाओं की दूसरी विशेषता यह है कि उनके अनुसार मन ही उन सब भलाइयों और बुराइयों का स्रोत है जो हमारे भीतर उत्पन्न होती हैं और जिन का हमें बाहर से शिकार होना पड़ता है।

६. जो कुछ भी बुराई है—जिसका बुराई से सम्बन्ध है, जो बुराई से समन्वित है—वह सब मन की ही उपज है। जो कुछ भी भलाई है—जिसका भलाई से सम्बन्ध है, जो भलाई में समन्वित है—वह सब मन की ही उपज है।

७. यदि आदमी बुरे मन से कुछ भी बोलता या करता है तो दुःख उसके पीछे-पीछे ऐसे ही हो लेता है जैसे गाड़ी के पहिये गाड़ी को खींचने वाले बैलों के पीछे पीछे। इसलिये अपने चित्त को निर्मल बनाये रखना ही धर्म का सार है।[1]

८. उनकी शिक्षाओं की तीसरी विशेषता है सभी पाप-कर्मों से विरति।

९. उनकी शिक्षाओं की चौथी विशेषता है कि धर्म धार्मिक-ग्रन्थों के पाठ में नहीं है, बल्कि धार्मिक जीवन बिताने में है।

१०. क्या कोई कह सकता है कि बुद्ध का धर्म उनका अपना आविष्कार न था? उनकी अपनी कृति न थी?

१. धम्मपद (यमक वग्ग – गाथा १)।

द्वितीय काण्ड

धर्म-दीक्षाओं का आन्दोलन

पहला भाग

बुद्ध और उनका विषाद योग

१. उपदेश देना अथवा नहीं देना

१. बोधि प्राप्त करने के अनन्तर और अपने सद्धर्म की रूप-रेखा निश्चित कर लेने के अनन्तर बुद्ध के मन में एक विचार आया। क्या उसे दूसरों को अपने धर्म का उपदेश देना चाहिये, अथवा अपने ही कल्याण में रत रहना चाहिये ?

२. उन्होंने सोचा, निस्संदेह मैंने एक नया सद्धर्म पा लिया है। लेकिन हर सामान्य आदमी के लिये इसका समझ सकना और अनुकरण कठिन है। बुद्धिमानों तक के लिये यह अति सूक्ष्म है।

३. आदमियों के लिये अपने आप को 'आत्मा' और 'परमात्मा' के मायाजाल से मुक्त कर सकना कठिन है। आदमियों के लिये रस्मों और रीति-रिवाजों और धार्मिक-संस्कारों के बन्धनों से मुक्त होना कठिन है। आदमियों के लिये ब्राह्मणी 'कर्मवाद' से मुक्त होना कठिन है।

४. आदमियों के लिये आत्मा को 'नित्य' मानने के सिद्धांत से मुक्त होना कठिन है और मेरे इस सिद्धान्त को मानना भी कठिन है कि 'आत्मा' का कहीं कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है और मरणान्तर भी कहीं कोई 'आत्मा' शेष नहीं रहती।

५. 'आदमी स्वार्थ-रत है। वे इसीमें मजा लेते और आनन्द मानते हैं। आदमियों के लिये मेरे सद्धर्म को स्वार्थ-परता के ऊपर स्थान देने के सिद्धान्त को समझना कठिन है।

६. यदि मैं अपने सिद्धान्त का उपदेश दूं, और दूसरे इसे समझ न सकें, अथवा समझ कर स्वीकार न कर सकें, अथवा स्वीकार करके भी तदनुसार आचरण न कर सकें, तो इस से दूसरों को भी व्यर्थ की थकावट होगी और मुझे भी व्यर्थ की हैरानी'।

७. "मैं संसार से दूर रहकर एक संन्यासी का ही जीवन क्यों न बिताऊँ ? मैं अपने कल्याण में ही क्यों न लगा रहूं ? मैं कम से कम अपना कल्याण तो कर ही सकता हूँ।"

८. इस प्रकार विचार करने से बुद्ध का मन सद्धर्म प्रचार की ओर न झुक कर निष्क्रियता की ओर ही झुका।

९. ब्रह्मा सहम्पति ने जब यह जाना कि बुद्ध के मन में क्या विचार चक्कर काट रहा है, उसने सोचा: 'निश्चय से संसार का नाश होने जा रहा है, निश्चय से संसार विनाश को प्राप्त होने जा रहा है, यदि सम्यक् सम्बुद्ध तथागत का मन धर्म प्रचार की ओर न झुक कर निष्क्रियता की ओर झुक जाता है।'

१०. इस चिंता से घबराकर ब्रह्मा सहम्पति ब्रह्म-लोक से विदा होकर बुद्ध के सामने प्रकट हुआ। अपने वस्त्र को एक कंधे पर करके वह झुका और हाथ जोड़कर बोला "आप अब सिद्धार्थ गौतम नहीं हैं। आप बुद्ध हैं। आप सम्यक्सम्बुद्ध हैं। आप तथागत हैं। आप संसार को अन्धकार मुक्त करने के प्रयास से कैसे विमुख हो सकते हैं ? आप संसार को सत्यपथ पर ले चलने से कैसे विमुख हो सकते हैं ?

११. "बहुत से प्राणी हैं, जो बहुत मलिन नहीं हैं, उन्हें सद्धर्म श्रवण करना नहीं मिलेगा तो वे विनाश को प्राप्त होंगे[*]।

१२. "आप जानते हैं भगवान कि मगध में एक पुराना "धर्म" पैदा हुआ था जिसमें बहुत दोष थे।

१३. "क्या भगवान् ! अब उन लोगों के लिये अमृत-द्वार नहीं खोलेंगे ?

१४. "जैसे पर्वत के शिखर पर खड़ा हुआ कोई अप[illegible]-पास के नीचे खड़े हुए लोगों को देखता है, उसी तरह के प्रज्ञा के शिखर पर चढ़े हुए भगवान् ! हे दुःख का क्षय किये हुए भगवान्। अपने आस पास के उन लोगों की ओर देखें जो दुःख के सागर में निमग्न हैं।

१५. "हे वीर ! हे सार्थवाह ! हे जाति-क्षय ! आप उठें। संसार के कल्याणार्थ विचरें। उसकी ओर से विमुख न हों।

१६. "हे भगवान्; आप दया करके देवताओं और मनुष्यों को सद्धर्म का उपदेश दें।"

१७. बुद्ध ने उत्तर दिया—"हे मनुष्यों में ज्येष्ठ-श्रेष्ठ ब्रह्म ! यदि मैंने धर्मोपदेश देने का संकल्प नहीं किया तो यह केवल व्यर्थ की हैरानी से बचने के ख्याल से नहीं किया।"

१८. यह जानकर कि संसार में इतना दुःख है बुद्ध ने निश्चय किया कि संन्यासी की तरह हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना और जो कुछ दुनियाँ में हो रहा है उसे वैसे ही होते रहने देना, उसके लिये ठीक न होगा।

१९. उन्हें तपश्चर्या तथा आत्म-पीड़न का पथ व्यर्थ जान पड़ा था। संसार से भाग खड़े होना बेकार था। एक तपस्वी के लिये भी संसार से भाग खड़े होना संभव नहीं। उन्होंने निश्चय किया कि संसार से भाग खड़े होने की जरूरत नहीं है। जरूरत है संसार को बदलकर श्रेष्ठतर बनाने की।

२०. बुद्ध ने अनुभव किया कि उन्होंने संसार का त्याग इसीलिये किया था कि वहाँ इतना संघर्ष है और वह इतने अधिक दुःख का कारण है, और जिसका

उनके पास कोई इलाज न था। यदि वह सद्धर्म के प्रचार से, संसार के कष्ट और दुःख को दूर कर सकें तो यह उनका कर्त्तव्य था कि वह संसाराभिमुख होकर उसकी सेवा करें, नकि निष्क्रियता की मूर्ति बनकर चुपचाप बैठे रहे।

२१. इसलिये बुद्ध ने ब्रह्मा सहम्पति की प्रार्थना स्वीकार की और सद्धर्म का उपदेश देने का निश्चय किया।

२. ब्रह्मा सहम्पति द्वारा शुभ-घोषणा

१. ब्रह्मा सहम्पति यह सोचकर कि "मैं जनता को उपदेश देने के लिये बुद्ध को प्रेरित करने में सफल हो गया हूँ" बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने बुद्ध को नमस्कार किया, प्रदक्षिणा की और विदा हो गया।

२. वापस लौटते समय जाते जाते वह यह घोषणा करता रहा, "इस शुभ संवाद को सुनकर प्रसन्न होओ। हमारे भगवान् बुद्ध ने संसार की बुराई और कष्ट का मूल कारण जान लिया है। उन्हे इससे मुक्त होने का उपाय भी ज्ञात है।"

३. "जो निराश हैं, जो दुःखी हैं उन्हे बुद्ध संतोष प्रदान करेंगे। जो युद्ध-त्रस्त हैं उन्हे शान्त करेंगे। जिनकी हिम्मत टूट गई है उनकी हिम्मत बंधायेंगे। जो दलित हैं, जिनपर अत्याचार हुए हैं, उन्हे वह आशावान् बनायेंगे।

४. "आप लोग जिन्हे दुनिया के झंझट सहन करने पड़ते हैं, आप लोग जिन्हे दुनिया में भयानक संघर्ष करना पड़ता है, आप लोग जो न्याय की आशा लगाये रहते हैं; आप यह सुखद-संवाद सुन कर प्रसन्न हों।

५. "जो आहत हैं वे अपने जख्मों को भरा समझें। जो भूखें हैं-वे अपने को भोजन-प्राप्त हुआ समझें। जो थके हैं वे अपने को विश्राम-प्राप्त समझें। जो तृष्णा से व्याकुल हैं वे अपनी प्यास बुझी समझें। जो अन्धकार-ग्रस्त हैं वे अपने आपको प्रकाश में समझें। जो परित्यक्त हैं वे अब खुशी मनावें।

६. "बुद्ध के सिद्धान्त में एक ऐसी उत्कट प्रेरणा है कि जो परित्यक्त हैं अथवा जिनका कोई नहीं है, उन्हें अपना बना लेने की इच्छा होती है, जो नीचे गिरा दिये गये हैं उन्हें ऊपर उठाने की इच्छा होती है और जो पददलित हैं उनके लिये आगे बढ़ने का समता का राज-पथ है।

७. "उन का धर्म सद्धर्म है और उनका उद्देश्य है कि पृथ्वी पर सद्धर्म का साम्राज्य स्थापित हो।

८. "उन का धर्म सत्य है, सम्पूर्ण सत्य है सत्य के अतिरिक्त कुछ नहीं अर्थात् सत्य ही सत्य है।

९. "धन्य हैं भगवान् बुद्ध, क्योंकि उनका पथ बुद्धि का पथ है और वह मिथ्या विश्वासों से मुक्ति का मार्ग है। धन्य हैं वे भगवान् बुद्ध जो मध्यम-मार्ग का उपदेश करते हैं। धन्य हैं वे भगवान् बुद्ध जो सद्धर्म का उपदेश करते हैं।

धन्य हैं वे भगवान् बुद्ध जो शान्ति-प्रद निर्वाण का उपदेश देते हैं। धन्य हैं वे भगवान् बुद्ध जो मैत्री, करुणा की शिक्षा देते हैं और भ्रातृभाव की ताकि आदमी अपने मानव-बान्धवों को बन्धनों से मुक्ति लाभ करने में सहायक हो सके।

३. दो तरह की धर्म-दीक्षा

१. बुद्ध की धर्म-प्रचार की योजना में धर्म-दीक्षा के दो अर्थ हैं।

२. पहली तो 'भिक्षु' की दीक्षा है, जिनको सामूहिक रूप से 'संघ' कहा जाता है।

३. दूसरी दीक्षा 'उपासक' की दीक्षा है अर्थात् गृहस्थ बौद्ध की।

४. एक भिक्षु और एक उपासक के जीवन में मुख्य भेद चार ही बातों को लेकर है—

५. एक उपासक गृहस्थ बना रहता है। एक भिक्षु गृह-त्यागी परिव्राजक बन जाता है।

६. उपासक और भिक्षु दोनों को ही कुछ नियमों का पालन करना होता है।

७. भिक्षु के लिये वे 'व्रत' हैं और उनका पालन न करना दण्डनीय है, उपासक के लिये वे केवल 'शील' हैं जिन्हे वह अपनी सामर्थ्य भर अधिक से अधिक पालन करने का प्रयास करता है।

८. एक उपासक सम्पत्ति रख सकता है। एक भिक्षु कोई सम्पत्ति नहीं रख सकता है।

९. एक उपासक बनने के लिये किसी 'संस्कार' की आवश्यकता नहीं।

१०. एक भिक्षु बनने के लिये 'उपसम्पन्न' होना आवश्यक है।

११. बुद्ध ने दीक्षा की इच्छा रखने वालों की इच्छा के अनुसार ही किन्हीं को 'उपासक' किन्हीं को 'भिक्षु' बनाया।

१२. एक उपासक जब चाहे भिक्षु बन सकता है।

१३. एक भिक्षु को 'भिक्षु' नहीं रहना होता यदि वह अपने मुख्य-व्रतों में से किसी एक का भी भंग कर दे अथवा वह स्वेच्छा से संघ का सदस्य न रहना चाहे।

१४. यह नहीं समझना चाहिए कि आगे के पृष्ठों में जिनके नाम आये हैं, बुद्ध ने केवल उन्हें ही दीक्षित किया।

१५. जो चन्द उदाहरण चुने गये हैं वे केवल यह दिखाने के लिये कि दीक्षा देने अथवा अपने सद्धर्म का प्रचार करने के सिलसिले में बुद्ध न किसी की 'जाति' का विचार करते थे और न किसी के 'पुरुष' व 'स्त्री' होने का।

१. महावग्ग (ब्रह्मयाचन कथा)।

२. महावग्ग (ब्रह्मयाचन कथा)।

दूसरा भाग

परिव्राजकों की दीक्षा

१. सारनाथ आगमन

१. धर्मोपदेश का निश्चय कर चुकने के अनन्तर बुद्ध ने अपने आप से प्रश्न किया कि मैं सर्वप्रथम किसे धर्मोपदेश दूं ? उन्हे सब से पहले आळार-कालाम का ख्याल आया जो बुद्ध की सम्मति में विद्वान् था, बुद्धिमान था, समझदार था और काफी निर्मल था। बुद्ध ने सोचा यह कैसा हो, यदि मैं सर्वप्रथम उसे ही धर्मोपदेश करूं ? लेकिन बुद्ध को पता लगा कि आळार-कालाम की मृत्यु हो चुकी है।[1]

२. तब उन्होंने उद्दक रामपुत्त को भी उपदेश देने का विचार किया। किन्तु उसका भी शरीरान्त हो चुका था।

३. तब उन्हे अपने उन पाँच साथियों का ध्यान आया जो निरञ्जना नदी के तट पर उनकी सेवा में थे, और जो सिद्धार्थ गौतम के तपस्या और काय-क्लेश का पथ त्याग देने पर असन्तुष्ट हो उन्हे छोड़ कर चले गये थे।

४. उन्होंने सोचा "उन्होंने मेरे लिये बहुत किया, मेरी बड़ी सेवा की, मेरे लिये बहुत कष्ट उठाया। कैसा हो यदि मैं उन्हें ही सर्वप्रथम धर्म का उपदेश दूं ?"

५. उन्होंने उनके ठौर-ठिकाने का पता लगाया। जब उन्हे पता लगा कि वे वाराणसी (सारनाथ) के इसिपतन के मृगदाय में रहते हैं, तो बुद्ध उधर ही चल दिये।

६. उन पांचों ने जब बुद्ध को आते देखा तो आपस में तै किया कि बुद्ध का स्वागत नहीं करेंगे। उनमें से एक बोला, "मित्रो, वह श्रमण गौतम चला आ रहा है, जो पथ-भ्रष्ट हो गया है, जिस ने तपस्या का मार्ग त्याग आराम-तलबी और काम-भोग का पथ अपना लिया है। वह पापी है। इसलिये हमें न उसका स्वागत करना चाहिये न उसके सम्मान में उठ कर खड़ा होना चाहिये। न उसका पात्र और चीवर ग्रहण करना चाहिये। हम उसके लिये एक आसन रख देते हैं, इच्छा होगी तो उस पर बैठ जायगा।" वे सब सहमत थे।

७. लेकिन जब बुद्ध समीप पहुंचे तो वह पांचों परिव्राजक अपने संकल्प पर दृढ़ न रह सके। बुद्ध के व्यक्तित्व ने उन्हें इतना प्रभावित किया कि वे सभी अपने

आसन से उठ खड़े हुए। एक ने बुद्ध का पात्र लिया, एक ने चीवर संभाला, एक ने आसन बिछाया और दूसरा पांव धोने के लिये पानी ले आया।

८. यह सचमुच एक अप्रिय-अतिथि का असाधारण स्वागत था।

९. इस प्रकार जो उपेक्षावान थे, श्रद्धावान बन गये।

२. धर्मचक्र प्रवर्तन

१. कुशल-क्षेम की बातचीत हो चुकने के बाद परिब्राजकों ने बुद्ध से प्रश्न किया—क्या आप अब भी तपश्चर्या तथा काय-क्लेश में विश्वास रखते हैं?" बुद्ध का उत्तर नकारात्मक था।

२. बुद्ध ने कहा—दो सिरे की बातें है, दो दो किनारों की—एक तो काम-भोग का जीवन और दूसरा काय-क्लेश का जीवन।

३. एक का कहना है, खाओ पीयो मौज उड़ाओ क्योंकि कल तो मरना ही है। दूसरे का कहना है तमाम वासनाओं का मूलोच्छेद कर दो क्योंकि वे पुनर्जन्म का कारण हैं। उन्होंने दोनों को आदमी की शान के योग्य नहीं माना।

४. वे मध्यम-मार्ग को मानने वाले थे—बीच का मार्ग; जो कि न तो काम-भोग का मार्ग है और न काय-क्लेश का मार्ग है।

५. बुद्ध ने परिब्राजकों से प्रश्न किया—मेरे इस प्रश्न का उत्तर दो कि जब तक किसी के मन में पार्थिव वा स्वर्गीय भोगों की कामना बनी रहेगी, तब तक क्या उसका समस्त काय-क्लेश व्यर्थ नहीं होगा? उनका उत्तर था—'जैसा आप कहते हैं वैसा ही है।"

६. "यदि आप काय-क्लेश द्वारा काम-तृष्णा को शान्त नहीं कर सकते तो काय-क्लेश का दरिद्री जीवन बिताने से आप अपने को कैसे जीत सकते हैं?" उनका उत्तर था—जैसा आप कहते हैं वैसा ही है।

७. "जब आप अपने आप पर विजय पा लेंगे तभी आप काम-तृष्णा से मुक्त होंगे, तब आप को काम-भोग की कामना न रहेगी, और तब प्राकृतिक इच्छाओं की पूर्ति विकार पैदा नहीं करेगी। आप अपनी शारीरिक आवश्यकताओं के हिसाब से खाना-पीना ग्रहण करें।

८. "सभी तरह की काम-वासना उत्तेजक होती है। कामुक अपनी काम-वासना का गुलाम होता है। सभी काम-भोगों के चक्कर में पड़े रहना गंवारपन और नीच कर्म है। लेकिन मैं तुम्हे कहता हूं कि शरीर की स्वाभाविक आवश्यकताओं की पूर्ति में बुराई नहीं है। शरीर को स्वस्थ बनाये रखना एक कर्तव्य है। अन्यथा तुम अपने मनोबल को दृढ़ बनाये न रख सकोगे और प्रज्ञा रूपी प्रदीप भी प्रज्ज्वलित न रह सकेगा।

९. हे परिव्राजको इस बात को समझ लो कि आदमी को इन दोनों अन्त की बातों से सदा बचना चाहिये—एक तो उन चीजों के चक्कर में पड़े रहने से जिनका आकर्षण काम-भोग सम्बन्धी तृष्णा पर निर्भर करता है—यह एक बहुत निम्न कोटि की बात है; अयोग्य है, हानिकर है तथा दूसरी ओर तपश्चर्या अथवा काय-क्लेश से, क्योंकि वह भी कष्ट-प्रद है, अयोग्य है तथा हानिकार है।[२]

१०. इन दोनों अन्तों से, इन दोनों सिरे की बातों के बीच में एक मध्यम मार्ग है—बीच का रास्ता। यह समझ लो कि मैं उसी मध्यम मार्ग का उपदेष्टा हूँ।

११. पांचों परिव्राजकों ने उनकी बात ध्यान से सुनी। वे यह नहीं जानते थे कि बुद्ध के मध्यम मार्ग के बारे में क्या कहे। इसलिये उन्होंने प्रश्न किया—जब हम आपका साथ छोड़कर चले आये, उस के बाद से आप कहां कहां रहे क्या क्या किया? तब बुद्ध ने उन्हे बताया कि किस प्रकार गया पहुँचे, कैसे उस पीपल के पेड़ के नीचे ध्यान लगाकर बैठे और कैसे चार सप्ताह की निरन्तर समाधि के बाद उन्हें वह नया बोध प्राप्त हुआ जिससे वह नये मार्ग का आविष्कार कर सके।

१२. यह सुना तो परिव्राजक उस नये-मार्ग को विस्तारपूर्वक जानने के लिये अत्यन्त उत्सुक हो उठे। उन्हों ने बुद्ध से प्रार्थना की कि वे उन्हें बतायें।

१३. बुद्ध ने स्वीकार किया।

१४. बुद्ध ने पहली बात यह बताई कि उनके सद्धर्म को आत्मा, परमात्मा से कुछ लेना देना नहीं है। उनके सद्धर्म को मरने के बाद (आत्मा का) क्या होता है इससे कुछ सरोकार नहीं है। उनके सद्धर्म को कर्म-काण्ड के क्रिया-कलापों से भी कुछ लेना-देना नहीं।

१५. बुद्ध के धर्म का केन्द्र-बिन्दु है आदमी और इस पृथ्वी पर रहते समय आदमी का आदमी के प्रति क्या कर्त्तव्य होना चाहिये?

१६. बुद्ध ने कहा, यह उनकी पहली स्थापना है।

१७. उनकी दूसरी स्थापना है कि आदमी दुःखी हैं, कष्ट में हैं और दरिद्रता का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। संसार दुःख से भरा पड़ा है और धर्म का उद्देश्य इस दुःख का नाश करना ही है। इसके अतिरिक्त सद्धर्म और कुछ नहीं है।

१८. दुःख के अस्तित्व की स्वीकृति औरं दुःख के नाश करने का उपाय—यही धर्म की आधार शिला है।[३]

१९. धर्म के लिये एकमात्र यही सही आधार हो सकता है। जो धर्म इस प्राथमिक बात को भी अंगीकार नहीं कर सकता, धर्म ही नहीं है।

२०. हे परिव्राजको! जो भी श्रमण या ब्राह्मण (धर्मोपदेष्टा) यह भी नहीं समझ पाते कि संसार में दुःख है और उस दुःख के नाश का उपाय है। ऐसे श्रमण ब्राह्मण मेरी सम्मति में श्रमण-ब्राह्मण ही नहीं हैं, न वे अपने को ज्येष्ठ-श्रेष्ठ समझने वाले इतना भी समझ पाये हैं कि धर्म का सही अर्थ क्या है?

२१. तब परिव्राजकों ने पूछा: दुःख और दुःख का विनाश ही यदि आप के धर्म की आधार-शिला है तो हमें बताइये कि आप का धर्म कैसे दुःख का नाश कर सकता है ?

२२. तब बुद्ध ने उन्हें समझाया कि उनके धर्म के अनुसार यदि हर आदमी (१) पवित्रता के पथ पर चले, (२) धर्म के पथ पर चले, (३) शील-मार्ग पर चले तो इस दुःख का एकान्तिक निरोध हो सकता है।

२३. और उन्होंने कहा कि उन्होंने ऐसे धर्म का आविष्कार कर लिया है।

३. धर्मचक्र प्रवर्तन

१. परिव्राजकों ने तब बुद्ध से अपने धर्म की व्याख्या करने की प्रार्थना की।

२. बुद्ध ने कृपया इसे स्वीकार किया।

३. उन्होंने सब से पहले उन्हें पवित्रता का पथ ही समझाया।

४. उन्होंने परिव्राजकों से कहा 'कोई भी आदमी जो अच्छा बनना चाहता है उसके लिये यह आवश्यक है कि वह कोई अच्छाई का माप-दण्ड स्वीकार करे।

५. "मेरे पवित्रता के पथ के अनुसार अच्छे जीवन के पांच माप दण्ड हैं-- (१) किसी प्राणी की हिंसा न करना (२) चोरी न करना अर्थात् दूसरे की चीज को अपनी न बना लेना, (३) व्यभिचार न करना, (४) असत्य न बोलना, (५) नशीली चीजों का ग्रहण न करना।

६. मैं कहता हूँ कि हर आदमी के लिये यह परमावश्यक है कि वह इन पांच शीलों को स्वीकार करे। क्योंकि हर आदमी के लिये जीवन का कोई माप-दण्ड होना चाहिये, जिसे से वह अपनी अच्छाई-बुराई को माप सके; मेरे धर्म के अनुसार ये पांच शील जीवन की अच्छाई-बुराई मापने के माप-दण्ड हैं।

७. दुनिया में हर जगह पतित (गिरे हुए) लोग होते ही हैं। लेकिन पतित दो तरह के होते हैं: एक तो पतित वे होते हैं जिनके जीवन का कोई माप-दण्ड होता है, दूसरे पतित वे होते हैं जिनके जीवन का कोई माप-दण्ड ही नहीं होता।

८. जिसके जीवन का कोई माप-दण्ड नहीं होता वह 'पतित' होने पर भी यह नहीं जानता कि वह 'पतित' है। इसलिये वह हमेशा 'पतित' ही रहता है। दूसरी ओर जिसके जीवन का कोई माप-दण्ड होता है वह हमेशा इस बात की कोशिश करता रहता है कि पतितावस्था से ऊपर उठे। क्यों? इसका उत्तर यही है कि वह जानता है कि वह पतित है, गिर गया है।

९. आदमी के लिये जीवन-सुधार का कोई माप-दण्ड होने और न होने में यही बड़ा अन्तर है। आदमी अपने स्तर से नीचे गिर पड़े यह इतनी बड़ी बात नहीं है जितनी यह कि, आदमी के जीवन का कोई स्तर ही न हो।

१०. हे परिव्राजको। तुम पूछ सकते हो कि इन पांच शीलों को जीवन का माप-दण्ड ही क्यों स्वीकार किया जाय ?

११. इस प्रश्न का उत्तर तुम्हे स्वयं ही मिल जायगा यदि तुम अपने से ही यह प्रश्न पूछो—क्या यह शील व्यक्ति के लिये कल्याणकारी है ? और साथ ही यह भी पूछो, क्या इन शीलों का पालन करना समाज के लिए कल्याणकारी है ?

१२. यदि इन दोनों प्रश्नों का तुम्हारा उत्तर स्वीकारात्मक है तो इस से यह सीधा परिणाम निकलता है कि मेरे पवित्रता के पथ के ये पांच शील इस योग्य हैं कि उन्हें जीवन का सच्चा माप-दण्ड मान लिया जाय।

४. धर्मचक्र प्रवर्तन

अष्टांगिक-मार्ग या सम्यक्मार्ग

१. इसके आगे बुद्ध ने उन परिव्राजकों को अष्टांगिक मार्ग का उपदेश दिया। बुद्ध ने कहा—इस मार्ग के आठ अंग हैं।

२. बुद्ध ने सर्वप्रथम सम्मा दिट्ठी (=सम्यक् दृष्टि) की व्याख्या की जो अष्टांगिक मार्ग में प्रथम है और प्रधान है।

३. सम्यक् दृष्टि का महत्व समझाने के लिये बुद्ध ने परिव्राजकों से कहा :—

४. "हे परिव्राजको ! तुम्हे इस का बोध होना चाहिये कि यह संसार एक कारागार है और आदमी इस कारागार में एक कैदी है।

५. इस कारागार में इतना अधिक अन्धकार है कि यहां कुछ भी दिखाई नहीं देता। कैदी को यह तक दिखाई नहीं देता कि वह कैदी है।

६. इतना ही नहीं कि बहुत अधिक समय तक इस अन्धेरी कोठरी में ही पड़े रहने के कारण आदमी एकदम अन्धा हो गया हो, बल्कि उसे इस बात में भी बड़ा सन्देह हो गया है कि प्रकाश नाम की कोई चीज भी कभी कहीं हो सकती है।

७. मन ही एक ऐसा साधन है, जिसके माध्यम से आदमी को प्रकाश की प्राप्ति हो सकती है।

८. लेकिन इन कारागार-वासियों के दिमाग की भी अवस्था ऐसी नहीं है कि यह उद्देश्य पूरा हो सके।

९. इनका दिमाग जरासा प्रकाश मात्र आने देता है, इतना ही है कि जिनके पास आँख है वह यह देख सकें कि अन्धकार नाम की भी कोई वस्तु है।

१०. इसलिये ऐसी समझ बड़ी सदोष है।

११. लेकिन हे परिव्राजको ! कैदी की स्थिति ऐसी निराशाजनक नहीं है जैसी यह प्रतीत होती है।

१२. क्योंकि आदमी में एक बल है, एक शक्ति है जिसे संकल्प-बल या इच्छा-

शक्ति कहा जाता है। जब आदमी के सम्मुख कोई उपयुक्त आदर्श उपस्थित होता है तो इस इच्छा-शक्ति को जाग्रत और क्रिया-शील बनाया जा सकता है।

१३. आदमी को यदि कहीं से इतना भी प्रकाश मिल जाये कि वह यह देख सके कि उसे अपनी इच्छा-शक्ति को किस दिशा में अग्रसर करना चाहिये, तो आदमी अपनी इच्छा-शक्ति का ऐसा संचालन कर सकता है कि वह अन्त में उसे बन्धन-मुक्त कर दे।

१४. इसलिये यद्यपि आदमी बन्धन में है तो भी वह स्वतन्त्र हो सकता है; वह किसी भी समय ऐसा पहला कदम उठा सकता है कि एक न एक दिन वह स्वतन्त्र होकर रहे।

१५. यह इसलिये कि हम जिस किसी दिशा में भी अपने मन को ले जाना चाहे, हम उसे उस दिशा में ले जा सकते हैं। मन ही है जो हमें जीवन-रूपी कारागार का कैदी बनाता है और यह मन ही है जो हमें कैदी बनाये रखता है।

१६. लेकिन मन ने ही जिसे बनाया है, मन ही उसे नष्ट भी कर सकता है, मन अपनी कृति को मटियामेट भी कर सकता है। यदि इसने आदमी को बंधन में बांधा है तो ठीक दिशा में अग्रसर होने पर यही आदमी को बंधन-मुक्त कर सकता है।

१७. यह है जो सम्यक् दृष्टि कर सकती है।

१८. तब परिव्राजकों ने प्रश्न किया "सम्यक्-दृष्टि का अन्तिम उद्देश्य क्या है ?" बुद्ध ने उत्तर दिया— "अविद्या का विनाश ही सम्यक्-दृष्टि का उद्देश्य है। यह मिथ्या-दृष्टि की विरोधिनी है।

१९. "और अविद्या का अर्थ है कि आदमी दुःख को न जान सके, आदमी दुःख के निरोध के उपाय को न जान सके—आदमी इन आर्य-सत्यों को न जान सके।

२०. सम्यक् दृष्टि का मतलब है कि आदमी कर्म-काण्ड के क्रिया-कलाप को व्यर्थ समझे, आदमी शास्त्रों की पवित्रता की मिथ्या-धारणा से मुक्त हो।

२१. सम्यक् दृष्टि का मतलब है कि आदमी मिथ्या-विश्वास से मुक्त हो, आदमी यह न समझता रहे कि कोई भी बात प्रकृति के नियमों के विरुद्ध घट सकती है।

२२. सम्यक् दृष्टि का मतलब है कि आदमी ऐसी सब मिथ्या-धारणाओं से मुक्त हो जो आदमी के मन की कल्पना-मात्र हैं और जिनका आदमी के अनुभव या यथार्थता से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं।

२३. सम्यक्-दृष्टि का मतलब है कि आदमी का मन स्वतन्त्र हो, आदमी के विचार स्वतन्त्र हों।

२४. हर आदमी की कुछ आशायें होती हैं, आकांक्षायें होती हैं; महत्वाकांक्षायें

होती हैं। सम्यक् संकल्प का मतलब है कि हमारी आशायें, हमारी आकांक्षायें ऊंचे स्तर की हों, निम्नस्तर की न हों; हमारे योग्य हों, अयोग्य न हों।

२५. सम्यक्वाणी का मतलब है कि आदमी (१) सत्य ही बोले, (२) आदमी असत्य न बोले, (३) आदमी दूसरों की बुराई न करता फिरे, (४) आदमी दूसरों के बारे में झूठी बातें न फैलाता फिरे, (५) आदमी किसी के प्रति गाली-गलौज का वा कठोर वचनों का व्यवहार न करे, (६) आदमी सभी के साथ विनम्र वाणी का व्यवहार करे, (७) आदमी व्यर्थ की, बेमतलब मूर्खतापूर्ण बातें न करता रहे, बल्कि उसकी वाणी बुद्धिसंगत हो, सार्थक हो और सोद्देश्य हो।

२८. जैसा मैंने समझाया सम्यक्-वाणी का व्यवहार न किसी के भय की अपेक्षा रखता है, और न किसी के पक्षपात की। इसका इससे कुछ भी सम्बन्ध नहीं होना चाहिये कि कोई "बड़ा आदमी" उसके बारे में क्या सोचने लगेगा अथवा सम्यक्-वाणी के व्यवहार से उसकी क्या हानि हो सकती है।

२७. सम्यक्-वाणी का माप-दण्ड न किसी "ऊपर के आदमी" की आज्ञा है, और न किसी व्यक्ति को हो सकनेवाला व्यक्तिगत लाभ।

२८. सम्यक्-कर्मान्त योग्य व्यवहार की शिक्षा देता है। हमारा हर कार्य ऐसा हो जिसके करते समय हम दूसरों की भावनाओं और अधिकारों का ख्याल रखें।

२९. सम्यक्-कर्मान्त का माप-दण्ड क्या है? सम्यक् कर्मान्त का माप-दण्ड यही है कि हमारा कार्य जीवन के जो मुख्य नियम हैं उनसे अधिक से अधिक समन्वय रखता हो।

३०. जब किसी आदमी के कार्य इन नियमों से समन्वय रखते हों, तो उन्हें हम सम्यक्-कर्म कह सकते हैं।

३१. प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीविका कमानी ही होती है। लेकिन जीविका कमाने के ढंगों और ढंगों में अन्तर है। कुछ बुरे हैं, कुछ भले हैं। बुरे ढंग वे हैं जिनसे किसी की हानि होती है अथवा किसी के प्रति अन्याय होता है। अच्छे ढंग वे हैं जिनसे आदमी बिना किसी को हानि पहुंचाये अथवा बिना किसी के साथ अन्याय किये अपनी जीविका कमा सकता है। यही सम्यक्-आजीविका है।

३२. सम्यक् व्यायाम; अविद्या को नष्ट करने के प्रयास की प्रथम सीढी है, इस दु:खद कारागार के द्वार तक पहुंचने का रास्ता ताकि उसे खोला जा सके।

३३. सम्यक्-व्यायाम के चार उद्देश्य हैं।

३४. एक है अष्टांगिक-मार्ग विरोधी चित्त-प्रवृत्तियों की उत्पत्ति को रोकना।

३५. दूसरा है ऐसी चित्त-प्रवृत्तियों को दबाना जो उत्पन्न हो गई हों।

३६. तीसरा है ऐसी चित्त-प्रवृत्तियों को उत्पन्न करना जो अष्टांगिक मार्ग की आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक हों।

३७. चौथा है ऐसी उत्पन्न चित्त-प्रवृत्तियों में और भी अधिक वृद्धि करना तथा उनका विकास करना ।

३८. सम्यक् स्मृति का मतलब है हर बात पर ध्यान दे सकना । यह मन की सतत् जागरुकता है। मन में जो अकुशल विचार उठते हैं, उन की चौकीदारी करना सम्यक्-स्मृति का ही एक दूसरा नाम है ।

३९. "हे परिव्राजको ! जो आदमी सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक्-व्यायाम और सम्यक् स्मृति को प्राप्त करना चाहता है, उसके मार्ग में पांच बाधाएँ या बन्धन आते हैं।"

४०. ये हैं लोभ, द्वेष, आलस्य, विचिकित्सा तथा अनिश्चय इन बाधाओं को जो वास्तव में कड़े बंधन ही हैं जीत लेना या तोड़ना आवश्यक है। इन बंधनों से मुक्त होने का उपाय समाधि है। लेकिन परिव्राजको ! यह समझ लेना चाहिये कि समाधि और 'सम्यक् समाधि' एक ही बात नहीं। दोनों में बड़ा अन्तर है।

४१. समाधि का मतलब है केवल चित्त की एकाग्रता। इसमें सन्देह नहीं कि इससे वैसे ध्यानों को प्राप्त किया जा सकता है कि जिनके रहते ये पांचों संयोजन या बन्धन स्थगित रहते हैं ।

४२. लेकिन ध्यान की ये अवस्थायें अस्थायी हैं । इसलिये संयोजन या बंधन भी अस्थायी तौर पर ही स्थगित रहते हैं। आवश्यकता है चित्त में स्थायी परिवर्तन लाने की। इस प्रकार का स्थायी-परिवर्तन सम्यक् समाधि के द्वारा ही लाया जा सकता है ।

४३. खाली समाधि एक नकारात्मक स्थिति है, क्योंकि यह इतना ही तो करती है कि संयोजनों को अस्थायी तौर पर स्थगित रखे। इसमें मन का स्थायी परिवर्तन निहित नहीं है। सम्यक् समाधि एक भावात्मक वस्तु है। यह मन को कुशल-कर्मों का एकाग्रता के साथ चिन्तन करने का अभ्यास डालती है और इस प्रकार मन की संयोजनोत्पन्न अकुशल-कर्मों की ओर आकर्षित होने की प्रवृत्ति को ही समाप्त कर देती है।

४४. सम्यक् समाधि मन को कुशल और हमेशा कुशल ही कुशल (भलाई ही भलाई) सोचने की आदत डाल देती है। सम्यक् समाधि मन को वह अपेक्षित शक्ति देती है, जिससे आदमी कल्याणरत रह सके ।

५. धर्मचक्र प्रवर्तन

शील का मार्ग

१. तदनन्तर बुद्ध ने उन परिव्राजकों को शील का पथ या सद्गुणों का मार्ग समझाया ।

२. उन्होंने उन्हे बताया कि शील के पथ का पथिक होने का मतलब है इन सद्गुणों का अभ्यास करना; (१) शील, (२) दान, (३) उपेक्षा, (४) नैष्क्रम्य, (५) वीर्य, (६) शान्ति, (७) सत्य, (८) अधिष्ठान, (९) करुणा, और (१०) मैत्री।

३. उन परिव्राजकों ने बुद्ध से इन सद्गुणों का यथार्थ अर्थ समझना चाहा।

४. तब बुद्ध ने उनकी शंका मिटा कर उन्हे सन्तुष्ट करने के लिये कहा—

५. "शील का मतलब है नैतिकता, अकुशल न करने की प्रवृत्ति और कुशल करने की प्रवृत्ति; बुराई करने में लज्जा-भय मानना; लज्जा-भय के कारण पाप से बचे रहने का प्रयास करना शील है। शील का मतलब है पाप-भीरुता।

६. नैष्क्रम्य का मतलब है सांसारिक काम-भोगों का त्याग।

७. दान का मतलब है बदले में किसी भी प्रकार की स्वार्थ-पूर्ति की आशा के बिना दूसरों की भलाई के निमित्त अपनी सम्पत्ति का ही नहीं, अपने रक्त, अपने शरीर के अंगों और यहां तक कि अपने प्राणों तक का बलिदान कर देना।

८. वीर्य का मतलब है सम्यक् प्रयत्न। जो कुछ एक बार करने का निश्चय कर लिया अथवा जो कुछ करने का संकल्प कर लिया उसे अपनी पूरी सामर्थ्य से करने का प्रयास करना और बिना उसे पूरा किये पीछे मुड़कर नहीं देखना।

९. शान्ति का मतलब है क्षमा-शीलता। घृणा के उत्तर में घृणा नहीं करना-यही इसका सार है। क्योंकि घृणा से तो घृणा कभी मिटती ही नहीं। क्षमा-शीलता से ही घृणा का मर्दन होता है।

१०. सत्य का मतलब है मृषावादी न होना। आदमी को कभी झूठ नहीं बोलना चाहिये। उसे सत्य और केवल सत्य ही बोलना चाहिये।

११. अधिष्ठान का मतलब है अपने उद्देश्य तक पहुंचने का दृढ़ निश्चय।

१२ करुणा का मतलब है सभी मानवों के प्रति प्रेमभरी दया।

१३. मैत्री का मतलब है कि सभी प्राणियों के प्रति भ्रातृ-भावना हो, मित्रों के प्रति ही नहीं, शत्रुओं तक के प्रति; आदमियों के प्रति ही नहीं, सभी जीवधारी प्राणियों के प्रति।

१४. उपेक्षा का मतलब है अनासक्ति, यह दूसरों के सुख-दुःख के प्रति निरपेक्ष-भाव रखने से सर्वथा भिन्न वस्तु है। यह चित्त की वह अवस्था है जिसमें प्रिय-अप्रिय कुछ नहीं है। फल कुछ भी हो—उसकी ओर से निरपेक्ष रहकर—साधना में रत रहना।

१५. इन सद्गुणों का आदमी को अपनी पूरी सामर्थ्य भर अभ्यास करना होता है। इसीलिये उन्हे 'पारमिता' कहा गया है।

६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन

१. अपने धर्म का उपदेश देकर और उसकी सम्यक् व्याख्या करके बुद्ध ने परिव्राजकों से प्रश्न किया :–

२. "क्या आदमी के चरित्र की पवित्रता ही संसार की भलाई की आधार-शिला नहीं है ? "उनका उत्तर था—"हाँ, यह ऐसा ही है ।"

३. और फिर बुद्ध ने पूछा "क्या ईर्षा, राग, अज्ञान, हिंसा, चोरी, व्यभिचार और असत्य चरित्र की पवित्रता की जड़ नहीं खोद देते ? क्या व्यक्तिगत पवित्रता के लिये यह आवश्यक नहीं है कि आदमी में इतना चारित्रिक बल हो कि वह इस प्रकार की बुराइयों के वश में न आ सके ? यदि किसी आदमी में व्यक्तिगत पवित्रता ही नहीं है तो वह जन-कल्याण कैसे कर सकता है ?" उनका उत्तर था—"हाँ, यह ऐसा ही है ।"

४. "और आदमी दूसरों को अपना गुलाम बनाना, दूसरों को अपने वश में रखना क्यों चाहते हैं ? आदमी दूसरों के सुख-दुःख की ओर से उदासीन क्यों हैं ? क्या यह इसलिये नहीं है कि एक आदमी दूसरे के प्रति योग्य व्यवहार नहीं करता ?" उनका उत्तर था: "हाँ, यह ऐसा ही है ।"

५. "तो क्या अष्टांग मार्ग का अनुसरण सम्यक्-दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् आजीविका, सम्यक्-कर्मान्त, सम्यक्-व्यायाम, सम्यक्-स्मृति, सम्यक् समाधि—संक्षेप में सद्धर्म के अनुसार जीवन यापन—यदि प्रत्येक उस पथ पर चले उस सारी अमानवता का, उस सारे अन्याय का, जो एक आदमी दूसरे के प्रति करता है, अन्त नहीं कर देगा ?" उनका उत्तर था "हाँ, यह ऐसा ही है ।"

६. अब शील या सद्गुणों का उल्लेख करते हुए कहा— "क्या अभाव-ग्रस्तों का अभाव दूर करने के लिये, क्या दरिद्रों की दरिद्रता दूर करने के लिये और सामान्य जन-कल्याण करने के लिये दान आवश्यक नहीं है ? क्या जहां कष्ट है, जहां दरिद्रता है, उधर ध्यान देकर उसे दूर करने के लिये करुणा की आवश्यकता नहीं है ? क्या निस्वार्थ-भाव से काम करने के लिये निष्काम-भाव की आवश्यकता नहीं है ? क्या व्यक्तिगत लाभ न होने पर भी सतत् प्रयत्न में लगे रहने के लिये उपेक्षा की आवश्यकता नहीं है ?

७. "क्या आदमी से प्रेम करना आवश्यक नहीं है ?" उनका उत्तर था, "हाँ" ।

८. मैं एक कदम आगे बढ़कर कहता हूँ, प्रेम करना पर्याप्त नहीं है, जिस चीज की आवश्यकता है, वह मैत्री है । प्रेम की अपेक्षा इस का क्षेत्र व्यापक है । इस का मतलब है न केवल आदमियों के प्रति मैत्री बल्कि प्राणी-मात्र के प्रति मैत्री । यह आदमियों में ही सीमित नहीं है । क्या ऐसी मैत्री अपेक्षित नहीं है ?

इसके अतिरिक्त दूसरी कौन सी चीज है जो सभी आदमियों को वह सुख प्रदान कर सके जो सुख आदमी अपने लिये चाहता है, आदमी का चित्त पक्षपातरहित रहे, सभी के लिये खुला, सभी के लिये प्रेम और घृणा किसी से भी नहीं ?"

९. उन सब ने कहा, "हाँ" ।

१०. "लेकिन इन सद्‌गुणों के आचरण के साथ प्रज्ञा जुड़ी रहनी चाहिये— निर्मल बुद्धि ।

११. "क्या प्रज्ञा आवश्यक नहीं है ?" परिव्राजक मौन रहे, उन्हे अपने प्रश्न का उत्तर देने के लिये मजबूर करने की दृष्टि से तथागत ने अपना कथन जारी रखा । उन्होंने कहा :— "भला आदमी हम उसीको कहेंगे जो कोई बुरा काम न करे, बुरी बात न सोचे, बुरे तरीके से अपनी जीविका न कमाये और मुंह से कोई ऐसी बात भी न निकाले जिससे किसी की हानि हो अथवा किसी को कष्ट पहुंचे ।" परिव्राजक बोले, "हाँ, यह ऐसा ही है ।"

१२. "लेकिन क्या सत्कर्म भी एक अन्धे की भाँति किये जाने चाहिये ? मैं कहता हूँ कि नहीं । यह पर्याप्त नहीं है । यदि यह पर्याप्त होता तो हम एक छोटे बच्चे के बारे में कह सकते कि वह हमेशा भला ही भला है । क्योंकि अभी एक छोटा बच्चा यह भी नहीं जानता कि शरीर क्या होता है, वह लात चलाते रहने के अतिरिक्त और शरीर से कर ही क्या सकता है ? वह यह भी नहीं जानता कि वाणी क्या है ? वह चिल्लाने के अतिरिक्त और उससे कोई बुरी बात कर ही क्या सकता है ? वह यह भी नहीं जानता कि विचार क्या होता है ? वह ज्यादा से ज्यादा प्रसन्नता के मारे किलकारी भर मार सकता है । वह यह नहीं जानता कि जीविकार्जन क्या होता है ? वह किसी बुरे तरीके से अपनी जीविका क्या कमा सकता है ? वह अपनी मां की छाती से दूध पीने के अतिरिक्त और कुछ जानता ही नहीं ।

१३. "इसलिये सद्‌गुणों का अनुसरण भी प्रज्ञा-पूर्वक होना चाहिए, अर्थात् निर्मल बुद्धि के साथ ।

१४. "एक और कारण भी है जिसकी वजह से प्रज्ञा पारमिता इतनी अधिक महत्वपूर्ण और इतनी अधिक आवश्यक है । दान तो होना ही चाहिये । किन्तु बिना प्रज्ञा के दान का भी दुष्परिणाम हो सकता है । करुणा तो होनी ही चाहिये । किन्तु बिना प्रज्ञा के करुणा भी बुराई की समर्थक बन जाती है । सभी दूसरी पारमितायें प्रज्ञा-पारमिता की कसौटी पर खरी उतरनी चाहिये । निर्मल-बुद्धि का ही दूसरा नाम प्रज्ञा पारमिता है ।

१५. "मेरी स्थापना है कि आदमी को अकुशल-कर्म का ज्ञान होना चाहिये, अकुशल-कर्म की उत्पत्ति किस प्रकार होती है; इसी तरह उसे कुशल-कर्म का भी ज्ञान होना चाहिये, कुशल-कर्म की उत्पत्ति कैसे होती है ? इसी प्रकार आदमी को कुशल-कर्म और अकुशल-कर्म का भेद भी स्पष्ट ज्ञात होना चाहिये । इस

प्रकार के ज्ञान के बिना चाहे कर्म-विशेष अपने में कुशल कर्म ही क्यों न हो, चाहे शुभ-कर्म अपने में शुभ-कर्म ही क्यों न हो, तब भी यथार्थ कुशल-भाव या यथार्थ शुभ-भाव नहीं ही है। इसीलिये मैं कहता हूँ कि प्रज्ञा एक आवश्यक सद्गुण है।"

१६. तब बुद्ध ने परिव्राजकों को इस प्रकार की प्रेरणा देते हुए अपना प्रवचन समाप्त किया :—

१७. "हो सकता है कि तुम मेरे धर्म को निराशावादी धर्म समझ बैठो, क्योंकि मैं आदमियों का ध्यान मानव-जाति के दु:ख की ओर आकर्षित करता हूँ। मेरे धर्म के बारे में ऐसी धारणा बनाना गलती होगी।

१८. "निस्सन्देह मेरा धर्म दु:ख के अस्तित्व को स्वीकार करता है, किन्तु यह उतना ही जोर उस दु:ख के दूर करने पर भी देता है।

१९. "मेरे धर्म में दोनों बातें है—इस में मानव जीवन का उद्देश्य भी निहित है और यह अपने में आशा का संदेश भी है।

२०. "इसका उद्देश्य है अविद्या का नाश, जिसका मतलब है दु:ख के अस्तित्व के सम्बन्ध में अज्ञान का नाश।

२१. "यह आशा का संदेश भी है क्योंकि यह दु:ख के नाश का मार्ग बताता है।

२२. "क्या तुम इस सब से सहमत हो या नहीं ?" परिव्राजको का उत्तर था— "हाँ"।

७. परिव्राजकों की धर्म-दीक्षा

१. उन पांचों परिव्राजकों ने यह तुरन्त देख लिया कि यह वास्तव में एक नया धर्म है। जीवन की समस्या के प्रति इस नये दृष्टि-कोण से वे इतने अधिक प्रभावित हुए कि सभी एक साथ कहने लगे "संसार के इतिहास में इससे पहले किसी भी धर्म के संस्थापक ने कभी यह शिक्षा नहीं दी कि दुनिया के दु:ख की स्वीकृति ही धर्म का वास्तविक आधार है।

२. "संसार के इतिहास में इससे पहले कभी किसी भी धर्म के संस्थापक ने यह शिक्षा नहीं दी कि दुनिया के इस दु:ख को दूर करना ही धर्म का वास्तविक उद्देश्य है।

३. "संसार के इतिहास में इससे पहले किसी ने भी कभी मुक्ति का ऐसा मार्ग नहीं सुझाया था जो इतना सरल हो, जो मिथ्या विश्वास और 'अपौरुषेय' शक्तियों की मध्यस्थता से इतना मुक्त हो, जो इतना स्वतन्त्र ही नहीं बल्कि जो किसी 'आत्मा' या 'परमात्मा' के विश्वास का इतना विरोधी हो और जो मोक्ष लाभ के लिये मरणान्तर किसी जीवन में विश्वास रखना या न रखना भी अनिवार्य न मानता हो।

४. "संसार के इतिहास में इस से पहले किसीने भी कभी ऐसे धर्म की स्थापना नहीं की, जिसका 'इलहाम' या 'ईश्वर-वचन' से किसी भी तरह का कुछ भी सम्बन्ध न हो और जिसके 'अनुशासन' आदमी की सामाजिक आवश्यकताओं के अध्ययन के परिणाम हों और जो किसी 'ईश्वर' की आज्ञायें न हों।

५. "संसार के इतिहास में इससे पहले किसी ने भी कभी 'मोक्ष' का यह अर्थ नहीं किया कि वह एक ऐसा 'सुख' है जिसे आदमी धर्मानुसार जीवन व्यतीत करने से, अपने ही प्रयत्न द्वारा यहीं इसी पृथ्वी पर प्राप्त कर सकता है।"

६. उन परिव्राजकों ने जब भगवान् बुद्ध से उनके द्वारा उपदिष्ट नया सद्धर्म सुना तो इसी प्रकार अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति की।

७. उन्हे लगा कि बुद्ध के रूप में उन्हे एक ऐसे जीवन–सुधारक मिल गये हैं, जिनका रोम-रोम धर्म की भावना से ओत-प्रोत है, और जो अपने युग के बौद्धिक ज्ञान से सुपरिचित हैं, जिन में ऐसी मौलिकता है और साहस है कि वे विरोधी विचारों की जानकारी रखने के वावजूद मुक्ति के एक ऐसे मार्ग का प्रतिपादन कर सकें, जिस मुक्ति को यहीं, इसी जीवन में आत्म-साधना और आत्म-संयम द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

८. बुद्ध के लिये उनके मन में ऐसी असीम श्रद्धा उत्पन्न हुई कि उन्होंने उनके प्रति तुरन्त आत्म-समर्पण कर दिया और प्रार्थना की कि बुद्ध उन्हे अपना शिष्य बना लें।

९. बुद्ध ने उन्हे 'एहि भिक्खवे' (भिक्षुओ, आओ) कहकर भिक्षु-संघ में दीक्षित कर लिया। वे पंचवर्गीय भिक्षु नाम से प्रसिद्ध हुए।[6]

१. महावग्ग।
२. संयुक्त निकाय और विनय (महावग्ग)।
३. संयुत्त निकाय
४. मज्झिमनिकाय, सम्मदिट्ठि सुत्त।
५. मज्झिमनिकाय, सम्मादिट्ठि सुत्त।
६. सं० नि० ५५ : २ : १; विनय (महावग्ग १)।

तीसरा भाग

कुलीनों तथा धार्मिकों की धर्म-दीक्षा

१. यश कुल-पुत्र की धर्म-दीक्षा

१. उस समय वाराणसी में यश नाम का एक गृहपतिपुत्र रहता था। वह तरुण था और उसकी आकृति बहुत आकर्षक थी। वह अपने माता-पिता को बहुत प्यारा था और बहुत श्री-सम्पन्न था। उसके बहुत से नौकर-चाकर थे, बहुत सी पत्नियाँ थीं और उसका सारा समय नाचने-गाने, सुरा पान करने आदि में ही बीतता था। वह विलासमय-जीवन व्यतीत करता था।

२. कुछ समय बीतने पर उसे विरति ने आ घेरा। उसे इस बे-होशी से कैसे छुटकारा मिले? क्या जो जीवन वह व्यतीत कर रहा था, उससे कोई श्रेष्ठतर जीवन भी था? यह न सोच सकने के कारण कि वह क्या करे, उसने अपने पिता का घर छोड़ देने का निश्चय किया।

३. एक रात उसने अपने पिता का घर छोड़ दिया और यों ही भटकने लगा; वह घूमता घूमता ऋषिपतन की ओर ही चला आया।

४. क्लान्ति के मारे वह एक जगह बैठ गया और बैठा बैठा अकेला ही जोर जोर से बड़बड़ाने लगा "मैं कहाँ हूँ? कौन-सा रास्ता है? ओह! कितनी परेशानी है? ओह! कितना दुःख है?"

५. यह घटना उसी रात की है जिस दिन तथागत ने ऋषिपतन में पंचवर्गीय भिक्षुओं को अपना उपदेश दिया था। ठीक उस समय जब यश ऋषिपतन की ओर बढ़ा चला आ रहा था, तथागत, जो कि ऋषिपतन में ही विराजमान थे, बहुत सबेरे उठकर, खुली हवा में टहल रहे थे। और तथागत ने देखा कि इस प्रकार के दुःखद वचन कहता हुआ यश कुल-पुत्र चला आ रहा है।

६. और तथागत ने उसकी दुःखभरी आवाज सुनकर कहा "कहीं कोई परेशानी नहीं है, कहीं कोई दुःख नहीं है, आ मैं तुझे रास्ता दिखाऊंगा।" तब तथागत ने यश कुल-पुत्र को अपना उपदेश दिया।

७. और जब यश ने वह उपदेश सुना, वह हर्षित हुआ, वह प्रमुदित हुआ। उसने अपने सुनहरे जूते छोड़ दिये और जाकर तथागत के पास बैठ उन्हें नमस्कार किया।

८. बुद्ध के वचन हृदयङ्गम कर यश ने तथागत से प्रार्थना की वह उसे शिष्य रूप में स्वीकार करें।

९. तब तथागत ने उसे "आ" कहा और उसे भी भिक्षु-धर्म की दीक्षा दे दी।

१०. यश के माता-पिता बड़े परेशान थे कि यश कहाँ चला गया। पिता यश की खोज में निकला। यश का पिता ठीक उसी जगह से गुजरा जहाँ स्वयं भगवान् बुद्ध और भिक्षु-वेष में यश कुल-पुत्र बैठा था। यश के पिता ने तथागत से प्रश्न किया–"कृपया कहें कि क्या आपने मेरे पुत्र यश को कहीं देखा है ?"

११. तथागत का उत्तर था–"आयें आप अपने पुत्र को देख सकेंगे।" यश का पिता आया और अपने पुत्र यश के पास ही बैठा, किन्तु उसे पहचान नहीं सका।

१२. तथागत ने उसे बताया कि कैसे यश उनके पास आया था और कैसे उनका प्रवचन सुनकर वह भिक्षु बन गया है। तब पिता ने अपने पुत्र को पहचान लिया। उसे इस बात से प्रसन्नता हुई कि उसके पुत्र ने शील ग्रहण किये हैं।

१३. "पुत्र यश !" यश का पिता बोला, "तुम्हारी मां तुम्हारे वियोग के दुःख से बहुत दुःखी है। घर आकर उसे सुखी करो।"

१४. तब यश ने तथागत की ओर देखा, और तथागत ने यश के पिता से पूछा–"गृहपति ! क्या तुम यह चाहते हो कि यश फिर गृहस्थ बन जाये और जैसे पहले काम-भोग का जीवन व्यतीत करता था, वैसा ही अब करे ?"

१५. यश के पिता ने उत्तर दिया–"यदि मेरे पुत्र यश को आप के साथ ठहरना ही अच्छा लगता है, तो वह आप के साथ ही ठहरे।" यश ने एक भिक्षु ही बने रहना ठीक समझा।

१६. विदा लेने से पहले, यश के पिता ने कहा– "भिक्षु संघ सहित तथागत मेरे घर पर भोजन करना स्वीकार करें।"

१७. चीवर-धारण कर, भिक्षा पात्र हाथ में ले, यश कुल-पुत्र सहित तथागत यश गृहपति के घर पहुँचे।

१८. घर आने पर मां और यश कुल-पुत्र की पूर्व भार्या ने भी तथागत के दर्शन किये। भोजनान्तर तथागत ने यश गृहपति के परिवार के लोगों को धर्मोपदेश दिया। वे बहुत प्रमुदित हुए और उन्होंने तथागत की शरण ग्रहण की।

१९. यश के चार मित्र थे, जो वाराणसी के ही धनियों के पुत्र थे। उनके नाम थे विमल, सुबाहु, पूर्णजित् तथा गवाम्पति।

२०. जब यश के मित्रों ने सुना कि यश ने 'बुद्ध' और उनके धर्म की शरण ग्रहण की है, तो उन्हें लगा कि जो बात यश के लिये अच्छी है, वही उनके लिये भी अच्छी होगी।

२१. इसलिये वे यश के पास गये और उससे कहा कि वह भगवान् बुद्ध से उनकी ओर से प्रार्थना करे कि वे उन्हें भी अपना शिष्य बना लें।

२२. यश ने स्वीकार किया और भगवान् से प्रार्थना की—"कृपया इन मेरे चार मित्रों को धर्मोपदेश देकर कृतार्थ करें।" भगवान् ने स्वीकार किया। यश के मित्रों ने भी 'धर्म' की दीक्षा ग्रहण की।[१]

२. काश्यप-बन्धुओं की धर्म-दीक्षा

१. काश्यप-परिवार नामक बाराणसी में एक प्रसिद्ध परिवार था। उस परिवार में तीन भाई थे। तीनों बहुत शिक्षित थे और अत्यन्त धार्मिक।

२. कुछ समय बाद ज्येष्ठ पुत्र ने संन्यास लेने की सोची। तदनुसार उसने गृह-त्याग किया, संन्यास ग्रहण किया और उरुवेल की ओर गया, जहां पहुंच कर उसने अपना एक आश्रम स्थापित किया।

३. उसके दोनों छोटे भाइयों ने भी उसका अनुसरण किया और वे भी संन्यासी बन गये।

४. वे सभी अग्नि-होत्री अर्थात् आग की पूजा करने वाले थे। बड़ी-बड़ी जटायें धारण करने के कारण वे जटिल कहलाते थे।

५. तीनों भाइयों में से एक उरुवेल काश्यप कहलाता था, दूसरा नदी-काश्यप तीसरा गया-काश्यप।

६. इन तीनों में से उरुवेल काश्यप के पांच सौ जटिल शिष्य थे, नदी-काश्यप के तीन सौ जटिल शिष्य थे और गया-काश्यप के दो सौ जटिल शिष्य थे। इनमें से मुख्य उरुवेल काश्यप ही था।

७. उरुवेल काश्यप की दूर-दूर तक ख्याति हो गई थी। उसके बारे में कहा जाता था कि उसे जीते जी मुक्ति प्राप्त हो गई है। फल्गु नदी के तट पर स्थित उसके आश्रम में बहुत दूर-दूर के लोग आते थे।

८. जब भगवान् बुद्ध को उरुवेल काश्यप की ख्याति का पता लगा तो उनके मन में आया कि उरुवेल काश्यप को धर्मोपदेश दिया जाय और सम्भव हो तो धर्म-दीक्षा भी।

९. उसके निवास का पता-ठिकाना पाकर तथागत उरुवेल पहुंचे।

१०. तथागत उससे मिले और उसे शिक्षित करने तथा दीक्षित करने का योग्य अवसर पाने के लिये बोले—"काश्यप। यदि तुम्हें असुविधा न हो तो एक रात मैं तुम्हारे आश्रम में रहूं।"

११. काश्यप का उत्तर था, "मैं इस से सहमत नहीं हूं। मुचलिंद नाम का एक जंगली नागराजा यहां रहता है। उसी का यहां शासन चलता है। वह बड़ा भयानक है। वह सभी अग्नि-पूजक साधुओं का विशेष विरोधी है। वह रात को

इस आश्रम में आता है और बड़ी हानि पहुंचाता है। मुझे डर है कि वह तुम्हें भी वैसा ही कष्ट न दे जैसा वह मुझे देता है।"

१२. काश्यप को यह पता नहीं था कि नाग लोग बुद्ध के मित्र और अनुयायी बन चुके थे। लेकिन तथागत इसे जानते थे।

१३. इसलिये तथागत ने पुन: आग्रह किया: "इसकी कोई सम्भावना नहीं है कि वह मुझे किसी तरह का कष्ट देगा। काश्यप! एक रात मुझे अपनी अग्नि-शाला में रहने दे।"

१४. काश्यप बार-बार इनकार करता रहा और तथागत बार-बार आग्रह करते रहे।

१५. तब काश्यप ने कहा, "मैं अधिक विवाद नहीं करना चाहता। किन्तु मुझे डर बहुत है। जो अच्छा समझें, करे।"

१६. तथागत ने उसी समय अग्नि-शाला में प्रवेश किया और अपना आसन जमा लिया।

१७. नागराज मुचलिन्द ने अपने समय पर शाला में प्रवेश किया। लेकिन काश्यप के स्थान पर वहां उसने तथागत को बैठे देखा।

१८. तथागत की शान्त गम्भीर मुद्रा को देखकर मुचलिन्द को ऐसा लगा मानो वह किसी दिव्य पुरुष के सामने है। उसने सिर झुका कर तथागत की पूजा की।

१९. उस रात काश्यप को ठीक-ठीक नींद नहीं आई। वह यही सोचता रहा कि उसके अतिथि के साथ क्या बीती होगी? इसलिये वह बड़ी घबराहट लिये जागा। उसे डर था कि शायद उस रात उसका अतिथि जला ही दिया गया हो।

२०. प्रात:काल होने पर अपने अनुयायियों सहित काश्यप देखने के लिये आया। मुचलिन्द द्वारा भगवान् बुद्ध को हानि पहुंचाये जाने की तो बात ही क्या उन्होंने देखा कि मुचलिन्द भगवान् बुद्ध की पूजा कर रहा है।

२१. यह दृश्य देखा तो काश्यप को लगा कि वह कोई चमत्कार देख रहा है, उसकी आंखों के सामने कोई प्रातिहार्य घट रहा है।

२२. उस चमत्कार से प्रभावित होकर काश्यप ने भगवान् बुद्ध से प्रार्थना की कि वे वहीं एक आश्रम में रहें और वह स्वयं उनकी देख-भाल करेगा।

२३. भगवान् बुद्ध ने वहां ठहरना स्वीकार किया।

२४. लेकिन दोनों के दो भिन्न दृष्टि-कोण थे। काश्यप ने समझा कि उसे मुचलिन्द नागराज के विरुद्ध संरक्षण मिल गया। लेकिन भगवान् बुद्ध ने सोचा कि एक न एक दिन काश्यप को धर्मोपदेश देने का अवसर आयेगा ही।

२५. लेकिन काश्यप ने कभी कोई ऐसा अवसर नहीं दिया। वह समझता था कि तथागत एक चमत्कार कर सकने वाले के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं।

२६. एक दिन तथागत ने स्वयं ही काश्यप से पूछा—"क्या तुम अर्हत् हो?"

२७. "यदि तुम अर्हत् नहीं हो, तो यह अग्नि-होत्र तुम्हारा क्या कल्याण करेगा?"

२८. काश्यप बोला—"मैं नहीं जानता कि अर्हत् क्या होता है? कृपया मुझे समझायें।"

२९. तब भगवान् ने कहा—"आर्य अष्टांगिक मार्ग पर चलने वाले पथिक के पथ के बाधक सभी राग-द्वेषों को जिसने जीत लिया है, वह अर्हत् है। अग्नि-होत्र किसी को पाप-मुक्त नहीं कर सकता।"

३०. यूं काश्यप अभिमानी स्वभाव का था। लेकिन उसके मन पर तथागत के तर्क का प्रभाव पड़ा। अपने मन को कुछ झुकाकर और विनम्र बनाकर, यहां तक कि उसे सद्धर्म के ग्रहण करने का पात्र बनाकर उसने कहा कि लोक-गुरु बुद्ध की बुद्धि और उसकी बुद्धि का कोई मुकाबला नहीं।

३१. और इस प्रकार, अंत में सभी शंकाओं का समाधान होने पर, उरुवेल काश्यप ने तथागत के धर्म को स्वीकार किया और उनका अनुयायी हो गया।

३२. अपने गुरु के अनुगामी बन, काश्यप के सभी शिष्यों ने भी सद्धर्म ग्रहण किया। इस प्रकार काश्यप और उसके सभी शिष्य दीक्षित हो गये।

३३. तब उरुवेल काश्यप ने अग्नि-होत्र करने के अपने सभी पात्र आदि उठाकर नदी में फेंक दिये जो जाकर पानी में तैरने लगे।

३४. नदी-काश्यप और गया-काश्यप ने जो नदी के नीचे की ओर रहते थे' अग्नि-होत्र के सामान को नदी में बहते जाते देखा। वे बोले—"यह सारा सामान हमारे भाई का है। उसने यह सारा सामान फेंक क्यों दिया है? कोई न कोई असाधारण घटना घटी होगी।" वे बहुत अधिक बेचैन हो गये। अपने पांच पांच सौ अनुयायियों सहित वे अपने भाई से मिलने के लिये नदी के ऊपर की ओर आगे बढ़े।

३५. सभी अनुयायियों सहित अपने भाई को श्रमण-वेष पहने देख उनके मन में नाना तरह के विचार उठे। तब उन्होंने इस का कारण जानना चाहा। उरुवेल काश्यप ने उन्हें बताया कि उसने किस प्रकार बुद्ध के धर्म को अंगिकार कर लिया है।

३६. वे बोले—"अब हमारे भाई ने बुद्ध के धर्म को स्वीकार कर लिया है, तो हमें अभी उसका अनुकरण करना चाहिये।"

३७. उन्होंने अपने बड़े भाई से अपनी इच्छा व्यक्त की। तब अपने सभी अनुयायियों सहित वे दोनों भाई तथागत का प्रवचन सुनने के लिये सामने उपस्थित

किये गये। तथागत ने अग्नि-होत्री धर्म और अपने धर्म की तुलना करते हुए प्रवचन किया।

३८. उन दोनों भाइयों को उपदेश देते हुए भगवान् बुद्ध ने कहा—"जिस प्रकार लकड़ी से लकड़ी के रगड़ खाने पर आग पैदा होती है उसी प्रकार असम्यक् विचार जब आपस में रगड़ खाते हैं तो अविद्या का जन्म होता है।

३९. "काम, क्रोध तथा अविद्या ये ही वह अग्नि हैं जो सभी चीजों को भस्मसात् कर देती है और संसार में दुःख और शोक का कारण बनती है।

४०. "लेकिन यदि एक बार आदमी सही रास्ते पर चल सके और काम, क्रोध तथा अविद्या रूपी आग को बुझा सके तो फिर विद्या और पवित्र आचरण जन्म लेते हैं।

४१. "इसलिये जब एक बार आदमी को अकुशल कर्मों से घृणा हो जाती है तो उससे तृष्णा का क्षय होता है। तृष्णा का क्षय करने से ही आदमी श्रमण बनता है।"

४२. उन बड़े ऋषियों ने जब ये बुद्ध-वचन सुने तो अग्नि-होत्र से उनकी सर्वथा उपेक्षा हो गई। उन्होंने भी बुद्ध का शिष्यत्व स्वीकार करने की इच्छा की।-

४३. काश्यप-बन्धुओं की दीक्षा भगवान् बुद्ध की बड़ी विजय थी। क्योंकि जनता के मन पर उनका बड़ा प्रभाव था।

३. सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन की धर्म-दीक्षा

१. जिस समय भगवान् बुद्ध राजगृह में निवास करते थे, उसी समय अपने ढाई सौ अनुयायियों के साथ सञ्जय नाम का एक प्रसिद्ध परिव्राजक भी वहीं रहता था।

२. उसके शिष्यों में दो ब्राह्मण तरुण भी थे—सारिपुत्र और मौद्गल्यायने।

३. सारिपुत्र और मौद्गल्यायन सञ्जय की शिक्षाओं से सन्तुष्ट न थे और किसी श्रेष्ठतर धर्म की खोज में थे।

४. एक दिन की वात है कि पञ्चवर्गीय भिक्षुओं में से एक भिक्षु अश्वजित् पूर्वाह्न में अपना चीवर पहन तथा पात्र और चीवर ले, भिक्षाटन करने के लिये राज-गृह नगर में प्रविष्ट हुए।

५. सारिपुत्र पर अश्वजित् की गम्भीर गति-विधि का बड़ा प्रभाव हुआ। अश्वजित् स्थविर को देख सारिपुत्र ने सोचा "निश्चय से यह भिक्षु उन भिक्षुओं में से एक होगा, जो संसार में इस पद के योग्य हैं। यह कैसा होगा, यदि मैं इस भिक्षु के पास जाऊं और इससे पूंछूं कि मित्र, तुम किसके नाम से प्रव्रजित हुए हो? तुम्हारा गुरु कौन है? तुम किस का धर्म मानते हो?"

६. फिर सारिपुत्र ने सोचा—"यह समय इस भिक्षु से कुछ पूछने का नहीं ? यह भिक्षाटन के लिये भीतरी आंगन में प्रवेश कर चुका है। कैसा हो यदि सभी अर्थियों की तरह मैं इस भिक्षु के पीछे पीछे हो लूं ?"

७. राजगृह में भिक्षाटन कर चुकने पर अश्वजित् स्थविर प्राप्त-भिक्षा ग्रहण कर वापस लौट गये। तब सारिपुत्र वहीं पहुंचे जहां अश्वजित् थे। समीप पहुंच कर कुशल-क्षेम पूछ एक ओर खड़े हो गये।

८. एक ओर खड़े हुए सारिपुत्र परिव्राजक ने अश्वजित् स्थविर से कहा—"मित्र ! आपकी शक्ल शान्त है। आपकी छबि आभा-पूर्ण है। मित्र ! आप किसके नाम से प्रव्रजित हुए हैं ? आपका गुरु कौन है ? आप किस के धर्म को मानते हैं ?"

९. अश्वजित् का उत्तर था—"मित्र ! निश्चय से जो शाक्य-कुल-प्रव्रजित महान् श्रमण हैं, मैं उन्हीं के नाम से प्रव्रजित हुआ हूँ, वे ही मेरे गुरु हैं और मैं उन्हीं के धर्म को मानता हूँ।"

१०. "और हे पूज्यवर ! आपके गुरु का सिद्धान्त क्या है ? वह आपको किस बात की शिक्षा देते हैं ?"

११. "मित्र ! मैं एक नया ही शिष्य हूँ, मुझे प्रव्रजित हुए थोड़ा ही समय हुआ है। मैंने अभी-अभी—कुछ ही समय पूर्व—इस धर्म-विनय को ग्रहण किया है। मैं विस्तार-पूर्वक तो आपको धर्म बता नहीं सकता। लेकिन मैं आप को संक्षेप में ही बताऊँगा।"

१२. तब परिव्राजक सारिपुत्र ने स्थविर अश्वजित् से कहा—"मित्र ! कम या अधिक आप जितना चाहें मुझे बतायें, लेकिन मुझे उसका सार अवश्य बता दें। मैं सार ही चाहता हूं। बहुत से शब्दों को लेकर क्या करूंगा ?"

१३. तब अश्वजित् ने सारिपुत्र को तथागत की शिक्षाओं का सार बताया, जिससे सारिपुत्र का पूर्ण संतोष हो गया।

१४. यद्यपि सारिपुत्र और मौद्गल्यायन भाई भाई नहीं थे। लेकिन वे दोनों दो भाइयों के ही समान थे। उन्होंने परस्पर एक दूसरे को वचन दे रखा था। जिसे सत्य की पहले प्राप्ति हो वह दूसरे को इसकी सूचना देगा। यही दोनों की आपस की वचन-बद्धता थी।

१५. तदनुसार सारिपुत्र वहां पहुँचे जहां मौद्गल्यायन थे। उन्हें देखकर मौद्गल्यायन ने सारिपुत्र से कहा—"मित्र ! आपकी शक्ल शान्त है। आपकी छबि आभा-पूर्ण है। तो क्या आपने सत्य प्राप्त कर लिया है ?"

१६. "हां मित्र ! मैंने सत्य प्राप्त कर लिया है।" "और मित्र ! आपने सत्य को कैसे पा लिया है ?" तब सारिपुत्र ने वह सारी घटना कह सुनाई जो उसके और अश्वजित् के साथ घटी थी।

१७. तब मौद्गल्यायन से सारिपुत्र से कहा—"तो मित्र ! हम भगवान् तथागत के पास चलें ताकि वह हमारे शास्ता बनें।"

१८. सारिपुत्र ने कहा—"मित्र ! यह जो ढाई सौ परिव्राजक यहां रहते हैं, ये हमारी ओर ही देखकर यहाँ रहते हैं। इससे पहले कि हम उन्हें छोड़कर जायें, हमारे लिये यह उचित है कि हम उन्हें बता दें। वे जो चाहेंगे करेंगे।"

१९. तब सारिपुत्र और मौद्गल्यायन वहाँ गये जहाँ वे थे। उनके पास जाकर उन्होंने कहा—"हम महाश्रमण की शरण ग्रहण करने जा रहे हैं। वह महाश्रमण ही हमारे शास्ता हैं।"

२०. उन्होंने उत्तर दिया :—"आपके ही कारण हम यहाँ रहते रहे हैं और आप को ही मानते रहे हैं। यदि आप महाश्रमण के अधीन ब्रह्मचर्य्य का जीवन व्यतीत करेंगे, तो हम सब भी यही करेंगे।"

२१. तब सारिपुत्र और मौद्गल्यायन सञ्जय के पास गये और पहुँचकर सञ्जय से कहा :—"मित्र ! हम तथागत की शरण में जाते हैं। वह तथागत ही हमारे शास्ता हैं।"

२२. सञ्जय बोला—"आप मत जायें। हम तीनों मिलकर इन सबकी गुरुवाई करेंगे।"

२३. दूसरी और तीसरी बार भी सारिपुत्र और मौद्गल्यायन ने अपनी बात दोहराई। सञ्जय का भी वही उत्तर था।

२४. तब उन ढाई सौ परिव्राजकों सहित सारिपुत्र और मौद्गल्यायन राजगृह के वेळुवन उद्यान में वहां पहुंचे जहाँ तथागत विराजमान थे।

२५. तथागत ने उन्हें—सारिपुत्र और मौद्गल्यायन को—दूर से आते देखा। उन्हें देखकर तथागत ने भिक्षुओं को सम्बोधन किया—"भिक्षुओ, ये दो मित्र चले आ रहे हैं, सारिपुत्र और मौद्गल्यायन, ये दोनों मेरे श्रावक-युगल होंगे, श्रेष्ठ शिष्य-युगल।"

२६. जब वे वेळुवन पहुंचे तो वह जहाँ तथागत थे वहां गये। वहां पहुँचकर उन्होंने तथागत के चरणों में सिर से वन्दना की और प्रार्थना की—"भगवान् ! हमें आप से प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले।"

२७. तब भगवान् ने धर्म-दीक्षा के निश्चित शब्द—भिक्षुओ ! आओ (एहि भिक्खवे)—कहे और ढाई सौ जटाधारियों सहित सारिपुत्र और मौद्गल्यायन भगवान् बुद्ध की शरण आये।[१]

४. राजा बिम्बिसार की धर्म-दीक्षा

१. राजगृह मगध-नरेश श्रेणिक बिम्बिसार की राजधानी थी।

२. जटिलों की इतनी बड़ी संख्या के बुद्ध की शरण में चले जाने से हर किसी की जबान पर तथागत की चर्चा थी।

३. इस प्रकार बिम्बिसार को तथागत के नगर में आगमन का पता लग गया।

४. बिम्बिसार नरेश ने सोचा—"उन कट्टर जटिलों के मत को बदल देना, हँसी-खेल नहीं है। निश्चय से वह भगवान् होंगे, अर्हत् होंगे, सम्यक् सम्बुद्ध होंगे, विद्या और आचरण से युक्त होंगे, सुगति-प्राप्त होंगे, लोक के जानकार होंगे, सर्वश्रेष्ठ होंगे, आदमियों के मार्ग-दर्शक होंगे, देवता और आदमियों के शास्ता होंगे। वे निश्चय से स्व-बुद्ध धर्म की शिक्षा दे रहे होंगे।"

५ "वह आदि में कल्याणकारक, मध्य में कल्याणकारक, अन्त में कल्याण-कारक धर्म की शिक्षा दे रहे होंगे। वे अर्थों और शब्दों सहित धर्म का ज्ञान करा रहे होंगे। वे पूर्ण परिशुद्ध श्रेष्ठ जीवन प्रकाशित कर रहे होंगे। ऐसे दिव्य पुरुष का दर्शन करना अच्छा है।"

६. इस प्रकार मगध के बारह लाख ब्राह्मणों और गृहपतियों के साथ मगध नरेश बिम्बिसार जहां भगवान् थे वहाँ पहुँचा। उनके पास पहुंच और विनम्रता पूर्वक अभिवादन कर वह उनके निकट बैठ गया। उन बारह लाख ब्राह्मणों और गृहपतियों में से भी कुछ ने भगवान् को विनम्रता पूर्वक अभिवादन किया और पास बैठ गये, कुछ ने भगवान् का कुशल-क्षेम पूछा और निकट बैठ गये, कुछ ने भगवान् को हाथ जोड़कर नमस्कार किया और निकट बैठ गये, कुछ ने अपना नाम और गोत्र कहा और भगवान् के निकट बैठ गये और कुछ यूं ही चुपचाप समीप आ बैठे।

७. मगध के उन बारह लाख ब्राह्मणों और गृहपतियों ने उरुवेल काश्यप को भी महाश्रमण के भिक्षुओं में देखा। उनमें से कुछ सोचने लगे। "क्या उरुवेल काश्यप महाश्रमण की अधीनता में श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर रहा है, अथवा महा-श्रमण ही उरुवेल काश्यप की अधीनता में श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर रहा है?"

८. मगध के उन बारह लाख ब्राह्मणों और गृहपतियों के मन की बात जान तथागत ने उरुवेल काश्यप को सम्बोधित कर कहा—"हे उरुवेलवासी! तू ने क्या देखा जो अग्नि-परिचर्य्या छोड़ दी? यह कैसे हुआ कि तूने अग्निहोत्र का परित्याग कर दिया?"

९. काश्यप ने उत्तर दिया—"यज्ञों से रूप, शब्द, रस, गन्ध, स्त्री स्पर्श की ही आशा की जा सकती थी। जब मैंने समझ लिया कि मैं वासनामय रूप, रस, शब्द, गन्ध और स्पर्श अविशुद्ध हैं तो फिर मैंने यज्ञ-याग की कामना नहीं की।"

१०. "लेकिन यदि हर्ज न हो, तो यह बताओ कि तुम्हारा यह विचार कैसे बदल गया?"

११. तब उरुवेल काश्यप ने अपने स्थान से उठ, अपने एक कंधे को नंगा किया और भगवान् बुद्ध के चरणों में सिर रखकर वन्दना की और निवेदन किया: "मैं

शिष्य हूँ और तथागत मेरे शास्ता हैं।" तब मगध के उन असंख्य ब्राह्मणों और गृहपतियों ने जाना कि उरुवेल काश्यप ही महाश्रमण की अधीनता में श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर रहा है।

१२. तब मगध के उन बारह लाख ब्राह्मणों और गृहपतियों के मन की बात को जानकर भगवान् बुद्ध ने उन्हें धर्मोपदेश दिया। जिस प्रकार बिना धब्बों का स्वच्छ कपड़ा रंग को अच्छी तरह पकड़ लेता है, उसी तरह बिम्बिसार प्रमुख उन मगध के बारह लाख ब्राह्मणों और गृहपतियों को विरज, विमल ज्ञान-चक्षु प्राप्त हो गया। उनमें से एक लाख ने अपने उपासकत्व की घोषणा की।

१३. इस दृश्य का साक्षी होकर, धर्म को समझ कर, धर्म की तह तक जाकर, सन्देह रहित होकर, विचिकित्सा को जीतकर और पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर मगध-नरेश बिम्बिसार बोला:—"भगवान्! जिस समय मैं राजकुमार था, उस समय मेरी पांच आकांक्षायें थीं, वे पांचों अब पूरी हो गईं।

१४. "पूर्व समय में, भगवान्! जब मैं राजकुमार था, मेरे मन में इच्छा उत्पन्न हुई कि मेरा राज्याभिषेक हो जाता। भगवान्! यह मेरी पहली इच्छा थी, जो अब पूरी हो गई। और तब अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध मेरे राज्य में आते! यह मेरी दूसरी इच्छा थी। भगवान्! जो अब पूरी हो गई। और मैं उन भगवान् की सेवा में उपस्थित होता! यह मेरी तीसरी इच्छा थी, भगवान्! जो अब पूरी हो गई। और वह भगवान् मुझे धर्मोपदेश देते! यह मेरी चौथी इच्छा थी भगवान्! जो अब पूरी हो गई। और मैं उन भगवान् का धर्म हृदयंगम कर पाता! यह मेरी पांचवीं इच्छा थी भगवान्! जो अब पूरी हो गई। भगवान्! जिस समय मैं राजकुमार था, उस समय मेरी ये पांच इच्छायें थीं जो अब पूरी हो गईं।

१५. "अद्भुत है भगवान्! अद्भुत है। जैसे कोई औंधे को सीधा कर दे, अथवा ढके हुए को उघाड़ दे, अथवा पथ-भ्रष्ट को मार्ग दिखा दे, अथवा अंधेरे में प्रदीप जला दे ताकि आँख वाले रास्ता देख सकें, उसी तरह से भगवान् ने नाना प्रकार से धर्मोपदेश दिया है। मैं भगवान् की शरण ग्रहण करता हूँ। मैं धर्म की शरण ग्रहण करता हूँ। मैं संघ की शरण ग्रहण करता हूँ। आज दिन से जब तक इस शरीर में प्राण है, तब तक के लिये भगवान् मुझे अपना शरणागत उपासक मानें।"[१]

५. अनाथपिण्डिक की धर्म-दीक्षा

१. सुदत्त कोसल जनपद की राजधानी श्रावस्ती का एक नागरिक था। कोसल जनपद पर राजा प्रसेनजित् का अधिकार था। सुदत्त प्रसेनजित् का श्रेष्ठी

(=खजाञ्ची) था। क्योंकि वह दरिद्रों को बहुत दान देता था, इसलिये उसका नाम अनाथपिण्डक पड़ गया था।

२. जिस समय भगवान् राजगृह में ठहरे हुए थे, उस समय सुदत्त किसी निजी काम से राजगृह गया। वह राजगृह श्रेष्ठी के यहाँ ठहरा था, जिसकी बहन से उसका विवाह हुआ था।

३. जब वह वहाँ पहुँचा तो उसने देखा कि उसका साला श्रेष्ठी भिक्षुसंघ तथा भगवान् बुद्ध को भोजन कराने के लिए इतनी बड़ी तैयारी करा रहा है कि उसने सोचा कि या तो किसी आवाह-विवाह की तैयारी है या राजा को निमंत्रण दिया गया है।

४. जब उसे ठीक बात की जानकारी हुई तो वह भगवान् बुद्ध का दर्शन करने के लिये अत्यन्त उत्सुक हो उठा। वह उसी रात भगवान् बुद्ध के दर्शनार्थ निकल पड़ा।

५. और तथागत ने अनाथपिण्डक के हृदय की निर्मलता को तुरन्त भाँप लिया। उन्होंने उसका सांत्वना भरे शब्दों में स्वागत किया। अपने आसन पर बैठ चुकने पर अनाथपिण्डक ने भगवान् से कुछ सदुपदेश सुनने की इच्छा प्रकट की।"[1]

६. तथागत ने उसकी इच्छापूर्ति करने के निमित्त एक प्रश्न से आरम्भ किया। "कौन है जो हमारा निर्माण करता है, और हमें—जैसे चाहता है—चलाता है? क्या यह कोई ईश्वर है? कोई सृष्टिकर्ता? यदि ईश्वर निर्माणकर्ता है तो सभी प्राणियों को चुपचाप केवल उसकी इच्छा के अधीन चलना होगा। वे कुम्हार के बनाये हुए बरतनों के समान होंगे। यदि यह संसार ईश्वर द्वारा निर्मित होता तो उसमें दुःख, आपत्तियां और पाप कैसे होते? क्योंकि पवित्र-अपवित्र दोनों का तो रचयिता उसीको मानना होगा। यदि दुःख, आपत्तियों और पाप का मूल-स्रोत ईश्वर को न माना जाय, तो उससे भिन्न और उससे स्वतन्त्र एक दूसरा कारण स्वीकार करना होगा। तब ईश्वर सर्व-शक्तिमान नहीं रहेगा। इस प्रकार तुमने देखा कि ईश्वर के विचार की ही जड़ कट गई।

७. "तो फिर क्या 'ब्रह्म' से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है? 'ब्रह्म' भी सृष्टि का कारण नहीं हो सकता। जिस प्रकार बीज में से पौदे की उत्पत्ति होती है—उसी प्रकार सभी चीजों की उत्पत्ति होती है। तो फिर एक ही 'ब्रह्म' से सभी चीजें कैसे उत्पन्न हो सकती है? यदि 'ब्रह्म' सर्वव्यापक है, तो फिर वह निश्चय से उनका निर्माता तो नहीं ही है।

८. "फिर यह भी कहा जाता है कि 'आत्मा' से ही उत्पत्ति हुई है। यदि 'आत्मा' ही निर्माता है तो उसने सभी वस्तुओं को वाञ्छनीय रूप ही क्यों नहीं दिया? दुःख-

सुख वास्तविक सत्य हैं, और उनका बाह्य अस्तित्व है। वह 'आत्मा' की कृति कैसे हो सकते हैं ?

९. "यदि तुम यही मत बना लो कि न कहीं कोई सृष्टि-कर्ता है और न कहीं कोई हेतु-प्रत्यय है तो फिर जीवन में जो साधना की जाती है, जो साधनों तथा साध्य का मेल बिठाने का प्रयास किया जाता है, उस सब का कोई प्रयोजन नहीं होगा ?"

१०. "इसलिये हमारा कहना है कि जो भी चीजें अस्तित्व में आती हैं वे सब सहेतुक होती हैं। न वे ईश्वर द्वारा निर्मित होती हैं, न 'ब्रह्म' द्वारा, न 'आत्मा' द्वारा और न बिना हेतु के यूं ही अस्तित्व में आती हैं। हमारे अपने कर्म ही हैं जो अच्छे और बुरे परिणामों को जन्म देते हैं।

११. "सारा संसार 'प्रतीत्य-समुत्पाद' के नियम से बंधा है और जितने भी हेतु हैं वे अचेतसिक नहीं हैं। जिस सोने से सोने का प्याला निर्मित होता है वह आदि से अंत तक सोना ही सोना होता है।

१२. "इसलिये हम 'ईश्वर' और उससे प्रार्थना करने सम्बन्धी मिथ्या-धारणाओं का त्याग करें, हम व्यर्थ की सूक्ष्म काल्पनिक उड़ानों में न उलझे रहें, हम 'आत्मा' और 'आत्मार्थ' से मुक्त हों क्योंकि सभी चीजें सहेतुक हैं, इसलिए हम कुशल-कर्म करें ताकि उनका परिणाम भी कुशल ही हो।"

१३. अनाथपिण्डक बोला–"तथागत के वचनों का सत्य मैं हृदयंगम कर रहा हूँ। मैं अपने अज्ञान को और भी अधिक दूर करना चाहता हूँ। जो कुछ मैं निवेदन करना चाहता हूँ, उसे सुनकर भगवान् मुझे मेरे कर्तव्य का आदेश दें।

१४. "मुझे काम-काज बहुत रहता है और क्योंकि मैंने बहुत धन इकट्ठा कर रखा है, इसलिए बहुत बातों की फिकर करनी पड़ती है। तो भी मैं अपने कार्य को आनन्दपूर्वक करता हूँ और बिना किसी प्रमाद के उसमें लगा रहता हूँ। मेरे बहुत से नौकर-चाकर हैं और उन सब की जीविका मेरे ही व्यापार की सफलता पर निर्भर करती है।

१५. "अब मैंने सुना है कि आपके शिष्य प्रव्रज्या के सुखों के गुण गाते हैं और गृहस्थ जीवन की गर्हा करते हैं। वे कहते हैं कि 'तथागत ने अपना राज्य और परम्परागत ऐश्वर्य का त्याग कर दिया और सद्धर्म का पथ प्राप्त किया है। इस प्रकार उन्होंने सारे संसार को निर्वाण का रास्ता दिखाया है।

१६. "मैं जो उचित हो वही करना चाहता हूँ और मेरी उत्कट अभिलाषा है कि अपने मानव-बन्धुओं की कुछ सेवा कर सकूं। मैं जानना चाहता हूँ कि क्या मेरे लिये यह उचित है कि मैं अपनी सम्पत्ति, अपने घर और अपने कार-बार का त्याग कर दूं और आपकी तरह ही धर्म-जीवन का सुख प्राप्त करने के लिये घर से बे-घर हो जाऊँ ?"

१७. तथागत का उत्तर था—"धर्म-जीवन का सुख हर उस व्यक्ति के लिये प्राप्य है जो आर्य-अष्टांगिक मार्ग का पथिक है। जो धन से चिपटा हुआ है उसके लिये यही अच्छा है कि धन की आसक्ति से अपने हृदय को विषाक्त बनाने के बजाय धन का त्याग कर दे; लेकिन जिसकी धन में आसक्ति नहीं है और जिसके पास धन है तथा वह उसका उचित उपयोग करता है, ऐसा आदमी अपने मानव-बन्धुओं के लिए एक वरदान है।"

१८. "मैं तुम्हें कहता हूँ कि गृहस्थ ही बने रहो। अपने कारोबार में अप्रमाद-पूर्वक लगे रहो। आदमी का जीवन, ऐश्वर्य्य और अधिकार उसे अपना दास नहीं बनाते किन्तु जीवन, ऐश्वर्य्य और अधिकार के प्रति जो आदमी की आसक्ति है, वह उसे अपना दास बना लेती है।

१९. "जो भिक्षु इसलिये संसार का त्याग करता है कि भिक्षु बनकर आराम-तलबी का जीवन व्यतीत करे, उसे इससे कुछ लाभ नहीं होगा। क्योंकि आलस्य का जीवन घृणित जीवन है और शक्ति का अभाव स्पृहणीय नहीं है।"

२०. "जब तक अन्तःप्रेरणा न हो तब तक तथागत का धर्म किसी को भी प्रव्रजित होने या संसार का त्याग करने के लिये नहीं कहता, तथागत का धर्म हर आदमी से यही मांग करता है कि वह 'आत्म-दृष्टि' से मुक्त हो, उसका हृदय शुद्ध हो, उसे काम-भोगादि सुखों की प्यास न हो और वह श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करे।"

२१. "और आदमी चाहे जो करें, चाहे वे शिल्पी रहें, चाहे व्यापार करें, चाहे सरकारी नौकरी करें अथवा संसार त्याग कर ध्यान-भावना में रत रहें, उन्हें अपना कार्य पूरे दिल से करना चाहिए। उन्हें परिश्रमी और उत्साही होना चाहिए। और यदि वे उस कमल की तरह जो पानी में रहता हुआ भी पानी से अछूता रहता है, जीवन-संघर्ष में लगे रहने पर भी अपने मन में ईर्षा और घृणा को जगह नहीं देते, यदि वह संसार में रहते हुए भी स्वार्थ-भरा नहीं बल्कि परमार्थ-भरा जीवन व्यतीत करते हैं तो इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि उनका मन आनन्द, शान्ति और सुख से भर जाएगा।"

२२. अनाथपिण्डक को लगा कि यह सत्य का धर्म है, सरलता का धर्म है और प्रज्ञा का धर्म है।

२३. उसकी तथागत के सद्धर्म में प्रगाढ़ आस्था हो गई। वह तथागत के चरणों पर नतमस्तक हुआ और प्रार्थना की कि उसे प्राण रहने तक शरणागत उपासक माने।

६. राजा प्रसेनजित् की धर्म-दीक्षा

१. जब यह सुना कि शाक्य मुनि गौतम बुद्ध पधारे हैं तो राजा प्रसेनजित्

अपने रथ पर चढ़कर जैतवन पहुँचा। दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करने के अनन्तर उसने कहा—

२. "यह मेरे राज्य का भाग्य है कि आप यहां पधारे हैं। आपके समान धर्म-राजा के रहते मेरे राज्य पर कोई भी आपत्ति आ ही कैसे सकती है ?

३. "अब जब आपके दर्शन हो गये तो कुछ धर्मामृत भी पान करने को मिले।

४. "सांसारिक सम्पत्ति अनित्य है और नाशवान् है, किन्तु जो धर्म रूपी धन है वह अनन्त है और नाशवान् नहीं है। राजा होने पर भी संसारी आदमी दुःखी ही रहता है। किन्तु एक साधारण आदमी भी, यदि वह धर्मपरायण है, सुखी रहता है।"

५. धन और काम-भोग की तृष्णा के कारण भारी हुए राजा के चित्त को अवस्था पहचान कर तथागत ने उपदेश दिया—

६. "जिनका जन्म अति सामान्य स्थिति में हुआ रहता है वे भी जब किसी धर्म-परायण आदमी को देखते हैं तो उनके मन में उस आदमी के लिये आदर की भावना पैदा हो जाती है, तो फिर जिसने पहले बहुत पुण्य अर्जित किये है, ऐसे राजा का तो क्या ही कहना ?

७. "और अब जब मैं संक्षेप में धर्मोपदेश देने जा रहा हूँ, महाराज ! मेरे शब्दों को ध्यानपूर्वक सुनें और उन्हें हृदयंगम करें !

८. "हमारे अच्छे या बुरे कर्म छाया की तरह हमारा पीछा करते रहते है।

९. "जिस चीज की सर्वाधिक आवश्यकता है, वह है मैत्री-पूर्ण हृदय।

१०. "अपनी प्रजा को अपनी अकेली सन्तान के समान समझें। उन्हें कष्ट न दें, उन्हें नष्ट न करें। अपने शरीर के सभी अंगों को संयत रखें। कुमार्ग छोड़ कर, सन्मार्ग पर चलें। दूसरों को नीचे गिराकर अपने को ऊपर न उठायें। दुःखी को सुख और सान्त्वना दें।

११. "राजकीय ठाट-बाट को अधिक महत्व न दें और खुशामदियों की मीठी लगने वाली बातें न सुनें।

१२. "अपने आपको काय-क्लेश द्वारा पीड़ित करने से कुछ लाभ नहीं है, लेकिन 'धर्म' और 'सुपथ' का विचार करें।"

१३. "हम चारों ओर से शोक तथा दुःख की चट्टानों से घिरे हुए हैं और धर्म का विचार करने से ही हम इस दुःखों के पर्वत को लांघ सकते हैं।

१४. "तब अन्याय करने में लाभ ही क्या है ?

१५. "सभी बुद्धिमान शारीरिक ऐशोआराम की उपेक्षा करते हैं। वे कामनाओं से दूर रहकर अपना आध्यात्मिक विकास करने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं।

१६. "जब कोई वृक्ष आग से झुलस रहा हो तो पक्षी उस पर अपने घोंसले कैसे बना सकते हैं? जहां राग का निवास है, वहां सत्य कैसे टिक सकता है? यदि किसी को इस बात का ज्ञान नहीं तो किसी विद्वान् को ऋषि मानकर चाहे उसकी प्रशंसा ही क्यों न की जाती हो, वह अज्ञानी ही है।

१७. "जिसे यह ज्ञान प्राप्त है, उसे ही प्रज्ञा की प्राप्ति होती है। प्रज्ञा की प्राप्ति ही मानव-जीवन का एकमात्र उद्देश्य है। इसकी उपेक्षा, जीवन की असफलता की द्योतक है।

१८. "सभी धार्मिक मतों की शिक्षाओं का यही एक केन्द्र-बिन्दु होना चाहिये। इसके बिना सब निरर्थक है।

१९. "यह सत्य कोई प्रव्रजितों के ही लिए नहीं है, इसका सम्बन्ध मानव-मात्र से है, साधु और गृहस्थ से समानरूप से। व्रतधारी प्रव्रजित में और गृहस्थ में मूलतः कोई भेद नहीं है। प्रव्रजित भी पतित होकर विनाश को प्राप्त होते हैं और गृहस्थ भी 'ऋषियों' के दर्जे तक पहुँचते हैं।

२०. "कामाग्नि का खतरा सभी के लिये समान है, यह दुनिया को बाढ़ की तरह बहा ले जाता है। जो एक बार इस भँवर-जाल में फंस गया, उस का बच निकलना कठिन है। लेकिन प्रज्ञा की नौका विद्यमान है और विचार शक्ति का चप्पु। धर्म की यही मांग है कि आप अपने आप को मार रूपी शत्रु से सुरक्षित रखें।

२१. "क्योंकि कर्मों के फल से बच निकलना असम्भव है, इसलिए हम शुभ कर्म ही करें।

२२. "हम अपने विचारों की चौकसी रखें ताकि हम से कोई बुरा काम न हो, क्योंकि जैसा हम बोयेंगे वैसा ही हम काटेंगे।

२३. "आदमी प्रकाश से अंधेरे में और फिर अंधेरे से प्रकाश में जा सकता है। अंधेरे से और भी अधिक अंधेरे की ओर अग्रसर होने के भी मार्ग हैं; इसी प्रकार प्रकाश से अधिक प्रकाश की ओर बुद्धिमान् आदमी ज्ञान के अनुसार आचरण करेगा ताकि उसे और भी अधिक ज्ञान प्राप्त हो। वह लगातार सत्य की ओर अग्रसर होता रहेगा।

२४. "बुद्धिसंगत-व्यवहार और सदाचार-परायण जीवन द्वारा सच्चे श्रेष्ठत्व का प्रकाश हो। भौतिक वस्तुओं की तुच्छता पर गहराई से विचार किया जाय और जीवन की अस्थिरता को अच्छी तरह समझ लिया जाय।

२५. "अपने विचारों को ऊंचा उठाओ, श्रद्धा और दृढ़ता को अपनाओ। राजधर्म के नियमों का उल्लंघन न करो। अपनी प्रसन्नता का आधार बाह्य-पदार्थों को नहीं, बल्कि अपने प्रीति-युक्त मन को ही बनाओ। इससे सुदूर भविष्य तक के लिये तुम्हारा यश अमर रहेगा।"

२६. राजा ने बड़े ध्यान से तथागत के अमृत वचनों का पान किया और हर वचन को हृदयङ्गम किया। उसने जीवन पर्यन्त 'उपासक' बने रहने की इच्छा से तथागत की शरण ग्रहण की।

७. जीवक की धर्म-दीक्षा

१. जीवक ने राजगृह की एक वेश्या शालवती के गर्भ से जन्म धारण किया था।[१]

२. जन्म के तुरन्त बाद ही, उसे एक टोकरी में डाल कर कूड़े की एक ढेरी पर फेंक दिया गया—अज्ञात पिता का पुत्र जो था।

३. बहुत से लोग कूड़े के ढेर के पास खड़े होकर 'बच्चे' को देख रहे थे। राजकुमार 'अभय' का उधर से गुजरना हुआ। उसने लोगों से पूछा। लोगों ने बताया 'यह जीवित है'।

४. इसी लिये उस का नाम जीवक पड़ा। अभय ने उसे अपना लिया और पालन-पोषण कर बड़ा किया।

५. जब जीवक बड़ा हुआ तो उसे पता लगा कि किस प्रकार उसका जीवन सुरक्षित रहा था। उसकी उत्कट अभिलाषा हुई कि वह अपने आप को दूसरों का जीवन बचाने के ही अधिकाधिक योग्य बनाये।

६. इसलिये वह अभय को बिना बताये ही तक्षशिला विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिये चला गया और वहां उसने अध्ययन में सात वर्ष बिताये।

७. राजगृह लौट कर उसने चिकित्सा करनी आरम्भ की और अचिरकाल में ही बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली।

८. सर्वप्रथम उसने साकेत के एक सेठ की स्त्री की चिकित्सा की। उसके अच्छा हो जाने पर उसे सोलह हजार कार्षापण, एक दास, एक दासी और घोड़े सहित एक गाड़ी मिली।

९. उस की योग्यता जान, अभय ने उसे अपने ही भवन में रख लिया।

१०. राजगृह में ही उसने राजा बिम्बिसार का भयानक भगन्दर-रोग अच्छा किया। कहा जाता है कि इससे प्रसन्न होकर राजा की सभी पांच सौ रानियों ने अपने अपने सभी गहने जीवक को दे दिये।

११. उल्लेख करने लायक चिकित्साओं में उसकी एक वह शल्य-चिकित्सा थी जो जीवक ने राजगृह के एक सेठ की खोपड़ी की की थी, और दूसरी बनारस के उस श्रेष्ठी के लड़के की जो अन्तड़ियों के रोग से चिर-काल से दुःखी था।

१२. जीवक को राजा ने अपना तथा अपने रनिवास का 'राज-वैद्य' नियुक्त किया।

१३. लेकिन जीवक की तथागत में बड़ी भक्ति थी। वह शाक्य मुनि गौतम बुद्ध और संघ का भी चिकित्सक था।

१४. वह तथागत का उपासक बना। भगवान बुद्ध ने उसे भिक्षु नहीं बनाया, क्योंकि वह चाहते थे कि वह चिकित्सा द्वारा रोगियों और जीवकों की सेवा करता रहे।

१५. बिम्बिसार की मृत्यु के अनन्तर जीवक उसके पुत्र अजात-शत्रु का भी चिकित्सक रहा। पितृ-हत्या का पाप कर चुकने के बाद अजात-शत्रु को तथागत के समीप लाने में मुख्य हाथ जीवक का ही था।

८. रट्ठपाल की धर्म-दीक्षा

१. एक बार जब भिक्षुसंघ सहित भगवान बुद्ध कुरु देश में चारिका कर रहे थे तो वह कुरु-जनपद के ही थुल्लकोट्ठित नाम के एक निगम में ठहरे।*

२. जब कुरु-वासियों को इसका पता लगा तो वे भगवान् बुद्ध के दर्शनार्थ पहुँचे।

३. जब वे आकर बैठ गये, तब तथागत ने उन्हें धर्मोपदेश दिया। उपदेश श्रवण कर चुकने पर थुल्लकोट्ठित के ब्राह्मण गृहपति उठे और श्रद्धा-भक्तिपूर्वक नमस्कार कर चले गये।

४. उन ब्राह्मण गृहपतियों के बीच रट्ठपाल नाम का एक तरुण बैठा था, जो कि एक श्रेष्ठ कुलोत्पन्न था। उस के मन में आया, जहाँ तक मैं समझ सकता हूँ जिस धर्म का भगवान् बुद्ध ने उपदेश दिया है, गृहस्थी में रहते हुए उसे उतनी पवित्रता, उतनी सम्पूर्णता के साथ आचरण में लाना आसान नहीं।

५. यह कैसा हो यदि मैं बाल-दाढ़ी मुण्डा, काषाय वस्त्र धारण कर गृहस्थ न रह प्रव्रजित बन जाऊं—घर-बारी से बे-घर-बारी।

६. जब ब्राह्मण गृहपति अभी बहुत दूर नहीं भी गये होंगे, रट्ठपाल भगवान् बुद्ध के पास आया और अभिवादन कर चुकने के अनन्तर उसने अपना विचार तथागत की सेवा में निवेदन किया। उसने प्रार्थना की कि उसे प्रव्रज्या मिले और उपसम्पदा मिले।

७. तथागत ने पूछा "रट्ठपाल! इस के लिये क्या तुम्हें अपने माता-पिता की अनुज्ञा है?"

८. "भगवान्! नहीं।"

९. "जिन्हें माता-पिता से अनुज्ञा प्राप्त नहीं होती उन्हें मैं प्रव्रजित नहीं करता।"

१०. तरुण बोला "मैं अनुज्ञा प्राप्त करने का प्रयास करूंगा।" वह उठा और अत्यन्त विनम्रता पूर्वक भगवान् बुद्ध से विदा ग्रहण की। घर पहुंच

कर उसने माता-पिता से अपना विचार प्रकट किया और उनसे भिक्षु बनने के लिये अनुज्ञा मांगी ।

११. माता पिता बोले-"रट्ठपाल ! तू हमारा प्रिय पुत्र है, अत्यन्त प्रिय पुत्र । तू ही हमारा एकमात्र पुत्र है । तू आराम में रहा है, आराम में पला है। तुझे दु:ख का कुछ अनुभव नहीं । जा खा, पी, मौज कर और जितने चाहे पुण्य कार्य कर। हम तुम्हें प्रव्रजित होने की अनुज्ञा नहीं देते।

१२. "तुम नहीं रहोगे तो हमारा जीना दूभर हो जायगा। हमारे लिये जीने में कुछ आनन्द नहीं रहेगा। हम तुम्हें जीते जी, घर से बे-घर हो भिक्षु बनने की अनुज्ञा क्यों दें ?"

१३. रट्ठपाल ने दूसरी और तीसरी बार भी अपनी प्रार्थना दोहराई। उसके माता पिता का एक ही उत्तर था।

१४. जब वह इस प्रकार अपने माता-पिता की अनुज्ञा प्राप्त करने में असफल रहा, तो वह तरुण नंगी जमीन पर लेट गया और बोला-"या तो मैं भिक्षु बनूंगा, या यहीं पड़ा पड़ा मर जाऊंगा"।

१५. उसके माता-पिता ने भिक्षु बनने के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हुए उससे उठ बैठने का बहुत आग्रह किया। लेकिन रट्ठपाल मुंह से एक शब्द नहीं बोला। उन्होंने दूसरी बार, और तीसरी बार भी-इस प्रकार बार-बार-आग्रह किया, तब भी रट्ठपाल चुप ही रहा।

१६. उसके माता-पिता ने रट्ठपाल के मित्रों को सारी बात बता कर उनसे कहा कि वे अपनी ओर से रट्ठपाल से आग्रह करें।

१७. उसके मित्रों ने तीन बार प्रयास किया, किन्तु वह एक शब्द नहीं बोला। तब उसके मित्र रट्ठपाल के माता-पिता के पास गये और बोले-वहाँ वह नंगी जमीन पर पड़ा है। कहता है या तो भिक्षु बनूंगा, या वहीं पड़ा पड़ा मर जाऊंगा। यदि तुम अनुज्ञा नहीं दोगे तो वह जीते जी कभी नहीं उठेगा। लेकिन यदि तुम अनुज्ञा दे दोगे तो उसे भिक्षु बनने पर भी देख सकोगे। यदि भिक्षु-जीवन में उसका मन नहीं रमेगा अर्थात् उसे भिक्षु रहना अच्छा नहीं लगेगा तो यहीं वापस चले आने के अतिरिक्त दूसरा क्या करेगा ? आप उसे अपनी अनुज्ञा दे ही दें।"

१८. "अच्छा, हम अपनी अनुज्ञा देते हैं। किन्तु भिक्षु बन चुकने के बाद हमें मिलने के लिये आना होगा।"

१९. उस के मित्र तुरन्त रट्ठपाल के पास गये। उन्होंने उसे जाकर कहा-"तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हें इस शर्त पर भिक्षु बनने की अनुमति दे दी है कि भिक्षु बनने पर तुम उनसे मिलने आओगे।"

३०. तब रट्ठपाल उठ बैठा और सशक्त होने पर तथागत के पास पहुंचा और अभिवादन कर चुकने पर एक ओर बैठकर निवेदन किया-"मुझे अपने

माता-पिता से भिक्षु बनने की अनुज्ञा मिल गई है। मेरी प्रार्थना है कि भगवान् मुझे संघ में दीक्षित कर लें।"

२१. रट्ठपाल ने प्रव्रज्या और उपसम्पदा प्राप्त की। थुल्लकोट्ठित में यथेच्छ ठहर कर, इसके दो सप्ताह बाद, भगवान बुद्ध चारिका के लिये श्रावस्ती की ओर चल पड़े। श्रावस्ती पहुंचकर वे अनाथपिण्डक के तेजवनाराम में विहार करने लगे।

२२. अकेले, एकान्त में रहते हुए सतत प्रयत्न-शील रट्ठपाल ने अचिर काल में ही उस उद्देश्य को प्राप्त कर लिया जिसकी प्राप्ति के लिये कुल-पुत्र घर से बेघर हो भिक्षु-जीवन ग्रहण करते हैं–मानव जीवन का श्रेष्ठतम आदर्श।

२३. तब वह भगवान् बुद्ध के पास गया और अभिवादन कर चुकने के अनन्तर बोला–"आप की अनुज्ञा से मैं अपने माता-पिता को देख आना चाहता हूं।"

२४. अपने चित्त से रट्ठपाल के चित्त को जान कर और रट्ठपाल के पुनः गृहस्थ न बनने के बारे में पूरी तरह आश्वस्त होकर तथागत ने उसे जब चाहे जाने की अनुमति दे दी।

२५. तब अत्यन्त विनम्रतापूर्वक भगवान बुद्ध से विदा ग्रहण कर, अपना पात्र चीवर ले रट्ठपाल थुलकोट्ठित की ओर चारिका के लिये निकल पड़ा जहां पहुँच कर उसने कुरु-नरेश के मृगोद्यान में विहार किया।

२६. दूसरे दिन प्रातः काल जब वह भिक्षाटन के लिये निकला तो प्रत्येक घर के सामने भिक्षा के निमित्त खड़ा होता हुआ रट्ठपाल अपने ही घर के द्वार पर आ पहुंचा।

२७. अन्दर, कमरे के बीच दरवाजे में, उसका पिता कंघी से अपने बाल सँवार रहा था। रट्ठपाल को दूर से आता देख कर बोला–ऐसे ही सिरमुंडोंने मेरे इकलौते प्रिय पुत्र को घर से बे-घर बना दिया।

२८. इसलिये अपने ही पिता के घर से रट्ठपाल को कुछ नहीं मिला, एक इनकार तक नहीं; मात्र गालियां।

२९. ठीक उसी समय घर की एक दासी पहले दिन का बासी चावल फेंकने जा रही थी। रट्ठपाल ने उसे कहाः—बहन यदि इसे फेंकने जा रही है तो इसे मेरे पात्र में ही डाल दे।"

३०. जब दासी उसके पात्र में बासी चावल डाल रही थी, उसने रट्ठपाल के हाथ, पाँव और स्वर पहचान लिया। वह दौड़ी दौड़ी अपनी मालकिन के पास गई और बोली—मालकिन! मालूम होता है कि छोटे मालिक वापस लौट आये हैं।"

३१. मां बोली, "यदि तेरा कहना ठीक है तो तू दासता के बंधन से इसी क्षण मुक्त हुई।" वह दौडी दौड़ी अपने पति के पास गई और कहा कि उसने सुना है कि उसका पुत्र लौट आया है।

३२. झाड़ी के नीचे बैठा रट्ठपाल वह बासी चावल खा रहा था कि पिता आ पहुंचा। बोला—"प्रिय पुत्र। क्या यह हो सकता है कि तुम ही बैठे यह बासी भात खा रहे हो? क्या तुम्हें अपने घर नहीं आना चाहिये था?"

३३. रट्ठपाल का उत्तर था—"गृहपति। हम बे-घरों का क्या घर? हम तो घर छोड़ चुके। हाँ, मैं तुम्हारे घर आया था, जहां मुझे कुछ नहीं मिला, इनकार भी नही; मात्र गालियां।"

३४. "पुत्र! आओ। घर चलें।" "नहीं गृहपति! मेरा आज का भोजन समाप्त हो गया।"

३५. "अच्छा तो, पुत्र कल का भोजन ग्रहण करने का वचन दो।"

३६. भिक्षु रट्ठपाल ने मौन से स्वीकार कर लिया।

३७. तब पिता घर के भीतर गया। उसने आज्ञा दी कि सोने का ढेर लगाकर उसे चटाई से ढक दिया जाय। उसके बाद उसने अपनी पुत्र-वधू से जो रट्ठपाल की पूर्व-भार्या थी कहा कि वह अपने को अच्छे से अच्छे उस श्रृंगार से अलंकृत करे जिस में अलंकृत देखकर उसका पति उस से प्रसन्न होता था।

३८. रात के बीतने पर घर में अच्छे से अच्छा भोजन तैयार कर, रट्ठपाल को तैयारी की सूचना दी गई। उस पूर्वाह्न में रट्ठपाल उचित ढंग से चीवर धारण किये तथा अपना पात्र-चीवर लिये आकर अपने लिये सज्जित आसन पर विराजमान हुए।

३९. तब उस सोने के ढेर पर से चटाई हटवाकर रट्ठपाल के पिता ने कहा—"यह तुम्हारा मातृ-धन है। यह पितृ-धन है। यह तुम्हारे दादा के समय से चला आया है। तुम्हारे पास भोगने के लिये बहुत है और पुण्य करने के लिये भी बहुत है।

४०. "पुत्र। आ। अपनी श्रमण-चर्या को त्याग दो। गृही के निम्नस्तर के जीवन को पुनः अंगीकार कर ले। भोग भी भोग और पुण्य भी कर।"

४१. रट्ठपाल का उत्तर था:—"गृहपति! यदि मेरा कहना मानो तो सोने के इस सारे ढेर को गाड़ी में लदवाकर बीच गंगा में फेंकवा दो। यह किस लिये? क्योंकि इस से तुम्हें दुःख दौर्मनस्य, क्लेश, मन और शरीर की पीड़ा और कष्ट ही होने वाला है।"

४२. उसके पांव पकड़ कर रट्ठपाल की अन्य पत्नियां पूछने लगीं कि आखिर वे अप्सरायें कैसी हैं जिनके लिये वह यह ब्रह्मचर्य्य वास कर रहा है?

४३. रट्ठपाल का उत्तर था—"बहनो। किन्हीं अप्सराओं के लिये नहीं।"

४४. अपने लिये "बहनो' सम्बोधन सुना तो सभी देवियां मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़ीं।

४५. रट्ठपाल ने पिता से कहा, "गृहपति। यदि भोजन कराना है तो दो, कष्ट मत दो।"

४६. "पुत्र ! भोजन तैयार है, करो", कहकर पिता ने रट्ठपाल को यथेच्छ भोजन कराया।

४७. भोजनान्तर रट्ठपाल कुरु-नरेश के मृगोद्यान में चला गया और वहां पहुचकर मध्याह्न की कड़ी धूप के समय एक वृक्ष की छाया के नीचे बैठ गया।

४८. अब राजा ने अपने माली को आज्ञा दे रखी थी कि उसके बाग को देखने आने से पहले वह उसे ठीक-ठाक करके रखे। माली अपना काम कर रहा था, उसने रट्ठपाल को एक वृक्ष के नीचे बैठा देखा। उसने राजा को सूचना दी कि बाग और तो सब तरह से ठीक-ठाक है, लेकिन एक वृक्ष के नीचे वह रट्ठपाल विराजमान है जिन के बारे में महाराज ने सुना है।

४९. "आज उद्यान-यात्रा रहने दो। आज मैं उन श्रमण के दर्शन करूंगा।" जितना भी पाथेय आवश्यक था, उस सब की तैयारी की आज्ञा दे, अपने अनुयायियों को साथ ले वह राजकीय रथ पर चढ़ा और रट्ठपाल को देखने के लिये नगर से बाहर निकला।

५०. जहां तक रथ से जाना योग्य था, वहां तक रथ से जाकर और आगे पैदल चलकर, अपने अनुयायियों सहित राजा वहां पहुँचा जहां रट्ठपाल विराजमान थे। कुशल-क्षेम की बात-चीत हो चुकने पर स्वयं अभी भी खड़े हुए राजा ने रट्ठपाल को फूलों की एक ढेरी पर बैठने का निमंत्रण दिया।

५१. "नहीं राजन्। आप वहां बैठें। मैं अपने स्थान पर बैठा हूँ।"

५२. संकेत किये गये स्थान पर बैठकर राजा ने कहा—रट्ठपाल ! चार तरह की हानियाँ हैं जिन के कारण आदमी दाढ़ी मूछ मुड़वा, काषाय वस्त्र धारण कर घर से बेघर हो जाते हैं—(१) बुढ़ापा, (२) गिरता हुआ स्वास्थ्य, (३) दरिद्रता, (४) निकट सम्बन्धियों का मरण।

५३. एक आदमी को लो, जो वृद्ध होने पर, बहुत आयु प्राप्त हो जाने पर, जरा-जीर्ण हो जाने पर, अन्तिम समय के नजदीक आ पहुँचने पर उसे या तो और कमाने में कष्ट अनुभव होता है या जो कुछ उसके पास है उस से गुजारा नहीं चलता, तो वह घर से बेघर होने का निश्चय कर लेता है। इसे बुढ़ापे से उत्पन्न होने वाली हानि कहते हैं। लेकिन तुम्हारी तो अभी चढ़ती जवानी है, काले काले केश हैं जिन्हें सफेदी छू भी नहीं गई है, सुन्दर तारुण्य है; तुम्हें तो वार्धक्य से उत्पन्न होने वाली किसी हानि का खतरा नहीं। तुमने क्या जाना, देखा या सुना है कि तुम घर से बेघर हो गये ?

५४. या एक आदमी को लो जो रोग-ग्रस्त है, जिसे बड़ा कष्ट है और जो बहुत बीमार है, उसे या तो और कमाने में कष्ट अनुभव होता है या जो कुछ उसके पास है उस से गुजारा नहीं चलता, तो वह घर से बे घर होने का निश्चय कर लेता है। इसे गिरते हुए स्वास्थ्य से उत्पन्न होने वाली हानि कहते हैं। लेकिन तुम न तो

बीमार ही हो और न तुम्हें कष्ट ही है, तुम्हारा हाजमा अच्छा है. . .तुम्हें गिरते हुए स्वास्थ्य से उत्पन्न होने वाली किसी हानि से कोई खतरा नहीं । तुमने क्या जाना, देखा या सुना है कि तुम घर से बेघर हो गये हो ?

५५. या एक आदमी को जो बड़ा धनी रहा है, जिसके पास बड़ी सम्पत्ति रही है और धीरे धीरे उसका नाश हो गया है या तो उसे और कमाने में कष्ट अनुभव होता है या जो कुछ उसके पास है उससे गुजारा नहीं चलता, तो वह घर से बेघर होने का निश्चय कर लेता है। इसे दरिद्रता से उत्पन्न होने वाली हानि कहते हैं। लेकिन तुम तो न दरिद्र हो न सम्पत्ति शून्य हो...तुम्हें तो दरिद्रता से उत्पन्न होने वाली किसी हानि से कोई खतरा नहीं, तुमने क्या जाना, देखा या सुना कि तुम घर से बे-घर हो गये हो ?

५६. या एक आदमी को जो जिस के सगे-सम्बन्धी जाते रहे हैं, जिसके रिश्तेदारों का मरण हो गया है उसे या तो और कमाने में कष्ट होने लगता है या जो कुछ उसके पास है उस से गुजारा नहीं चलता, तो वह घर से बेघर होने का निश्चय कर लेता है। इसे सम्बन्धियों के मरण से उत्पन्न होने वाली हानि कहते हैं। लेकिन तुम्हारे तो मित्रों और सगे-सम्बन्धियों की कमी नहीं । तुम्हें तो सगे-सम्बन्धियों के मरण से उत्पन्न होने वाली किसी हानि से कोई खतरा नहीं। तुमने क्या जाना, देखा या सुना कि तुम घर से बे-घर हो गये ?"

५७. "राजन् ! मैं घर से बे-घर इस लिये हो गया कि मैंने मैं चार बातें जानी, देखी और जानने वाले तथा देखने वाले सम्यक् सम्बुद्ध से सुनी—

(क) संसार अनित्य है, निरन्तर परिवर्तनशील है ।
(ख) संसार का कोई मालिक वा संरक्षक नहीं।
(ग) हमारा कुछ भी नहीं, हमें सभी कुछ पीछे छोड़ जाना है ।
(घ) तृष्णा के वशीभूत होने से ही संसार दुःखी है ।

५८. "यह अद्भुत है। यह अद्भुत है," राजा कह उठा" इस विषय में तथागत का कथन कितना सत्य है !"

१. महावग्ग (१ : ६) ।
२. विनय (महावग्ग १) ।
३. विनय (महावग्ग) १।
४. महावग्ग १ : ५; जातक (नि० ११) ।
५. चुल्लवग्ग ६ : २ भाण ।
६. अंगुत्तर निकाय अ० क० २ : ४ : ५ ।
७. रट्ठपाल सुत्तन्त (मज्झिम निकाय २।४।२) ।

चौथा भाग

जन्म-भूमि का आवाहन

१. शुद्धोदन से (अन्तिम) भेंट

१. सारिपुत्र और मौगल्यायन की दीक्षा के बाद दो महीने तक भगवान बुद्ध राजगृह में ही रहे ।

२. यह सुन कर कि तथागत राजगृह में विराजमान हैं, उनके पिता शुद्धोदन ने संदेश भिजवाया—"मैं मरने से पूर्व अपने पुत्र को देखना चाहता हूँ । दूसरों को उसका धर्मामृत पान करने को मिला है उसके पिता को नहीं, उसके सम्बन्धियों को नहीं ।"

३. शुद्धोदन के दरबारियों में से एक का पुत्र कालुदासी ही यह संदेश लेकर गया था ।

४. संदेश-वाहक ने आकर कहा—"हे लोक-पूज्य ! आप का पिता आपको देखने के लिये उतना ही उत्सुक है जैसे कमलिनी सूर्योदय के लिये ।"

५. तथागत ने पिता की प्रार्थना स्वीकार कर ली और बड़े भिक्षुसंघ को साथ ले पितृ-गृह की ओर प्रस्थान किया ।

६. भगवान बुद्ध जगह जगह ठहरते हुए आगे बढ़ रहे थे, लेकिन कालुदायी तेजी से चलकर पहले पहुँच गया ताकि शुद्धोदन को यह सूचना दे सके कि भगवान् बुद्ध आ रहे हैं और रास्ते पर हैं ।

७. शीघ्र ही यह समाचार शाक्य जनपद में फैल गया । हर किसी की जबान पर था कि राजकुमार सिद्धार्थ—जो बोध प्राप्त करने के लिये गृह-त्याग कर चला गया था—अब ज्ञान प्राप्त कर वापस कपिलवस्तु आ रहा है ।

८. अपने सम्बन्धियों और मन्त्रियों को लेकर शुद्धोदन और महाप्रजापति अपने पुत्र की अगवानी के लिये गये । जब उन्होंने दूर से ही अपने पुत्र को देखा, उसके सौन्दर्य, उसके व्यक्तित्व, उसके तेज का उनके मन पर बड़ा प्रभाव पड़ा । वे मन ही मन बड़े प्रमुदित हुए । किन्तु उनके पास शब्द न थे कि वे उसे व्यक्त कर सकें ।

९. निश्चय से वह उनका पुत्र था, उसकी शक्ल-सूरत वही थी । महान्

श्रमण उनके हृदय के कितना समीप था और तब भी उनके बीच की दूरी कितनी अधिक थी ! वह महामुनि, अब उनका पुत्र सिद्धार्थ नहीं रहा था, अब वह बुद्ध था, सम्यक् सम्बुद्ध था, अर्हत था, लोक-गुरु था।

१०. अपने पुत्र के धार्मिक पद का ध्यान कर शुद्धोदन रथ से उतरा और सर्व-प्रथम अभिवादन किया। बोला—"तुम्हें देखे सात वर्ष बीत गये। इस क्षण की हम कितनी प्रतीक्षा करते रहे !"

११. तब शुद्धोदन के सामने सिद्धार्थ बिराजमान हुए। राजा आंखें फाड़फाड़ कर अपने पुत्र की ओर देखता रहा। उसकी इच्छा हुई कि उसे नाम लेकर पुकारे किन्तु उसका साहस नहीं हुआ। सिद्धार्थ, वह मन ही मन बोला, सिद्धार्थ अपने पिता के पास लौट आओ, और फिर उसके पुत्र बन जाओ। लेकिन अपने पुत्र की दृढ़ता देखकर उसने अपनी भावनाओं को वश में रखा। शुद्धोदन तथा प्रजापति—दोनों के दोनों निराश हो गये।

१२. इस प्रकार अपने पुत्र के ठीक सामने पिता बैठा था—अपने दुःख में वह सुखी था, अपने सुख में वह दुःखी। उसे अपने पुत्र पर अभिमान था, किन्तु वह अभिमान चूर चूर हो गया जब उसे ध्यान आया कि उसका पुत्र कभी उसका उत्तराधिकारी न बनेगा।

१३. "मैं तुम्हारे चरणों पर अपना राज्य रख दूं", उसने कहा, "किन्तु यदि मैंने ऐसा किया तो तुम उसे मिट्टी के मोल का भी न समझोगे।"

१४. तथागत ने सान्त्वना दी—"मैं जानता हूँ राजन् ! तुम्हारा हृदय प्रेम से गद्गद् है। तुम्हें अपने पुत्र के लिये महान दुःख है। लेकिन प्रेम के जो धागे तुम्हें अपने उस पुत्र से बांधे हुए हैं, जो तुम्हें छोड़ कर चला गया, उसी प्रेम के अन्तर्गत तुम अपने सारे मानव-बन्धुओं को बांध लो। तब तुम्हें अपने पुत्र सिद्धार्थ से भी बड़े किसी की प्राप्ति होगी, तुम्हें मिलेगा वह जो सत्य का संस्थापक है; तुम्हें मिलेगा वह जो धर्म का मार्ग-दर्शक है और तुम्हें मिलेगा वह जो शान्ति का लाने वाला है। तब तुम्हारा हृदय निर्वाण से भर जायगा।"

१५. जब शुद्धोदन ने अपने पुत्र, बुद्ध के ये वचन सुने वह प्रसन्नता के मारे कांपने लगा। उस की आंखों में आंसू थे और उस के हाथ जुड़े थे, जब उसने कहा—"अद्भुत परिवर्तन है ! संतप्त हृदय शान्त हो गया। पहले मेरे हृदय पर पत्थर पड़ा था, किन्तु, अब मैं तुम्हारे महान् त्याग का मधुर फल चख रहा हूँ। तुम्हारे लिये यही उचित था कि तुम अपनी महान् करुणा से प्रेरित होकर राज्य के सुख-भोग का त्याग करते और धर्म-राज्य के संस्थापक बनते। अब धर्म-पथ के जानकार की हैसियत से तुम सभी को मोक्ष-मार्ग का उपदेश दे सकते हो।"

१६. भिक्षु संघ सहित भगवान् बुद्ध उस उद्यान में ही विराजमान रहे, जबकि शुद्धोदन वापस घर लौट आया।

१७. अगले दिन तथागत ने भिक्षा-पात्र लिया और कपिलवस्तु में भिक्षाटन के लिये निकले।

१८. बात तुरन्त फैल गई:—जिस नगर में कभी सिद्धार्थ रथ में बैठ कर सवारी के लिये निकलते थे, आज उसी नगर में भिक्षा-पात्र हाथ में लिये घर-घर विचर रहे हैं। चीवर का रंग भी लाल-मिट्टी के ही समान है और हाथ का भिक्षा-पात्र भी मिट्टी का ही है।

१९. इस विचित्र वार्ता को सुना तो शुद्धोदन घबराया हुआ दौड़ा गया : तुम इस प्रकार मुझे क्यों लजाते हो? क्या तुम इतना नहीं जानते कि मैं तुम्हें और तुम्हारे संघ को भोजन करा सकता हूँ?

२०. तथागत का उत्तर था—"यह हमारी वंश-परम्परा है।"

२१. "यह कैसे हो सकता है? हमारे वंश में कभी किसी एक ने भी भिक्षाटन नहीं किया है।"

२२. "राजन्! निश्चय से तुम और तुम्हारा वंश क्षत्रियों का वंश है। किन्तु मेरा वंश बुद्धों का वंश है। उन्होंने भिक्षाटन किया है और हमेशा भिक्षा पर ही निर्भर रहे हैं।"

२३. शुद्धोदन निरुत्तर था। तथागत कहते रहे—"किसी को कहीं कुछ खजाना मिले तो उस में जो बहुमूल्य रत्न होगा वह लाकर उसे अपने पिता को ही भेंट करेगा। मैं तुम्हें यह धर्म-निधि अर्पण करता हूँ।"

२४. और तब तथागत ने अपने पिता को कहा—"यदि तुम अपने आपको इन मिथ्या स्वप्न-जालों से मुक्त करो, यदि तुम सत्य को अंगीकार करो, यदि तुम अप्रमादी रहो और यदि तुम धर्म-पथ पर ही चलो तो तुम्हें अक्षय-सुख प्राप्त होगा।"

२५. शुद्धोदन ने निःशब्द रहकर ये शब्द सुने और बोला, "पुत्र! मैं तुम्हारे कथनानुसार आचरण करने का प्रयास करूंगा।"

२. यशोधरा और राहुल से भेंट

१. तब तथागत को शुद्धोदन घर में लिवा ले गया। परिवार के सभी लोगों ने उन्हें अभिवादन किया।[१]

२. लेकिन राहुल-माता यशोधरा नहीं आई। जब शुद्धोदन ने सूचना भिजवाई तो उसने कहला भेजा:—"मैं किसी योग्य समझी जाऊंगी तो सिद्धार्थ यहीं मुझे मिलने आयेंगे।"

३. अपने सभी सम्बन्धियों से भेंट हो चुकने पर सिद्धार्थ ने पूछा—"यशोधरा कहां है?" उत्तर दिया गया—"उसने आने से इनकार कर दिया है।" सिद्धार्थ तुरन्त उठे और सीधे उसके भवन में गये।

४. सारिपुत्त और मौद्गल्यायन को, जिन्हें वे यशोधरा के कमरे में भीतर तक साथ ले गये थे, तथागत ने कहा–"मैं तो मुक्त हूँ। लेकिन यशोधरा अभी मुक्त नहीं है। इतने लम्बे अर्से तक मुझे नहीं देखा है, इस लिये वह बहुत दु:खी है। जब तक उसका दु:ख आंसुओं के मार्ग से बह न जायगा, उसका जी भारी रहेगा। यदि वह तथागत का स्पर्श भी कर ले तो उसे रोकना नहीं।"

५. यशोधरा, सोच-विचार में गहरी डूबी हुई अपने कमरे में बैठी थी। तथागत ने प्रवेश किया तो भक्ति-बाहुल्य से उसका वही हाल था जो किसी लबालब भरे पात्र का हो और जो अपने में समा न सके।

६. वह यह भूल गई कि उसका स्नेहभाजन महामानव बुद्ध है, लोक-गुरु है, सत्य का महान् उपदेष्टा है। उसने बड़े जोर से उसके चरण धरे और जोर जोर रोने लगी।

७. लेकिन जब उसे इसका ध्यान आया कि शुद्धोदन भी वहां आ गया है तो उसे लज्जा आई। वह उठी और बड़ी भक्ति-भावना सहित एक ओर बैठ गई।

८. शुद्धोदन ने यशोधरा की ओर से बोलते हुए कहा—"इसका यह व्यवहार कुछ क्षणिक भावना का परिणाम नहीं है। इसने बड़ी गहरी भक्ति का परिचय दिया है। इन सात वर्षों में, जब से तुम इसे छोड़ कर चले गये, जब इसने सुना कि सिद्धार्थ ने अपना सिर मुंडवा लिया है, इसने भी वैसा ही किया; जब इसने सुना कि सिद्धार्थ ने गहनों और सुगन्धित द्रव्यों का परित्याग कर दिया, इसने भी वैसा ही किया; और जब इसने सुना कि सिद्धार्थ एकाहारी हो गये, तब से यह भी मृत्तिका-पात्र में एक ही बार आहार ग्रहण करने लगी।

९. "यदि यह क्षणिक भावुकता नहीं है, तो यह सब इसके साहस की ही परिचायक है।"

१०. तब सिद्धार्थ ने यशोधरा को उसके महान् पुण्य की याद दिलाई और उस महान् साहस की जिसका परिचय उसने सिद्धार्थ की प्रव्रज्या के समय दिया था। उन्होंने कहा कि जब वे बोधिसत्व की अवस्था में बुद्धत्व प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील थे, उस समय उसकी पवित्रता, उसकी कोमलता तथा उसकी भक्ति ही उनका सबसे बड़ा संबल सिद्ध हुई थी। यह उसी का "कर्म" था और यह महान् पुण्य का परिणाम था।

११. यशोधरा की वेदना वचनों से परे की बात थी। किन्तु उसने जो धीरता और वीरता दिखाई उसने उसके आध्यात्मिक उत्तराधिकार को चार चाँद लगा दिये और उसे भी अनुपम पद प्रदान किया।

१२. तब यशोधरा ने सात वर्ष के राहुल को एक राजकुमार की तरह सजाया और बोली :—

१३. "यह श्रमण, जो ब्रह्मा के समान है, तुम्हारे पिता हैं। उनके पास

अक्षय निधि है जिसे मैंने अभी तक नहीं देखा है। उनके पास जा और वह अक्षय-निधि मांग, क्योंकि वह तेरा उत्तराधिकार है।"

१४. राहुल बोला—"मेरा पिता कौन है ? मैं तो एक बाबा शुद्धोदन को ही पिता जानता हूँ।"

१५. यशोधरा ने बच्चे को गोद में लिया और खिड़की में से दिखाया—"वह देख, वह तेरे पिता हैं, और शुद्धोदन नहीं।" उस समय तथागत भिक्षुसंघ के बीच बैठे भिक्षा ग्रहण कर रहे थे और वहां से दूर नहीं थे।

१६. तब राहुल उनके पास गया और ऊपर मुंह उठाकर निर्भयतापूर्वक, किन्तु बड़े ही स्नेह-स्निग्ध स्वर में बोला—

१७. "क्या तुम मेरे पिता नहीं हो ?" और उनके पास खड़ा ही खड़ा कहने लगा—"श्रमण ! तुम्हारी छाया बड़ी सुखकर है !" तथागत निःशब्द रहे।

१८. जब भोजन समाप्त हो गया, तथागत ने आशीर्वाद दिया और महल से विदा हुए। राहुल पीछे-पीछे हो लिया और अपना उत्तराधिकार मांगता रहा।

१९. राहुल को किसी ने नहीं रोका, न स्वयं तथागत ने ही।

२०. तथागत ने सारिपुत्र की ओर देखा और कहा—"राहुल उत्तराधिकार चाहता है। मैं उसको यह नाश्वान् निधि नहीं दे सकता जो अपने साथ चिन्तायें लाती है, लेकिन मैं इसे श्रेष्ठ जीवन का उत्तराधिकार दे सकता हूँ जो अपने में एक अक्षय निधि है।"

२१. तब राहुल को ही संबोधित करके तथागत बोले—"सोना, चांदी और हीरे मेरे पास नहीं हैं। किन्तु यदि तू आध्यात्मिक-निधि चाहता है और उसे ले सकने तथा संभाल कर रखने में समर्थ है तो वह मेरे पास बहुत है। मेरी अध्यात्म-निधि मेरे धर्म का मार्ग ही है। क्या तू उन के संघ में प्रविष्ट होना चाहता है जो अपना जीवन साधना में व्यतीत करते हैं और जो भी ऊंचे से ऊंचा आदर्श है—ऊंचे से ऊंचा सुख है, और जो प्राप्य है, उसे प्राप्त करने का प्रयास करते हैं ?"

२२. राहुल ने दृढ़तापूर्वक कहा—"प्रविष्ट होना चाहता हूँ।"

२३. जब शुद्धोदन ने सुना कि राहुल भी भिक्षु-संघ में शामिल हो गया, उसे बड़ा क्लेश हुआ।

३. शाक्यों द्वारा स्वागत

१. जब तथागत अपने शाक्य जनपद में पधारे तो उन्होंने देखा कि उनके जनपदवासी दो भागों में विभक्त हैं—कुछ अनुकूल हैं, कुछ प्रतिकूल।

२. इससे उन्हें उस पुराने मतभेद की याद आई, जिसका परिचय शाक्यों ने उस समय दिया था जब कि कोलियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ने और न छेड़ने का प्रश्न शाक्यों के विचाराधीन था और जिस चर्चा में उसने ऐसा महत्वपूर्ण भाग लिया था।

३. जो उस समय उसके विरोधी थे उन्होंने अभी भी उसकी महानता को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था और उसे साधारण अभिवादन तक नहीं किया था। जो उसके अनुकूल थे, उन्होंने प्रति परिवार एक-एक तरुण उसके संघ में दीक्षित होने के लिए देना तय किया था। इन सबने अब संघ में दीक्षित होकर, तथागत के साथ ही राजगृह जाने का संकल्प किया।

४. जिन परिवारों ने अपने अपने यहाँ से एक एक पुत्र देने का निश्चय किया था, उनमें एक परिवार शुक्लोदन का भी था।

५. शुक्लोदन के दो पुत्र थे, एक था अनुरुद्ध जो बहुत ही सुकुमार था और दूसरा था महानाम।

६. तब महानाम अनुरुद्ध के पास गया—"या तो तुम गृह-त्याग करो, या मैं करता हूँ।" अनुरुद्ध का उत्तर था—मैं सुकुमार हूँ। मेरे लिए गृहस्थी का त्याग करना कठिन है। तुम त्याग कर दो।"

७. "लेकिन अनुरुद्ध! मुझसे यह तो सुनो कि गृहस्थी में क्या क्या करना पड़ता है? पहले तो तुम्हें खेत में हल जुतवाना होता है। जब यह हो गया तब खेतों में बीज डलवाना होता है। जब यह हो गया, तब खेतों को पानी से सिंचवाना होता है। जब यह हो गया, तब पानी निकलवाना होता है। जब यह हो गया, तब पौधों की निराई करानी होती है। जब यह हो गया, तो फसल को कटवाना होता है। जब यह हो गया, तो फसल को ढोकर उठवा ले जाना होता है। जब यह हो गया, तो उसकी पूली बंधवाना होता है। जब यह हो गया, तो बैलों से रौंदवाना होता है। जब यह हो गया, तो तिनके पृथक् कराना होता है। जब यह हो गया, तो भूसी पृथक् कराना होता है। जब यह हो गया तो उसे फटकवाना होता है। जब यह हो गया, तो फसल को कोठों में भरवाना होता है। जब यह हो गया, तो फिर अगले वर्ष यही क्रम दोहराना होता है। और यह क्रम प्रत्येक वर्ष चालू रखना होता है।

८. "कामों का तो कोई अन्त नहीं। आदमी के कामों की समाप्ति तो कभी होती ही नहीं। ओह! हमारे काम कब खतम होंगे? ओह! हमारे काम कब समाप्त होंगे? इन पाँचों इन्द्रियों और उनके भोगों के रहते हुए, हम कब आराम से रह सकेंगे? हाँ, प्रिय अनुरुद्ध कामों का तो कोई अन्त नहीं। आदमी के कामों की समाप्ति तो कभी होती नहीं।"

९. अनुरुद्ध बोला—"तो गृहस्थी को तुम ही संभालो। मैं ही घर से बेघर होता हूँ।"

१०. तब अनुरुद्ध शाक्य अपनी मां के पास गया—"मां, मैं गृह-त्याग कर प्रव्रजित होना चाहता हूँ। मुझे अनुमति दे दो।"

११. अनुरुद्ध शाक्य के ऐसा कहने पर उसकी मां बोली—"अनुरुद्ध! तुम

दोनों मेरे प्रिय पुत्र हो। तुम दोनों में से मैं किसी में कोई दोष नहीं देखती। मैं जानती हूँ कि मृत्यु आयेगी तो मुझे तुमसे जुदा कर देगी, किन्तु मैं जीते जी तुम्हें प्रव्रजित होने की अनुमति कैसे दे सकती हूँ ?"

१२. दूसरी वार फिर अनुरुद्ध ने अपनी प्रार्थना दोहराई। दूसरी बार भी उसे वही उत्तर मिला। तीसरी बार फिर अनुरुद्ध ने अपनी मां से प्रार्थना की।

१३. उस समय शाक्य जनपद पर भद्दिय शाक्य राज्य करता था। वह अनुरुद्ध शाक्य का मित्र था। अनुरुद्ध की मां ने सोचा कि भद्दिय-शाक्य कभी अपने राज्य को छोड़ कर नहीं जा सकता। इसलिये बोली—"अनुरुद्ध ! यदि शाक्य-राजा भद्दिय राज्य का त्याग करे तो तू भी उसके साथ प्रव्रजित हो जा सकता है।"

१४. तब अनुरुद्ध भद्दिय के पास पहुंचा और उससे कहा—"मित्र ! मेरी प्रव्रज्या में तुम बाधक हो रहे हो।"

१५. "मित्र ! यदि मैं बाधक हूँ, तो वह बाधा दूर हो। मैं तुम्हारे साथ हूँ। प्रसन्नतापूर्वक संसार त्याग कर दो।"

१६. "प्रिय मित्र ! आ, हम दोनों इकट्ठे संसार त्याग करें।"

१७. भद्दिय बोला—"मित्र ! मैं संसार त्याग करने में असमर्थ हूँ। और जो कुछ तुम मुझे करने के लिये कहो, मैं करूँगा। तुम अकेले ही प्रव्रजित हो जाओ।"

१८. "मित्र ! मां ने मुझे कहा है कि यदि तुम प्रव्रजित होओ, तो मैं भी हो सकता हूँ। और तुमने अभी अभी कहा है 'यदि मैं बाधक हूँ, तो वह बाधा दूर हो। मैं तुम्हारे साथ हूँ। प्रसन्नतापूर्वक संसार त्याग कर दो।' इसलिए मित्र ! आओ, हम दोनों इकट्ठे संसार त्याग करें।"

१९. तब शाक्य-राजा भद्दिय अनुरुद्ध से बोला—"मित्र ! सात वर्ष तक प्रतीक्षा करो। सात वर्ष की समाप्ति कर हम इकट्ठे प्रव्रजित होंगे।"

२०. "मित्र ! सात वर्ष का समय बहुत होता है। मैं सात वर्ष प्रतीक्षा नहीं कर सकता।"

२१. भद्दिय ने छः वर्ष, पाँच वर्ष और इस प्रकार घटाते घटाते एक वर्ष प्रतीक्षा करने की बात कही। फिर ग्यारह महीने, दस महीने और इस प्रकार घटाते घटाते पन्द्रह दिन प्रतीक्षा करने की बात कही। अनुरुद्ध का एक ही उत्तर था—"इतना समय बहुत होता है।"

२२. तब भद्दिय बोला—"अच्छा मित्र ! एक सप्ताह प्रतीक्षा करो। इतने समय में मैं अपने भाइयों और पुत्रों को राज्य सौंप दूं।"

२३. अनुरुद्ध बोला---"सात दिन बहुत नहीं होते। इतने दिन मैं प्रतीक्षा करूँगा।"

२४. तब शाक्य राजा भद्दिय, अनुरुद्ध, आनन्द, भृगु, किम्बिल और देवदत्त जैसे कभी वह अपनी चतुरंगिणी सेना सहित उद्यान-क्रीड़ा के लिये साथ साथ

जाते थे, उसी प्रकार अब भी वह अपनी चतुरंगिणी सेना को साथ ले घर से निकले। उपाली नाई भी साथ हो लिया। सब मिलाकर उनकी संख्या सात हो गई।

२५. कुछ दूर जाने पर उन्होंने अपनी सेना को वापिस लौटा दिया और सीमा पार कर दूसरे जनपद में प्रवेश किया। उन्होंने अपने सुन्दर गहने कपड़े उतारे, उनकी गठरी बनाई और उपाली नाई से बोले–"उपाली! तुम वापिस कपिलवस्तु चले जाओ। तुम्हारे जीने के लिए यह सब पर्याप्त है। हम तथागत की शरण ग्रहण करने जा रहे हैं।" और वे चले गये।

२६. वे चले गये और वापिस कपिलवस्तु लौटने के लिए उपाली ने विदा ली।

४. सिद्धार्थ को गृहस्थ बनाने का अंतिम प्रयास

१. यह सोच कि अब वह अपने पुत्र को फिर कभी न देख सकेगा, शुद्धोदन जोर जोर रोया।

२. तब शुद्धोदन ने अपने मन्त्री और अपने पुरोहित से पूछा कि क्या वे जाकर सिद्धार्थ को यहीं रोके रखने का और अपने परिवार में ही सम्मिलित हो जाने का प्रयास कर सकते हैं?

३. राजा की इच्छा के अनुसार मन्त्री और पुरोहित विदा हुए और अभी भगवान बुद्ध रास्ते में ही थे कि उनके पास जा पहुँचे।

४. उन्होंने यथोचित अभिवादन किया और उनकी अनुज्ञा पाकर एक ओर बैठ गये।

५. जिस समय तथागत वृक्ष की छाया के नीचे बैठे थे, राज-पुरोहित ने निवेदन किया—

६. "हे राजकुमार! जिस राजा के हृदय को आपकी विदाई के तीर ने बुरी तरह बींधा है और जिस की आंखों से आंसुओं की धारा बहती रहती है, उस राजा की भावनाओं का जरा तो ख्याल करें। उसकी कामना है कि आप फिर घर में चले आवें। वह तभी शान्ति से मर सकेगा।" उसका कथन है—

७. "मैं जानता हूँ कि आप धर्म-स्थित हैं और मैं यह भी जानता हूँ कि आपका यह संकल्प वज्र के समान दृढ़ है। लेकिन इस प्रकार घर छोड़ कर चले जाने से उत्पन्न वियोगाग्नि से मेरा दिल जल रहा है।

८. "हे धर्म-प्रिय, धर्म के लिए ही आप अपने इस संकल्प को छोड़ दें।

९. "कुछ समय के लिए पृथ्वी के राज्य का उपभोग करें; बाद में शास्त्र-सम्मत विधि से आरण्यवास भी कर सकते हैं। अपने दुःखी सम्बन्धियों के प्रति निर्दयी न बनें। सभी के प्रति दयावान् होना ही धर्म है।

१०. "धर्म की साधना अनिवार्य तौर पर जंगल में ही नहीं होती, साधु नगर

में रहकर भी मोक्ष-लाभ कर सकता है। ज्ञान और आचरण ही धर्म के यथार्थ साधन हैं। साधु-भेष और वनवास तो केवल कायरता के द्योतक हैं।

११. "शाक्य-राजा दुःख के सागर में डूबा हुआ है, जिसमें तीव्र वेदना की लहरें उठ रही हैं। इसलिए तुम उसका उद्धार करो, क्योंकि उसकी वही दुरवस्था है जो समुद्र में डूबती हुई गौ की।

१२. "और उस रानी—उस प्रजापति गोतमी—की ओर भी ध्यान दें, जिसने आपको पाल-पोस कर इतना बड़ा किया, जो अभी तक अगस्त्य-लोक को नहीं पधारी है। क्या आप उसकी तनिक भी चिन्ता नहीं करेंगे जो बिना बछड़े की गौ की तरह निरन्तर रँभाती रहती है?

१३. "निश्चय से आप अपने दर्शन से अपनी पत्नी को तो संतुष्ट रखना ही चाहेंगे, जो अपने पति के जीवित रहते भी एक विधवा की तरह दुःखी रहती है, अथवा एक हंसिनी की तरह जिसका हंस उससे पृथक् कर दिया गया हो, अथवा उस हथिनी की तरह जिसका हाथी उसे जंगल में छोड़ कर चला गया हो।"

१४. राज-पुरोहित के मैं वचन सुन उस धर्म-ज्ञाता ने उन पर क्षण भर विचार किया और तब उसे इस प्रकार उत्तर दिया –

५. भगवान बुद्ध का उत्तर

१. "मेरे प्रति राजा का जो वात्सल्य-भाव है, उससे मैं सुपरिचित हूँ, विशेष रूप से वह जो उसने मेरे प्रति दरसाया है, लेकिन यह सब होते हुए भी, क्योंकि मैं संसार के दुःखमय रूप से भी सुपरिचित हूँ, इसीलिए मैं अपने संबंधियों का त्याग करने के लिये मजबूर हूँ।

२. "यदि संसार में प्रियजनों से यह अनिवार्य वियोग न होता तो कौन है जो अपने प्रियजनों के साथ ही न रहता? लेकिन, एक बार होने पर भी, यह वियोग फिर दुबारा होकर रहेगा, इसीलिए मैं अपने प्रिय पिता को छोड़ कर जा रहा हूँ।

३. "लेकिन मैं इसे ठीक नहीं समझता कि तुम यह सोचो कि मैं ही राजा के दुःख का कारण हूँ, क्योंकि वह अपने इस स्वप्नवत् समागम में भावी वियोग की चिन्ता करता है।

४. "इसलिए इस विषय में तुम्हारा मत निश्चित होना चाहिए। वियोग के नाना रूपों को देखकर तुम्हें यह समझ लेना चाहिए कि न कोई पुत्र और न कोई दूसरा सम्बन्धी ही दुःख का कारण है। सारा दुःख अज्ञान-जनित है।

५. "जिस प्रकार जो राही सड़क पर इकट्ठे होते हैं वे आगे चल कर पृथक् होते ही हैं, इसी प्रकार जब आज या कल सभी का परस्पर वियोग अनिवार्य है, तो कोई भी बुद्धिमान् आदमी किसी भी स्वजन से पृथक् होने पर दुःखी क्यों होगा—भले ही वह स्वजन उसका कितना ही प्रिय क्यों न हो?

६. "अपने सम्बन्धियों को दूसरे लोक में छोड़ कर आदमी यहां इसमें चला आता है, और फिर इसमें उन्हें छोड़ कर दूसरे में चला जाता है, और वहां आकर, वहाँ से भी अन्यत्र चला जाता है—यही मानव-मात्र का हाल है। एक मुक्त पुरुष इस सबके लिये दुःखी क्यों हो ?

७. "जब मां के गर्भ से निकलते ही, मृत्यु प्राणी का पीछा करने लग जाती है, तो तुमने अपने स्नेह में मेरे वनगमन को 'असमय' क्यों कहा ?

८. "किसी सांसारिक वस्तु को प्राप्त करने के लिए 'समय-असमय' हो सकता है, समय हर चीज के साथ लगा ही है, समय संसार को नाना परिवर्तनों में से गुजारता है; लेकिन जब जीवन अस्थिर है, तो 'धर्म' करने के लिए कोई असमय नहीं है।

९. "राजा का तो यह संकल्प ठीक ही है, एक पिता के योग्य है कि वह मुझे राज्य देना चाहे; लेकिन मेरे लिए यह ऐसे ही होगा जैसे कोई लोभी रोगी प्रतिकूल भोजन ग्रहण कर ले।

१०. "किसी भी बुद्धिमान् के लिए 'राज्याधिकार' कैसे उचित हो सकता है, जहां चिन्ता है, राग-द्वेष है, क्लान्ति है और है दूसरों के प्रति अन्याय।

११. "सोने का महल तो मुझे लगता है जैसे उसमें आग लगी है, अच्छे से अच्छे भोजन विष मिले प्रतीत होते हैं और कमलों के फूल से आच्छादित शय्या पर, लगता है, जैसे मगरमच्छ लोट रहे हों।"

६. मन्त्री का उत्तर

१. उसके ज्ञान और गरिमा के अनुरूप, तृष्णा-विमुक्त, तर्कपूर्ण कथन सुना तो मन्त्री बोला—

२. "आपका यह संकल्प तो सर्वथा योग्य है और किसी भी तरह आपके अयोग्य नहीं, किन्तु केवल समय की दृष्टि से यह इस समय अयोग्य है। यह किसी भी तरह तुम्हारा धर्म नहीं हो सकता कि अपने वृद्ध पिता को दुःख में छोड़कर चल दो।

३. "निश्चय से तुम्हारी बुद्धि बहुत सूक्ष्म नहीं है, कम से कम धर्म, अर्थ और काम के मामले में तो सूक्ष्म नहीं है। जब कि किसी अविद्यमान अदृश्य वस्तु के लिए आप विद्यमान दृश्य का त्याग करने के लिए तैयार हैं।

४. "फिर कोई कहता है कि पुनर्जन्म है, कोई उतने ही विश्वास के साथ कहता है कि नहीं है, जब इस विषय में इतना सन्देह है तो फिर यही उचित है कि वर्तमान भोगों को भोगा जाय !

५. "यदि कोई परलोक होगा, तो हम परलोक में भी आनन्द मनायेंगे, किन्तु यदि कोई परलोक नहीं होगा तो फिर सारा संसार ही निश्चित रूप से अनायास मुक्त है।

६. "कुछ ऐसे हैं जो पुनर्जन्म तो मानते हैं, किन्तु मोक्ष की कोई सम्भावना नहीं मानते। उनका कहना है कि जैसे अग्नि स्वभाव से ही उष्ण होती है और पानी स्वभाव से ही तरल होता है, इसी प्रकार यह संसार स्वभाव ही संसरण-शील है।

७. "कुछ का मत है कि सभी वस्तुएं स्वभावज हैं—चाहे अछी हों, चाहे बुरी हों; चाहे सत् हों, चाहे असत् हों—और जब यह सारा संसार ही स्वभावज है, इसलिए भी हमारे सब प्रयास व्यर्थ हैं।

८. "जब इन्द्रियों की प्रक्रिया निश्चित है और बाह्य पदार्थों की अनुकुलता-प्रतिकूलता भी—तो फिर जिसका वृद्धावस्था और कष्ट से अटूट सम्बन्ध है, उसे कौन कैसे पृथक् कर सकता है? क्या यह सब प्राकृतिक ही नहीं है?

९. "पानी आग को बुझा देता है और आग पानी को भाप बना कर उड़ा देती है। ये सभी तत्व जब इकट्ठे हो जाते हैं तो संसार का निर्माण करते हैं।

१०. "गर्भ में ही हाथ, पांव, पेट, पीठ और सिर की रचना हो जाती है—बुद्धिमानों का कहना है कि यह सब प्राकृतिक ही है।

११. "कांटों के तीखेपन का कौन निर्माण करता है? अथवा पशुओं और पक्षियों के स्वभाव की ही कौन रचना करता है? यह सब प्राकृतिक है। कोई भी कार्य ऐसा नहीं जिसमें चेतना कारण हो, तो फिर 'चेतना' का अस्तित्व ही कैसे हो सकता है?

१२. "कुछ का कहना है कि यह सृष्टि ईश्वर की रचना है। यदि ऐसा है तो फिर किसी चेतन आत्मा के प्रयत्नशील होने की आवश्यकता ही क्या है? जो सृष्टि को गति प्रदान करेगा, वही उस गति को अवरुद्ध भी करेगा?

१३. "कुछ कहते हैं कि प्राणी का जन्म और मरण दोनों 'आत्मा' पर निर्भर करते हैं। किन्तु उनका कहना है कि प्राणी का जन्म तो अनायास होता है, किन्तु मोक्ष प्रयास-सिद्ध है।

१४. "आदमी संतानोत्पत्ति द्वारा पितृ-ऋण से उऋण होता है, शास्त्र-अध्ययन द्वारा ऋषि-ऋण से और यज्ञों द्वारा देव-ऋण से—जो इन तीनों ऋणों से मुक्त है, वही वास्तव में मुक्त है।

१५. "इसलिए बुद्धिमानों का कहना है कि जो इस क्रम से मोक्ष के लिए प्रयास करते हैं, उन्हें ही मोक्ष प्राप्त होता है। जो इस क्रम से प्रयास नहीं करते, उन्हें व्यर्थ का आयास ही होता है।

१६. "इसीलिये हे सौम्य ! यदि मोक्ष की ही चाह है तो शास्त्र-क्रम से उसकी ओर अग्रसर हों; इस प्रकार आपको भी 'मोक्ष' प्राप्त हो जायगा और राजा भी दुःख से 'मोक्ष' पा जायगा।

१७. "और जहाँ तक आपको वन से दुबारा घर वापिस आने के बारे में आशंका है, तो इसका विचार करने की आवश्यकता नहीं। पूर्व समय में भी लोग

वन जाकर वापस घर लौटे ही हैं—अम्बरीश लौटा है, द्रुमकेश लौटा है, राम लौटा है और भी बहुत लौटे हैं ।"

७. भगवान बुद्ध का दृढ़ता

१. तब मन्त्री के प्रिय और वफ़ादारी से भरे वचन सुनकर—उस मन्त्री को जो राजा की आंखों के समान था—दृढ़व्रती बुद्ध ने अपना उत्तर दिया—यथोचित, न उकताने वाला और न जल्दबाजी से युक्त ।

२. "कुछ है वा नहीं, इसमें मेरे लिये कोई दूसरा प्रमाण नहीं है, तपस्या और साधना द्वारा मैंने स्वयं सत्य को जान लिया है ।

३. "मैं किसी ऐसे सिद्धान्त को सही स्वीकार नहीं कर सकता जो अज्ञान यत है और जिसका सिर नीचे और पैर ऊपर की तरफ है । मैं किसी ऐसे सिद्धान्त को सही स्वीकार नहीं कर सकता, जिसमें सैंकड़ों बातों को यूं ही पहले से सही मानकर चलना होता है । कौन बुद्धिमान आदमी केवल किसी दूसरे पर आश्रित होकर किसी बात में विश्वास करेगा ? मानव जाति तो अंधेरे में एक अन्धे के पीछे चलने वाली चक्षुहीन जाति बनी हुई है ।

४. "लेकिन यदि कोई सत्य और झूठ में विवेक न कर सके, यदि कोई भलाई और बुराई के विषय में संदिग्ध हो तो उसे भी अपना चित्त भलाई में ही लगाये रहना चाहिये । सद्वृत्ति वाले के लिये थोड़ा व्यर्थ का परिश्रम भी कल्याणकारी ही होता है ।

५. "लेकिन यह देखकर कि इस 'पवित्र परम्परा' का भी ठिकाना नहीं, यह समझ लो कि ठीक वही होता है जो विश्वसनीय लोगों का वचन हो, और विश्वसनीयता का मतलब है निर्दोषता । जो सर्वथा निर्दोष है वह सत्य का अपलाप कर ही नहीं सकता ।

६. "और जो कुछ तुम मुझे घर लौट चलने के बारे में कह रहे हो और अपने पक्ष के समर्थन में कुछ लोगों के उदाहरण दे रहे हो तो ऐसे लोगों की क्या प्रामाणिकता जिन्होंने अपने व्रत को ही तोड़ दिया ।

७. "चाहे सूर्य पृथ्वी पर आ गिरे और चाहे हिमालय भी अपने स्थान से हट जांये, तो भी मैं किसी हालत में भी इन्द्रिय-विषयोन्मुख होकर घर नहीं लौट सकता।

८. "मैं जलती हुई आग में प्रविष्ट हो जाऊंगा, किन्तु बिना अपने (मानवता के कल्याण के) उद्देश्य को पूरा किये घर नहीं लौट सकता ।"

इतना कहा और अपने दृढ़ निश्चय के कारण तथागत सर्वथा उपेक्षावान् होकर उठकर चल दिये ।

९. तब आँखों में आँसू लिये मन्त्री और पुरोहित निराश होकर कपिलवस्तु लौट आये । उन्होंने सिद्धार्थ का अडिग निश्चय सुन लिया था ।

१०. राजपुत्र के प्रति हृदय में प्रेम होने के कारण और राजा के प्रति हृदय में भक्ति होने के कारण वे लौट आये, किन्तु बार बार पीछे मुड़ कर देखते थे। वे न उन्हें देखते ही रह सकते थे, न उन्हें आँखों से ओझल होने दे सकते थे—जो कि सूर्य की भाँति अपने तेज से तेजस्वी थे।

११. राजपुत्र को वापिस लौटा लाने में असमर्थ सिद्ध हो मन्त्री और पुरोहित लड़खड़ाते कदमों से वापिस लौटे। वे आपस में कह रहे थे—"हम उस राजा को चल कर अब क्या मुंह दिखायेंगे, जो अपने पुत्र का मुँह देखने के लिये ही तड़प रहा है।"

१. जातक निदान-कथा ४; महावग्ग अ० क०।

२. जातकट्ठकथा (निदान)।

३. चुल्लवग्ग।

४. सिद्धार्थ कुमार को गृह-त्याग के बाद भी लौटा लाने का यह प्रयास अश्वघोषकृत बुद्धचरित के अनुसार बोधि-लाभ से पहले का है।

पाँचवाँ भाग

धर्म-दीक्षा का पुनरारम्भ

१. गंवार ब्राह्मणों की धर्म-दीक्षा

१. राजगृह के समीप ही, गृद्धकूट पर्वत के पीछे एक गाँव था, जिसमें कोई सत्तर ब्राह्मण परिवार रहते थे।

२. इन लोगों को धर्म-दीक्षा देने के उद्देश्य से भगवान बुद्ध आकर एक वृक्ष के नीचे विराजमान हुए।

३. लोगों ने जब तथागत का तेज और गम्भीर व्यक्तित्व देखा तो उससे प्रभावित होकर उनके गिर्द आ इकट्ठे हुए। तथागत ने प्रश्न किया--"तुम कब से इस पर्वत के नीचे रहते आये हो, और तुम्हारा पेशा क्या है ?"

४. उनका उत्तर था—"पिछली तीस पीढ़ियों से हम यहीं रहते आये हैं, और हमारा पेशा पशु-पालन है।"

५. और जब उनके धार्मिक-विश्वासों के बारे में प्रश्न किया गया तो उनका उत्तर था—"हम ऋतु भेद के अनुसार सूर्य, चन्द्रमा, वरुण, अग्नि आदि देवताओं की पूजा करते हैं।

६. "यदि हममें से किसी की मृत्यु हो जाती है तो हम इकट्ठे होते हैं और प्रार्थना करते हैं कि वह ब्रह्म-लोक में उत्पन्न हो जिससे उसे पुन: पुनर्जन्म न ग्रहण करना पड़े।

७. भगवान बुद्ध ने कहा—"यह क्षेमकर मार्ग नहीं है। इससे तुम्हारा कुछ लाभ नहीं हो सकता। मेरे मार्ग का अनुसरण करने से, सच्चा श्रमण बनने से, आत्म-संयम का अभ्यास करने से ही निर्वाण प्राप्त हो सकता है।

८. "जो सत्य को असत्य और असत्य को सत्य समझ बैठते हैं, ऐसे मिथ्या दृष्टि-सम्पन्न लोगों की कभी सद्गति नहीं हो सकती।"[1]

९. "जो सत्य को सत्य और असत्य को असत्य जान लेते हैं, ऐसे सम्यक्-दृष्टि-सम्पन्न लोगों को ही सद्गति की प्राप्ति होती है।[2]

१०. "संसार में सभी मृत्यु को प्राप्त होते हैं, कोई उससे बच नहीं सकता।

११. "यह समझ लेना कि जो पैदा हुआ है, उसे एक न एक दिन मरना अवश्य

है, और इसलिये जन्म मरण के बंधन से छुटकारा पाने की इच्छा करना—यही सच्ची धर्म-साधना है।"

१२. उन सत्तर ब्राह्मणों को जब यह बुद्ध-वचन सुनने के लिए मिला तो उन्होंने तुरन्त श्रमण बनने की इच्छा प्रकट की। बुद्ध द्वारा अनुमति प्राप्त होने पर उनका केश-छेदन हो गया। उनकी वेश-भूषा सच्चे श्रमण की हो गई।

१३. तब वे सब बिहार की ओर चल पड़े। रास्ते में उन्हें अपनी पत्नियों की याद आई और अपने परिवार की याद आई। उसी समय भारी वर्षा ने उनका आगे बढ़ना रोक दिया।

१४. रास्ते में कोई दस मकान थे। उन्होंने उनमें आश्रय खोजा। एक मकान के भीतर जाने पर मालूम हुआ कि क्योंकि उसकी छत चू रही थी, इसलिये उसके भीतर घुसना निष्प्रयोजन था।

१५. इस अवसर के उपयुक्त भगवान बुद्ध ने कहा—"जिस प्रकार यदि छत ठीक से छाई न गई हो तो उसमें से वर्षा का पानी अन्दर घुस आता है, इसी प्रकार यदि चित्त को ठीक ठीक साधा न गया हो तो उसमें (काम-) राग का प्रवेश हो जाता है।"[३]

१६. "लेकिन जिस प्रकार यदि छत ठीक से छाई गई हो। तो उसमें से वर्षा का पानी अन्दर नहीं आ सकता, उसी प्रकार यदि चित्त को ठीक ठीक साधा गया हो तो उसमें (काम-) राग का प्रवेश नहीं हो सकता।"[४]

१७. इन वाक्यों को सुना तो उन सत्तर ब्राह्मणों को यह लगा तो सही कि उनके मन के संकल्प-विकल्प शुभ नहीं हैं, तो भी अभी वह विचिकित्सा से मुक्त नहीं थे। इतना होने पर भी वे आगे बढ़े चले गये।

१८. आगे बढ़े तो उन्होंने पृथ्वी पर कुछ सुगन्धित द्रव्य पड़ा देखा। बुद्ध ने उसकी ओर उनका ध्यान आकर्षित किया। थोड़ी ही दूर और आगे जाने पर कुछ कूड़ा-करकट भी पड़ा दिखाई दिया। बुद्ध ने उसकी ओर भी उनका ध्यान आकर्षित किया और साथ साथ यह भी कहा—

१९. "जो दुःशीलों की संगति में रहता है वह उसी प्रकार दुःशील हो जाता है जैसे किसी दुर्गन्धयुक्त पदार्थ को ग्रहण करने वाला स्वयं गंधाने लगता है; वह उत्तरोत्तर निकृष्ट होता जाता है और अकुशल ही अकुशल करने में दक्ष हो जाता है।

२०. "लेकिन जो बुद्धिमान् बुद्धिमानों की संगति करता है, वह भी वैसा ही हो जाता है, ठीक जैसे किसी सुगन्धित पदार्थ को ग्रहण करने वाले के शरीर से भी सुगन्ध आने लगती है; वह उत्तरोत्तर बुद्धिमान् होता जाता है, शीलवान् होता जाता है, गुणवान् होता जाता है और संतोष को प्राप्त करता है।"

२१. इन सब गाथाओं को सुनकर, उन सत्तर ब्राह्मणों को निश्चय हो गया कि उनके मन में जो घर लौट कर काम-भोग जीवन व्यतीत करने के ख्याल आने

लगे थे वे कुछ बहुत उचित नहीं थे। ऐसे विचारों से सर्वथा मुक्त हो वे विहार आये और साधना कर अचिर काल में ही अर्हत्व को प्राप्त हुए।

२. उत्तरवती के ब्राह्मणों की धर्म-दीक्षा

१. जिस समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन में विहार कर रहे थे और देवताओं तथा मनुष्यों के कल्याणार्थ धर्मोपदेश दे रहे थे, ठीक उस समय श्रावस्ती के पूर्व के उत्तरवती नाम नगर में पाँच सौ ब्राह्मण रहते थे।

२. उन सबने इकट्ठे होकर एक गंगातट निवासी निर्ग्रन्थ तपस्वी के पास जाने का संकल्प किया, जो अपने शरीर पर धूल आदि लपेट कर 'ऋषि' बना हुआ था।

३. रास्ते में एक कान्तार में पहुंचने पर उन्हें जोर की प्यास लगी। दूरी पर उन्हें एक पेड़ दिखाई दिया। उन्होंने सोचा, वहाँ कुछ बस्ती जरूर होगी और पानी मिलेगा। किन्तु जब वे वहाँ पहुंचे तो वहाँ कोई बस्ती न थी। केवल एक पेड़ ही था।

४. ऐसी परिस्थिति में वे जोर जोर से रोने-चिल्लाने लगे। तब तक उस वृक्ष पर से उन्हें अचानक वृक्ष-देवता का स्वर सुनाई दिया। वृक्ष-देवता ने पूछा—"तुम क्यों रो-चिल्ला रहे हो?" लोगों ने कारण बताया तो वृक्ष-देवता ने उन्हें यथेच्छ खाने-पीने को दिया।

५. आगे बढ़ने से पूर्व उन ब्राह्मणों ने उस वृक्ष-देवता से पूछा कि उसने पूर्व जन्म में ऐसा क्या कर्म किया था कि वह वृक्ष-देवता होकर पैदा हुआ?

६. उसने उत्तर दिया कि जिस समय (अनाथ पिण्डक) सुदत्त ने तथागत को जेतवनाराम का दान दिया था, उस समय वह वहाँ सारी रात धर्म सुनता रहा था। लौटते समय उसने अपने पात्र में भिक्षुओं को पानी का दान किया था।

७. दूसरे दिन प्रातःकाल घर लौटने पर उसकी स्त्री ने पूछा कि उससे क्या अपराध हो गया था कि वह सारी रात बाहर रहा। उसने कहा कि वह गुस्से में नहीं था बल्कि वह सारी रात जेतवन में बुद्ध का उपदेश सुनता रहा था।

८. यह सुन उसकी स्त्री ने तथागत को बेहिसाब सुनाई—"यह गौतम पागल है। यह केवल लोगों को ठगता है।"

९. "उसके ऐसा बोलने पर भी," वृक्ष-देवता ने कहा, "मैंने उसका विरोध नहीं किया। इसी कारण मरणानन्तर मैं प्रेत होकर पैदा हुआ, और अपनी उस कायरता के ही परिणामस्वरूप मेरा क्षेत्र इस पेड़ तक ही सीमित है।

१०. "यज्ञ-यागादि सभी दिन-रात दुःख ही देनेवाले हैं, चिन्ता के जनक हैं।

११. "चिन्ता से मुक्त होने के लिए और दुःख का क्षय करने के लिये आदमी

को (बुद्ध के) धर्म को ही स्वीकार करना चाहिये और जो यह ऋषियों का सांसारिक धर्म है, उससे मुक्ति पानी चाहिए।"

१२. ब्राह्मणों ने जब वृक्ष-देवता के ये वचन सुने तो उन्होंने श्रावस्ती जाने का निश्चय किया। वह वहाँ पहुंचे और तथागत को अपने आने का उद्देश्य कहा उनकी प्रार्थना सुनी, तब तथागत ने कहा—

१३. "चाहे आदमी नग्न रहता हो, चाहे बड़ी बड़ी जटायें बढ़ाकर रहता हो चाहे कुछ पत्तों अथवा वल्कल चीर से ही अपना शरीर ढकता हो, चाहे वह शरीर पर धूल ही रमाता हो और पत्थरों पर सोता हो; किन्तु इस सबसे वह तृष्णा से मुक्त नहीं हो सकता।

१४. "लेकिन जो न किसी से कलह करता है और न किसी की हत्या करता है, जो अग्नि से भी किसी का नाश नहीं करता, जो किसी को पराजित करके स्वय विजयी भी नहीं होना चाहता, जिसकी सभी के प्रति मैत्री भावना है—ऐसे आदमी के मन में किसी के लिये द्वेष या घृणा का भाव नहीं होता।

१५. "प्रेतों को बलि चढ़ाना, ताकि पुण्य लाभ हो, वा परलोक में फल मिले सत्पुरुषों का सत्कार करके चौथे हिस्से के भी बराबर नहीं।

१६. "जो सदाचारी है, जो ज्येष्ठों के प्रति—वृद्धों के प्रति—सदा आदर की भावना प्रदर्शित करता है—उसे इन चार चीजों की प्राप्ति होती है—आयु की, वर्ण की, सुख की तथा बल की।"

१७. अपने पति से यह सब सुना, तो पत्नी शान्त हो गई।

१. यमकवग्गो—११ (धम्मपद)।
२. यमकवग्गो—१२ (धम्मपद)।
३. यमकवग्गो—१३ (धम्मपद)।
४. यमकवग्गो—१४ (धम्मपद)।
५. दण्डवग्गो—१३ (धम्मपद)।

छठा भाग

निम्नस्तर के लोगों की धर्म-दीक्षा

१. नाई उपालि की धर्म-दीक्षा

१. वापिस लौटते समय नाई उपाली ने सोचा–"शाक्य प्रचण्ड स्वभाव के हैं। यदि मैं इन गहनों को लेकर वापस लौटा तो यह सोचकर कि मैं अपने साथियों की हत्या करके और उनके गहने लेकर भाग आया, वे मेरी हत्या भी कर डाल सकते हैं। तो मैं भी उसी रास्ते क्यों न जाऊं जिस रास्ते वे शाक्य कुल-पुत्र गये हैं?"

२. "सचमुच मुझे क्यों उनके पीछे पीछे नहीं जाना चाहिये?" नाई उपाली ने अपने से पूछा। तब उसने अपनी पीठ पर से गहनों की गठरी उतारी और उसे एक पेड़ पर लटका दिया। उसने कहा—"जिसे यह गठरी मिले, वह इसे अपनी समझ कर ले जाये।" इसके बाद वह शाक्यों के पीछे-पीछे जाने के लिये वापस लौट पड़ा।

३. शाक्यों ने उसे दूर से आते देखा, तो बोले—"उपाली! तू लौट किस लिये आया है?"

४. तब उसने अपने मन की बात कही। शाक्य कुल-पुत्र बोले—"उपाली! तूने अच्छा किया है कि तू वापस नहीं लौटा। क्योंकि शाक्य निस्सन्देह चण्ड हैं। वे तुझे मार भी डाल सकते थे।"

५. और वे उपालि को अपने साथ लिये वहाँ पहुंचे जहाँ तथागत ठहरे हुए थे। वहाँ पहुँच कर उन्होंने तथागत को प्रणाम किया और एक ओर जा बैठे। इस प्रकार बैठ चुकने पर उन्होने तथागत से निवेदन किया—

६. "भगवान्! हम शाक्य लोग बड़े अभिमानी स्वभाव के हैं। और यह उपालि नाई चिरकाल से हमारी सेवा करता चला आ रहा है। भगवान् पहले इसे ही प्रव्रजित उपसम्पन्न करें ताकि हम इसे अपने से बड़ा मान इसका अभिवादन करें, इसे हाथ फैलाकर नमस्कार करें और इस प्रकार हम शाक्यों के अभिमान में कुछ कमी आये।"

७. तब तथागत ने पहले तो नाई उपालि को ही प्रव्रजित और उपसम्पन्न किया। इसके बाद उन दूसरे शाक्य-कुल-पुत्रों को भिक्षु संघ में दीक्षित किया।

२. भंगी सुणीत की धर्म-दीक्षा

१. राजगृह में एक सुणीत नाम का भंगी रहता था। गृहस्थों द्वारा सड़क पर फेंका गया कूड़ा-कचरा साफ करना ही उसकी जीविका का साधन था। यह उसका परम्परागत नीच पेशा था।[२]

२. एक दिन प्रातःकाल तथागत उठे, चीवर धारण किये और बहुत से भिक्षुओं को साथ लिये भिक्षाटन के लिए निकले।

३. अब उस समय सुणीत कूड़ा-कचरा इकट्ठा कर के ढेर लगा रहा था, जिसे वह बाद में टोकरी से गाड़ी में डालने वाला था और उस गाड़ी को खींच कर ले जाने वाला था।

४. और जब उसने अनुयायियों सहित तथागत को आते देखा, उसका हृदय प्रसन्नता से भर गया; किन्तु साथ ही वह डर भी गया था।

५. सड़क पर छिपने की कोई जगह न देख, उसने अपनी गाड़ी को दीवार से जा सटाया और खुद भी दीवार से सट कर हाथ जोड़े हुए खड़ा हुआ।

६. तथागत जब कुछ समीप आवे तो उन्होंने अमृत भरी वाणी में उसे सम्बोधित किया—"सुणीत ! यह तुम्हारा दरिद्र जीविका का साधन क्या है ? क्या तुम घर छोड़ कर संघ में प्रविष्ट हो सकते हो ?"

७. सुणीत को ऐसा लगा जैसे किसी ने उस पर अमृत वर्षा की हो। बोला—"जिस संघ में भगवान् बुद्ध हैं, उसमें मैं कैसे नहीं आ सकता ? कृपया आप मुझे संघ में प्रविष्ट कर लें।"

८. तब तथागत के श्रीमुख से निकला—"भिक्षु आ।" इस एक वचन से ही सुणीत को प्रव्रज्या और उपसम्पदा मिली तथा वह पात्र-चीवर युक्त हो गया।

९. भगवान् बुद्ध उसे विहार ले गये तथा धर्म और विनय की शिक्षा दी—"शील, संयम और दमन से प्राणी शुद्ध हो जाते हैं।"

१०. जब पूछा गया कि सुणीत इतना महान् कैसे हो गया, तो तथागत ने कहा—"जिस प्रकार रास्ते पड़े किसी कूड़े-कचरे के ढेर पर एक सुगन्धित कँवल भी उग सकता है, उसी प्रकार इस अंधे-जगत में, इस कूड़ा-कचरे संसार में बुद्ध-पुत्र भी प्रकाशित हो सकता है।"-

३. सोपाक तथा सुप्पिय अछूतों की धर्म-दीक्षा

१. सोपाक श्रावस्ती का एक अछूत बालक था। प्रसव-वेदना के समय उसकी मां बेहोश हो गई। उसके पति और सम्बन्धियोंने सोचा कि वह मर गई है। वे उसे श्मशान में ले गये और वहां उसके लिये चिता तैयार की।

२. लेकिन उस समय इतना पानी बरसा और ऐसा तूफान आया कि चिता में

आग लगा सकना असम्भव हो गया। इसलिये लोग उसे यूं ही चिता पर पड़ा छोड़ चले गये।

३. सोपाक की मां उस समय तक मरी नहीं थी। वह बाद में मरी। मृत्यु से पहले वह बालक को जन्म दे गई।

४. उस बच्चे का श्मशान के रखवाले ने ही अपने बच्चे सुप्पिय के साथ पालन-पोषण किया। मां की जाति के नाम पर बच्चे का नाम भी सोपाक ही पड़ गया।

५. एक दिन भगवान् बुद्ध श्मशान के पास से गुज़र रहे थे। सोपाक उन्हें देख कर उनके पास चला गया। भगवान् को अभिवादन कर, उसने भगवान् से संघ में प्रविष्ट होने की अनुज्ञा मांगी।

६. उस समय सोपाक की आयु केवल सात वर्ष की थी। भगवान् बुद्ध ने उसे अपने पिता की अनुमति लाने के लिये कहा।

७. सोपाक जाकर अपने पिता को ही ले आया। पिता ने भगवान् को अभि-वादन किया और प्रार्थना की कि वे उसके पुत्र को संघ में प्रविष्ट कर लें।

८. इस बात का ख्याल न कर कि वह "अछूत" है, भगवान् बुद्ध ने उसे संघ में प्रविष्ट कर लिया तथा उसे धर्म और विनय की शिक्षा दी।

९. बाद में सोपाक एक स्थविर हुआ।

१०. सुप्पिय और सोपाक बचपन से साथ ही साथ बड़े हुए थे। और क्योंकि सुप्पिक के पिता ने ही सोपाक का भी पालन-पोषण किया था, इसलिये सुप्पिन ने भी अपने साथी सोपाक से भगवान् बुद्ध के धर्म की शिक्षा ग्रहण कर ली। उसने सोपाक से ही उसे प्रव्रजित करने की प्रार्थना भी की। जाति-वाद के हिसाब से सोपाक सुप्पिय की भी अपेक्षा 'नीच' जाति का था।

११. सोपाक ने स्वीकार किया, और सुप्पिय जो एक "नीच" जाति का था और जिसका परम्परागत पेशा श्मशान की रखवाली था—भी एक भिक्षु बन गया।[४]

४. सुमङ्गल तथा अन्य 'नीच' जाति वालों की धर्म-दीक्षा

१. सुमंगल श्रावस्ती का एक किसान था।[१] वह दराती, हल और कुदाली से खेत में काम कर के ही अपनी जीविका कमाता था।

२. छन्न कपिलवस्तु का ही एक अधिवासी था और शुद्धोदन के ही घर का एक दास।

३. धनिय राजगृह का रहने वाला था। वह एक कुम्हार था।

४. 'कप्पत-कुर' श्रावस्ती में ही रहता था। बदन पर चीथड़े, हाथ में खप्पर लिये भीख मांगते फिरना ही उसकी जीविका का एकमात्र साधन था। उसका नाम ही पड़ गया था—"चीथड़े-चावल"। बड़े होने पर वह घास बेच कर गुजारा करने लगा था।

५. इन सभी ने भगवान् बुद्ध से संघ में प्रविष्ट होने की अनुज्ञा चाही। बिना उनकी नीच जाति की ओर देखे और बिना उनके पहले के पेशे की ओर देखे भगवान बुद्ध ने सभी को संघ में प्रविष्ट कर लिया।

५. कुष्ठ-रोगी सुप्रबुद्ध की धर्म-दीक्षा

१. एक समय भगवान् बुद्ध राजगृह के वेळुवन में विराजमान थे, जहाँ गिल-हरियों को दाना चुगाया जाता था।

२. उस समय राजगृह में एक आदमी रहता था, एक कोढ़ी, नाम सुप्रबुद्ध। वह अत्यन्त अभागा था, अत्यन्त दरिद्र था और अत्यन्त दुःखी था।

३. और ऐसा हुआ कि उस समय तथागत बड़े भारी जन-समूह से घिरे हुए धर्मोपदेश दे रहे थे।

४. उस कुष्ठ-रोगी सुप्रबुद्ध ने जब कुछ दूर से वह भीड़ देखी तो उसके मन में हुआ–"निस्सन्देह वहाँ लोगों को भीख बँट रही होगी। मैं भी यदि वहाँ निकट चला जाऊं तो मुझे भी खाने को कुछ न कुछ अवश्य मिल ही जायेगा।"

५. इस प्रकार कोढ़ी सुप्रबुद्ध उस भीड़ के समीप पहुंचा। वहाँ जाकर उसने देखा कि बड़े जन-समूह के मध्य बैठे तथागत धर्मोपदेश दे रहे हैं। उसने सोचा—"यहाँ भीख तो नहीं बँट रही है। यहाँ तो श्रमण गौतम का धर्मोपदेश हो रहा है। अच्छा, मैं धर्मोपदेश ही सुनूं।"

६. वह यह निश्चय करके, एक ओर बैठ गया "मैं भी धर्मोपदेश सुनूंगा।"

७. अपने चित्त से सभी उपस्थित लोगों के चित्त की दशा जानकर तथागत ने सोचा–"इन उपस्थित लोगों में कौन है जिसे धर्मावबोध हो सकता है ?" तब तथागत ने वहीं एक ओर बैठे कोढ़ी सुप्रबुद्ध को देखा। उसे देख कर तथागत ने जाना—"इसे धर्मावबोध हो सकता है।"

८. तब उस कोढ़ी सुप्रबुद्ध के लिए ही तथागत ने धर्मोपदेश दिया—दान-कथा, शील-कथा, स्वर्ग-कथा आदि। उन्होंने काम-सुखों की तुच्छता और आस्रवों से मुक्ति-लाभ करने पर जोर दिया।

९. जब तथागत ने देखा कि कोढ़ी सुप्रबुद्ध का चित्त नरमा गया है, कमाया गया है, ऊपर उठ आया है तथा श्रद्धायुक्त हो गया है तब जो बुद्धों की सर्वोत्कृष्ट देशना है उसका उपदेश दिया–दुःख, दुःख का समुदय, दुःख का निरोध तथा दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग।

१०. जिस प्रकार एक स्वच्छ कपड़ा रंग को अच्छी तरह ग्रहण कर लेता है उसी प्रकार उसी स्थान पर बैठे बैठे कोढ़ी सुप्रबुद्ध को विरज, विमल प्रज्ञा प्राप्त हुई—जो कुछ भी समुदय-धर्म है, वह सब निरोध-धर्म है। और कोढ़ी सुप्रबुद्ध को सत्य के दर्शन हो गये, वह सत्य को प्राप्त हो गया, वह सत्य में निमग्न हो गया। वह

सन्देह के उस पार चला गया। उसकी विचिकित्सा शान्त हो गई। उसमें विश्वास उत्पन्न हो गया। अब उसे और कुछ करणीय नहीं रहा। वह तथागत की देशना में सुप्रतिष्ठित हो गया। तब कोढ़ी सुप्रबुद्ध अपने आसन से उठा और तथागत के कुछ समीप जाकर एक ओर बैठ गया।

११. इस प्रकार बैठे हुए उसने तथागत से निवेदन किया–"अद्भुत है भगवान्! अद्भुत है। जैसे कोई गिरे को ऊपर उठा ले, छिपे को उघाड़ दे, पथ-भ्रष्ट को रास्ता दिखा दे, अन्धकार में प्रदीप प्रज्वलित कर दे ताकि जिन्हें आँख हैं वे रास्ता देख लें, इसी प्रकार भगवान् ने नाना प्रकार से धर्म की व्याख्या कर दी। मैं बुद्ध, धर्म और संघ की शरण ग्रहण करता हूँ। भगवान् आज से मेरे प्राण रहने तक मुझे अपना शरणागत उपासक समझें।"

१२. तब तथागत की वाणी द्वारा चेतनता और प्रसन्नता को प्राप्त हुआ कोढ़ी सुप्रबुद्ध अपने स्थान से उठा और भगवान् को अभिवादन कर वहाँ से विदा हुआ।

१३. दुर्भाग्यवश एक दुर्घटना हो गई। एक तरुण बछड़े ने रास्ते में उस कोढ़ी सुप्रबुद्ध को सींग खोभ कर जान से मार डाला।[६]

१. चुल्लवग्ग—७।१–२।
२. सुनीत थेरो, द्वादस निपातो (थेर-गाथा)।
३. पुप्फवग्गो, धम्मपद (४।१५–१६)।
४. सुप्पिय थेरो तथा सोपाक थेरो (थेरगाथा—चतुत्थो वग्गो) अट्ठकथा।
५. सुमंगलथेरो (थेरगाथा—पञ्चमो वग्गो)।
६. कुट्ठी-सुत्तं (उदान ५।१३)।

सातवाँ भाग

स्त्रियों की धर्म-दीक्षा

१. महाप्रजापति गौतमी, यशोधरा तथा अन्य स्त्रियों की धर्म-दीक्षा

१. जब सिद्धार्थ कपिलवस्तु लौटे तो शाक्य स्त्रियां भी 'संघ' में प्रविष्ट होने के लिए उतनी ही उत्सुक थीं जितने पुरुष।[1]

२. ऐसी स्त्रियों की अगुआ स्वयं महाप्रजापति गौतमी थी।

३. जिस समय तथागत शाक्यों के न्यग्रोधाराम में ठहरे हुए थे, महाप्रजापति गौतमी उनके पास पहुँची और बोली–"भगवान्! यह अच्छा होगा यदि स्त्रियों को भी तथागत के धर्म-विनय के अनुसार प्रव्रजित होने की अनुज्ञा मिले।"

४. "गौतमी! रहने दे। ऐसे विचार को मन में उत्पन्न न होने दे।" दूसरी और तीसरी बार भी महाप्रजापति गौतमी ने अपनी प्रार्थना दोहराई, दूसरी और तीसरी बार भी उसे वही उत्तर मिला।

५. तब महाप्रजापति गौतमी बहुत ही दुःखित हुई, चिन्तित हुई। उसने तथागत के सामने सिर झुकाया और आंखों में आंसू लिये, रोती हुई चली गई।

६. जब तथागत न्यग्रोधाराम से चारिका के लिये निकल पड़े,तो महाप्रजापति गौतमी और दूसरी शाक्य स्त्रियां इकट्ठी हुई और विचार करने लगीं कि तथागत के उनकी प्रार्थना स्वीकार न करने पर, अब आगे क्या किया जाये?

७. शाक्य स्त्रियों ने सोचा कि वे तथागत के इस इनकार को उनका "अन्तिम निर्णय" नहीं मानेंगी और किसी न किसी तरह तथागत को राज़ी करेंगी। उन्होने यह भी निर्णय किया कि वे एक क़दम आगे जायेंगी और स्वयं 'परिव्राजिका' बन कर तथागत के सामने उपस्थित होंगी।

८. तदनुसार महाप्रजापति गौतमी ने अपने बाल काटे, काषाय-वस्त्र पहना और दूसरी अनेक स्त्रियों को साथ लिये तथागत से भेंट करने के लिये निकली। उस समय तथागत वैशाली के महावन के कूटागार-भवन में ठहरे हुए थे।

९. धीरे-धीरे अन्य स्त्रियों के साथ महाप्रजापति गौतमी वैशाली के कूटागार-भवन में पहुंची। उस समय उसके पाँव सूजे हुए थे और उन पर धूल चढ़ी थी।

१०. उसने अपनी वही प्रार्थना, जो उसने उस समय की थी, जब तथागत न्यग्रोधाराम में ठहरे हुए थे, दोहराई और तथागत ने भी फिर उसे पूर्ववत् ही अस्वीकार कर दिया ।

११. प्रार्थना के दुबारा अस्वीकृत हो जाने से प्रजापति गौतमी बहुत खिन्न हुई और कूटागार के दरवाजे के बाहर जाकर खड़ी हो गई । वह नहीं जानती थी कि अब वह क्या करे ? जिस समय वह इस प्रकार खड़ी हुई थी, आनन्द ने कूटागार की ओर जाते समय, उसे देखा और पहचान लिया ।

१२. उसने महाप्रजापति से प्रश्न किया—"तू यहाँ इस प्रकार बरामदे के बाहर क्यों खड़ी है ? तेरे पाँव सूजे हैं । उन पर धूल चढ़ी है । चेहरा दु:खी है । आंखों से आंसू बह रहे हैं ।" "आनन्द ! क्योंकि तथागत स्त्रियों को घर से बेघर हो, उनके धर्म और विनय के अनुसार प्रव्रजित होने की आज्ञा नहीं देते ।"

१३. तब आनन्द स्थविर वहां गये जहाँ तथागत थे और तथागत को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । इस प्रकार बैठ कर आनन्द ने तथागत से निवेदन किया, "भगवान् ! महाप्रजापति गौतमी बरामदे के बाहर खड़ी है । उसके पाँव सूजे हैं । उन पर धूल चढ़ी है । चेहरा दु:खी है । आँखों से आँसू बह रहे हैं । क्योंकि तथागत स्त्रियों को, घर से बेघर हो तथागत के धर्म और विनय के अनुसार, प्रव्रजित होने की आज्ञा नहीं देते । भगवान् यह अच्छा हो यदि महाप्रजापति गौतमी की इच्छा के अनुसार स्त्रियों को भी प्रव्रजित होने की आज्ञा मिल जाये ।

१४. "क्या महाप्रजापति गौतमी ने तथागत की विशेष सेवा नहीं की है जब मौसी की हैसियत से, तथागत की माता का शरीरान्त हो जाने पर, वह अपने स्तन से ही तथागत को दुग्ध-पान कराती रही है ? यह अच्छा होगा, भगवान् ! यदि स्त्रियों को भी, घर से बेघर हो, तथागत के धर्म और विनय के अनुसार प्रव्रजित होने की अनुज्ञा मिले ।"

१५. "आनन्द ! रहने दो । तुम्हें यह न रुचे कि स्त्रियों को भी प्रव्रजित होने की अनुज्ञा मिले ।" दूसरी बार और तीसरी बार भी आनन्द ने अपनी प्रार्थना दोहराई और दूसरी तथा तीसरी बार भी आनन्द की प्रार्थना अस्वीकृत ही हुई ।

१६. तब आनन्द स्थविर ने तथागत से प्रश्न किया—"भगवान् ! आपके स्त्रियों को प्रव्रजित न होने देने का क्या कारण हो सकता है ?"

१७. "भगवान् जानते हैं कि ब्राह्मणों का यह मत है कि शूद्र और स्त्रियां कभी मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकतीं क्योंकि वे अपरिशुद्ध होती हैं और पुरुषों के मुकाबले में निम्न जाति की होती हैं । इसीलिये वे शूद्रों और स्त्रियों को प्रव्रज्या नहीं लेने देते ? तो क्या तथागत की दृष्टि भी ब्राह्मणों के समान ही है ?

१८. "क्या तथागत ने ठीक उसी प्रकार शूद्रों को भी संघ में प्रविष्ट नहीं किया

है जैसे ब्राह्मणों को ? भगवान् ! स्त्रियों से ही ऐसा भेद-भाव करने का क्या कारण है ?

१९. "क्या तथागत का यह मत है कि तथागत के धर्म और विनय के अनुसार चलकर स्त्रियां निर्वाण प्राप्त नहीं कर सकतीं ?"

२०. तथागत बोले—"आनन्द ! मुझे गलत तौर पर मत समझो । मेरा मत है कि पुरुषों की तरह ही स्त्रियां भी निर्वाण प्राप्त कर सकती हैं । आनन्द ! मुझे गलत तौर पर मत समझो । मैं पुरुषों को स्त्रियों की अपेक्षा किसी भी तरह विशेष नहीं मानता । महाप्रजापति गौतमी की प्रार्थना को जो मैंने स्वीकार नहीं किया है, वह स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा हेय समझने के कारण नहीं, बल्कि व्यवहारिक कारणों से ही ।"

२१. "भगवान् ! मैं बड़ा प्रसन्न हूँ कि तथागत ने मुझ पर यथार्थ कारण प्रकट कर दिया है । लेकिन क्या व्यवहारिक कारणों से महाप्रजापति गौतमी की प्रार्थना सर्वथा अस्वीकृत होनी चाहिये ? क्या ऐसा करने से लोग धर्म की निन्दा नहीं करेंगे ? क्या लोग ऐसा नहीं कहेंगे कि तथागत के धर्म-विनय में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को हेय माना जाता है ? क्या जिन व्यवहारिक कठिनाइयों की तथागत को चिन्ता है, उनसे बचने के लिए कुछ नियम नहीं बनाये जा सकते ?"

२२. "अच्छा ! आनन्द ! यदि महाप्रजापति का इतना आग्रह है कि मेरे धर्म-विनय में उन्हें प्रव्रजित होने की अनुमति मिलनी चाहिये, तो मैं इसे स्वीकार करता हूँ । लेकिन इसके लिये महाप्रजापति गौतमी को स्त्रियों की ओर से आठ बातें स्वीकार करनी होंगी और स्त्रियों से उनका पालन कराना भी उसकी जिम्मेदारी होगी । यही महाप्रजापति की दीक्षा होगी ।"

२३. तब आनन्द स्थविर ने तथागत से उन आठ नियमों की जानकारी प्राप्त की और जाकर प्रजापति गौतमी को वह सब बातचीत सुना दी जो तथागत से हुई थी ।

२४. महाप्रजापति गौतमी बोली—"आनन्द ! जिस प्रकार अलकार-प्रिय कोई कुमार या कुमारी, यदि स्नानान्तर उसे कमल के फूलों की, वा चमेली के फूलों की, वा अतिमुक्तक की माला दी जाय और वह उसे दोनों हाथों में लेकर सिर पर रखे, उसी प्रकार आनन्द ! मैं इन आठों नियमों को अपने सिर पर, जीवन-पर्य्यन्त पालन करने के लिये, धारण करती हूँ ।"

२५. तब आनन्द स्थविर तथागत के पास आये और अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ कर आनन्द स्थविर ने तथागत को कहा—"महाप्रजापति गौतमी ने इन आठों नियमों के पालन कराने की जिम्मेदारी अपने सिर पर ले ली है । इसलिये अब यह उसकी उपसम्पदा मान ली जाय ।"

२६. अब महाप्रजापति गौतमी ने प्रव्रज्या-उपसम्पदा ग्रहण की और उसके

साथ ही उन पांच सौ शाक्य देवियों ने भी जो महाप्रजापति गौतमी के साथ चल कर आई थीं। इस प्रकार प्रव्रजित-उपसम्पन्न हो कर प्रजापति गौतमी तथागत के सामने आई और तथागत को अभिवादन किया। तथागत ने उसे धर्म और विनय की शिक्षा दी।

२७. शेष पाँच सौ भिक्षुणियों को तथागत के ही एक शिष्य नन्दक ने धर्म और विनय की शिक्षा दी।

२८. महाप्रजापति गौतमी के साथ जिन शाक्य-देवियों ने प्रव्रज्या ग्रहण की अर्थात् भिक्षुणियां बनीं, उनमें यशोधरा भी थी। भिक्षुणी होने पर उसका नाम भद्दा कच्चाना (भद्रा कात्यायना) हुआ।

२. प्रकृति नामक चण्डालिका की धर्म-दीक्षा

१. उस समय भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में अनाथ-पिण्डक के जेतवनाराम में विराज रहे थे।

२. तथागत का शिष्य आनन्द भिक्षार्थ नगर में गया था। भोजनानन्तर आनन्द पानी पीने के लिये नदी की ओर जा रहा था।

३. उसने एक लड़की को देखा जो नदी से घड़े में पानी भर रही थी। आनन्द ने उससे पानी मांगा।

४. लड़की का नाम प्रकृति था। बोली—"मैं चाण्डाल-कन्या हूँ। मैं पानी नहीं दे सकती।"

५. आनन्द ने उत्तर दिया—"मुझे पानी चाहिए। मुझे तुम्हारी जाति नहीं चाहिये।" तब लड़की ने आनन्द को अपने बरतन से कुछ पानी दिया।

६. तब आनन्द जेतवन लौट आये। वह लड़की भी आनन्द के पीछे पीछे आई और आनन्द के निवास-स्थान का पता लगा लिया। उसने यह भी मालूम कर लिया कि उसका नाम आनन्द है और वह बुद्ध-शिष्य है।

७. घर लौट कर उसने अपनी मां मातंगी से सारा वृत्तान्त कहा और जमीन पर लेट कर रोने लगी।

८. मां ने रोने का कारण पूछा। लड़की बोली—"यदि तुम मेरा विवाह करना चाहती हो, तो मैं केवल आनन्द से करूँगी, मैं किसी अन्य से नहीं करूँगी।"

९. माता ने पता लगाया। लौट कर लड़की से बोली—"विवाह असम्भव है। क्योंकि आनन्द ने ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण कर रखा है।"

१०. यह बात सुनी तो लड़की बहुत दुःखी हुई। उसने खाना-पीना छोड़ दिया। वह इसे भाग्य-रेखा स्वीकार करने को तैयार न थी। इसलिये उसने कहा—"मां! तुम जादू-टोना जानती हो। क्या नहीं? तो तुम इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए क्यों जादू-टोना नहीं करतीं?" मां बोली—"मैं देखूंगी कि क्या हो सकता है।"

११. मातंगी ने आनन्द को भोजन के लिए निमंत्रण दिया। लड़की बहुत प्रसन्न हुई। मातंगी ने तब आनन्द को कहा कि उसकी लड़की उससे शादी करने के लिये अत्यन्त व्याकुल है। आनन्द ने उत्तर दिया—"मैं ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण कर चुका हूँ। मैं किसी भी स्त्री से विवाह नहीं कर सकता।"

१२. मातंगी बोली—"यदि तुम मेरी लड़की से विवाह नहीं करते, तो वह आत्महत्या कर लेगी। उसकी तुम्हारे प्रति इतनी अधिक आसक्ति है।" आनन्द का उत्तर था—"मैं असमर्थ हूँ।"

१३. मातंगी घर में गई और लड़की से कहा कि आनन्द तो विवाह करने से इनकार करता है।

१४. लड़की चिल्लाई—"मां! तुम्हारा मन्तर-जन्तर कहां गया?" मातंगी बोली—"मेरा मन्तर-जन्तर तथागत के मन्तर-जन्तर के विरुद्ध असर नहीं करता।"

१५. लड़की चिल्लाई—"मां! दरवाजा बन्द कर दे। उसे बाहर न जाने दे। मैं देखूंगी कि आज ही रात को वह मुझे पत्नी रूप में कैसे नहीं ग्रहण करता?"

१६. मां ने वैसा ही किया, जैसा लड़की चाहती थी। रात होने पर मां ने कमरे में बिस्तर लगा दिया। लड़की ने अपने आप को अच्छी से अच्छी तरह अलंकृत किया और अन्दर आई। आनन्द पर इसका कुछ प्रभाव नहीं पड़ा।

१७. अन्त में मां ने अपने जादू-टोने का प्रयोग किया। परिणाम-स्वरूप कमरे में आग जल उठी। मां ने आनन्द के कपड़ों को पकड़ा और बोली—"यदि तुम अब भी मेरी लड़की से विवाह करना स्वीकार नहीं करते तो मैं तुम्हें आग में झोंक दूंगी।" तब भी आनन्द झुका नहीं। मां और लड़की दोनों को हार माननी पड़ी। उन्होंने आनन्द को स्वतन्त्र कर दिया।

१८. वापिस लौट कर आनन्द ने सारी आप-बीती तथागत को कह सुनाई।

१९. दूसरे दिन वह लड़की आनन्द को खोजती हुई जेतवन पहुंची। आनन्द भिक्षाटन के लिए निकल रहे थे। उसे देखा तो उससे बच निकलना चाहा। लेकिन जहां जहां आनन्द गया, लड़की ने पीछा किया।

२०. जब आनन्द लौटा तो उसने देखा कि लड़की जेतवन विहार के दरवाजे पर खड़ी उसकी प्रतीक्षा कर रही है।

२१. आनन्द ने तथागत से कहा कि किसी प्रकार वह लड़की उसका पीछा नहीं छोड़ती है। तथागत ने उसे बुलवा भेजा।

२२. जब लड़की सामने आई तो तथागत ने प्रश्न किया—"तू आनन्द का पीछा किसलिये कर रही है?" लड़की का उत्तर था कि वह उससे विवाह करके रहेगी। बोली—"मैंने सुना है कि वह अविवाहित है। मैं भी अविवाहित हूँ।"

२३. भगवान बुद्ध बोले—"आनन्द! भिक्षु है। उसके सिर पर बाल नहीं हैं। यदि तुम भी उसी की तरह मुण्डन करा लो तो मैं देखूंगा कि कुछ हो सकता है।"

२४. लड़की बोली—"मैं इसके लिए तैयार हूँ।" भगवान बुद्ध ने कहा—"मुण्डन कराने से पूर्व तुम्हें अपनी मां से अनुमति लेनी होगी।"

२५. लड़की मां के पास आई और बोली—"मां! जो तुम नहीं कर सकी, वह मैं कर सकी हूँ। भगवान बुद्ध ने वचन दिया है कि यदि मैं मुण्डन करा लूं तो वह आनन्द से मेरा विवाह करा देंगे।"

२६. मां क्रुद्ध होकर बोली—"तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। तुम मेरी लड़की हो और तुम्हें बाल रखने चाहिए। तुम आनन्द जैसे श्रमण से शादी करने के लिए इतना क्यों तड़पती हो? मैं किसी अच्छे आदमी से तुम्हारी शादी करा दूंगी।"

२७. उसका उत्तर था—"या तो मैं आनन्द से शादी करूंगी, या मर जाऊंगी। तीसरी बात होने को ही नहीं है।"

२८. मां बोली—"तुम मेरा अपमान क्यों कर रही हो?" लड़की बोली—"यदि मैं तुम्हें प्रिय हूँ तो जैसा मैं चाहूँ वैसा मुझे करने दो।"

२९. मां ने अपना विरोध वापस ले लिया और लड़की ने मुण्डन करा लिया।

३०. तब लड़की तथागत के सामने उपस्थित हुई। बोली—"आपके आदेश के अनुसार मैंने अपना मुण्डन करा लिया है।"

३१. तथागत ने कहा—"आखिर तू चाहती क्या है? उसके शरीर का कौन सा हिस्सा है जिस से तुझे प्रेम है?" लड़की बोली—"मैं उसकी नाक से प्यार करती हूँ। मैं उसके मुंह से प्यार करती हूँ। मैं उसके कानों से प्यार करती हूँ। मैं उसकी आवाज से प्यार करती हूँ। मैं उसकी आंखों से प्यार करती हूँ। मैं उसकी चाल से प्यार करती हूँ।"

३२. तब तथागत बोले—"क्या तुम जानती हो कि आंखें आँसुओं का अड्डा मात्र हैं। नाक सींढ़ का घर है। मुंह में थूक ही भरा रहता है। कानों में मैल ही मैल होता है और शरीर मल-मूत्र का खजाना मात्र है।"

३३. जब स्त्री-पुरुष सहवास करते हैं वे बच्चों को जन्म देते हैं। जहां जन्म है, वहीं मृत्यु भी है। जहां मृत्यु है वहीं दुःख भी है। लड़की! मैं नहीं जानता कि आनन्द से शादी करके तू क्या पायेगी?"

३४. लड़की गम्भीरतापूर्वक सोचने लगी और इस परिणाम पर पहुँची कि आनन्द से शादी करना बेकार है, जिसके लिये वह मरी जा रही थी। उसने अपना यह मत तथागत पर प्रकट कर दिया।

३५. तथागत को अभिवादन कर लड़की बोली—"अज्ञान के वशीभूत होकर ही मैं आनन्द के पीछे लगी थी। अब मेरी आंखें खुल गई हैं। मैं उस नाविक की तरह हूँ जिसकी नौका एक दुर्घटना के बाद दूसरे किनारे जा लगी है। मैं एक अरक्षित वृद्ध पुरुष की तरह हूँ जिसे सुरक्षा मिल गई है। मैं उस अन्धे पुरुष की तरह हूँ जिसे दृष्टि प्राप्त हो गई है। तथागत के ज्ञानामृत ने मेरी निद्रा भंग कर दी है।"

३६. "भाग्यवान् है हे प्रकृति ! यद्यपि तू चाण्डाल-कन्या है किन्तु तू श्रेष्ठ पुरुषों और स्त्रियों के लिये आदर्श का काम देगी । तू "नीच" जाति की है सही, लेकिन ब्राह्मण तुझसे शिक्षा ग्रहण करेंगे। न्याय तथा धर्म के पथ से विचलित न होना । तेरी कीर्ति राज-सिंहासन पर बैठी हुई रानियों की कीर्ति से बढ़ जायगी ।"

३७. शादी की बात जाती रही तो अब उसके सामने "भिक्षुणी-संघ" में प्रविष्ट होने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग न था ।

३८. उसने इच्छा प्रकट की तो वह भिक्षुणी-संघ में ले ली गई । यूं निस्सन्देह वह "नीचतम" जाति की थी ।

१. अंगुत्तर निकाय ८ : २ : १ : १।
२. देखो शार्दूल-करण अपदान ।

आठवाँ भाग

पतितों तथा अपराधियों की धर्म-दीक्षा

१. एक आवारे की धर्म-दीक्षा

१. उस समय राजगृह में एक अत्यन्त असंयत आदमी रहता था, जो न अपने माता-पिता का ही आदर करता था, न दूसरे बड़े बूढ़ों का। जब भी उससे कोई पाप-कर्म हो जाता तो वह सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि-देवता की ही पूजा किया करता था ताकि उसे पुण्य लाभ हो और वह अपने में मस्त रहे।

२. तीन साल तक लगातार पूजा और बलिदान आदि में इतना शारीरिक कष्ट उठाने पर भी उसे किसी प्रकार की शान्ति नहीं मिली।

३. अन्त में उसने श्रावस्ती पहुंच कर तथागत से भेंट करने की सोची। वहां पहुंचा और जब उसने तथागत के तेजपूर्ण व्यक्तित्व के दर्शन किये, वह उनके चरणों पर गिर पड़ा और अपनी अपरिमित प्रसन्नता प्रकट की।

४. तब तथागत ने उसे बताया कि पशुओं की बलि देना मूर्खता है, और ऐसे बाह्य कर्मकाण्डों में (जिनका मन से कुछ सम्बन्ध नहीं) लगे रहना व्यर्थ है, और ऐसे उपचारों में भी जिनमें आदरणीयों का आदर नहीं होता। अन्त में उन्होंने कुछ गाथायें कहीं। उस समय वह सारा स्थान उनके तेज से प्रकाशित हो गया।

५. तब उस गांव के रहने वाले, विशेष रूप से बच्चों के माता-पिता तथागत की सेवा के लिये आये।

६. बच्चों के माता-पिता को देखकर और उन्होंने अपने बच्चों के बारे में जो कुछ बताया उसे सुनकर तथागत मुस्कराये और ये गाथायें कहीं—

७. श्रेष्ठ आदमी ईर्षा से सर्वथा मुक्त होता है। उसका दिमाग खुला होता है और वह खुले प्रकाशयुक्त स्थान पर ही रहता है। यदि कभी उस पर कोई मुसी-बत भी आ पड़ती है, वह घबराता नहीं, वह विचलित नहीं होता। उस समय भी वह अपनी बुद्धि का ही परिचय देता है।

८. "श्रेष्ठ आदमी सांसारिक बातों से सरोकार नहीं रखता। वह न धन की इच्छा रखता है, न संतान की और न जगह-जमीन की। वह सावधान रहकर शील का पालन करता है। वह प्रज्ञा के पथ पर चलता है और विचित्र-विचित्र सिध्दान्तों का अनुसरण नहीं करता।

९. श्रेष्ठ आदमी अनित्यता के रूप को भली प्रकार समझ कर और यह जानकर कि यह संसार बालू में जमें वृक्ष के समान है, अपने अस्थिर चित्त मित्र को स्थिरता के पथ पर और अपने अपवित्र-शील मित्र को पवित्रता के पथ पर लाने का पूरा पूरा प्रयास करता है।"

२. डाकू अंगुलिमाल की धर्म-दीक्षा

१. कोशल-नरेश प्रसेनजित् के राज्य में अंगुलिमाल नाम का एक डाकू रहता था, जिसके हाथ सदा रक्त से रंगे रहते, जिसका काम ही था आदमियों को सदा जख्मी करते रहना और उनकी जान लेते रहना और जिसके मन में किसी भी प्राणी के लिये कोई दया न थी। उसके कारण जो पहले गांव थे, वे अब गांव नहीं रहे थे; जो पहले नगर थे, वे अब नगर नहीं रहे थे; जो पहले इलाके थे, वे अब इलाके नहीं रहे थे।

२. जिस किसी आदमी की भी वह हत्या करता था, वह उसकी एक अँगुली काट कर अपनी माला में पिरो लेता था—इसीलिये उसका नाम अंगुलि माल पड़ा।

३. एक समय जब भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के जेतवनाराम में विराजमान थे, उन्होंने डाकू अंगुलिमाल के अत्याचारों की कहानी सुनी। तथागत ने उस डाकू को एक संत पुरुष में बदल देने का निश्चय किया। इसलिये एक दिन भोजनानन्तर, पात्र-चीवर धारण कर, जिधर अंगुलिमाल के होने की बात सुनी जाती थी, उधर ही चल दिये।

४. उन्हें उधर जाते देख, ग्वाले, बकरियां चराने वाले, हल जोतने वाले और दूसरे रास्ता चलने वाले सभी मुसाफिर चिल्ला उठे—"श्रमण! उधर मत जा। अंगुलिमाल के हाथ में पड़ जायगा।"

५. "जब दस, बीस, तीस और चालीस आदमी तक भी इकट्ठे मिलकर यात्रा करते हैं; तब भी वह उस डाकू के काबू में आ जाते हैं।"

लेकिन तथागत बिना एक भी शब्द बोले अपने पथ पर आगे बढ़ते ही रहे।

६. दूसरी और तीसरी बार भी उन आस-पास के लोगों ने तथा अन्य भी सभी लोगों ने तथागत को सावधान किया। किन्तु तथागत अपने पथ पर आगे बढ़ते ही गये।

७. कुछ दूर से डाकू ने तथागत को उस ओर आगे बढ़ते आते देखा। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। जब दस-बीस......चालीस, पचास आदमी तक भी इकट्ठे मिल कर उस ओर आने का साहस नहीं करते, यह 'श्रमण' अकेला ही उस ओर आगे बढ़ा चला आ रहा है! डाकू ने 'श्रमण' की हत्या करने का विचार किया।

उसने अपनी ढाल-तलवार ली, तीर और तूणीर संभाले और तथागत का पीछा किया।

८. तथागत अपनी स्वाभाविक गति से आगे बढ़े चले जा रहे थे, किन्तु डाकू अपने पूरे जोर से उनका पीछा करने पर भी उनको पकड़ नहीं पा रहा था।

९. डाकू ने सोचा—"यह विचित्र बात है! यह अद्भुत बात है! अभी तक ऐसा था कि पूरी गति से भागे जाते हुए एक हाथी, एक घोड़े, एक गाड़ी और एक हिरण तक को मैं पा ले सकता था, और अब मैं पूरा जोर लगा कर भी स्वाभाविक गति से जाते हुए इस श्रमण को भी नहीं पकड़ पा रहा हूँ।" तो वह रुक गया और उसने चिल्लाकर तथागत को भी कहा—"रुको।"

१०. जब दोनों मिले, तथागत ने कहा—"अंगुलिमाल! मैं तो रुका हूँ। अब तू भी पाप-कर्म करने से रुक। मैं इसीलिये यहां तक आया हूँ कि तू भी सत्पथ का अनुगामी बन जाये। तेरे अन्दर का 'कुशल' अभी मरा नहीं है। यदि तू इसे केवल एक अवसर देगा तो यह तुम्हारी काया पलट देगा।"

११. अंगुलिमाल पर तथागत के वचनामृत का प्रभाव पडा। बोला—"आखिर इस मुनि ने मुझे जीत ही लिया।

१२. "और अब जब आपकी दिव्य वाणी मुझे हमेशा के लिये पाप-विरत होने को कह रही है, तो मे इस अनुशासन को स्वीकार करने के लिये तैयार हूँ।"

१३. अंगुलिमाल ने अपने गले में से अंगुलियों की माला उतार कर दूर फेंक दी और तथागत के चरणों पर गिर कर 'धर्म-दीक्षा' की याचना की।

१४. देवताओं और मनुष्यों के शास्ता तथागत बोले—"भिक्षु! आ।" और अंगुलिमाल उसी समय "भिक्षु" बन गया।

१५. भिक्षु अंगुलिमाल को अपना अनुचर बनाकर तथागत श्रावस्ती के जेतवनाराम को वापिस लौट गये। ठीक उसी समय राजा प्रसेनजित् के महल के आंगन में एक बड़ी भारी भीड़ चिल्ला-चिल्ला कर राजा से कर रही थी—"तुम्हारे राज्य में जो अंगुलिमाल डाकू है, वह बहुत अत्याचार कर रहा है, जुल्म ढा रहा है, निर्दोष लोगों को जान से मार रहा है और उन्हें जख्मी बना रहा है। जिन लोगों को वह जान से मारता है, उनकी अंगुलियां काट-काट कर वह माला में पिरो लेता है और उसे अभिमानपूर्वक धारण करता है। महाराज! उसका दमन करें।" प्रसेनजित् ने उसका मूलोच्छेद कर डालने का आश्वासन दिया। लेकिन वह कुछ भी कर सकने में असमर्थ रहा।

१६. एक दिन राजा प्रसेनजित तथागत के दर्शनार्थ जेतवन गया। तथागत ने प्रश्न किया—"राजन्! क्या मगध के नरेश सेनिय बिम्बिसार के साथ मामला कुछ गड़बड़ाया है या वैशाली के लिच्छवियों के साथ अथवा किसी अन्य विरोधी शक्ति के साथ?"

१७. "भगवान ! इस प्रकार की तो कोई बात नहीं है। किन्तु मेरे राज्य में अंगुलिमाल नाम का एक डाकू रहता है, जो मेरी प्रजा को बहुत कष्ट दे रहा है। मैं उसका दमन करना चाहता हूं, किन्तु मैं असमर्थ सिद्ध हुआ हूं।"

१८. "राजन् ! यदि आप अब देखें कि अंगुलिमाल के दाढ़ी-मूंछ मुण्डे हैं, उसने काषाय वस्त्र धारण कर रखा है, वह एक भिक्षु है, न वह किसी को मारता है, न चोरी करता है, न झूठ बोलता है, एकाहारी है और श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करता है—तो आप उससे कैसा व्यवहार करेंगे ?"

१९. "भगवान् ! या तो मैं उसे अभिवादन करूंगा, या उसके आगमन पर खड़ा हो जाऊंगा, या उसे बैठने का निमंत्रण दूंगा, या उसे चीवर तथा भिक्षुकी अन्य आवश्यकतायें स्वीकार करने के लिये प्रार्थना करूंगा अथवा मैं उसकी रक्षा, सुरक्षा की व्यवस्था करूंगा--जिसका वह अधिकारी है। लेकिन इतना दुष्ट और इतना पतित ऐसा शीलवान् हो ही कैसे सकता है ?"

२०. उस समय भिक्षु अंगुलिमाल भगवान् से नातिदूर ही थे। भगवान् ने अपना दाहिना हाथ निकाला और उसकी ओर संकेत करके कहा--"राजन् ! यह है अंगुलिमाल।"

२१. राजा ने यह देखा तो वह जैसे गूंगा ही हो गया। उसके रोंगटे खड़े हो गये। यह देख तथागत ने कहा—"राजन् ! भय मत मानें। यहां भय का कोई कारण नहीं है !"

२२. राजा का भय और घबराहट दूर हुई तो वह अंगुलिमाल के पास गया और बोला--"पूज्यवर ! क्या आप सचमुच अंगुलिमाल हैं ?" "राजन् ! हां !"

२३. "आपके पिता का क्या गोत्र था ? और आपकी माता का क्या गोत्र था ?"

"राजन् ! मेरा पिता गार्ग्य था और मेरी माता मैत्रायणी।"

२४. "गार्ग्य-मैत्रायणी-पुत्र ! प्रसन्न हो। मैं अब से आप की सब आवश्य-अतायें पूरी करूंगा।"

२५. उस समय अंगुलिमाल ने व्रत ले लिया था कि वह अरण्य में ही रहेगा, भिक्षा पर ही निर्वाह करेगा और तीन से अधिक चीवरों का व्यवहार नहीं करेगा और मैं तीन चीवर भी पंसू-कूलिक होंगे अर्थात् कूड़े-कचरे के ढ़ेर पर पड़े मिले हुए कपड़े के बने होंगे। उसने यह कहकर कि उसके तीन चीवर उसके पास हैं, राजाका निमंत्रण अस्वीकार कर दिया।

२६. तब राजा भगवान् के पास गया और अभिवादन कर चुकने के अनन्तर एक ओर बैठ कर बोला--"भगवान् ! यह आश्चर्य है। यह अद्भुत है। आप जंगली को पालतू बना लेते हैं। अदान्त को दान्त कर देते हैं। अशान्त को शान्त बना देते हैं। यही यह है जिसे मैं लाठी-तलवार से वश में नहीं कर सका। लेकिन ! भगवान्

ने उसे बिना किसी लाठी-तलवार के वश में कर लिया है। भगवान् ! अब मैं आपसे विदा मांगता हूँ। मुझे बहुत से कार्य हैं।"

२७. आप जिसका समय समझें।" तब राजा प्रसेनजित् अपने स्थान से उठा और अत्यन्त विनम्रतापूर्वक अभिवादन कर विदा हुआ।

२८. एक दिन जब पात्रचीवर धारण किये अंगुलिमाल श्रावस्ती में भिक्षाटन कर रहा था, एक आदमी ने उसके सिर पर ढेला फेंक कर मारा, दूसरे ने एक डण्डा फेंक कर मारा और तीसरे ने एक ठीकरा फेंक कर मारा। सिर से रक्त बहने लगा। भिक्षा-पात्र टूटा गया। वस्त्र फट गये। ऐसी ही अवस्था में अंगुलिमाल भगवान् बुद्ध के पास पहुँचा। वह समीप आया तो भगवान् बुद्ध ने कहा--"अंगुलिमाल।! यह सब सहन कर। अंगुलिमाल ! यह सब सहन कर।"

२९. इस प्रकार भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं को अंगीकार करने से अंगुलिमाल डाकू एक सन्त-पुरुष बन गया।

३०. मुक्ति-सुख का आनन्द लेते हुए उसने कहा--"जो पहले प्रमादी रहकर भी बाद में अप्रमादी हो जाता है, वह बादलों से मुक्त चन्द्रमा की तरह लोक को प्रकाशित कर देता है।"

३१. "मेरे शत्रु भी इस शिक्षा को सीखें, इस मत को मानें और प्रज्ञा के पथ को अंगीकार करें। मेरे शत्रु भी समय रहते मैत्री, विनम्रता और क्षमा-शीलता की शिक्षा ग्रहण करें। वे तदनुसार आचरण करें।

३२. "अंगुलिमाल के रूप में मैं पतनोन्मुख था, मेरी अधोगति थी, मैं धारा में नीचे की ओर बहा जा रहा था। तथागत ने मुझे स्थल पर लाकर खड़ा कर दिया। अंगुलिमाल के रूप में मैं खून रँगे हाथ वाला था; अब मैं सम्पूर्ण रूप से मुक्त हूँ।"

३. दूसरे अपराधियों की धर्म-दीक्षा

१. राजगृह के दक्षिण की ओर एक बड़ा पर्वत था--नगर से कोई पचहत्तर मील।

२. इस पर्वत में से होकर एक दर्रा जाता था--बड़ा गहरा और बड़ा सूना। दक्षिण-भारत का रास्ता इसी दर्रे में से होकर गुजरता था।

३. इस तंग दर्रे में पांच सौ डाकू रहते थे, जो इस दर्रे में से गुजरने वाले राहियों की लूट-मार करते थे।

४. राजा ने उनका दमन करने के लिये सेनायें भेजीं। लेकिन हर बार वे बच निकलते थे।

५. क्योंकि बुद्ध इस स्थान से बहुत दूर नहीं थे, इसलिये उन्होंने उन लोगों की स्थिति पर विचार किया। उन्होंने सोचा कि ये लोग यह भी नहीं जानते हैं कि

इनका आचरण दुराचरण है। यद्यपि इन्हीं जैसे लोगों को शिक्षित करने के लिये मैंने जन्म धारण किया है, तब भी न तो इन लोगों ने मुझे देखा है और न मेरी सीख सुनी है। तथागत ने उनके पास पहुँचने का निश्चय किया।

६. उन्होंने एक धनी घुड़-सवार का रूप बनाया और एक अच्छे घोड़े पर सवार हुए। कन्धे पर धनुष और तलवार थी, खुर्जी में सोना-चाँदी भरा था और घोड़े की लगाम आदि को कीमती जवाहरात जड़े थे।

७. उस तंग दर्रे में प्रवेश करने पर घोड़ा जोर से हिनहिनाया। उसकी आवाज सुनकर पांच सौ डाकू उठ खड़े हुए और उस घुड़सवार को देखकर बोले—"हमें लूटने के लिये इतना माल एक साथ कभी नहीं मिला। इसे हम पकड़ें।"

८. उन्होंने घुड़सवार को घेर लेना चाहा ताकि वह बचकर भाग न जाय, लेकिन उसे देखकर वह जमीन पर गिर पड़े।

९. जब वे जमीन पर गिरे तो सभी चिल्लाने लगे—"हे भगवान्! यह क्या है? हे भगवान्! यह क्या है?"

१०. तब उस घुड़सवार ने उन्हें समझाया कि उस दुःख के मुकाबले में, जो सारे संसार को घेरे हुए है तुम जो दूसरों को दुःख देते हो और स्वयं उठाते हो, कुछ नहीं; और इसी प्रकार अश्रद्धा और विचिकित्सा की चोट के सामने वह चोट जो स्वयं खाते हो और दूसरों को पहुँचाते हो, वह भी कुछ नहीं। धर्म-देशना के प्रति पूरी एकाग्रता ही इन जख्मों को भर सकती है।

११. मानसिक दुःख के समान कोई जख्म नहीं। मूर्खता के समान कोई चुभने वाला तीर नहीं। धर्म-शिक्षा ही इनकी चिकित्सा है। इसी से अन्धों को आंख मिलती है और अज्ञानियों को ज्ञान मिलता है।

१२. आदमी इसी प्रकाश के पीछे-पीछे चलते हैं, जैसे अंधों को आंख मिल गई हो।

१३. इससे अश्रद्धा का नाश होता है, यह मानसिक दुःख को दूर करती है, इससे प्रीति प्राप्त होती है, और यह विमल-प्रज्ञा उसी को प्राप्त होती है जो ध्यान से (धर्मोपदेश) सुनता है।

१४. जिसने सबसे अधिक पुण्य प्राप्त किया है, वही इस पद का अधिकारी है।

१५. यह सुना तो डाकुओं ने अपने दुष्कृत्यों पर पश्चात्ताप किया। उनके शरीर में जो तीर लगे थे, वे अपने आप निकल आये, और उनके जख्म भर गये।

१६. तब वे श्रावक बन गये। उन्हें शान्ति प्राप्त हो गई।

४. धर्म-दीक्षा में खतरा

१. पुराने समय में भगवान् बुद्ध राजगृह से कोई पौने दो सौ मील की दूरी

पर पर्वतों से भरे एक प्रदेश में रहते थे। इन पर्वतों में कोई १२२ आदमियों का एक गिरोह रहता था, जो जानवरों को मार कर उनके मांस से ही अपना काम चलाता था।

२. बुद्ध वहां पहुँचते हैं और जिस समय पुरुष बाहर शिकार खेलने गये हुए थे, उनकी अनुपस्थिति में उनकी स्त्रियों को धर्म-दीक्षित कर देते हैं। तदनन्तर वे कहते हैं–

३. जो दयावान् है वह किसी प्राणी की हत्या नहीं करता, वह प्राणियों के जीवन को सुरक्षित रखता है।

४. धर्म अमर है। जो धर्मानुसार आचरण करता है, उसे किसी आपत्ति का सामना नहीं करना पड़ता।

५. "विनम्रता, सांसारिक भोगों के प्रति उपेक्षा, किसी को कष्ट न पहुँचाना, किसी को क्रोधित नहीं करना—यह ब्रह्मलोकवासियों के लक्षण हैं।

६. दुर्बलों के प्रति सदा मैत्री, बुद्ध की शिक्षा के अनुसार निर्मलता, पर्याप्त खा चुकने पर भोजन की मात्रा की जानकारी—यह सब बार बार जन्म लेने और मरने से छूटने के साधन हैं।

इन बुद्ध वचनों को सुनकर स्त्रियाँ अपने घर वालों की अनुपस्थिति में ही बुद्ध के धर्म में दीक्षित हो गईं। जब उनके पुरुष लौटे तो वे बुद्ध को मार ही डालना चाहते थे, किन्तु उनकी स्त्रियों ने रोक लिया। बाद में मैत्री-सूक्त के पदों को सुन वे भी धर्म-दीक्षित हो गये।

७. और तब भगवान् बुद्ध ने ये पंक्तियां भी कहीं :–

८. जो मैत्री-भावना का अभ्यास करता है और सबके प्रति दयालु रहता है उसे ग्यारह लाभ होते हैं।

९. उसका शरीर सदा सुखी रहता है, वह हमेशा मीठी नींद सोता है, उसका चित्त एकाग्र रहता है।

१०. उसे दुःस्वप्न नहीं आते। उसकी देवता भी रक्षा करते हैं। वह आदमियों का प्रिय होता है। उसे विषैले जीवों का खतरा नहीं होता। वह युद्ध-कष्ट से बचा रहता है। अग्नि या जल से उसकी हानि नहीं होती।

११. वह जहां भी रहता है (अपने कार्य में) सफल होता है। मरने पर ब्रह्मलोकगामी होता है, ये ग्यारह लाभ (=आनिसंस) हैं।"

१२. इन वचनों का उपदेश ग्रहण कर चुकने पर, स्त्रियों तथा पुरुषों ने—सभी ने—धर्म-दीक्षा ग्रहण की। वे संघ में सम्मिलित हो गये। और उन्होंने शान्ति-लाभ किया।

१. अंगुलिमाल सुत्त (मज्झिम निकाय २।४।६)।

२. अंगुत्तर निकाय।

तृतीय काण्ड

बुद्ध ने क्या सिखाया

प्रथम भाग

'धर्म' में भगवान बुद्ध का अपना स्थान

१. भगवान बुद्ध ने अपने धर्म में, अपने लिये कुछ भी विशेष स्थान नहीं रखा।

१. ईसा ने ईसाइयत का पैगम्बर होने का दावा किया।

२. इससे आगे उसने यह भी दावा किया कि वह खुदा का बेटा है।

३. ईसा ने यह भी कहा कि जब तक कोई आदमी यह न स्वीकार करे कि ईसा खुदा का बेटा है, तब तक उसकी मुक्ति हो ही नहीं सकती।

४. इस प्रकार ईसा ने किसी भी ईसाई की मुक्ति के लिये अपने आप को ईश्वर का पैगम्बर और बेटा मानने की अनिवार्य शर्त रखकर, ईसाइयत में अपने लिये एक खास स्थान सुरक्षित कर लिया।

५. इस्लाम के पैगम्बर मुहम्मद साहब का दावा था कि वह खुदा द्वारा भेजे गये इस्लाम के पैगाम-बर थे।

६. उनका यह भी दावा था कि कोई आदमी निजात (= मुक्ति) लाभ नहीं कर सकता जब तक वह ये दो बातें और न स्वीकार करे।

७. जो इस्लाम में रहकर मुक्ति-लाभ करना चाहता हो, उसे यह स्वीकार करना होगा कि मुहम्मद साहब खुदा के पैगम्बर हैं।

८. जो इस्लाम में रहकर मुक्ति-लाभ करना चाहता हो, उसे आगे यह भी स्वीकार करना होगा कि मुहम्मद साहब खुदा के आखिरी पैगम्बर थे।

९. इस प्रकार इस्लाम में मुक्ति केवल उन्हीं के लिये सम्भव है जो ऊपर की दो बातें स्वीकार करें।

१०. इस तरह मुहम्मद साहब ने किसी भी मुसलमान की मुक्ति अपने को खुदा का पैगम्बर मानने की अनिवार्य शर्त पर निर्भर करके अपने लिये इस्लाम में एक खास स्थान सुरक्षित कर लिया।

११. भगवान् बुद्ध ने कभी कोई ऐसी शर्त नहीं रखी।

१२. उन्होंने शुद्धोदन और महामाया का प्राकृतिक-पुत्र होने के अतिरिक्त कभी कोई दूसरा दावा नहीं किया।

१३. उन्होंने ईसा मसीह या मुहम्मद साहब की तरह की शर्तें लगाकर अपने धर्म-शासन में अपने लिये कोई खास स्थान सुरक्षित नहीं रखा।

१४. यही कारण है कि इतना वाङ्मय रहते हुए भी हमें बुद्ध के व्यक्तिगत जीवन के बारे में इतनी कम जानकारी है।

१५. जैसा ज्ञात ही है कि भगवान् बुद्ध के महापारिनिर्वाण के अनन्तर राजगृह में प्रथम संगीति (कान्फ्रेंस) हुई थी।

१६. उस संगीति में महाकाश्यप अध्यक्ष थे। आनन्द, उपालि और अन्य दूसरे लोग, जो कपिलवस्तु के ही थे, जो जहां-जहां वे गये प्रायः हर जगह उनके साथ थे, घूमे और मृत्यु-पर्यन्त साथ रहे, वहां उपस्थित थे।

१७. लेकिन अध्यक्ष महाकाश्यप ने क्या किया ?

१८. उन्होंने आनन्द को "धर्म" का संगायन करने के लिये कहा और तब 'संगीति-कारकों' से पूछा कि "क्या यह ठीक है ?" उन्होंने "हां" में उत्तर दिया। महाकाश्यप ने तब प्रश्न को समाप्त कर दिया।

१९. तब महाकाश्यप ने उपालि को "विनय" का संगायन करने के लिये कहा और 'संगीति-कारकों' से पूछा कि "क्या यह ठीक है" ? उन्होंने "हाँ" में उत्तर दिया। महाकाश्यप ने तब प्रश्न समाप्त कर दिया।

२०. तब महाकाश्यप को चाहिये था कि वह किसी तीसरे को जो संगीति में उपस्थित था, आज्ञा देते कि वह भगवान् बुद्ध के जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाओं का संगायन करे।

२१. लेकिन महाकाश्यप ने ऐसा नहीं किया। उन्होने सोचा कि "धर्म" और "विनय"—यही दो विषय ऐसे हैं जिनसे संघ का सरोकार है।

२२. यदि महाकाश्यप ने भगवान् बुद्ध के जीवन की घटनाओं का ब्योरा तैयार करा लिया होता, तो आज हमारे पास भगवान् बुद्ध का एक पूरा जीवन-चरित्र होता।

२३. भगवान् बुद्ध के जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाओं का एक ब्योरा तैयार करा लेने की बात महाकाश्यप को क्यों नहीं सूझी ?

२४. इसका कारण उपेक्षा नहीं हो सकती। इसका केवल एक ही उत्तर है कि भगवान् बुद्ध ने अपने ये 'धर्म-शासन' में अपने लिये कोई विशेष स्थान सुरक्षित नहीं रखा था।

२५. भगवान् बुद्ध अपने धर्म से सर्वथा पृथक् थे। उनका अपना स्थान था; धर्म का अपना।

२६. भगवान् बुद्ध ने किसी को अपना उत्तराधिकारी बनाने से इनकार किया, यह भी इस बात का उदाहरण या प्रमाण है कि वह अपने 'धर्म-शासन' में अपने लिये कोई स्थान सुरक्षित रखना नहीं चाहते थे।

२७. दो तीन बार भगवान् बुद्ध के अनुयायियों ने उनसे प्रार्थना की कि वे किसी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दें ।

२८. हर बार भगवान् बुद्ध ने अस्वीकार किया ।

२९. उनका उत्तर था, "धम्म ही धम्म का उत्तराधिकारी है ।

३०. "धम्म को अपने ही तेज से जीवित रहना चाहिये; किसी मानवीय अधिकार के बल से नहीं ।

३१. "यदि धम्म को मानवीय अधिकार पर निर्भर रहने की आवश्यकता है, तो वह धम्म नहीं ।

३२. "यदि धम्म की प्रतिष्ठा के लिये हर बार इसके संस्थापक का नाम रटते रहने की आवश्यकता है, तो वह धम्म नहीं ।"

३३. अपने धम्म को लेकर स्वयं अपने बारे में भगवान् बुद्ध का यही दृष्टि-कोण था ।

२. भगवान बुद्ध ने कभी किसी को मुक्त करने का आश्वासन नहीं दिया। उन्होंने कहा कि वे मार्ग-दाता हैं, मोक्ष-दाता नहीं

१. बहुत से धर्म "इल्हामी धर्म" माने जाते हैं। भगवान बुद्ध का धर्म "इल्हामी धर्म" नहीं ।

२. कोई धर्म "इल्हामी धर्म" इसीलिये कहलाता है कि वह भगवान का 'संदेश' वा 'पैगाम' समझा जाता है ताकि, वे अपने रचयिता की पूजा करें कि वह उनकी आत्माओं को मुक्त करे ।

३. अक्सर यह पैगाम किसी चुने हुए व्यक्ति के द्वारा प्राप्त माना जाता है, जो पैग़ाम-बर कहलाता है, जिसे यह पैग़ाम प्राप्त होता है और जो फिर उस पैग़ाम को लोगों तक पहुंचाता है ।

४. यह पैग़म्बर का काम है कि जो उसके धर्म पर ईमान लाने वाले हों, उनके लिये मोक्ष लाभ निश्चित कर दे ।

५. जो धर्म पर ईमान लाते हैं, उनकी मुक्ति का मतलब है, उनकी रूहों की निजात, ताकि वे अब दोज़ख़ में न जा सकें, लेकिन उसके लिये शर्त है कि उन्हें ख़ुदा के हुक्मों की तामील करनी होगी और यह स्वीकार करना होगा कि पैग़म्बर ख़ुदा का पैग़ाम-बर है ।

६. बुद्ध ने कभी भी अपने को 'ख़ुदा का पैग़ाम-बर' होने का दावा नहीं किया। यदि कभी किसी ने ऐसा समझा तो भगवान बुद्ध ने उसका खण्डन किया ।

७. इससे भी बड़ी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भगवान बुद्ध का धर्म एक आविष्कार (discovery) है, एक खोज है। इसलिये ऐसे किसी धर्म से जो "इल्हामी"

कहा जाता है, इसका भेद पूरी-पूरी तरह स्पष्ट हो जाना चाहिये ।

८. भगवान् बुद्ध का धर्म इन अर्थों में एक आविष्कार है या एक खोज है क्योंकि यह पृथ्वी पर जो मानवीय-जीवन है उसके गम्भीर अध्ययन का परिणाम है, और जिन स्वाभाविक-प्रवृत्तियों (instincts) को लेकर आदमी ने जन्म ग्रहण किया है उन्हें पूरी-पूरी तरह समझ लेने का परिणाम है, और साथ ही उन प्रवृत्तियों को भी जिन्हें आदमी के इतिहास ने जन्म दिया है और जो अब उसके विनाश का कारण बनी हुई हैं ।

९. सभी पैगम्बरों ने "मुक्ति-दाता" होने का दावा किया है । भगवान् बुद्ध ही एक ऐसे महापुरुष हुए हैं जिन्होंने इस प्रकार का कोई दावा नहीं किया । उन्होंने 'मोक्ष-दाता' को 'मार्ग-दाता' से सर्वथा पृथक रखा है–एक तो 'मोक्ष' देने वाला, दूसरा केवल उसका 'मार्ग' बता देने वाला ।

१०. भगवान् बुद्ध केवल मार्ग-दाता थे । अपनी मुक्ति के लिये हर किसी को स्वयं अपने आप ही प्रयास करना होता है ।

११. उन्होंने इस एक सुत्त में ब्राह्मण मोग्गल्लान को यह बात सर्वथा स्पष्ट कर दी थी ।

१२. एक बार भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में मिगारमाता के प्रासाद पूर्वाराम में ठहरे हुए थे ।

१३. उस समय ब्राह्मण मोग्गल्लान गणक तथागत के पास आया और कुशल-क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया । इस प्रकार बैठकर ब्राह्मण मोग्गल्लान गणक ने तथागत से कहा:–

१४. "श्रमण गौतम ! जिस प्रकार किसी भी आदमी को इस प्रासाद का परिचय क्रमश: प्राप्त होता है, एक क्रम के अनुसार एक के बाद दूसरा, यहाँ तक कि आदमी ऊपर की अंतिम सीढ़ी तक जा पहुंचता है । इसी प्रकार हम ब्राह्मणों का शिक्षा-क्रम भी क्रमिक है, क्रमश: है : अर्थात् हमारे वेदों के अध्ययन में ।

१५. "श्रमण गौतम ! जैसे धनुर्विद्या में, उसी प्रकार हम ब्राह्मणों में शिक्षा-क्रम क्रमिक है, क्रमश: है, जैसे गणना में ।

१६. "जब हम विद्यार्थी को लेते हैं तो हम उसे गणना सिखाते हैं, 'एक एक, दो दूनी (चार), तीन तिया (नौ), चार चौके (सोलह) और इसी प्रकार सौ तक' । अब श्रमण गौतम ! क्या आप के लिये भी यह सम्भव है कि आप ऐसे भी शिक्षण-क्रम का परिचय दे सकें जो क्रमिक हो, जो क्रमश: हो और जिसके अनुसार आपके अनुयायी शिक्षा ग्रहण करते हों ?"

१७. "ब्राह्मण ! यह ऐसा ही है । ब्राह्मण ! एक चतुर अश्व-शिक्षक को ही लो । वह एक श्रेष्ठ बछेड़े को हाथ में लेता है । सबसे पहले वह उस के मुंह में लगाम लगाकर उसे साधता है । फिर धीरे-धीरे दूसरी बातें सिखाता है ।

१८. "इसी प्रकार हे ब्राह्मण ! जो शिक्षाकामी है, ऐसे आदमी को तथागत लेते हैं और सर्वप्रथम यही शिक्षा देते हैं कि शीलवान रहो...प्रातिमोक्ष के नियमों का पालन करो।

१९. "सदाचरण में दृढ़ हो जाओ, छोटे-छोटे दोषों को भी बड़ा समझो, शिक्षा ग्रहण करो और विनय में पक्के हो जाओ।

२०. "जब वह इस प्रथम शिक्षा में दृढ़ हो जाता है तो तथागत उसे अगला पाठ देते हैं, श्रमण ! आओ आँख से किसी रूप को देखकर उसके सामान्य स्वरूप या उसके ब्योरे से आकर्षित न होओ।

२१. "उस प्रवृत्ति पर काबू रखो, जो तृष्णा का परिणाम है, जो असंयत होकर चक्षु-इन्द्रिय से रूप देखने से उत्पन्न होती है,...ये कु-प्रवृत्तियाँ, ये चित्त की अकुशल अवस्थायें आदमी पर बाढ़ की तरह काबू पा लेती हैं। चक्षु-इन्द्रिय को संयत रखो। चक्षु-इन्द्रिय को काबू में रखो।

२२. "और इसी प्रकार दूसरी इन्द्रियों के विषय में भी सावधान रहो। जब तुम कान से कोई शब्द सुनो, या नाक से कोई गन्ध सूंघो, या जिह्वा से कोई चीज चखो, या शरीर से किसी का स्पर्श करो, और जब तुम्हारे मन में तत्सम्बन्धी संज्ञा पैदा हो तो उस वस्तु के सामान्य स्वरूप अथवा उसके ब्योरे से आकर्षित मत हो।

२३. "ज्यों ही वह उसका पूर्ण अभ्यास कर लेता है, तो तथागत उसे अगला पाठ देते हैं : श्रमण ! आओ ! भोजन के विषय में मात्रज्ञ हो, न खेल के लिये, न मद के लिए, न शरीर को सजाने के लिये, बल्कि जब तक इस शरीर की स्थिति है तब तक इसे स्थिर बनाये रखने, विहिंसा से बचे रहने के लिये तथा श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने के लिये ही भोजन ग्रहण करो। भोजन ग्रहण करते समय मन में यह विचार रहना चाहिए कि मैं पहले की वेदना का नाश कर रहा हूँ, नई वेदना नहीं उत्पन्न होने दे रहा हूँ...मेरी जीवन-यात्रा निर्दोष होगी और सुख-पूर्ण होगी।'

२४. "ब्राह्मण ! जब वह भोजन के विषय में संयत हो जाता है, तब तथागत उसे अगला पाठ पढ़ाते हैं : श्रमण ! आओ ! जागरूकता (= सति) का अभ्यास करो। दिन के समय, चलते हुए वा बैठे बैठे अपने चित्त को चित्त-मलों से परिशुद्ध करो। रात के पहले पहर में भी चलते-फिरते रहकर वा एक जगह बैठकर ऐसा ही करो। रात के दूसरे पहर में सिंह-शैय्या से दाहिनी करवट लेट जाकर एक पैर को दूसरे पांव पर रखे हुए, जागरुकता तथा सम्यक् जानकारी से युक्त, अप्रमाद-रत। तब रात के तीसरे पहर में जागकर चलते हुए वा बैठे बैठे अपने चित्त को चित्त-मलों से परिशुद्ध करो।

२५. "और ब्राह्मण ! जब वह जागरूकता का अभ्यासी हो जाता है, तो तथागत उसे अगला पाठ देते हैं : श्रमण ! आओ जागरूकता और स्मृति (=सम्यक् जानकारी) से युक्त हो। आगे चलते हुए या पीछे हटते हुए—

अपने आपको संयत रखो। आगे देखते हुए, पीछे देखते हुए, झुकते हुए, शिथिल होते हुए, चीवर धारण करते हुए, पात्र-चीवर ले जाते हुए, खाते हुए, चबाते हुए, चखते हुए, शौच जाते हुए, चलते हुए, खड़े होते हुए, बैठते हुए, लेटते हुए. सोते हुए, जागते हुए, बोलते हुए या मौन रहते हुए, स्मृति सम्यक् जानकारी से युक्त हो।

२६. "ब्राह्मण ! जब वह आत्म-संयमी हो जाता है तब तथागत उसे अगली शिक्षा देते हैं : श्रमण ! आओ किसी एकान्त-स्थान को खोजो—चाहे बन हो, चाहे किसी वृक्ष की छाया हो, चाहे कोई पर्वत हो, चाहे किसी पर्वत की गुफा हो, चाहे श्मशान भूमि हो, चाहे वन-गुल्म हो, चाहे खुला आकाश हो और चाहे कोई पुआल का ढेर हो। और वह वैसा करता है। तब वह भोजनान्तर, पालथी लगाकर बैठता है और शरीर को सीधा रख चारों-ध्यानों का अभ्यास करता है।

२७. "ब्राह्मण ! जो अभी शैक्ष हैं, जो अभी अशैक्ष नहीं हुए हैं, जो अभी अशैक्ष होने के लिये प्रयत्न-शील हैं, उनके लिये मेरा यही शिक्षा-क्रम है।

२८. "लेकिन जो अर्हत्-पद प्राप्त है, जो अपने आस्रवों का क्षय कर चुके हैं, जो अपने जीवन का उद्देश्य पूरा कर चुके है, जो कृत्कृत्य हैं, जो अपने सिर का भार उतार चुके हैं, जो मुक्ति-प्राप्त हैं, जिन्होंने भव-बन्धनों का मूलोच्छेद कर दिया है और जो प्रज्ञा-विमुक्त हैं, ऐसो के लिये उपरोक्त श्रेष्ठ जीवन सुख-विहार भर के लिगे है और जागरूकता-युक्त जीवन आत्म-संयम मात्र के लिये।"

२९. जब यह कहा जा चुका, तब ब्राह्मण मोग्गल्लान गणक ने तथागत से कहा—

३०. "श्रमण गौतम ! मुझे यह तो बताये कि क्या आप के सभी शिष्य निर्वाण प्राप्त करते हैं, अथवा कुछ नहीं भी कर पाते ?"

३१. "ब्राह्मण ! इस क्रम से शिक्षित मेरे कुछ श्रावक निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं, कुछ नहीं भी कर पाते हैं।"

३२. "श्रमण गौतम ! इसका क्या कारण है ? श्रमण गौतम ! इसका क्या हेतु है ? यहाँ निर्वाण है। यहाँ निर्वाण का मार्ग है। और यहाँ श्रमण-गौतम जैसा योग्य पथ-प्रदर्शक है। तो फिर क्या कारण है कि इस क्रम से शिक्षा-प्राप्त कुछ श्रावक निर्वाण प्राप्त करते हैं, कुछ नहीं करते ?"

३३. "ब्राह्मण ! मैं तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर दूंगा। लेकिन पहले तुम, जैसा तुम्हें लगे, वैसे मेरे इस प्रश्न का उत्तर दो। ब्राह्मण ! अब यह बताओ कि क्या तुम राजगृह आने-जाने का मार्ग अच्छी तरह जानते हो ?"

३४. "श्रमण गौतम ! मैं निश्चय से राजगृह आने-जाने का मार्ग अच्छी तरह जानता हूँ।"

३५. (अब कोई एक आदमी आता है और राजगृह जाने का मार्ग पूछता है।) लेकिन उसे जो रास्ता बताया जाता है, उसे छोड़कर वह दूसरा रास्ता पकड़ लेता है, वह गलत-मार्ग पर चल देता है, पूर्व की बजाय पश्चिम की ओर चल देता है।

३६. "तब एक दूसरा आदमी आता है और वह भी रास्ता पूछता है और तुम उसे भी ठीक-ठीक वैसे ही रास्ता बता देते हो। वह तुम्हारे बताये रास्ते पर चलता है और सकुशल राजगृह पहुँच जाता है ?"

३७. ब्राह्मण बोला—"तो मैं क्या करूं, मेरा काम रास्ता बता देना है।"

३८. भगवान बुद्ध बोले—"तो ब्राह्मण ! मैं भी क्या करूं, तथागत का काम भी केवल रास्ता बता देना है।"

३९. यहाँ यह सम्पूर्ण और सुस्पष्ट कथन है कि तथागत किसी को मुक्ति नहीं देते, वे केवल मुक्ति-पथ के प्रदर्शक हैं।

४०. और फिर मुक्ति या निजात कहते किसे हैं ?

४१. हज़रत मुहम्मद तथा ईसामसीह के लिये मुक्ति या निजात का मतलब है पैग़म्बर की मध्यस्थता के कारण रूह का दोज़ख जाने से बच जाना।

४२. बुद्ध के लिये 'मुक्ति' का मतलब है 'निर्वाण' और 'निर्वाण' का मतलब है राग-द्वेष की आग का बुझ जाना।

४३. ऐसे धर्म में 'मुक्ति' का आश्वासन या वचन-बद्धता हो ही कैसे सकती है ?

३. बुद्ध ने अपने या अपने शासन के लिये किसी प्रकार की 'अपौरुषेयता' का दावा नहीं किया। उनका धर्म मनुष्यों के लिये एक मनुष्य द्वारा आविष्कृत धर्म था। यह 'अपौरुषेय' नहीं था

१. प्रत्येक धर्म के संस्थापक ने या तो अपने को 'ईश्वरीय' कहा है, या अपने 'धर्म' को।

२. हज़रत मूसा ने यद्यपि अपने को 'ईश्वरीय' नहीं कहा, किन्तु अपनी शिक्षाओं को 'ईश्वरीय' कहा है। उसने अपने अनुयायियों को कहा कि यदि उन्हें 'क्षीर और मधु' के मुल्क में पहुंचना है तो उन्हें उन शिक्षाओं को स्वीकार करना पड़ेगा, क्योंकि वे 'ईश्वरीय' हैं।

३. ईसा ने अपने 'ईश्वरीय' होने का दावा किया। उसने दावा किया कि वह 'ईश्वर-पुत्र' था। स्वाभाविक तौर पर उसकी शिक्षायें भी 'ईश्वरीय' हो गईं।

४. कृष्ण ने तो अपने आपको 'ईश्वर' ही कहा और अपनी शिक्षाओं को 'भगवान का वचन'।[*]

५. तथागत ने न अपने लिये और न अपने धर्म-शासन के लिए कोई ऐसा दावा किया।

६. उनका दावा इतना ही था कि वे भी बहुत से मनुष्यों में से एक हैं और उनका संदेश एक आदमी द्वारा दूसरे को दिया गया सन्देश है।

७. उन्होंने कभी यह भी दावा नहीं किया कि उनकी कोई बात गलत हो ही नहीं सकती।

८. उनका दावा इतना ही था कि जहां तक उन्होंने समझा है उनका पथ मुक्ति का सत्य-मार्ग है।

९. क्योंकि इसका आधार संसार भर के मनुष्यों के जीवन का व्यापक अनुभव है।

१०. उन्होंने कहा कि हर किसी को इस बात की स्वतन्त्रता है कि वह इसके बारे में प्रश्न पूछे, परीक्षण करे और देखे कि यह सन्मार्ग है या नहीं?

११. धर्म के किसी भी दूसरे संस्थापक ने अपने धर्म को इस प्रकार परीक्षण की कसौटी पर कसने का खुला चैलेंज नहीं दिया।

१. गणक मोग्गल्लान–सुत्तन्त (१०७)।
२. देखो भगवद्गीता—४।६।

दूसरा भाग

भगवान बुद्ध के धर्म के बारे में विविध मत

१. दूसरों ने उनके धर्म को किस प्रकार समझा ?

१. "भगवान बुद्ध की यथार्थ शिक्षायें कौन सी हैं ?"

२. यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर बुद्ध के कोई दो अनुयायी अथवा बुद्ध-धर्म के कोई दो विद्यार्थी एकमत नहीं प्रतीत होते।

३. कुछ के लिये 'समाधि' ही उनकी खास शिक्षा है।

४. कुछ के लिये 'विपश्यना' ही है।

५. कुछ के लिये बुद्ध-धर्म चन्द विशेष रूप से दीक्षित लोगों का धर्म है। कुछ के लिये यह बहुत लोगों का धर्म है।

६. कुछ के लिये इसमें शुष्क दार्शनिकता के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

७. कुछ के लिये यह केवल रहस्यवाद है।

८. कुछ के लिये यह संसार से स्वार्थ-पूर्ण पलायन है।

९. कुछ के लिये यह हृदय की प्रत्येक छोटी-बड़ी भावनाओं को दफना देने का व्यवस्थित शास्त्र है।

१०. बुद्ध-धर्म के सम्बन्ध में और भी नाना मतों का संग्रह किया जा सकता है।

११. इन मतों का परस्पर विरोध आश्चर्यजनक है।

१२. इनमें से कुछ मत ऐसे लोगों के हैं जिनके मन में किसी खास एक बात के लिये विशेष आकर्षण है। ऐसे ही लोगों में से कुछ समझते है कि बुद्ध-धर्म का सार, समाधि या विपश्यना में अथवा चन्द दीक्षित लोगों का धर्म होने में है।

१३. कुछ दूसरे मतों का कारण यह है कि बुद्ध-धर्म के बारे में लिखने वाले अनेक लोग प्राचीन भारतीय इतिहास के पण्डित हैं। उनका बौद्ध-धर्म का अध्ययन आकस्मिक है और इतिहास से सम्पर्क रहने के ही कारण है।

१४. उनमें से कुछ बुद्ध-धर्म के विद्यार्थी हैं ही नहीं।

१५. वे नृवंश-शास्त्र के विद्यार्थी भी नहीं; वह शास्त्र जो धर्म की उत्पत्ति और विकास से भी सम्बद्ध है।

१६. प्रश्न पैदा होता है कि क्या भगवान् बुद्ध का कोई सामाजिक सन्देश था या नहीं ?

१७. जब उत्तर देने के लिये ज़ोर डाला जाता है तो बुद्ध-धर्म के पण्डित प्रायः दो बातों पर विशेष बल देते हैं। वे कहते हैं—

१८. भगवान् बुद्ध ने अहिंसा की शिक्षा दी थी।

१९. भगवान् बुद्ध ने शान्ति दी थी।

२०. प्रश्न है—"क्या बुद्ध ने कोई दूसरा सामाजिक संदेश दिया ?

२१. "क्या बुद्ध ने 'न्याय' की शिक्षा दी ?"

२२. "क्या बुद्ध ने 'मैत्री' की शिक्षा दी ?"

२३. "क्या बुद्ध ने 'स्वतन्त्रता' की शिक्षा दी ?"

२४. "क्या बुद्ध ने 'समानता ' की शिक्षा दी ?"

२५. "क्या बुद्ध ने 'भ्रातृभाव' की शिक्षा दी ?"

२६. "क्या बुद्ध कार्ल मार्क्स के मुकाबले पर खड़े हो सकते हैं ?"

२७. बुद्ध-धर्म का विचार करते समय इन प्रश्नों को प्रायः कभी उठाया ही नहीं जाता।

२८. मेरा उत्तर है कि भगवान् बुद्ध का एक सामाजिक संदेश है। उनका सामाजिक संदेश इन सब प्रश्नों का उत्तर है। लेकिन उन सब प्रश्नों के उत्तरों को आधुनिक लेखकों ने दफना दिया है।

२. भगवान् बुद्ध का अपना वर्गीकरण

१. भगवान् बुद्ध ने धर्म का अपने ढंग का वर्गीकरण किया है।

२. पहला वर्ग "धर्म" है।

३. उन्होंने एक दूसरा वर्ग माना है, जो यद्यपि 'धर्म' शब्द के अन्तर्गत ही ग्रहण किया जाता है, किन्तु जो वास्तव में 'अधर्म' है।

४. उन्होंने एक तीसरा वर्ग माना है जिसे उन्होंने 'सद्धर्म' कहा है।

५. तीसरा वर्ग 'धर्म के दर्शन' के लिये है।

६. भगवान् बुद्ध के धर्म को समझने के लिये आवश्यक है कि तीनों वर्गों को भली प्रकार समझा जाय—धर्म को, अधर्म को तथा सद्धर्म को।

तीसरा भाग

धर्म क्या है?

१. जीवन की पवित्रता बनाये रखना धर्म है

१. "तीन तरह की जीवन की पवित्रताएँ हैं....शारीरिक पवित्रता किसे कहते हैं ?

२. "एक आदमी जीव-हिंसा से विरत होता है, चोरी से विरत होता है, काम-मिथ्याचार से विरत होता है। इसे शारीरिक-पवित्रता कहते हैं।

३. "वाणी की पवित्रता किसे कहते हैं ?

४. "एक आदमी झूठ बोलने से विरत रहता है....

५. मानसिक पवित्रता किसे कहते हैं ?"

६. "एक भिक्षु, जब काम-छन्द सें ग्रस्त रहता है तो वह जानता है कि मुझमें काम-छन्द है। यदि वह काम-छन्द से ग्रसा नहीं रहता, तो वह जानता है कि मुझ में काम-छन्द नहीं है। वह यह भी जानता है कि अनुत्पन्न काम-छन्द की किस तरह उत्पत्ति होती है ? वह यह भी जानता है कि उत्पन्न काम-छन्द का कैसे उच्छेद होता है और वह यह भी जानता है कि किस तरह भविष्य में काम-छन्द उत्पन्न नहीं होता।

७. "यदि उसमें व्यापाद होता है तो वह जानता है कि मुझ में व्यापाद (—द्वेष) है। वह इसकी उत्पत्ति.....विनाश को भी जानता है और यह भी जानता है कि भविष्य में किस प्रकार इसकी उत्पत्ति नहीं होती।

८. "यदि उसमें स्त्यान-मृद्ध (आलस्य-तन्द्रा) की उत्पत्ति हुई रहती है तो वह जानता है कि स्त्यान-मृद्ध उत्पन्न है.....उद्धतपन.....यदि उसमें कुछ विचिकित्सा उत्पन्न रहती है तो वह जानता है कि विचिकित्सा उत्पन्न है। वह यह भी जानता है कि किस प्रकार इसका विनाश होता है और किस प्रकार भविष्य में इसकी उत्पत्ति नहीं होती। यही मानसिक-पवित्रता कहलाती है।'

९. "जो शरीर, वाणी और मन से पवित्र है
"निष्पाप, स्वच्छ और पवित्रता से युक्त है
"उसे लोग 'निष्कलंक' नाम से पुकारते हैं।"

(ख)

१. "पवित्रता तीन तरह की है......शरीर की पवित्रता, वाणी की पवित्रता तथा मन की पवित्रता।

२. "शरीर की पवित्रता किसे कहते हैं ?"

३. "एक आदमी जीव-हिंसा से विरत रहता है, चोरी से विरत रहता है, काम-मिथ्याचार से विरत रहता है। यह 'शरीर की पवित्रता' है।

४. "वाणी की पवित्रता किसे कहते हैं ?"

५. "एक आदमी झूठ बोलने से विरत रहता है...... व्यर्थ की बातचीत से विरत रहता है। यह वाणी की 'पवित्रता' कहलाती है।

६. "मन की पवित्रता किसे कहते हैं ?"

७. 'एक आदमी ईर्ष्यालु नहीं होता, और सम्यक्-दृष्टि रखता है। यह मन की पवित्रता है। ये तीन तरह की पवित्रताएँ हैं।[२]

(ग)

१. ये पांच तरह की दुर्बलताएँ हैं, जिनसे साधना में बाधा पहुंचती है। कौन सी पाँच ?

२. जीव-हिंसा, चोरी, काम-मिथ्याचार, झूठ और नशा पैदा करने वाली शराब आदि नशीली चीजों का ग्रहण करना।

३. ये पाँच तरह की दुर्बलताएँ हैं जिनसे साधना में बाधा पड़ती है।

४. जब साधना की ये पाँचों बाधाएँ दूर हो जाती हैं, तो चार स्मृति-उपस्थानों की उत्पत्ति होनी चाहिये।

५. एक भिक्षु काय के प्रति कायानुपश्यना करता हुआ विहार करता है, प्रयत्नशील, ज्ञानवान्, स्मृतिमान और लोक में विद्यमान लोभ तथा दौर्मनस्य को काबू में किये हुए।

६. वह वेदनाओं के प्रति वेदनानुपश्यी हो विहार करता है...

७. वह चित्त के प्रति चित्तानुपश्यी हो विहार करता है...

८. वह चित्त में उत्पन्न होनेवाले विचारों (=धर्मों) के प्रति धर्मानुपश्यी हो विहार करता है, प्रयत्नशील, ज्ञानवान्.स्मृतिमान और लोक में विद्यमान लोभ तथा दौर्मनस्य को काबू में किये हुए।

९. जब साधना की ये पाँच बाधाएँ दूर हो जाती हैं तो चार स्मृति-उपस्थानों की उत्पत्ति होनी चाहिए।[३]

(घ)

१. ये तीन घात हैं; शील-घात, चित्त-घात और दृष्टि-घात।

२. शील-घात क्या है ? एक आदमी प्राणी-हिंसा करता है, चोरी करता है, काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार करता है, झूठ बोलता है, चुगली खाता है, कठोर बोलता है तथा व्यर्थ बोलता है। यह शील-घात कहलाता है।

३. चित्त-घात किसे कहते हैं ?

४. एक आदमी लोभी होता है, दौर्मनस्य-युक्त होता है। यह चित्त का घात है।

५. दृष्टि-घात क्या है ?

६. यहाँ कोई आदमी इस प्रकार की ग़लत-धारणा मिथ्या-दृष्टि रखता है कि दान देने में, त्याग करने में, परित्याग करने में कोई पुण्य नहीं; भले-बुरे कर्म का कुछ फल नहीं होता; न यह लोक है और न पर-लोक है; न माता है, न पिता है और न स्वोत्पन्न प्राणी हैं; लोक में कोई ऐसे श्रमण-ब्राह्मण नहीं हैं जो शिखर तक जा पहुंचे हों, जिन्होंने पूर्णता लाभ की हो, जिन्होंने अपनी ही अभिज्ञा से परलोक का साक्षात्कार किया हो और जो उसकी घोषणा कर सकते हों। भिक्षुओ, यह दृष्टिघात है ।

७. भिक्षुओं, यह शील-घात, चित्त-घात के और दृष्टि-घात के ही कारण ऐसा होता है कि मरने के अनन्तर प्राणी दुर्गति को प्राप्त होते हैं। ये तीन दृष्टि घात हैं।

८. भिक्षुओं ! ये तीन लाभ हैं। कौन से तीन ? शील-लाभ, चित्त-लाभ तथा दृष्टि-लाभ ।

९. शील-लाभ क्या है ?

१०. एक आदमी प्राणी-हिंसा से विरत रहता है. . . .कठोर बोलने से विरत रहता है और व्यर्थ बोलने से विरत रहता है। यह शील-लाभ है।

११. चित्त-लाभ क्या है ?

१२. एक आदमी न लोभी होता है और न दौर्मनस्य-युक्त होता है। यह चित्त-लाभ है ।

१३. और दृष्टि-लाभ क्या है ?

१४. यहां कोई आदमी इस प्रकार की ग़लत-धारणा, मिथ्या-धारणा नहीं रखता है कि दान देने में, त्याग करने में, परित्याग करने में कोई पुण्य नहीं, भले-बुरे कर्म का कुछ फल नहीं होता, न यह लोक है और न पर-लोक है; न माता है, न पिता है और न स्वोत्पन्न प्राणी हैं, लोक में कोई ऐसे श्रमण-ब्राह्मण नहीं हैं जो शिखर तक जा पहुंचे हों, जिन्हों ने पूर्णता लाभ की हो, जिन्होंने अपनी ही अभिज्ञा से परलोक का साक्षात्कार किया हो और जो उसकी घोषणा कर सकते हों। भिक्षुओ यह दृष्टि-लाभ है ।

१५. भिक्षुओ, इन्हीं तीन लाभों के कारण शरीर का नाश होने पर मरने के अनन्तर प्राणी सुगति को प्राप्त होते हैं। भिक्षुओ, ये तीन लाभ हैं।*

२. जीवन में पूर्णता प्राप्त करना धर्म है

१. ये तीन पूर्णतायें हैं ।

२. शरीर की पूर्णता, वाणी की पूर्णता तथा मन की पूर्णता ।

३. मन की पूर्णता कैसी होती है ?

४. आस्रवों अथवा चित्त मलों का पूरा क्षय हो गया होने से, इसी जीवन में सम्पूर्ण चित्त-विमुक्ति का अनुभव करने से—प्रज्ञा विमुक्ति जो कि आस्रवों से विमुक्ति है—उसे प्राप्त कर, उसी में विहार करता है। यही मन की पूर्णता कहलाती है। ये तीन पूर्णताएँ हैं।

५. और दूसरी भी पारमिताएँ हैं। भगवान् बुद्ध ने उन्हें सुभूति को समझाया था।

६. सुभूति—"बोधिसत्व की दान-पारमिता क्या है ?"

७. तथागत—"बोधिसत्व चित्त की सभी अवस्थाओं का ज्ञान रख कर दान देता है, अपनी भीतरी वा बाह्य, और उन्हें सर्वसाधारण के लिये परित्याग कर 'बोधि' को समर्पित करता है। वह दूसरों को भी ऐसा ही करने की प्रेरणा देता है। किसी भी वस्तु में उसकी आसक्ति नहीं।"

८. सुभूति—"एक बोधिसत्व की शील-पारमिता क्या है ?"

९. तथागत—"वह स्वयं दस कुशल-पथों में विचरता है और दूसरों को भी ऐसा ही करने की प्रेरणा करता है।"

१०. सुभूति—"बोधिसत्व की क्षान्ति-पारमिता क्या है ?"

११. तथागत—"वह स्वयं क्षमा-शील हो जाता है तथा दूसरों को भी क्षमा शील रहने की प्रेरणा करता है।"

१२. सुभूति—"बोधिसत्व की वीर्य्य-पारमिता क्या है ?"

१३. तथागत—"वह सतत पांचों पारमिताओं की पूर्ति में संलग्न रहता है, तथा दूसरों को भी ऐसा ही करने की प्रेरणा करता है।"

१४. सुभूति—"बोधिसत्व की समाधि की पारमिता क्या है ?"

१५. तथागत—"वह अपने कौशल से ध्यानों का लाभ करता है, किन्तु तत्सम्बन्धित रूप-लोकों में उसका जन्म नहीं होता। वह दूसरों को भी ऐसा ही करने की प्रेरणा करता है।"

१६. सुभूति—"बोधिसत्व की प्रज्ञा-पारमिता क्या है ?"

१७. तथागत—"वह किसी भी धर्म (भौतिक वा अभौतिक वस्तु) में नहीं फसता, वह सभी धर्मों के स्वभाव पर विचार करता है। वह दूसरों को भी सभी धर्मों के स्वभाव पर विकार करने की प्रेरणा देता है।"

१८. इन पारमिताओं का विकास करना धर्म है।

३. निर्वाण प्राप्त करना धर्म है

१. भगवान् बुद्ध ने कहा है: "निर्वाण से बढ़कर सुखद कुछ नहीं।"

२. भगवान् बुद्ध द्वारा उपदिष्ट सभी धर्मों में निर्वाण का प्रमुख स्थान है।

३. निर्वाण क्या है? भगवान् बुद्ध ने निर्वाण का जो अर्थ किया है, वह उस से सर्वथा भिन्न है जो उनके पूर्वजों ने किया है।

४. उनके पूर्वजों की दृष्टि में निर्वाण का मतलब था 'आत्मा' का मोक्ष।

५. निर्वाण के चार स्वरूप थे: (१) लौकिक, (खाओ, पिओ, और मौज उड़ाओ); (२) यौगिक; (३) ब्राह्मणी; (४) औपनिषदिक

६. ब्राह्मणी और औपनिषदिक निर्वाण में एक समानता थी। निर्वाण के दोनों स्वरूपों में 'आत्मा' की एक स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की गई थी—यह सिद्धान्त भगवान् बुद्ध को अमान्य ही था। इसलिये भगवान् बुद्ध को निर्वाण के ब्राह्मणी और औपनिषदिक स्वरूप का खण्डन करने में, उसे अस्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

७. निर्वाण की भौतिक कल्पना इतनी अधिक जड़ता लिये हुए थी कि वह कभी भी बुद्ध के गले से उतर ही न सकती थी। इसमें कुछ भी आध्यात्मिक तत्व नहीं था।

८. भगवान् बुद्ध को लगता था कि निर्वाण के ऐसे स्वरूप को स्वीकार करना किसी भी मानव की बड़ी से बड़ी हानि करना है।

९. इन्द्रियों की भूख की संतुष्टि उस भूख को बढ़ाने का ही कारण बनती है। इस प्रकार के जीवन में से सुख कभी उत्पन्न नहीं हो सकता। इसके विपरीत इस प्रकार के सुख में से अधिकाधिक दुःख ही उत्पन्न हो सकता है।

१०. निर्वाण का यौगिक स्वरूप एक सर्वथा अस्थायी अवस्था थी। इसका 'सुख' नकारात्मक था। इसके माध्यम से संसार से सम्बन्ध-विच्छेद हो सकता था। यह दुःख से बच निकलना था, किन्तु सुख-प्राप्ति नहीं थी। इससे जितने भी कुछ 'सुख' की आशा की जा सकती थी, वह 'सुख' अधिक से अधिक योग की अवधि भर था। यह स्थायी नही था। यह अस्थायी था।

११. बुद्ध का निर्वाण का स्वरूप अपने पूर्वजों के स्वरूप से सर्वथा भिन्न है।

१२. बुद्ध के निर्वाण के स्वरूप के मूल में तीन बातें हैं।

१३. इनमें से एक तो यह है कि किसी 'आत्मा' का सुख नहीं, बल्कि प्राणी का सुख।

१४. दूसरी बात यह है कि संसार में रहते समय प्राणी का सुख। 'आत्मा' की 'मुक्ति' और मरणानन्तर 'आत्मा' की 'मुक्ति' बुद्ध के विचारों से सर्वथा विरुद्ध बातें हैं।

१५. तीसरा विचार जो बुद्ध के निर्वाण के स्वरूप का मूलाधार है वह है राग-द्वेषाग्नि को शान्त करना।

१६. राग तथा द्वेष प्रज्ज्वलित अग्नि के समान हैं, यह बात भगवान् बुद्ध ने

अपने उस प्रवचन में कही थी, जो उन्होंने बुद्ध-गया में रहते समय भिक्षुओं को दिया था। भगवान् बुद्ध ने कहा :—

१७. भिक्षुओ, सभी कुछ जल रहा है। भिक्षुओ, क्या सभी कुछ जल रहा है?

१८. "भिक्षुओ, चक्षु-इन्द्रिय जल रहा है, रूप जल रहा है, चक्षु-विज्ञान जल रहा है, चक्षु-संस्कार जल रहा है, और उस संस्कार से जो भी सुख-वेदना और असुख-अदुख वेदना उत्पन्न होती है, वह वेदना भी जल रही है।

१९. "और ये किस से जल रहे हैं ?

२०. "ये रागाग्नि से जल रहे हैं, ये द्वेषाग्नि से जल रहे हैं, ये मोहाग्नि से जल रहे हैं, ये जाति, जरा, मरण, दुःख दौर्मनस्य तथा उपायास से जल रहे हैं।

२१. "भिक्षुओ, श्रोत्र-इन्द्रिय जल रहा है, शब्द जल रहा है, घ्राण-इन्द्रिय जल रहा है, गन्ध जल रहा है; जिह्वा जल रही है, रस जल रहे हैं, काय जल रहा है, चित्त के संकल्प-विकल्प जल रहे हैं और चित्त के संस्कारों से जो भी सुख-वेदना, दुःख वेदना और असुख-अदुख वेदना उत्पन्न होती है, वह वेदना भी जल रही है।

२२. "और ये किस से जल रहे हैं ?

२३. "मैं कहता हूं, ये रागाग्नि से जल रहे हैं, द्वेषाग्नि से जल रहे हैं, मोहाग्नि से जल रहे हैं; ये जाति, जरा, मरण, दुःख, दौर्मनस्य तथा उपायास से जल रहे हैं।"

२४. "भिक्षुओ, इसका ज्ञान होने से जो विज्ञ है और जो श्रेष्ठ है उसके मन में उपेक्षा उत्पन्न होती है, उपेक्षा उत्पन्न होने से रागाग्नि आदि की शान्ति होती है और रागाग्नि आदि के शान्त हो जाने से वह 'मुक्त' हो जाता है; और मुक्त हो जाने से वह जानता है कि मैं 'मुक्त' हो गया हूं।"

२५. निर्वाण सुखद् कैसे हो सकता है ? यह एक दूसरा प्रश्न है जिसका उत्तर अपेक्षित है।

२६. सामान्य तौर पर यह कहा-समझा जाता है कि अभाव आदमी को दुःखी बनाता है। लेकिन हमेशा यही बात ठीक नहीं होती। आदमी बाहुल्य के बीच में रहता हुआ भी दुःखी रहता है।

२७. दुःख लोभ का परिणाम है और लोभ दोनों को होता है, जिनके पास नहीं है उन्हें भी और जिनके पास है, उन्हें भी।

२८. भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को दिये एक प्रवचन में यह बात भली प्रकार सुस्पष्ट कर दी है—

२९. भिक्षुओ, लोभ से लुब्ध, द्वेष से दुष्ट और मोह से मूढ़ चित्त से आदमी अपने दुःखों से दुःखी रहता है, आदमी दूसरों के दुःखों से दुःखी रहता है, आदमी मानसिक वेदना और पीड़ा अनुभव करता है।

३०. "किन्तु यदि लोभ, द्वेष तथा मोह का मूलोच्छेद हो जाय तो आदमी न अपने दु:खों से दुखी रहेगा, न दूसरों के दु:खों से दु:खी रहेगा और न मानसिक वेदना और पीड़ा अनुभव करेगा ।

३१. "इस प्रकार भिक्षुओ, निर्वाण इसी जीवन में प्राप्य है, भविष्य-जीवन में ही नहीं, अच्छा लगने वाला है, आकर्षक है और बुद्धिमान श्रावक इसे हस्तगत कर सकता है ।[६]

३२. जो चीज आदमी को जला डालती है और जो उसे दु:खी बनाती है, यहां उसे स्पष्ट कर दिया गया है । आदमी के राग-द्वेष को जलती हुई अग्नि के समान कहकर भगवान् बुद्ध ने आदमी के दु:ख की सर्वाधिक जोरदार व्याख्या की है ।

३३. राग-द्वेष की अधीनता ही आदमी को दु:खी बनाती है । राग-द्वेष को 'संयोजन' अथवा बंधन कहा गया है जो आदमी को निर्वाण तक नहीं पहुंचने देते । ज्यों ही आदमी राग-द्वेष की झोंक से मुक्त हो जाता है, उसके लिये निर्वाण-पथ खुल जाता है, वह दु:ख का अन्त कर सकता है ।

३४. भगवान् बुद्ध ने इन संयोजनों को तीन विभागों में विभक्त किया है—

३५. पहला विभाग वह है जिसका सम्बन्ध हर प्रकार की तृष्णा से है, जैसे कामुकता और लोभ ।

३६. दूसरा वर्ग वह है जिसका सम्बन्ध सभी प्रकार की वितृष्णा से है—जैसे घृणा, क्रोध और द्वेष (दोष)

३७. तीसरा वर्ग वह है जिसका सम्बन्ध सभी तरह की अविद्या से है—जड़ता, मूर्खता और मूढ़ता (मोह) ।

३८. पहली (राग) अग्नि और दूसरी (द्वेष) अग्नि का सम्बन्ध आदमी की उन भावनाओं से है और उस दृष्टि-कोण से है जो उसका दूसरों के प्रति है, जबकि तीसरी (मोह) अग्नि का सम्बन्ध उन सभी विचारों से है जो सत्य से भिन्न हैं ।

३९. भगवान् बुद्ध के निर्वाण के सिद्धान्त के बारे में बहुत सी ग़लत-फहमियां हैं ।

४०. शब्द की व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'निर्वाण' शब्द का शब्दार्थ है बुझ जाना ।

४१. शब्द की इस व्युत्पत्ति को लेकर आलोचकों ने 'निर्वाण' को दो कौड़ी का नहीं रहने दिया है, उसे एक सर्वथा बेहूदा सी चीज बना दिया है।

४२. उनका कहना है कि निर्वाण का मतलब है सभी मानवी-प्रवृत्तियों का बुझ जाना अर्थात् मृत्यु ।

४३. इस प्रकार उन्होंने निर्वाण के सिद्धान्त का मजाक उड़ाने की कोशिश की है ।

४४. जो कोई भी इस 'अग्नि-स्कन्धोपम' सूक्त* की भाषा का विचार करेगा, उसे यह स्पष्ट हो जायगा कि निर्वाण का यह अर्थ कदापि नहीं है।

४५. इस प्रवचन में यह नहीं कहा गया है कि जीवन जल रहा है और बुझ जाना मृत्यु है। इसमें यह कहा गया है कि राग-अग्नि जल रही है, द्वेषाग्नि जल रही है तथा मोहाग्नि जल रही है।

४६. इस अग्नि-स्कन्धूपम सूक्त में यह कहीं नहीं कहा गया कि आदमी की हर प्रकार की प्रवृत्तियों का मूलोच्छेद कर देना चाहिए। इसमें आग में घी डालना ही मना किया गया है।

४७. दूसरी बात यह है कि आलोचक 'निर्वाण' और 'परिनिर्वाण' का भेद करना भी भूल गये हैं।

४८. उदान के अनुसार "जब शरीर बिखर जाता है, जब तमाम संज्ञायें रुक जाती हैं, तब तमाम वेदनाओं का नाश हो जाता है, जब सभी प्रकार की प्रक्रिया बंद हो जाती है और जब चेतना एक दम जाती रहती है" तभी परिनिर्वाण होता है। इस प्रकार परिनिर्वाण का मतलब है पूरी तरह बुझ जाना।

४९. निर्वाण का कभी यह अर्थ नहीं हो सकता। निर्वाण का मतलब है अपनी प्रवृत्तियों पर इतना काबू रखना कि आदमी धर्म के मार्ग पर चल सके। इससे अधिक और इसका दूसरा कुछ आशय ही नहीं।

५०. राध को समझाते हुए स्वयं भगवान् बुद्ध ने यह स्पष्ट किया था कि निर्दोष जीवन का ही दूसरा नाम निर्वाण है।

५१. एक बार राध स्थविर भगवान बुद्ध के पास आये। आकर भगवान बुद्ध को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। इस प्रकार बैठ कर राध स्थविर ने भगवान् बुद्ध से कहा:— "भन्ते ! निर्वाण किस लिये है ?"

५२. तथागत ने उत्तर दिया—'निर्वाण का मतलब है रागाग्नि, द्वेषाग्नि तथा मोहाग्नि का बुझ जाना।"

५३. "लेकिन भन्ते ! निर्वाण का उद्देश्य क्या है ?"

५४. "राध ! निर्दोष जीवन का मूल निर्वाण में है। निर्वाण ही उद्देश्य है। निर्वाण ही मक़सद है।"

५५. 'निर्वाण' का मतलब सभी (प्रवृत्तियों का) बुझ जाना नहीं है, यह बात सारिपुत्र ने भी अपने इस प्रवचन में स्पष्ट की है:—

५६. एक बार भगवान बुद्ध श्रावस्ती में, अनाथपिण्डक के जेतवनाराम में विहार कर रहे थे। उसी समय सारिपुत्र भी वहीं ठहरे हुए थे।

५७. भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को सम्बोधित करके कहा :— "भिक्षुओ ! धर्म के दायाद बनो। भौतिक-वस्तुओं के दायाद न बनो। मेरी तुम पर अनुकम्पा है। इसलिये मैं तुम्हें धर्म का दायाद बनाता हूँ।"

५८. भगवान बुद्ध ने यह कहा और तब वह उठकर (गन्ध)-कुटी में चले गये।

५९. सारिपुत्र पीछे रह गये। तब भिक्षुओं ने सारिपुत्र से प्रार्थना की कि वह बतायें कि निर्वाण क्या है?

६०. तब सारिपुत्र ने भिक्षुओं को उत्तर देते हुए कहा—"भिक्षुओ! लोभ बुरा है, द्वेष बुरा है।

६१. "इस लोभ और इस द्वेष से मुक्ति पाने का साधन मध्यम-मार्ग है, जो आंख देने वाला है, जो ज्ञान देने वाला है, जो हमें शान्ति, अभिज्ञा, बोधि तथा निर्वाण की ओर ले जाता है।

६२. "यह मध्यम-मार्ग कौन सा है? यह मध्यम-मार्ग आर्य अष्टांगिक-मार्ग के अतिरिक्त कुछ नहीं, यही सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् प्रयत्न (व्यायाम), सम्यक् स्मृति तथा सम्यक् समाधी; भिक्षुओ! यही मध्यम-मार्ग है।

६३. "हां! भिक्षुओ! क्रोध बुरी चीज है, द्वेष बुरी चीज है, ईर्ष्या बुरी चीज है, मात्सर्य बुरी चीज है, कंजूसपन बुरी चीज है, लालच बुरी चीज है, ढोंग बुरी चीज है, ठगी बुरी चीज है, उद्धतपन बुरी चीज है, मोह बुरी चीज है तथा प्रमाद बुरी चीज है।

६४. "मोह तथा प्रमाद के नाश के लिये मध्यम-मार्ग है, जो आंख देने वाला है, जो ज्ञान देने वाला है, जो हमें शान्ति, अभिज्ञा, बोधि तथा :निर्वाण की ओर ले जाता है।

६५. "निर्वाण आर्य अष्टांगिक-मार्ग के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।"

६६. इस प्रकार सारिपुत्र ने कहा। प्रसन्न-चित्त भिक्षु सारिपुत्र का प्रवचन सुन प्रमुदित हुए।[८]

६७. निर्वाण के मूल में जो विचार है वह यही है कि यह निष्कलङ्कता का पथ है! किसी को भी निर्वाण से और कुछ समझना ही नहीं चाहिये।

६८. सम्पूर्ण उच्छेदवाद एक अन्त है और परिनिर्वाण दूसरा अन्त है। निर्वाण मध्यम-मार्ग है।

६९. यदि निर्वाण को इस प्रकार ठीक तरह से समझ लिया जाय, तो निर्वाण के सम्बन्ध में सारी गड़बड़ी दूर हो जाती है।

४. तृष्णा का त्याग धर्म है

१. धम्मपद में भगवान बुद्ध ने कहा है. "आरोग्य से बढ़कर लाभ नहीं, सन्तोष से बढ़कर धन नहीं।"[१]

२. यहां संतोष का मतलब बेचारगी वा परिस्थिति के सामने सिर झुका देना नहीं है।

३. ऐसा समझ बैठना भगवान् बुद्ध की दूसरी शिक्षाओं के सर्वथा प्रतिकूल पड़ेगा।

४. भगवान् बुद्ध ने यह कहीं नहीं कहा कि "भाग्यवान् हैं वे जो गरीब हैं।"

५. भगवान् बुद्ध ने यह कहीं न कहा कि जो पीड़ित हैं उन्हें अपनी परिस्थिति बदलने का प्रयास नहीं करना चाहिये।

६. दूसरी ओर उन्होंने 'ऐश्वर्य' का स्वागत किया है। अपनी परिस्थिति की ओर से उपेक्षावान् होकर पड़े-पड़े कष्ट सहते रहने के उपदेश के स्थान पर उन्होंने वीर्य्य, उत्साहपूर्वक परिस्थिति को बदलने का प्रयास करने का उपदेश दिया है।

७. जब भगवान् बुद्ध ने यह कहा कि 'संतोष सबसे बड़ा धन है' तो उनके कहने का अभिप्राय यही था कि आदमी को लोभ के वशीभूत नहीं होना चाहिये, जिसकी कहीं कोई सीमा नहीं।

८. जैसा कि भिक्षु राष्ट्रपाल ने कहा है; "मैं धनियों को देखता हूँ जो मूर्खतावश अधिक से अधिक इकट्ठा ही करते चले जाते हैं, उस में से कभी भी किसी को कुछ नहीं देते, उनकी तृष्णा रूपी प्यास बुझती ही नहीं; राजाओं को देखता हूँ कि जिनका राज्य समुद्र तक पहुंच गया है, किन्तु अब समुद्रपार साम्राज्य के लिये दुखी हैं, अभी भी तृष्णार्त हैं, राजा-प्रजा सभी संसार से गुजर जाते हैं, उनका अभाव बना ही रहता है; वे शरीर त्याग देते हैं, किन्तु इस पृथ्वी पर उनकी काम-भोग की इच्छा की कभी तृप्ति ही नहीं होती।"[१०]

९. महा-निदान-सुत्त[११] में भगवान बुद्ध ने आनन्द को 'लोभ' को अपने वश में रखने के लिये कहा है। तथागत का वचन है :—

१०. "इस प्रकार आनन्द ! लाभ की इच्छा में से तृष्णा पैदा होती है, जब लाभ की इच्छा मिल्कीयत की इच्छा में बदल जाती है, जब मिल्कीयत की इच्छा अपनी मिल्कीयत से बुरी तरह चिपटे रहने की इच्छा बन जाती है, तो यह 'लोभ' कहलाती है।"

११. लोभ या संग्रह करने की असंयत-कामना पर नजर रखने की जरूरत है।

१२. "इस तृष्णा या लोभ को वश में रखने की क्यों जरूरत है?" "क्योंकि इसी से" भगवान् बुद्ध ने आनन्द से कहा "बहुत सी बुराइयां पैदा होती हैं, मुक्का-मुक्की भी हो जाती है, लोगों को आघात भी लगते हैं, झगड़े भी होते हैं। परस्पर विरोध भी होते हैं, कलह भी होते हैं, एक दूसरे की निन्दा तथा झूठ बोलना भी होता है।"[१२]

१३. इस में कोई सन्देह नहीं कि वर्ग-संघर्ष का यह सही सही विश्लेषण है।

१४. इसीलिए भगवान् बुद्ध ने 'तृष्णा' और लोभ' को अपने वश में रखने के लिये कहा है।

५. यह मानना कि सभी संस्कार अनित्य हैं धर्म है

१. अनित्यता के सिद्धान्त के तीन पहलू हैं ।

२. अनेक तत्वों के मेल से बनी हुई चीजें अनित्य हैं ।

३. व्यक्तिगत रूप से प्राणी अनित्य है ।

४. प्रतीत्य-समुत्पन्न वस्तुओं का 'आत्म-तत्व' अनित्य है ।

५. अनेक तत्वों के मेल से बनी हुई चीजों की अनित्यता की बात महान् बौद्ध दार्शनिक असंग ने अच्छी तरह समझाई है ।

६. "सभी चीजें", असंग का कहना है, "हेतुओं तथा प्रत्ययों से उत्पन्न हैं । किसी का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है । जब हेतु-प्रत्ययों का उच्छेद हो जाता है, वस्तुओं का अस्तित्व नहीं रहता ।"

७. प्राणी का शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु नामक चार महाभूतों का परिणाम है । जब इन चारों महाभूतों का पृथक्करण हो जाता है, प्राणी नहीं रहता ।

८. 'अनेक तत्वों के मेल से बनी हुई चीजें अनित्य हैं' कहने का अभिप्राय यही है ।

९. जीवित प्राणी की अनित्यता की सर्वश्रेष्ठ व्याख्या यही है कि वह है नहीं, वह हो रहा है ।

१०. इस अर्थ में भूत काल का प्राणी अपना जीवन व्यतीत कर चुका, न वह वर्तमान में कर रहा है और न भविष्य में करेगा ! भविष्यत् काल का प्राणी रहेगा, लेकिन न रहा है और न रहता है; वर्तमान काल का प्राणी रहता है, लेकिन न रहा है, और न रहेगा ।[१]

११. संक्षेप यही है कि मानव निरन्तर परिवर्तन-शील है, निरन्तर संवर्धन-शील है । वह अपने जीवन के दो भिन्न क्षणों में भी एक नहीं है ।

१२. इस सिद्धान्त का तीसरा पहलू एक सामान्य आदमी के लिये समझ सकना कुछ कठिन है ।

१३. यह समझ लेना कि आदमी किसी न किसी दिन अवश्य मर जायेगा, बड़ा आसान है ।

१४. किन्तु यह समझ सकना कि किस प्रकार एक प्राणी जीते जी परिवर्तित होता रहता है, उतना ही आसान नहीं ।

१५. "यह कैसे सम्भव है ?" भगवान बुद्ध का उत्तर था—"यह इसीलिये सम्भव है कि हर चीज अनित्य है ।"

१६. आगे चलकर इसी 'अनित्यता' के सिद्धान्त ने शून्यवाद का रूप ग्रहण कर लिया है ।

१७. बौद्ध 'शून्यता' का मतलब सोलह आने निषेध नहीं है। इस का मतलब इतना ही है कि संसार में जो कुछ है वह प्रतिक्षण बदल रहा है।

१८. बहुत कम लोग इस बात को समझ पाते हैं कि 'शून्यता' के ही कारण सभी कुछ सम्भव है, इस के बिना संसार में कुछ भी सम्भव नहीं रहेगा। सभी दूसरी बातें चीजों के अनित्यता के स्वभाव पर ही निर्भर करती हैं।

१९. यदि चीजें परिवर्तन-शील न हों बल्कि स्थायी और अपरिवर्तनशील हों, तब एक रूप से किसी दूसरे रूप में जीवन का सारा विकास ही रुक जायगा, किसी में कुछ भी परिवर्तन न हो सकेगा, किसी की कुछ भी उन्नति न हो सकेगी।

२०. यदि आदमी मर जाते या उन में परिवर्तन आ जाता और फिर वे सब उसी अवस्था में अपरिवर्तित स्थिति में रहते, तो क्या हालत होती? मानव-जाति की प्रगति सर्वथा रुक जाती।

२१. यदि 'शून्य' का मतलब 'अभाव' माना जाये तो कई कठिनाइयां उत्पन्न हो जाती हैं।

२२. 'शून्य' उस बिन्दु के समान है, जो कि एक पदार्थ है किन्तु जिसकी कोई लम्बाई-चौड़ाई नहीं।

२३. भगवान् बुद्ध का यह उपदेश था कि सभी चीजें अनित्य है।

२४. इस सिद्धान्त से हमें क्या शिक्षा मिलती है? यह अधिक महत्व का प्रश्न है।

२५. इस सिद्धान्त से हमें जो शिक्षा मिलती है, वह सरल है। किसी वस्तु के प्रति आसक्त न होओ।

२६. यह अनासक्ति—सम्पत्ति के प्रति अनासक्ति, सम्बन्धियों, मित्रों, तथा परिचितों के प्रति अनासक्ति का ही अभ्यास करने के लिये यह कहा गया है कि सभी चीजें अनित्य हैं।

६. 'कर्म' को मानव जीवन के नैतिक संस्थान का आधार मानना धर्म है

१. भौतिक संसार में एक प्रकार का नियम दिखाई देता है। निम्नलिखित बातें इसकी साक्षी हैं।

२. आकाश के नक्षत्रों के चलन में एक प्रकार का नियम है।

३. ऋतुओं के नियमानुसार आवागमन में भी एक नियम है।

४. बीजों से वृक्ष उत्पन्न होते हैं, वृक्षों में फल लगते हैं और फलों से फिर बीज प्राप्त होते हैं—इस में भी एक प्रकार का नियम है।

५. बौद्ध परिभाषा में यह सब 'बीज नियम' तथा 'ऋतु-नियम' आदि कहलाते हैं।

६. इसी प्रकार क्या समाज में भी कोई नैतिक-क्रम है? यदि है तो यह कैसे उत्पन्न हुआ है? इस का संरक्षण कैसे होता है?

७. जो 'ईश्वर' में विश्वास रखते हैं, उन्हें इस प्रश्न का उत्तर देने में कोई कठिनाई नहीं है। उन का उत्तर सरल है।

८. उन का कहना है कि संसार का नैतिक-क्रम ईश्वरेच्छा का परिणाम है। ईश्वर ने संसार को जन्म दिया है और ईश्वर ही संसार का कर्ता-धर्ता है। वही भौतिक, तथा नैतिक-नियमों का रचयिता भी है।

९. उन का कहना है कि नैतिक-नियम आदमी की भलाई के लिये हैं क्योंकि वे ईश्वर की आज्ञा हैं। आदमी को अपने रचयिता ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करना ही पड़ेगा। और यह 'ईश्वर को आज्ञाओं—' का पालन ही है जो संसार को चलाता है।

१०. संसार का नैतिक-संस्थान ईश्वरेच्छा का परिणाम है—इसके पक्ष में यही तर्क दिया जाता है।

११. लेकिन यह व्याख्या किसी भी तरह संतोषजनक नहीं है। क्योंकि यदि 'ईश्वर' नैतिक-नियमों का जनक है और यदि 'ईश्वर' ही नैतिक-नियमों का आरम्भ और अवसान है और यदि आदमी ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करने के लिये मजबूर है, तो संसार में इतनी नैतिक-अराजकता वा अनैतिकता क्यों है?

१२. इस 'ईश्वरीय-नियम' के पास कौन सी शक्ति है? इस 'ईश्वरीय-नियम' का व्यक्ति पर कौन सा अधिकार है? ये महत्वपूर्ण प्रश्न हैं। लेकिन जो लोग यह मानते हैं कि संसार का नैतिक-संस्थान ईश्वरेच्छा का परिणाम है—उनके पास इन प्रश्नों का कोई संतोषजनक उत्तर नहीं।

१३. इन कठिनाइयों पर पार पाने के लिये बात कुछ थोड़ी बदल दी गई है।

१४. अब यह कहा जाने लगा है: निस्सन्देह ईश्वर की इच्छा से ही सृष्टि अस्तित्व में आई। यह भी सत्य है कि प्रकृति ने ईश्वर की इच्छा और मार्ग-दर्शन के अनुसार ही अपना कार्य आरम्भ किया। यह भी सत्य है कि उसने प्रकृति को एक ही बार वह सब शक्ति प्रदान कर दी जो अब उसकी समस्त क्रिया-शीलता के मूल में है।

१५. लेकिन इस के बाद 'ईश्वर' ने प्रकृति को स्वतन्त्र छोड़ दिया है कि वह शुरू में उसी के बनाये हुए नियमों के अनुसार कार्य करती रहे।

१६. इसलिये अब यदि ईश्वरेच्छा या ईश्वर की आज्ञा के अनुसार कार्य नहीं होता, तो अब इसमें ईश्वर का कोई दोष नहीं, सारा दोष प्रकृति का है।

१७. लेकिन सिद्धान्त में इस तरह थोड़ा परिवर्तन कर देने से भी काम

नहीं चलता। इससे केवल इतना ही होता है कि ईश्वर पर कोई जिम्मेदारी नहीं रहती। लेकिन तब प्रश्न पैदा होता है कि ईश्वर ने यह काम प्रकृति को क्यों सौंपा है कि वह उसके बनाये नियमों का पालन कराये ? इस प्रकार के अनुपस्थित, इस प्रकार के निकम्मे 'ईश्वर' का क्या प्रयोजन है ?

१८. इस प्रश्न का कि संसार का नैतिक-क्रम कैसे सुरक्षित है ? जो उत्तर बुद्ध ने दिया है, वह सर्वथा भिन्न है।

१९. तथागत का उत्तर है: विश्व के नैतिक -क्रम के बनाये रखने वाला कोई 'ईश्वर' नहीं है, वह 'कर्म-नियम' ही है जो विश्व के नैतिकक्रम को बनाये हुए है।

२०. "विश्व का नैतिक-क्रम चाहे भला हो, चाहे बुरा हो; लेकिन भगवान बुद्ध के उपदेशानुसार जैसा भी वह है वह आदमी पर निर्भर करता है, और किसी पर नहीं।

२१. 'कर्म' का मतलब है मनुष्य द्वारा किया जाने वाला 'कर्म' और 'विपाक' का मतलब है उसका परिणाम। यदि नैतिक-क्रम बुरा है तो इसका मतलब है कि आदमी बुरा (अकुशल) कर्म करता है; यदि नैतिक-क्रम अच्छा है तो इसका मतलब है कि आदमी भला (कुशल) कर्म करता है।

२२. बुद्ध ने केवल कम्म (कर्म) की ही बात नहीं कही। उन्होंने कम्म (कर्म) नियम की भी बात कही है—अर्थात् कर्म के कानून की।

२३. कर्म के नियम से बुद्ध का अभिप्राय था कि यह अनिवार्य है कि कर्म का परिणाम उसी प्रकार उसका पीछा करे जैसे रात दिन का करती है। यह एक कानून है।

२४. कुशल कर्म से होने वाला लाभ भी हर कोई उठा सकता है और अकुशल-कर्म से होने वाली हानि से भी कोई नहीं बच सकता।

२५. इसलिये भगवान् बुद्ध की देशना थी: कुशल-कर्म करो ताकि उससे नैतिक-क्रम को सहारा मिले और उससे मानवता लाभान्वित हो; अकुशल-कर्म मत करो ताकि उससे नैतिक-क्रम को हानि पहुंचे और उससे मानवता दुःखी हो।

२६. यह हो सकता है कि एक कर्म और उसके विपाक में समय का थोड़ा बहुत या काफी अन्तर भी हो जाय। ऐसा बहुधा होता है।

२७. इस दृष्टि से कर्म के कई विभाग हैं जैसे—दिट्ठधम्मवेदनीय कर्म (इसी जन्म में फल देने वाला कर्म), उपपज्जवेदनीय कर्म (उत्पन्न होने पर फल देने वाला कर्म), अपरापरियवेदनीय कर्म (अनिश्चित समय पर फल देने वाला कर्म)।

२८. कर्म कभी-कभी 'अहोसि कर्म' भी हो सकता है, अर्थात् कर्म जिसका कुछ 'विपाक' न हो। इस अहोसि-कर्म के अन्तर्गत वे सब कर्म आते हैं जो या तो इतने

दुर्बल होते हैं कि उनका कोई 'विपाक' नहीं हो सकता अथवा जो किसी अन्य सबल-कर्म द्वारा बाधित हो जाते हैं ।

२९. इन सब बातों के लिये थोड़ी गुंजाइश भी मान ली जाय तो भी भगवान् बुद्ध की यह देशना अपने स्थान पर ठीक ही है कि कर्म का नियम लागू होकर ही रहता है ।

३०. कर्म के सिद्धान्त का अनिवार्य तौर पर यह मतलब नहीं कि करने वाले को ही कर्म का फल भुगतना पड़ता है; और इससे अधिक कुछ नहीं । ऐसा समझना गलती है । कभी कभी करने वाले की अपेक्षा दूसरे पर ही कर्म का प्रभाव पड़ता है । लेकिन यह सब कर्म का नियम ही है, क्योंकि यह या तो नैतिक-क्रम को संभालता है अथवा उसे गड़बड़ाता है ।

३१. व्यक्ति आते रहते हैं, व्यक्ति जाते रहते हैं । लेकिन विश्व का नैतिक-क्रम बना रहता है और उसके साथ वह कर्म-नियम भी जो इसे बनाये रखता है ।

३२. यही कारण है कि बुद्ध के धर्म में, नैतिकता को वह स्थान प्राप्त है जो अन्य धर्मों में 'ईश्वर' को है ।

३३. इसलिये इस प्रश्न का कि 'विश्व का नैतिक-क्रम कैसे बना रहता है ?' बुद्ध ने जो उत्तर दिया है वह इतना सरल है और इतना पक्का है ।

३४. इतना होने पर भी इसका सच्चा अर्थ बहुधा स्पष्ट नहीं होता । प्रायः ही नहीं बल्कि लगभग हमेशा, या तो यह अच्छी तरह से समझा नहीं जाता, या गलत तौर पर बयान किया जाता है अथवा इस की गलत व्याख्या की जाती है । बहुत लोग इस बात को समझते प्रतीत नहीं होते कि 'कर्म के नियम' का सिद्धान्त इस प्रश्न का उत्तर है कि 'विश्व का नैतिक-क्रम कैसे बना रहता है ?'

३५. लेकिन बुद्ध के 'कर्म के नियम' के सिद्धान्त का यही प्रयोजन है ।

३६. 'कर्म के नियम' का सम्बन्ध केवल विश्व के नैतिक-क्रम के प्रश्न से है । इसे व्यक्ति-विशेष के धनी-निर्धन होने या भाग्यवान-अभाग्यवान होने से कुछ लेना देना नहीं ।

३७. इसे केवल विश्व के नैतिक-क्रम के बने रहने से सरोकार है ।

३८. इसी कारण से 'कर्म का नियम' धर्म का एक (महत्वपूर्ण) अंग है ।

१. अंगुत्तर निकाय।

२. अंगुत्तर निकाय ।

३. अंगुत्तर निकाय ।

४. अंगुत्तर निकाय ।

५. संयुत्तनिकार ४३ : ३ : ६ । महावग्ग १ : ३ ।

६. अंगुत्तर निकाय---३ : ५२ ।

७. संयुत्तनिकाय ४३ : ३ : ६ । महावग्ग १ : ३ ।

८. धम्मदायाद सुत्तन्त (१।१।३) ।

९. धम्मपद, सुखवग्गो---गाथा २०४ ।

१०. मज्झिम निकाय रिट्ठपाल---८२ ।

११. महानिब्बान सुत्त (दीर्घ निकाय का १५वाँ सुत्तन्त) ।

चौथा भाग

अ-धर्म क्या है?

१. परा-प्राकृतिक में विश्वास अ-धर्म है

१. जब भी कोई घटना घटती है, आदमी हमेशा यह जानना चाहता है कि यह घटना कैसे घटी ? इसका क्या कारण है ?

२. कभी-कभी कारण और उससे फलित होने वाला कार्य एक दूसरे के इतने समीप होते हैं कि कार्य के कारण का पता लगाना कठिन नहीं होता।

३. लेकिन कभी-कभी कारण से कार्य इतना दूर होता है कि कार्य के कारण का पता लगाना कठिन हो जाता है। सरसरी दृष्टि से देखने से उस कार्य का कोई कारण प्रतीत ही नहीं होता।

४. तब प्रश्न पैदा होता है कि अमुक घटना कैसे घटी ?

५. बड़ा सरल सीधा-साधा उत्तर है कि घटना किसी परा-प्राकृतिक कारण से घटी जिसे बहुधा 'करिश्मा' या 'प्रातिहार्य' भी कहा जाता है।

६. बुद्ध के कुछ पूर्वजों ने इस प्रश्न के विविध उत्तर दिये हैं।

७. पकुद कच्चान यह मानता ही नहीं था कि हर कार्य का कारण होता है। उसका मत था कि घटनाएँ बिना किसी कारण के ही घटती हैं।

८. मक्खली गोशाल मानता था कि हर घटना का कारण होना चाहिये। लेकिन वह प्रचार करता था कि कारण आदमी की शक्ति से बाहर किसी 'प्रकृति', किसी 'अनिवार्य' आवश्यकता', किसी 'अनुत्पन्न नियम' अथवा किसी 'भाग्य' में ही खोजना चाहिये।

९. भगवान् बुद्ध ने इस प्रकार के सिद्धान्तों का खण्डन किया। उनका कहना था कि इतना ही नहीं कि हर घटना का कोई न कोई कारण होता है; बल्कि वह कारण या तो कोई न कोई मानवी कारण होता है या प्राकृतिक होता है।

१०. काल (समय), प्रकृति, आवश्यकता (?) आदि को किसी घटना का कारण मानने के खिलाफ उन का यही विरोध था।

११. यदि काल (समय), प्रकृति, आवश्यकता (?) आदि ही किसी घटना के एकमात्र कारण हैं, तो हमारी अपनी स्थिति क्या रह जाती है ?

१२. तो क्या आदमी काल (समय), प्रकृति, अकस्मात-पन, ईश्वर, भाग्य, आवश्यकता (?) आदि के हाथ की मात्र कठ-पुतली है ?

१३. यदि आदमी स्वतन्त्र नहीं है तो उसके अस्तित्व का ही क्या प्रयोजन है ? यदि आदमी परा-प्राकृतिक में विश्वास रखता है तो उसकी बुद्धि का ही क्या प्रयोजन है ?

१४. यदि आदमी स्वतन्त्र है, तो हर घटना का या तो कोई मानवी कारण होना चाहिये, या प्राकृतिक कारण। कोई घटना ऐसी हो ही नहीं सकती जिसका परा-प्राकृतिक कारण हो।

१५. यह सम्भव है कि आदमी किसी घटना के वास्तविक कारण का पता न लगा सके। लेकिन यदि वह बुद्धिमान है तो किसी न किसी दिन पता लगा ही लेगा।

१६. परा-प्राकृतिक-वाद का खण्डन करने में भगवान् बुद्ध के तीन हेतु थे—

१७. उनका पहला हेतु था कि आदमी बुद्धिवादी बने।

१८. उनका दूसरा हेतु था कि आदमी स्वतन्त्रतापूर्वक सत्य की खोज कर सके।

१९. उनका तीसरा उद्देश्य था कि मिथ्या-विश्वास के प्रधान-कारण की जड़ काट दी जाय, क्योंकि इसी के परिणाम-स्वरूप आदमी की खोज करने की प्रवृत्ति की हत्या हो जाती है।

२०. यही बुद्ध धर्म का 'हेतु-वाद' है।

२१. यह 'हेतु-वाद' बुद्ध धर्म का मुख्य-सिद्धान्त है। यह बुद्धिवाद की शिक्षा देता है और बुद्ध-धर्म यदि बुद्धिवादी भी नहीं है तो फिर कुछ नहीं है।

२२. यही कारण है कि परा-प्राकृति की पूजा अ-धर्म है।

२. ईश्वर में विश्वास अ-धर्म है

१. इस संसार को किसने पैदा किया, यह एक सामान्य प्रश्न है। इस दुनिया को ईश्वर ने बनाया, यह इस प्रश्न का वैसा ही सामान्य उत्तर है।

२. ब्राह्मण-योजना में इस सृष्टि-रचयिता के कई नाम हैं—प्रजापति, ईश्वर, ब्रह्मा या महाब्रह्मा।

३. यदि यह पूछा जाय कि यह ईश्वर कौन है, और यह कैसे अस्तित्व में आया तो इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं।

४. जो लोग 'ईश्वर' में विश्वास रखते हैं, वे उसे सर्व-शक्तिमान, सर्व-व्यापक तथा सर्वअन्तर्यामी (=सर्वज्ञ) कहते हैं।

५. ईश्वर में कुछ नैतिक गुण भी बताये जाते हैं। ईश्वर को शिव (=भला) कहा जाता है, ईश्वर को न्यायी कहा जाता है और ईश्वर को दयालु कहा जाता है।

६. प्रश्न पैदा होता है कि क्या तथागत ने ईश्वर को सृष्टि-कर्ता स्वीकार किया है ?

७. उत्तर है "नहीं।" उन्हों ने स्वीकार नहीं किया।

८. इस के अनेक कारण हैं कि तथागत ने ईश्वर के अस्तित्व के सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया।

९. किसी ने कभी 'ईश्वर' को नहीं देखा। लोग खाली उसकी चर्चा करते हैं।

१०. ईश्वर 'अज्ञात' है, 'अदृश्य' है।

११. कोई यह सिद्ध नहीं कर सकता कि इस संसार को ईश्वर ने बनाया है; संसार का विकास हुआ है, निर्माण नहीं हुआ।

१२. इसलिये 'ईश्वर' में विश्वास करने से कौनसा लाभ हो सकता है ? इससे कोई लाभ नहीं।

१३. बुद्ध ने कहा ईश्वराश्रित धर्म कल्पनाश्रित है।

१४. इसलिये ईश्वराश्रित धर्म रखने का कोई उपयोग नहीं।

१५. इस से केवल मिथ्याविश्वास उत्पन्न होता है।

१६. बुद्ध ने इस प्रश्न को यहीं और यूं ही नहीं छोड़ दिया। उन्होंने इस प्रश्न के नाना पहलुओं पर विचार किया है।

१७. जिन कारणों से भगवान् बुद्ध ने ईश्वर के अस्तित्व के सिद्धान्त को अस्वीकार किया, वे अनेक हैं।

१८. उनका तर्क था कि ईश्वर के अस्तित्व का सिद्धान्त सत्याश्रित नहीं है।

१९. भगवान् बुद्ध ने वासेट्ठ और भारद्वाज के साथ हुई अपनी बातचीत में इसे स्पष्ट कर दिया था।[१]

२०. वासेट्ठ और भारद्वाज में एक विवाद उठ खड़ा हुआ था कि सच्चा मार्ग कौनसा है और झूठा कौनसा ?

२१. इस समय महान् भिक्षु संघ को साथ लिये भगवान् बुद्ध कोशल जनपद में विहार कर रहे थे। वह मनसाकत नामके ब्राह्मण-गाँव में अचिरवती नदी के तट पर एक बगीचे में ठहरे।

२२. वासेट्ठ और भारद्वाज दोनों मनसाकत नाम की बस्ती में ही रहते थे। जब उन्होंने यह सुना कि तथागत उनकी बस्ती में आये हैं तो वे उनके पास गये और दोनों ने भगवान् बुद्ध से अपना-अपना दृष्टि-कोण निवेदन किया।

२३. भारद्वाज बोला—"तरुक्ख का दिखाया हुआ मार्ग सीधा मार्ग है, यह मुक्ति का सीधा पथ है अगर जो इस का अनुसरण करता है उसे वह ले जाकर सीधा ब्रह्म से मिला देता है।"

२४. वासेट्ठ बोला—"हे गौतम ! बहुत से ब्राह्मण बहुत से मार्ग सुझाते

हैं—अध्वर्य्य ब्राह्मण, तैत्तिरिय ब्राह्मण, कंछोक ब्राह्मण तथा भीहुवर्गीय ब्राह्मण। वे सभी, जो कोई उनके बताये पथ का अनुसरण करता है, उसे 'ब्रह्म' से मिला देते हैं।

२५. "जिस प्रकार किसी गांव या नगर के पास अनेक रास्ते होते हैं, किन्तु वे सभी आकर उसी गांव में पहुंचा देते हैं—उसी तरह से ब्राह्मणों द्वारा दिखाये गये सभी पथ 'ब्रह्म' से जा मिलाते हैं।

२६. तथागत ने प्रश्न किया—"तो वासेट्ठ ! तुम्हारा क्या यह कहना है कि वे सभी मार्ग सही हैं ?" वासेट्ठ बोला—"श्रमण गौतम ! हां मेरा यही कहना है।"

२७. "लेकिन वासेट्ठ ! क्या तीनों वेदों के जानकार इन ब्राह्मणों में कोई एक भी ऐसा है जिसने 'ब्रह्म' का आमने-मामने दर्शन किया हो ?'

२८. "गौतम ! नहीं !"

२९. "क्या तीनों वेदों के जानकार ब्राह्मणों के गुरुओं में कोई एक भी ऐसा है, जिसने 'ब्रह्म' का आमने-सामने दर्शन किया हो ?"

३०. "गौतम ! निश्चय से नहीं !"

३१. "तो किसी ने 'ब्रह्म' को नहीं देखा ? किसी को 'ब्रह्म' का साक्षात्कार नहीं हुआ ?" वासेट्ठ बोला—"हाँ ऐसा ही है।" "तब तुम यह कैसे मानते हो कि ब्राह्मणों का कथन सत्याश्रित है ?"

३२. "वासेट्ठ ! जैसे कोई अंधों की कतार हो। न आगे आगे चलने वाला अंधा देख सकता हो, न बीच में चलने वाला अन्धा देख सकता हो और न पीछे चलने वाला अन्धा देख सकता हो--इसी तरह वासेट्ठ ! मुझे लगता है कि ब्राह्मणों का कथन केवल अंधा कथन है। न आगे आगे चलने वाला देखता है, न बीच में चलने वाला देखता है और न पीछे चलने वाला देखता है। इन ब्राह्मणों की बात-चीत केवल उपहासास्पद है; शब्द-मात्र जिस में कुछ भी सार नहीं।

३३. "वासेट्ठ ! क्या यह ठीक ऐसा ही नहीं है जैसे किसी आदमी का किसी स्त्री से प्रेम हो गया हो, जिसे उसने कभी देखा न हो ?" वासेट्ठ बोला—"हाँ, यह तो ऐसा ही है।"

३४. "वासेट्ठ ! अब तुम बताओ कि यह कैसा होगा जब लोग उस आदमी से पूछेंगे कि मित्र ! तुम जिस सारे प्रदेश की सुन्दरतम स्त्री से इतना प्रेम करने की बात कहते हो, वह कौन है ? वह क्षत्रिय जाति से है ? ब्राह्मण-जाति से है ? वैश्य जाति से है अथवा शूद्र जाति से है ?

३५. महाब्रह्मा, सृष्टि के तथाकथित रचयिता की चर्चा करते हुए, तथागत ने भारद्वाज और वासेट्ठ को कहा—मित्रो ! "जिस प्राणीने पहले जन्म लिया था, वह अपने बारे में सोचने लगा मैं ब्रह्मा हूँ, महाब्रह्मा हूँ, विजेता हूँ, अविजित हूँ,

सर्व-द्रष्टा हूँ, सर्वाधिकारी हूँ, मालिक हूँ, निर्माता हूँ, रचयिता हूँ, मुख्य हूँ, व्यवस्थापक हूँ, आप ही अपना स्वामी हूँ और जो हैं तथा जो भविष्य में पैदा होने वाले हैं, उन सबका पिता हूँ। मुझ ही से ये सब प्राणी उत्पन होते हैं।

३६. "तो इसका यह मतलब हुआ न कि जो अब हैं और जो भविष्य में उत्पन्न होने वाले हैं, ब्रह्मा सब का पिता है ?

३७. "तुम्हारा कहना है कि यह जो पूज्य, विजेता, अविजित, जो हैं तथा जो होंगे उन सब का पिता, जिससे हम सब की उत्पत्ति हुई है—ऐसा जो यह ब्रह्म है, यह स्थायी है, सतत रहने वाला है, नित्य है, अपरिवर्तन-शील है और वह अनन्त काल तक ऐसा ही रहेगा। तो हम जिन्हें ब्रह्मा ने उत्पन्न किया है, जो ब्रह्म के यहां से यहां आये हैं, सभी अनित्य क्यों हैं, परिवर्तन-शील क्यों हैं, अस्थिर क्यों हैं, अल्पजीवी क्यों हैं ? मरणधर्मी क्यों हैं ?"

३८. इसका वासेट्ठ के पास कोई उत्तर न था।

३९. तथागत का तीसरा तर्क ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता से सम्बन्धित था। "यदि ईश्वर सर्वशक्तिमान है और सृष्टि का पर्याप्त कारण है, तो फिर आदमी के दिल में कुछ करने की इच्छा ही उत्पन्न नहीं हो सकती, उसे कुछ करने की आवश्यकता भी नहीं रह सकती, न उसके मन में कुछ करने का किसी भी तरह का कोई भी प्रयत्न करने का कोई संकल्प ही पैदा हो सकता है। यदि यह ऐसा ही है तो ब्रह्मा ने आदमी को पैदा ही क्यों किया ?"

४०. इसका भी वासेट्ठ के पास कोई उत्तर न था।

४१. तथागत का चौथा तर्क था यदि ईश्वर 'शिव' है, कल्याण-स्वरूप है तो आदमी हत्यारे, चोर, व्यभिचारी, झूठे, चुगलखोर, बकवादी, लोभी, द्वेषी और कुमार्गी क्यों हो जाते हैं ? क्या किसी अच्छे, भले, शिव स्वरूप ईश्वर के रहते यह सम्भव है ?

४२. तथागत का पांचवां तर्क ईश्वर के सर्वज्ञ, न्यायी और दयालु होने से सम्बधित था।

४३. यदि कोई ऐसा महान् सृष्टि-कर्त्ता है जो न्यायी भी है और दयालु भी है, तो संसार में इतना अन्याय क्यों हो रहा है ?" भगवान् बुद्ध का प्रश्न था। उन्होंने कहा:–"जिसके पास भी आंख है वह इस दर्दनाक हालत को देख सकता है ? ब्रह्मा अपनी रचना को सुधारता क्यों नहीं है ? यदि उसकी शक्ति इतनी असीम है कि उसे कोई रोकने वाला नहीं तो उसके हाथ ही क्यों ऐसे हैं कि शायद ही कभी किसी का कल्याण करते हों ? उसकी सारी की सारी सृष्टि दुःख क्यों भोग रही है ? वह सभी को सुखी क्यों नहीं रखता है ? चारों ओर ठगी, झूठ और अज्ञान क्यों फैला हुआ है ? सत्य पर झूठ क्यों बाजी मार ले जाता है ? सत्य और न्याय क्यों पराजित हो जाते हैं ? मैं तुम्हारे ब्रह्म को परं-अन्यायी

मानता हूं जिसने केवल अन्याय को आश्रय देने के लिये ही इस जगत की रचना की।"

४४. "यदि सभी प्राणियों में कोई ऐसा सर्वशक्तिमान ईश्वर व्याप्त है जो उन्हें सुखी अथवा दुखी बनाता है, और जो उन से पाप-पुण्य कराता है तो ऐसा ईश्वर भी पाप से सनता है। या तो आदमी ईश्वर की आज्ञा में नहीं है या ईश्वर न्यायी और नेक नहीं है अथवा ईश्वर अन्धा है।

४५. ईश्वर के अस्तित्व के सिद्धान्त के विरुद्ध उनका अगला तर्क यह था कि ईश्वर की चर्चा से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

४६. भगवान् बुद्ध के अनुसार धर्म की धुरि ईश्वर और आदमी का सम्बन्ध नहीं है, बल्कि आदमी आदमी का सम्बन्ध है। धर्म का प्रयोजन यही है कि वह आदमी को शिक्षा दे कि वह दूसरे आदमियों के साथ कैसे व्यवहार करे ताकि सभी आदमी प्रसन्न रह सकें।

४७. एक और भी कारण था जिसकी वजह से तथागत ईश्वर के अस्तित्व के सिद्धान्त के इतने खिलाफ थे।

४८. वह धार्मिक रस्मों और व्यर्थ के धार्मिक क्रिया-कलाप के विरोधी थे। उनके विरोध का कारण यही था कि ये सब मिथ्या-विश्वास के घर हैं और मिथ्या-विश्वास सम्यक्-दृष्टि का शत्रु है। उस सम्यक्दृष्टि का जो तथागत के आर्य अष्टांगिक-मार्ग का सब से महत्वपूर्ण पक्ष है।

४९. तथागत की दृष्टि में ईश्वर-विश्वास बड़ी ही खतरनाक बात थी। क्योंकि ईश्वर-विश्वास ही प्रार्थना और पूजा की सामर्थ्य में विश्वास का उत्पाक है, और प्रार्थना कराने की जरूरत ने ही पादरी-पुरोहित को जन्म दिया और पुरोहित ही वह शरारती दिमाग था जिसने इतने अन्ध-विश्वास को जन्म दिया और सम्यक्-दृष्टि के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया।

५०. ईश्वर के अस्तित्व के विरुद्ध दिये गये इन तर्कों में से कुछ व्यावहारिक थे, कुछ मात्र सैद्धान्तिक। तथागत जानते थे कि ये ईश्वर के अस्तित्व के विश्वास के लिये एकदम मारक-तर्क नहीं हैं।

५१. लेकिन इसका यह मतलब नही कि तथागत ने कोई मारक-तर्क दिया ही नहीं। एक तर्क उन्होंने दिया जो निश्चयात्मक रूप से ईश्वर-विश्वास के लिये प्राण-घातक है। यह उन के प्रतीत्य-समुत्पाद के सिद्धान्त के अन्तर्गत आता है।

५२. इस सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर का अस्तित्व है या नहीं है, यह मुख्य प्रश्न ही नहीं है। न यही प्रश्न मुख्य है कि ईश्वर ने सृष्टि की रचना की वा नहीं की? असल प्रश्न यह है कि रचयिता ने सृष्टि किस प्रकार रची? यदि हम इस प्रश्न का ठीक ठीक उत्तर दे सकें कि संसार की रचना कैसे हुई तो उसमें से ईश्वर के अस्तित्व के सिद्धान्त का कुछ औचित्य सिद्ध हो सकता है।

५३. महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या ईश्वर ने सृष्टि भाव (=किसी पदार्थ) में से उत्पन्न की अथवा अभाव (=शून्य) में से ?

५४. यह तो विश्वास करना असम्भव है कि 'कुछ नहीं' में से 'कुछ' की रचना हो गई।

५५. यदि ईश्वर ने सृष्टि की रचना 'कुछ' में से की है तो वह 'कुछ'—जिस-में से नया 'कुछ' उत्पन्न किया गया है—ईश्वर के किसी भी अन्य चीज के उत्पन्न करने के पहले से चला आया है। इसलिये ईश्वर उस 'कुछ' का रचयिता नहीं स्वीकार किया जा सकता जो 'कुछ' उसके भी अस्तित्व के पहले से चला आ रहा है।

५६. यदि ईश्वर के किसी भी चीज की रचना करने से पहले ही किसी ने 'कुछ' में से उस चीज की रचना कर दी है जिससे ईश्वर ने सृष्टि की रचना की है तो ईश्वर सृष्टि का आदि-कारण नहीं कहला सकता।

५७. भगवान् बुद्ध का यह आखिरी तर्क ऐसा था कि जो ईश्वर-विश्वास के लिये सर्वथा मारक था, जिसका कुछ जवाब नहीं था।

५८. मूल-स्थापना ही असत्य होने से ईश्वर को सृष्टि का रचयिता मानना अ-धर्म है। यह केवल 'झूठ' में विश्वास करना है।

३. ब्रह्म-सायुज्य पर आधारित धर्म मिथ्या-धर्म है

१. जब बुद्ध अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे, उस समय एक मत प्रचलित था, जिसे अब हम 'वेदान्त' कहते हैं।

२. इस धर्म के सिद्धान्त थोड़े से हैं और सरल हैं।

३. इस विश्व की पृष्ठ-भूमि में एक सर्व-व्यापक जीवन-तत्त्व विद्यमान है, जिसे हम 'ब्रह्म' या 'ब्रह्मन्' कहते हैं।

४. यह 'ब्रह्म' एक वास्तविकता है।

५. 'आत्मा' और 'ब्रह्म' में कोई अन्तर नहीं, दोनों एक ही हैं।

६. 'जीवात्मा' और 'ब्रह्मात्मा' को—जो वास्तव में एक हैं—एक मान लेने से ही आदमी को 'मोक्ष' लाभ हो सकता है।

७. 'जीवात्मा' और 'ब्रह्मात्मा' की एकता तभी स्थापित हो सकती है, जब इसका ज्ञान हो जाय कि दोनों एक हैं।

८. और 'जीवात्मा' तथा 'ब्रह्मात्मा' की एकता का बोध प्राप्त करने के लिये संसार का त्याग आवश्यक है।

९. यही सिद्धान्त 'वेदान्त' कहलाते हैं।

१०. बुद्ध के मन में इस सिद्धान्त के लिये कोई आदर न था। उनको लगता था कि इसका आधार ही मिथ्या है, इसकी कुछ उपयोगिता नहीं है और इसी लिये यह अपनाने योग्य नहीं।

११. इसे भगवान् बुद्ध ने वासेट्ठ और भारद्वाज नामक दो ब्राह्मण तरुणों के साथ हुई बातचीत में स्पष्ट किया है।

१२. भगवान् बुद्ध का कहना था कि किसी बात को भी सत्य स्वीकार करने के लिये उसका कोई न कोई प्रमाण होना चाहिये।

१३. प्रमाण दो तरह के होते हैं, प्रत्यक्ष और अनुमान।

१४. भगवान् बुद्ध का सीधा प्रश्न था: "क्या किसी को भी 'ब्रह्म' का प्रत्यक्ष हुआ है? क्या तुमने 'ब्रह्म' को देखा है? क्या तुमने 'ब्रह्म' से बातचीत की है? क्या तुमने 'ब्रह्म' को सूंघा है?"

१५. वासेट्ठ का उत्तर था—"नहीं।"

१६. ब्रह्म के अस्तित्व का दूसरा अनुमान प्रमाण भी असन्तोषजनक है।

१७. भगवान् बुद्ध का प्रश्न था—"हम किस चीज़ के होने से 'ब्रह्म' के होने का अनुमान लगाते हैं?" इसका भी कोई उत्तर न था।

१८. कुछ लोगों का कहना है कि अदृश्य वस्तु का भी अस्तित्व हो सकता है। इसलिये वे कहते हैं कि अदृश्य होने पर भी 'ब्रह्म' का अस्तित्व है।

१९. यह कथन तो एक दम नंगा-कथन है और एक असम्भव स्थापना लिये हुए है।

२०. लेकिन तर्क के लिये यह मान लेते हैं कि अदृश्य होने पर भी किसी वस्तु का अस्तित्व हो सकता है।

२१. लोग कहते हैं कि इसका सब से अच्छा उदाहरण बिजली है। यह अदृश्य है, लेकिन तब भी इसका अस्तित्व है।

२२. यह तर्क पर्य्याप्त नहीं है।

२३. किसी अदृश्य वस्तु को किसी दूसरे दृश्य रूपमें अपने आपको प्रकट करना चाहिये। तभी हम उसकी वास्तविकता स्वीकार कर सकते हैं।

२४. लेकिन यदि कोई अदृश्य वस्तु किसी भी दूसरे दृश्य रूप में अपने को प्रकट नहीं करती तो हम उसकी वास्तविकता स्वीकार नहीं कर सकते।

२५. हम अदृश्य होने पर भी बिजली की वास्तविकता उससे उत्पन्न होने वाले परिणामों को देख कर स्वीकार करते हैं।

२६. बिजली से प्रकाश पैदा होता है। प्रकाश के होने से ही हम अदृश्य होने पर भी बिजली की वास्तविकता को स्वीकार करते हैं।

२७. वह कौनसी दृश्य चीज़ है, जिसे यह अदृश्य 'ब्रह्म' उत्पन्न करता है?

२८. उत्तर है—'कुछ नहीं।'

२९. एक दूसरा उदाहरण दिया जा सकता है। कानून में भी यह सामान्य बात है कि किसी एक बात को, किसी एक स्थापना को मान लिया जाता है, उसे सिद्ध नहीं किया जाता, वह केवल एक 'कानूनी कल्पना' होती है।

३०. इस तरह की 'कानूनी कल्पना" को हम सभी स्वीकार करते हैं।

३१. लेकिन इस तरह की 'क़ानूनी कल्पना' क्यों स्वीकार की जाती है ?

३२. इसका कारण यह है कि 'कानूनी कल्पना' इसलिये स्वीकार की जाती है कि उससे न्याय-संगत तथा उपयोगी परिणाम निकलता है।

३३. 'ब्रह्म' को भी एक 'कल्पना' मान लेते हैं। किन्तु इससे कौनसा उपयोगी परिणाम निकलता है ?

३४. वासेट्ठ और भारद्वाज के पास कोई उत्तर न था।

३५. उनके दिमाग़ में अच्छी तरह कील ठोकने के लिये उन्होंने वासेट्ठ को सम्बोधित करके उससे पूछा—क्या तुमने 'ब्रह्म' को देखा है ?

३६. "क्या तीनों वेदों के जानकार ब्राह्मणों में कोई एक भी ऐसा है जिसने 'ब्रह्म' को आमने-सामने देखा है ?"

३७. "गौतम ! निश्चय से नहीं।"

३८. "वासेट्ठ ! क्या इन तीनों वेदों के जानकार ब्राह्मणों के आचार्यों में कोई एक भी है, जिसने 'ब्रह्म' को आमने-सामने देखा हो ?"

३९. "गौतम ! निश्चय से नहीं !"

४०. "वासेट्ठ ! क्या इन ब्राह्मणों की पहले की सात पीढ़ियों में भी कोई एक भी ब्राह्मण है, जिसने 'ब्रह्म' को आमने-सामने देखा हो ?"

४१. "गौतम ! निश्चय से नहीं !"

४२. "अच्छा तो वासेट्ठ ! क्या ब्राह्मणों के पुराने ऋषियों ने कभी कहा है—"हम 'ब्रह्म' को जानते हैं, हम ने 'ब्रह्म' को देखा है। हम जानते हैं कि वह कहाँ है, किधर है ?"

४३. "गौतम ! नहीं ही।"

४४. तथागत ने उन दोनों ब्राह्मण-तरुणों से प्रश्न पूछना जारी रखा :—

४५. "तो वासेट्ठ ! अब तुम्हें कैसा लगता है ? यदि ऐसा ही है तो क्या तुम्हें यह नहीं लगता कि 'ब्रह्म-सायुज्य' की ब्राह्मणों की यह सारी बात-चीत ही मूर्खता पूर्ण बात-चीत है ?

४६. "वासेट्ठ ! जैसे कोई अंधों की कतार हो। न आगे आगे चलने वाला अंधा देख सकता हो, न बीच में चलने वाला अन्धा देख सकता हो और न पीछे चलने वाला अन्धा देख सकता हो—इसी तरह वासेट्ठ ! मुझे लगता है कि ब्राह्मणों का कथन केवल अन्धा-कथन है। न आगे आगे चलने वाला देखता है, न बीच में चलने वाला देखता है, और न पीछे च[illegible] देखता है। इन ब्राह्मणों की बात-चीत केवल उपहासास्पद है; शब्द-मात्र जिन में कुछ भी [illegible] नहीं।

४७. "वासेट्ठ ! क्या यह ठीक ऐसा ही नहीं है जैसे किसी आदमी का किसी

स्त्री से प्रेम हो गया हो, जिसे उसने कभी देखा न हो ?" वासेट्ठ बोला—"हां ! यह तो ऐसा ही है ?"

४८. "वासेट्ठ ! अब तुम बताओ कि यह कैसा होगा जब लोग उस आदमी से पूछेंगे कि मित्र ! तुम सारे प्रदेश की जिस सुन्दरतम स्त्री से इतना प्रेम करने की बात करते हो, वह कौन है ? वह क्षत्रिय जाति से है ? ब्राह्मण जाति से है ? वैश्य जाति से है ? अथवा शूद्र जाति से है ?

४९. "लेकिन जब उससे पूछा जायगा, उसका उत्तर होगा 'नहीं' ।

५०. "और जब लोग उस से पूछेंगे कि मित्र ! तुम सारे देश की जिस सुन्दरतम स्त्री से इतना प्रेम करने की बात करते हो, उस का नाम क्या है ? उसका गोत्र क्या है ? वह लम्बे क़द की है, छोटे क़द की है वा मंझले कद की है ? क्या वह काले रंग की है, भूरे रंग की है वा गेहुंए रंग की है ? वह किस गांव, नगर या शहर में रहती है ? लेकिन जब उस से ये सब प्रश्न पूछे जायेंगे उसका एकही उत्तर होगा— 'नहीं' ।

५१. "तो वासेट्ठ ! तुम्हें कैसा लगता है ? क्या तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि उस आदमी का कथन मूर्खता-पूर्ण कथन है ?

५२. दोनों ब्राह्मण तरुण बोले—"गौतम ! सचमुच, यह ऐसा ही है ।"[१]

५३. इसलिये 'ब्रह्म' यथार्थ नहीं है और यदि कोई धर्म 'ब्रह्माश्रित' है तो वह व्यर्थ है ।

आत्मा में विश्वास अ-धर्म है

१. भगवान् बुद्ध ने कहा कि जिस धर्म का सारा दारोमदार 'आत्मा' पर है वह कल्पनाश्रित धर्म है ।

२. आजतक किसी ने भी न तो 'आत्मा' को देखा है और न उससे बातचीत की है ।

३. आत्मा अज्ञात है, अदृश्य है ।

४. जो चीज़ वास्तव में है वह मन या चित्त है, 'आत्मा' नहीं । मन 'आत्मा' से भिन्न है ।

५. तथागत ने कहा—'आत्मा में विश्वास करना अनुपयोगी है ।'

६. इसलिये जो धर्म 'आत्मा' पर आश्रित है, वह अपनाने योग्य नहीं है ।

७. ऐसा धर्म केवल मिथ्या-विश्वास का जनक है ।

८. बुद्ध ने इस बात को यों ही नहीं छोड़ दिया है । तथागत ने इसको अच्छी तरह चर्चा की है ।

९. 'आत्मा' में विश्वास भी वैसी ही सामान्य बात है जैसी 'परमात्मा' में विश्वास है ।

१०. 'आत्मा' में विश्वास रखना भी 'ब्राह्मणी' धर्म का एक अंग था।

११. 'ब्राह्मणी' धर्म में 'रूह' को 'आत्मा' या 'आत्मन्' कहते हैं।

१२. ब्राह्मणी धर्म में 'आत्मा' उस तत्व-विशेष को कहा गया है जो शरीर से पृथक्, किन्तु शरीर के ही भीतर, जन्म के समय से लेकर लगातार बना रहता है।

१३. 'आत्मा' के विश्वास के साथ तत्सम्बन्धी दूसरे विश्वास भी जुड़े हुए हैं।

१४. शरीर के साथ 'आत्मा' का मरण नहीं होता। यह दूसरे जन्म के समय दूसरे शरीर के साथ जन्म ग्रहण करती है।

१५. शरीर 'आत्मा' का एक और अतिरिक्त-परिधान है।

१६. क्या भगवान बुद्ध 'आत्मा' में विश्वास रखते थे ? नहीं, एकदम नहीं। 'आत्मा' के सम्बन्ध में उनका मत 'अनात्म-वाद' कहलाता है।

१७. यदि एक अशरीरी 'आत्मा' को स्वीकार कर लिया जाय तो उसके सम्बन्ध में बहुत से प्रश्न पैदा होते हैं। 'आत्मा' क्या है ? 'आत्मा' का आगमन कहां से हुआ ? शरीर के मरने पर इसका क्या होता है ? यह कहां जाता है ? शरीर के न रहने पर यह 'परलोक' में कैसे रहता है ? वहां यह कब तक रहता है ? जो लोग 'आत्मा' के अस्तित्व के सिद्धान्त के समर्थक थे, भगवान् बुद्ध ने उनसे ऐसे प्रश्नों का उत्तर चाहा था।

१८. पहले तो उन्होंने अपने जिरह करने के सामान्य क्रम से यह दिखाना चाहा कि 'आत्मा' का विचार कितना गोल-मटोल है।

१९. जो 'आत्मा' के अस्तित्व में विश्वास रखते थे, उनसे भगवान् बुद्ध ने जानना चाहा कि 'आत्मा' का आकार कितना बड़ा या छोटा है ? 'आत्मा' की शक्ल कैसी है ?

२०. आनन्द स्थविर को उन्होंने कहा था— "आनन्द ! आत्मा के सम्बन्ध में लोगों के अनगिनत मत हैं। कोई कहते हैं—'मेरा 'आत्मा' रूपी है और बड़ा ही सूक्ष्म है।' कुछ दूसरों का कहना है कि आत्मा की शक्ल है, यह अनन्त है और यह सूक्ष्म है। कुछ दूसरे हैं जिनका कहना है कि यह निराकार है और अनन्त है।

२१. "आनन्द ! 'आत्मा' के बारे में नाना तरह के मत हैं।"

२२. "जो लोग 'आत्मा' के अस्तित्व में विश्वास करते हैं, उनकी आत्मा की कल्पना क्या है ?" यह भी भगवान् बुद्ध का एक प्रश्न था। कोई कहते हैं— "हमारी आत्मा (सुख-दुःख) अनुभव-क्रिया है।" दूसरे कहते हैं "नहीं आत्मा अनुभव-क्रिया नहीं, आत्मा अननुभव-क्रिया है।" या फिर कोई कोई कहते हैं, "मेरी आत्मा अनुभव-क्रिया नहीं है, न यह अननुभव-क्रिया है, बल्कि मेरी आत्मा अनुभव करता है, मेरी आत्मा का गुण है अनुभव करना।" आत्मा के बारे में इस तरह की नाना कल्पनाएँ हैं।

२३. जो लोग 'आत्मा' में विश्वास रखते थे, उनसे भगवान् बुद्ध ने यह भी पूछा है कि मरणान्तर 'आत्मा' की क्या हालत होती है ?

२४. तथागत ने यह भी प्रश्न पूछा है कि क्या मरने के बाद 'आत्मा' देखी जा सकती है ?

२५. उन्हें अनगिनत गोल-मटोल जवाब मिले ।

२६. क्या शरीर का नाश हो जाने पर 'आत्मा' अपने आकार-प्रकार को बनाये रखती है ? उन्होंने देखा कि इस एक प्रश्न के आठ काल्पनिक उत्तर थे ।

२७. क्या 'आत्मा' शरीर के साथ मर जाती है ? इस पर भी अनगिनत कल्पनाएँ दीं ।[३]

२८. तथागत ने यह भी पूछा है कि शरीर के मरने के बाद 'आत्मा' सुखी रहता है वा दुःखी रहता है ? क्या 'आत्मा' शरीर की मृत्यु के बाद सुखी रहता है ? इस विषय में भी श्रमणों और ब्राह्मणों के भिन्न-भिन्न मत थे । कुछ का कहना था कि यह एकदम दुःखी रहता है । कुछ का कहना था सुखी रहता है । कुछ का कहना था कि यह सुखी भी रहता है, दुःखी भी रहता है । कुछ का कहना था कि न यह सुखी रहता है और न दुःखी रहता है ।

२९. 'आत्मा' के सम्बन्ध में इन सब मतों के बारे में तथागत का वही एक उत्तर था, जो उन्होंने चुन्द को दिया ।

३०. चुन्द को उन्होंने कहा था : "हे चुन्द ! जो श्रमण या ब्राह्मण इन मतों में से कोई भी मत रखते हैं, मैं उनके पास जाता हूँ और उनसे पूछता हूँ, 'मित्र ! क्या आपका यह कहना ठीक है ?' और यदि वे उत्तर देते हैं, 'हाँ ! मेरा मत ही ठीक है, शेष सब बेहूदा हैं,' तो मैं उनके इस मत को नहीं मानता । ऐसा क्यों ? क्योंकि इस विषय में लोगों के नाना मत हैं । मैं उनमें से किसी भी एक मत को अपने मत से श्रेष्ठ मानने की तो बात ही नहीं, अपने मत के समान स्तर पर भी नहीं मानता ।"

३१. अब महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि 'आत्मा के अस्तित्व के सिद्धान्त के विरूद्ध भगवान् बुद्ध ने कौन कौन से तर्क दिये हैं ?

३२. भगवान् बुद्ध ने 'आत्मा' के विरुद्ध भी सामान्य रूप से वे ही तर्क दिये हैं जो उन्होंने 'परमात्मा' के विरुद्ध दिये हैं ।

३३. उनका एक तर्क तो यही था कि 'आत्मा' की चर्चा उतनी ही बेकार वा अनुपयोगी है, जितनी 'परमात्मा' की चर्चा ।

३४. उनका तर्क था कि 'आत्मा' के अस्तित्व में विश्वास सम्यक्-दृष्टि के विकास में उतना ही बाधक है, जितना 'परमात्मा' का विश्वास ।

३५. उनका तर्क था कि 'आत्मा' में विश्वास भी उतना ही मिथ्या-विश्वास का घर है जितना 'परमात्मा' में विश्वास । उनकी सम्मति में 'आत्मा' में विश्वास करना 'परमात्मा' में विश्वास करने की अपेक्षा भी अधिक खतरनाक था । क्योंकि

इससे इतना ही नहीं होता कि पुरोहितों का वर्ग पैदा हो जाता है, इससे इतना ही नहीं होता कि मिथ्या-विश्वासों के जन्म का रास्ता खुल जाता है बल्कि 'आत्मा' के विश्वास के फलस्वरूप आदमी के जन्म से मरण-पर्यन्त उसके समस्त जीवन पर पुरोहित-शाही का अधिकार हो जाता है।

३६. इन्हीं सामान्य तर्कों के कारण कहा जाता है कि भगवान् बुद्ध ने 'आत्मा' के बारे में अपना कोई निश्चित मत अभिव्यक्त नहीं किया। कुछ दूसरे लोगों का कहना है कि उन्होंने 'आत्मा' के सिद्धान्त का खण्डन नहीं किया। कुछ औरों ने कहा है कि भगवान् बुद्ध हमेशा इस प्रश्न को बचा जाते थे।

३७. ये सभी मत एकदम गलत हैं। क्योंकि महाली को भगवान् बुद्ध ने स्पष्ट रूप से निश्चित शब्दों में यह कहा था कि 'आत्मा' नाम का कोई पदार्थ नहीं है।[४] इसीलिये 'आत्मा' के सम्बन्ध में तथागत का मत 'अनात्मवाद' कहलाता है।

३८. 'आत्मा' के विरुद्ध सामान्य तर्क के अतिरिक्त भगवान् बुद्ध ने विशेष तर्क भी दिया है जो कि उनके अनुसार 'आत्मा' के सिद्धान्त के लिए एकदम मारक तर्क ही था।

३९. 'आत्मा' के अस्तित्व की स्थापना के मुकाबले में भगवान् बुद्ध का अपना सिद्धान्त था नाम-रूप का सिद्धान्त।

४०. यह नाम-रूप का सिद्धान्त 'विभज्ज-वाद' द्वारा परीक्षण का परिणाम है, मानव-व्यक्तित्व अथवा मानव के बड़े ही सूक्ष्म कठोर विश्लेषण का परिणाम है।

४१. 'नाम-रूप' एक प्राणी का सामूहिक नाम है।

४२. भगवान् बुद्ध के अनुसार हर प्राणी कुछ भौतिक तत्वों तथा कुछ मानसिक तत्त्वों के सम्मिश्रण का परिणाम है। वे भौतिक तथा मानसिक तत्त्व 'स्कन्ध' कहलाते हैं।

४३. रूप-स्कन्ध प्रधान रूप से पृथ्वी, जल, वायु तथा अग्नि—इन चार भौतिक तत्त्वों का परिणाम है। वे 'रूप' अथवा शरीर हैं।

४४. रूप-स्कन्ध के अतिरिक्त (चित्त-चैतसिकों का समूह) नाम-स्कन्ध है, जिससे एक प्राणी की रचना होती है।

४५. इस नाम-स्कन्ध को हम विज्ञान (=चेतना) भी कह सकते हैं। यू इस नाम-स्कन्ध के अन्तर्गत, वेदना (छः इन्द्रियों तथा उनके विषयों के सम्पर्क से उत्पन्न होने वाली अनुभूति), सञ्ञा (संज्ञा) तथा संखार (संस्कार) हैं। विज्ञान भी इन तीनों के साथ शामिल किया जाता है। (इस प्रकार पूर्व के तीन चैतसिक और विज्ञान (=चित्त) को मिलाकर नाम-स्कन्ध होता है—अनु०)। एक आधुनिक मानस-शास्त्र-वेत्ता कदाचित् इसे इस रूप में कहना पसन्द करेगा कि चित्त ही वह मूल स्रोत है, जिससे सभी चैतसिक उत्पन्न होते है (अथवा चैतसिकों के समूह-

विशेष का नाम ही चित्त हो जाता है—अनु०)। विज्ञान (=चित्त) किसी भी प्राणी का केन्द्र-बिन्दु है।

४६. पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु—इन चार तत्वों के सम्मिश्रण से 'विज्ञान' उत्पन्न होता है।

४७. बुद्ध द्वारा प्रतिपादित 'विज्ञान' की उत्पत्ति के इस सिद्धान्त पर एक आपत्ति उठाई जाती है।

४८. जो इस सिद्धान्त के विरोधी हैं, वे पूछते हैं "विज्ञान (=चित्त) की उत्पत्ति कैसे होती है?"

४९. यह सत्य है कि आदमी के जन्म के साथ विज्ञान (=चित्त) की उत्पत्ति होती है और आदमी के मरण साथ विज्ञान (=चित्त) का विनाश होता है। लेकिन साथ ही क्या यह कहा जा सकता है कि विज्ञान (=चित्त) चार तत्वों के सम्मिश्रण का परिणाम है?

५०. भगवान् बुद्ध ने इसे इस रूप में नहीं कहा कि भौतिक तत्वों की सह-स्थिति अथवा उनके सम्मिश्रण से विज्ञान (=चित्त) की उत्पत्ति होती है। तथा-गत ने इसे इस रूप में कहा है कि जहाँ भी शरीर या रूप-काय है, वहाँ साथ-साथ नामकाय भी रहता है।

५१. आधुनिक विज्ञान से एक उपमा लें। जहाँ जहाँ विद्युत-क्षेत्र (electric field) होता है, वहाँ वहाँ उसके साथ आकर्षण-क्षेत्र (magnetic field) रहता है। कोई नहीं जानता कि यह आकर्षण-क्षेत्र किस प्रकार उत्पन्न होता है, या किस प्रकार अस्तित्व में आता है? लेकिन जहाँ जहाँ विद्युत्-क्षेत्र होता है, वहाँ वहाँ यह उसके साथ अनिवार्य-रूप से रहता है।

५२. शरीर और विज्ञान (=चित्त) में भी हम कुछ कुछ इसी प्रकार का सम्बन्ध क्यों न मान लें?

५३. विद्युत-क्षेत्र की अपेक्षा से उसका आकर्षण-क्षेत्र विद्युत-क्षेत्र द्वारा प्रेरित क्षेत्र (induced field) कहलाता है। तो फिर हम विज्ञान (=चित्त) को भी रूप-काय (=शरीर) की दृष्टि से उसके द्वारा प्रेरित-क्षेत्र क्यों न कहें?

५४. 'आत्मा' के विरुद्ध तथागत का तर्क यहीं समाप्त नहीं होता। अभी विशेष महत्वपूर्ण वक्तव्य शेष है।

५५. जब विज्ञान (=चित्त=चेतना) का उदय होता है तभी आदमी जीवित-प्राणी बनता है। इसलिये विज्ञान (=चित्त=चेतनता) आदमी के जीवन में प्रधान वस्तु है।

५६. विज्ञान की प्रकृति है ज्ञान-मूलक, भावना—मूलक, और क्रिया-शील।

५७. विज्ञान को हम ज्ञान-मूलक उस समय कहते हैं जब यह हमें कुछ जानकारी देता है, कुछ ज्ञान प्रदान करता है—वह ज्ञान रुचिकर भी हो सकता है और अरुचि-

कर भी हो सकता है, वह अपने भीतर घटनेवाली घटनाओं का भी हो सकता है, बाह्य-घटनाओं का भी हो सकता है ।

५८. 'विज्ञान' को हम भावना-मूलक उस समय कहते हैं जब यह चित्त की उन अवस्थाओं में उपस्थित रहता है जो अनुकूल-अनुभूतियाँ भी हो सकती हैं और प्रतिकूल-अनुभूतियाँ भी; जब भावना-मूलक ज्ञान वेदना (=अनुभूति) की उत्पत्ति का कारण बनता है ।

५९. विज्ञान अपनी क्रिया-शील अवस्था में आदमी को उद्देश्य-विशेष की सिद्धि के लिए कुछ करने की प्रेरणा देता है । क्रिया-शील विज्ञान ही संकल्पों का या इरादों का जनक है ।

६०. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि एक प्राणी की जितनी भी क्रियायें हैं वे या तो विज्ञान के द्वारा अथवा विज्ञान के परिणाम-स्वरूप पूरी होती हैं ।

६१. इस विश्लेषण के बाद भगवान् बुद्ध प्रश्न करते हैं कि वह कौन सा कार्य है जो 'आत्मा' के करने के लिये बचा रहता है ? 'आत्मा' के जो कार्य माने जाते हैं, वे सब तो विज्ञान (=चित्त) द्वारा हो जाते हैं ।

६२. जिसका कुछ 'कार्य' ही नहीं, ऐसा 'आत्मा' एक बेहूदगी है ।

६३. इस प्रकार भगवान् बुद्ध ने 'आत्मा' का अस्तित्व असिद्ध किया है ।

६४. यही कारण है कि 'आत्मा' का अस्तित्व स्वीकार करना अ-धर्म है ।

५. यज्ञ (= बलि-कर्म) में विश्वास अ-धर्म है

(i)

१. ब्राह्मणी धर्म यज्ञों पर निर्भर करता था ।

२. कुछ यज्ञ 'नित्य' कहलाते थे और कुछ यज्ञ 'नैमित्तिक' कहलाते थे ।

३. 'नित्य' यज्ञ का मतलब था वे अनिवार्य कर्तव्य जो चाहे कोई फल मिले और चाहे न मिले करणीय ही थे ।

४. 'नैमित्तिक' यज्ञ उस समय किये जाते थे जब यजमान किसी सांसारिक इच्छा-विशेष की पूर्ति के लिये, उसके निमित्त से, वह 'यज्ञ' कराता था ।

५. ब्राह्मणी-यज्ञों में सुरा-पान, पशुओं की बलि और हर तरह का आमोद-प्रमोद रहता था ।

६. तब भी ये यज्ञ 'धार्मिक—कृत्य' समझे जाते थे ।

७. ऐसे धर्म को जिसका आधार 'यज्ञ' थे—बुद्ध ने अपनाने योग्य नहीं समझा ।

८. उन बहुत से ब्राह्मणों को जो भगवान् बुद्ध से विवाद करने पहुंचे, तथागत ने अपने कारण बता दिये थे कि वे क्यों 'यज्ञों' को 'धर्म' का अंग मानने के लिये तैयार न थे ।

९. लिखा मिलता है कि इस विषय में तीन ब्राह्मणों ने तथागत से वाद-विवाद किया था।

१०. उनके नाम थे, कूटदन्त, उज्जय और उदायी।

११. कूटदन्त ब्राह्मण ने भगवान् बुद्ध से पूछा था कि यज्ञ के बारे में उनका क्या मत था ?

१२. तथागत बोले—"अच्छा तो, हे ब्राह्मण सुन, ध्यान दे और जो कुछ मैं कह रहा हूँ उसे सावधान रहकर सुन।"

१३. "बहुत अच्छा", कूटदन्त बोला। तब भगवान् बुद्ध ने कहा—

१४. "हे ब्राह्मण ! बहुत पुराने समय में महा-विजेता नाम का एक राजा था, बड़ा प्रतापी, बहुत धन वाला तथा बहुत सम्पत्ति वाला। उसके पास सोने-चांदी के भण्डार थे, सुख-भोग के सब सामान थे, धन-धान्य की कमी न थी। उसके खजाने धन से और उसके कोटे अनाज से भरे थे।

१५. "अब, एक बार, जब राजा महाविजेता अकेला। विचार-मग्न बैठा था, उसके मन में बड़े जोर से यह विचार पैदा हुआ : 'आदमी के सुख-भोग के सामानों की मेरे पास कमी नहीं। मैं पृथ्वी का चक्रवर्ती राजा हूँ। यह अच्छा होगा, यदि मैं एक महान् यज्ञ करूं जो दीर्घकाल तक मेरे कल्याण के लिये हो।'

१६. "तब उस ब्राह्मण ने, जो राजा का पुरोहित था, राजा से कहा—'राजन् ! इस समय आपकी प्रजा हैरान की जा रही है और लूटी जा रही है। बहुत से डाकू हैं जो गांव और नगरों में लूट-मार करते हैं और जिन्होंने रास्ते अरक्षित कर दिये हैं। जब तक ऐसी अवस्था है, तब तक यदि, महाराज ने प्रजा पर एक नया टैक्स और लगाया तो महाराज निश्चय से गलती करेंगे।'

१७. "लेकिन हो सकता है कि महाराज यह सोचें कि मैं शीघ्र ही उन दुष्टों की सब कारवाइयां रोक दूंगा—उनको पकड़वा लूंगा, उन पर जुर्माने करूंगा, उनको देश-निकाला दे दूंगा तथा उनको मरवा डालूंगा। लेकिन इस तरह से उनकी स्वेच्छा-चारिता नहीं रोकी जा सकती। जो अदण्डित बच रहेंगे, वे प्रजा को हैरान करते रहेंगे।

१८. "इस गड़बड़ी को जड़मूल से समाप्त करने का एक रास्ता है। आपके राज्य में जितने भी ऐसे हों जो पशु पालते हों या खेती करते हों, उन्हें महाराज ! आप खाने को दें और खेतों में बीज बोने के लिये बीज दें। आपके राज्य में जितने भी ऐसे हों जो व्योपार में लगे हों, उन्हें महाराज ! आप व्योपार करने के लिये पूंजी दें। आपके राज्य में जितने भी ऐसे हों जो सरकारी कर्मचारी हों, उन्हें महाराज ! आप भोजन और वेतन दें।

१९. "तब जब सब कोई अपने अपने काम में लगे रहेंगे तो वे देश में उत्पात नहीं मचायेंगे, राजा को राज्यकर से अधिक आय होने लगेगी, देश सुख और शान्ति का अनुभव करेगा; और जनता खुश-हाल हो जायगी। लोग अपने बच्चों को गोद में लेकर नाचेंगे और निर्भय होकर खुले दरवाजे सोयेंगे।'

२०. "तब हे ब्राह्मण ! राजा महाविजेता ने अपने पुरोहित की बात मान वैसा ही किया। लोग अपने अपने काम में लग गये। उन्होंने देश में उत्पात मचाना छोड़ दिया। राजा को राज्य-कर से अधिक आय होने लगी। देश सुख और शान्ति का अनुभव करने लगा। जनता खुश-हाल हो गई। लोग अपने अपने बच्चों को गोद में लेकर नाचने लगे और निर्भय होकर खुले-दरवाजे सोने लगे।

२१. "जब उत्पात शान्त हो गया, तो राजा महाविजेता ने फिर अपने पुरोहित से कहा—"अव उत्पात शान्त है। देश खुशहाल है। मैं अपने दीर्घकालीन कल्याण के लिये वह महान् यज्ञ करना चाहता हूँ—आप बतायें कि कैसे करूं ?"

२२. पुरोहित ने राजा को उत्तर देते हुए कहा—"राजन् ! अब यज्ञ होने दें। राजन् ! अब आप राजधानी में और राजधानी के बाहर समस्त देश में ऐसे जितने भी क्षत्रिय हों जो आपके मालगुजार हों उन्हें निमंत्रण दें, जो मन्त्री हों, राज्याधिकारी हों या प्रतिष्ठित ब्राह्मण हों, या जो सम्पन्न गृहपति हों—उन सब को निमंत्रण भेजें और कहें कि मैं अपने दीर्घकालीन कल्याण के लिये महान् यज्ञ करना चाहता हूँ। आप उसकी स्वीकृति दे दें।"

२३. "तब हे ब्राह्मण कूटदन्त ! जैसा पुरोहित ने कहा था, वैसा ही राजा ने किया। उन क्षत्रियों, मन्त्रियों, ब्राह्मणों तथा गृहपतियों ने भी वैसा ही उत्तर दिया—"राजन् ! आप महान् यज्ञ करें। राजन् यह समय महान् यज्ञ करने के लिये अनुकूल है।"

२४. "राजा महाविजेता बुद्धिमान था और अनेक बातों में बहुत कुशल था। उसका पुरोहित भी वैसा ही बुद्धिमान था और बहुत बातों में कुशल था।

२५. "हे ब्राह्मण ! तब उस पुरोहित ने यज्ञ के आरम्भ होने से पहले राजा को बता दिया कि उसमें कितना धन व्यय हो सकता है ?

२६. पुरोहित ने कहा—"महाराज ! कहीं ऐसा न हो कि यज्ञ आरम्भ करने से पूर्व, या यज्ञ करते समय अथवा यज्ञ हो चुकने के अनन्तर आपके मन में यह विचार उत्पन्न हो कि 'अरे ! इस यज्ञ में तो मेरी सम्पत्ति का बड़ा हिस्सा लग गया', तो ऐसा विचार मन में नहीं आना चाहिये।

२७. "और हे ब्राह्मण ! उस पुरोहित ने यज्ञ आरम्भ होने से ही पहले, बाद में राजा के मन में, यज्ञ में भाग लेने वालों को लेकर कोई पश्चाताप न हो, इसलिये राजा को कहा—"राजन्। आपके यज्ञ में हर तरह के लोग आयेंगे—ऐसे भी जो जीव-हत्या करते हैं, ऐसे भी जो जीव-हत्या नहीं करते। ऐसे भी जो चोरी करते हैं, ऐसे भी जो चोरी नहीं करते। ऐसे भी जो काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार करते हैं, और ऐसे भी जो नहीं करते। ऐसे भी जो झूठ बोलते हैं, ऐसे भी जो झूठ नहीं बोलते। ऐसे भी जो झूठी चुगली खाते हैं, ऐसे भी जो झूठी चुगली नहीं खाते। ऐसे भी जो कठोर बोलते हैं, ऐसे भी जो कठोर नहीं बोलते। ऐसे भी

जो व्यर्थ बकवाद करते हैं, ऐसे भी जो व्यर्थ बकवाद नहीं करते, ऐसे भी जो लोभ करते हैं, ऐसे भी जो लोभ नहीं करते। ऐसे भी जो द्वेष करते हैं, ऐसे भी जो द्वेष नहीं करते। ऐसे भी जिनकी सम्यक्-दृष्टि होगी; ऐसे भी जिनकी मिथ्या-दृष्टि होगी। इनहे जो बुरे हों, उन्हें अपनी बुराई के साथ पृथक् रहने दें। और राजन्! जो भले हों, उनके लिये आप यथायोग्य करें, उन्हें सन्तुष्ट करें, इस से आपके चित्त को आन्तरिक शान्ति प्राप्त होगी।

२८. "और हे ब्राह्मण! महाविजेता द्वारा कराये गये इस यज्ञ में वृषभ-हत्या नहीं हुई थी, बकरियों के गले नहीं कटे थे, मुर्गे-मुर्गियाँ नहीं मारी गयी थीं, व मोटे सूअर और अन्य न किसी भी तरह के प्राणियों की बलि चढ़ाई गई थी। यूप (=वध-स्तंभ) बनाने के लिये कोई पेड़ नहीं काटे गये थे, और यज्ञ-स्थल पर बिखेरने के लिये दूब-घास नहीं काटी गई थी। और वहाँ जो दास, जो इधर-उधर आने-जाने वाले तथा जो अन्य कर्मी काम कर रहे थे, वे दण्ड या भय के कारण अश्रु-मुख होकर काम नहीं कर रहे थे। जिसकी सहायता करने की इच्छा होती थी, काम करता था, जिसकी इच्छा नहीं होती थी, नहीं करता था। जो किसी ने करना चाहा, वह किया; जो नहीं करना चाहा वह बिना किये छोड़ दिया गया। उस यज्ञ में घी, तेल, मक्खन, दूध, मधु और शक्कर के अतिरिक्त और कुछ नहीं काम में आया।

२९. "यदि आप कोई यज्ञ करना ही चाहते हैं, तो आपका 'यज्ञ' वैसा ही होना चाहिये जैसा महाराज महाविजेता का। अन्यथा यज्ञ व्यर्थ है। पशुओ की बलि निर्दयता मात्र है। 'यज्ञ' कभी धर्म का अंग हो ही नहीं सकते। यह 'धर्म' का निकृष्ट-तम रूप है जो कहता है कि पशुओं की बलि देने से आदमी स्वर्ग जा सकते हैं।"

३०. तब कूटदन्त ब्राह्मण ने प्रश्न किया "हे गौतम! तो क्या कोई दूसरा 'यज्ञ' है जिसमें पशुओं की बलि तो न देनी पड़े किन्तु जिसके करने से अधिक फल मिले, अधिक कल्याण हो।"

३१. "हे ब्राह्मण! हाँ, ऐसा है।"

३२. "हे गौतम! ऐसा 'यज्ञ' कैसे क्या होगा?"

३३. "हे ब्राह्मण! जब एक आदमी श्रद्धायुक्त होकर (१) जीव-हत्या से विरत रहने का संकल्प करता है, (२) चोरी से विरत रहने का संकल्प करता है, (३) काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार से विरत रहने का संकल्प करता है, (४) झूठ से विरत रहने का संकल्प करता है, तथा (५) सुरा-मेरय—मद्य आदि नशीली चीजों के सेवन से विरत रहने का संकल्प करता है तो यह एक ऐसा यज्ञ है जो यज्ञों के निमित्त बड़े खर्च करने से अच्छा है, जो भिक्षुओं के ठहरने के निमित्त विहरादि बनवाने से भी अच्छा है, जो निरन्तर भिक्षा देते रहने से भी अच्छा है, जो (त्रि-) शरण ग्रहण करने से भी अच्छा है।"

३४. जब भगवान् बुद्ध ने यह कहा तो कूटदन्त ब्राह्मण को भी कहना पड़ा—"श्रमण गौतम ! आप का कथन सर्व-श्रेष्ठ है। श्रमण गौतम ! आपका कथन सर्वश्रेष्ठ है।"

(ii)

१. अब ब्राह्मण उज्जय ने तथागत से पूछा—

२. "श्रमण गौतम ! क्या आप यज्ञों के प्रशंसक हैं ?"

३. "ब्राह्मण ! न मैं हर 'यज्ञ' की प्रशंसा करता हूँ, न मैं हर 'यज्ञ' को सदोष कहता हूँ। हे ब्राह्मण ! जिस किसी यज्ञ में भी गो-हत्या हो, बकरियां और भेड़ें मारी जायें, मुर्गे-मुर्गियाँ और सूअर मारे जायें और भी दूसरे नाना तरह के प्राणियों की हत्या हो—इस प्रकार का 'यज्ञ' जिसमें पशु-बलि दी जाती हो, हे ब्राह्मण ! मेरी प्रशंसा का पात्र नहीं।" "ऐसा क्यों ?"

४. "हे ब्राह्मण ! इस प्रकार के 'यज्ञ' के—जिसमें पशुओं की हत्या होती है—न तो श्रेष्ठजन पास फटकते हैं और न श्रेष्ठ मार्ग पर चलने वाले ही पास फटकते हैं।

"लेकिन हे ब्राह्मण ! जिस यज्ञ में गो-हत्या नहीं होती. . . . .पशुओं की हत्या नहीं होती—ऐसा यज्ञ जिसमें पशुओं की बलि नहीं दी जाती—ऐसा यज्ञ मेरी प्रशंसा का पात्र है। उदाहरण के लिये चिर-स्थापित दान या परिवार के सदस्यों के कल्याण के लिये त्याग।" "ऐसा क्यों ?"

६. "क्योंकि ब्राह्मण ! जिस यज्ञ में पशुओं की बलि नहीं दी जाती, ऐसे यज्ञ के श्रेष्ठजन भी पास जाते हैं और वे भी जो श्रेष्ठमार्ग पर आरूढ़ हैं।"

(iii)

१. उदायी ब्राह्मण ने भी तथागत से वही प्रश्न पूछा जो उज्जय ब्राह्मण ने पूछा—

२. "श्रमण गौतम ! क्या आप 'यज्ञ' की प्रशंसा करते हैं ?" तथागत ने जो उत्तर उज्जय को दिया था, वही उदायी ब्राह्मण को दिया—

३. तथागत बोले—

"ऐसे यज्ञ के—जो उचित समय पर किया जाय, ऐसे यज्ञ के—जिसमें पशुओं की बलि न दी जाये, वे निकट जाते हैं, जो श्रेष्ठ-जीवी हैं, जिनकी आँख पर से पर्दा हट गया है।

जो कालातीत हैं;
जो जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हैं, वे
तथा वैसे ही दूसरे प्राज्ञ तथा कुशलज्ञ यज्ञ की प्रशंसा करते हैं।
"यज्ञ अथवा श्रद्धायुक्त-कर्म में,
श्रद्धायुक्त चित्त से,

पुण्य-क्षेत्र में,
जो बीज बोया जाता है;
अथवा जो श्रेष्ठ-जीवी हैं,
उन्हें जो दान दिया जाता है,
उससे देवता भी प्रसन्न होते हैं ।
इस प्रकार के दान से विज्ञ जन विद्या का लाभ करते हैं,
तथा दुःख से मुक्त हो, सुखी अवस्था को प्राप्त होते हैं ।"

६. कल्पनाश्रित विश्वास अ-धर्म है

(i)

१. ऐसे प्रश्नों का मन में उठना स्वाभाविक था जैसे (१) क्या मैं पहले था? (२) क्या मैं पहले नहीं था? (३) उस समय मैं क्या था? (४) मैं क्या होकर क्या हुआ? (५) क्या मैं भविष्य में होऊंगा? (६) क्या मैं भविष्य में नहीं होऊंगा? (७) तब मैं क्या होऊंगा? (८) तब मैं कैसे होऊँगा? (९) मैं क्या होऊंगा? अथवा वह अपने वर्तमान के विषय में ही सन्देह-शील होता है— (१) क्या मैं हूँ? (२) क्या मैं नहीं हूँ? (३) मैं हूँ क्या? (४) मैं कैसे हूं? (५) यह प्राणी, कहाँ से आया? (६) यह किधर जायगा?[१]

२. इसी प्रकार विश्व के बारे में बहुत से प्रश्न पूछे गये थे। कुछ इस प्रकार थे–

३. "यह संसार किस प्रकार उत्पन्न किया गया? क्या संसार अनन्त है।"

४. पहले प्रश्न के उत्तर में किसी का कहना था कि प्रत्येक वस्तु ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न की गई है—दूसरों का कहना था कि यह प्रजापति द्वारा उत्पन्न की गई है।

५. दूसरे प्रश्न के उत्तर में किसी का कहना था कि यह अनन्त है। किसी का कहना था, यह सान्त है। किसी का कहना था यह ससीम (=सीमा सहित) है, किसी का कहना था यह असीम है।

६. इन प्रश्नों को बुद्ध ने अ-व्याकृत रखा। ऐसे प्रश्नों का स्वागत ही नहीं किया। उनका कहना था कि ऐसे प्रश्नों को पूछने वाले और उत्तर देने वाले—दोनों ही कुछ-कुछ विकृत-मस्तिष्क होने चाहिए।

७. इन प्रश्नों के उत्तर देने वा दे सकने का मतलब होगा कि आदमी को "सर्वज्ञ" होना चाहिये जो कि कोई होता ही नहीं।

८. उनका कहना था कि वह ऐसे 'सर्वज्ञ' नहीं कि इस तरह के प्रश्नों का उत्तर दें। कोई भी यह दावा नहीं कर सकता कि जो कुछ हम जानना चाहते हैं, वह वह सब कुछ जानता है और न कोई यह ही दावा कर सकता है कि किसी भी समय जो कुछ हम जानना चाहते हैं वह किसी को हर समय ज्ञात रहता है। हमेशा कुछ न कुछ अज्ञात रहता ही है।

९. इन्हीं कारणों से भगवान् बुद्ध ने ऐसी सब बातों को अपने धर्म से दूर ही दूर रखा ।

१०. उनकी दृष्टि में जो धर्म ऐसी बातों को धर्म का अंग माने वह अपनाने लायक नहीं है ।

(ii)

१. जिन सिद्धान्तों को बुद्ध के समकालीन कुछ आचार्य्यों ने अपने अपने धर्म का आधार बनाया था, उन सिद्धान्तों का सम्बन्ध दो बातों से था (१) 'आत्मा' से और (२) विश्व के आरम्भ से।

२. वे 'आत्मा' के बारे में या अपने आपके बारे में कुछ प्रश्न उठाते थे । वे पूछते थे: "(१) क्या मैं पहले था ? (२) क्या मैं पहले नहीं था ? (३) उस समय मैं क्या था ? (४) मैं क्या होकर क्या हुआ ? (५) क्या मैं भविष्य में होऊंगा ? (६) क्या मैं भविष्य में नहीं होऊंगा ? (७) तब मैं क्या होऊँगा ? (८) तब मैं कैसे होऊंगा ? (९) मैं क्या होकर क्या होऊंगा ? अथवा वह अपने वर्तमान के ही विषय में सन्देह-शील होता है। (१) क्या मैं हूँ ? (२) क्या मैं नहीं हूँ ? (३) मैं हूँ क्या ? (४) मैं कैसे हूँ ? (५) यह 'प्राणी' कहां से आया ? (६) यह किधर जायगा ?[१०]

३. दूसरों ने विश्व के आरम्भ के विषय में प्रश्न पूछे ।

४. कुछ ने कहा—इसे ब्रह्मा ने पैदा किया है ।

५. दूसरों ने कहा, इसे स्वयं प्रजापति ने अपने आपकी आहुति देकर उत्पन्न किया है ।

६. दूसरे आचार्य्यों ने कुछ दूसरे प्रश्न पूछे: "संसार अनन्त है ? संसार अनन्त नहीं है ? संसार ससीम है ? संसार असीम है ? जो शरीर है, वही जीव है ? शरीर अन्य है, जीव अन्य है ? सत्य-ज्ञाता (=तथागत) मरने के बाद रहते हैं ? तथागत मरने के बाद नहीं रहते ? वे रहते भी हैं और नहीं भी रहते ? वे न रहते हैं और न नहीं रहते हैं ?"[११]

७. भगवान् बुद्ध का कहना था कि ऐसे प्रश्न उन्हीं लोगों द्वारा पूछे जा सकते हैं कि जिनके मस्तिष्क कुछ विकृत हों ।

८. भगवान बुद्ध ने ऐसे धार्मिक सिद्धान्तों का क्यों खण्डन किया, इसके तीन कारण थे ।

९. पहला कारण तो यही था कि इनको धर्म का अंग बनाने में कोई तुक नहीं था ।

१०. दूसरे इन प्रश्नों का उत्तर कोई "सर्वज्ञ" ही दे सकता है, जो कोई होता ही नहीं । उन्होंने अपने प्रवचनों में इसी बात पर जोर दिया है ।

११. उन्होंने कहा कि एक ही समय और उसी समय कोई भी सभी बातों का

ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। ज्ञान का कही अन्त नहीं है। कुछ न कुछ और अधिक जानने के लिये हमेशा रहेगा।

१२. इन सिद्धान्तों के विरुद्ध तीसरा तर्क यह था कि ये सब सिद्धान्त केवल 'कल्पनाश्रित' थे। उनका 'सत्य' परीक्षित नहीं था और न उनके 'सत्य' की परीक्षा ही हो सकती थी।

१३. वे केवल कल्पना के घोड़े की लगाम को ढ़ीला छोड़ देने के परिणाम थे। उनके पीछे कहीं कोई तथ्य न था।

१४. और फिर इन कल्पनाश्रित सिद्धान्तों का एक आदमी और दूसरे आदमी के आपसी सम्बन्ध में क्या प्रयोजन था ? एक दम कुछ भी नहीं।

१५. तथागत ने यही नहीं माना था कि संसार का निर्माण हुआ है। तथागत की मान्यता थी कि संसार का विकास हुआ है।

७. धर्म की पुस्तकों का वाचन मात्र अ-धर्म है

१. ब्राह्मणों ने सारा जोर '(अपने लिये) 'विद्या' पर दिया है। उन्होंने शिक्षा दी है कि 'विद्या' ही 'अथ' और 'विद्या' ही 'इति' है। इससे आगे और कुछ नहीं।

२. इसके विरुद्ध भगवान् बुद्ध सभी के लिये 'विद्या' के पक्षपाती थे। इसके अतिरिक्त उन्हें इस बात की भी बड़ी चिन्ता थी कि 'विद्या' प्राप्त करके आदमी उसका क्या उपयोग करता है? उनकी 'विद्या' 'विद्या' के लिये न थी, उनकी विद्या उपयोग के लिये थी।

३. इसलिये वे इस बात पर खास जोर देते ही थे कि जो विद्वान् हो उसे शीलवान् भी होना ही चाहिये। बिना 'शील' की 'विद्या' अत्यन्त खतरनाक थी।

४. भिक्षु पटिसेन को जो कुछ भगवान् बुद्ध ने कहा था उससे 'विद्या' के विरुद्ध 'शील' का महत्व स्पष्ट होता है।

५. पुराने समय में जब भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में बिहार कर रहे थे, उस समय पटिसेन नाम का एक वृद्ध भिक्षु था, जो इतना अधिक कूढ़-मगज था कि एक गाथा भी याद न कर सकता था।

६. बुद्ध ने दिन प्रति दिन पांच सौ अर्हतों को उसे शिक्षा देने के लिये कहा। लेकिन तीन वर्ष के बाद भी उसे एक भी गाथा याद न थी।

७. तब उस जनपद के चारों प्रकार के लोग---भिक्षु, भिक्षुणियाँ, उपासक, उपासिकाऐं---उसकी हंसी उड़ाने लगे। भगवान् बुद्ध को उस पर दया आई। उन्होंने उसे पास बुलाया और बड़ी कोमलता के साथ यह गाथा कही ---

कायेन संवरो साधु, साधु वाचाय संवरो
मनसा संवरो साधु, साधु सब्बत्थ संवरो
सब्बत्थ संवुतो भिक्खु सब्ब दुक्खा पमुच्चति[१२]

(अर्थ---जिसका मुंह संयत है, जिसके विचार--संयत हैं, और जो अपने शरीर से भी विरुद्धाचरण नहीं करता, वह निर्वाण प्राप्त करता है।)

८. तथागत की करुणा से जैसे पटिसेन के हृदय की कली खिल गई। वृद्ध भिक्षु पटिसेन ने भी वह गाथा दोहराई।

९. तब भगवान बुद्ध ने उससे कहा:-- "हे वृद्ध ! अब तुम केवल एक गाथा कह सकते हो, और लोग इसे जानते हैं। इसलिये अभी भी लोग तुम्हारा मजाक उड़ायेंगे। मैं अब तुम्हें इस गाथा का अर्थ भी समझाता हूँ। तुम ध्यान पूर्वक सुनो।"

१०. तब भगवान बुद्ध ने शरीर के तीन अकुशल-कर्म, वाणी के चार अकुशल-कर्म और मन के तीन अकुशल-कर्म---दस अकुशल-कर्म समझाये। इन दस अकुशल कर्मों के त्याग से आदमी निर्वाण प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार समझाये जाने पर भिक्षु पटिसेन को सत्य का बोध हो गया और वह अर्हत्व-पद का लाभी हुआ।

११. अब इस समय विहार में पांच सौ भिक्षुणियां रह रही थीं। उन्होने अपने में से एक को बुद्ध के पास भेजा कि वे किसी भिक्षु को उन्हें धर्मोपदेश देने के लिये भेज दें।

१२. उनकी प्रार्थना सुनकर भगवान् बुद्ध ने वृद्ध पटिसेन को ही उन्हें धर्मोपदेश देने के लिये भेजना चाहा।

१३. जब उन भिक्षुणियों को यह पता लगा तो वे आपस में बहुत हँसीं। उन्होंने तय किया कि दूसरे दिन वृद्ध पटिसेन के आने पर वे गाथा का उल्टा उच्चारण कर उसे गड़बड़ा देंगी, और शर्मिदा करेंगी।

१४. दूसरे दिन जब वृद्ध पटिसेन आया, छोटी बड़ी सभी भिक्षुणियों ने उसका स्वागत किया और तब उसे अभिवादन करते समय वे आपस में हँसने लगीं।

१५. तब बैठने पर उन्होंने वृद्ध पटिसेन को भोजन कराया। जब भोजन हो चुका और उसने हाथ धो लिये तब उन्होंने उसे अपना प्रवचन आरम्भ करने के लिये कहा। उनके प्रार्थना करने पर वृद्ध पटिसेन ने धर्मासन ग्रहण किया और अपना प्रवचन आरम्भ किया :--

१६. "बहनो ! मेरी बुद्धि अधिक नहीं है। मेरा ज्ञान और कम है। मैं केवल एक गाथा जानता हूँ। मैं वह पढ़ूंगा और उसका अर्थ भी समझाऊंगा। तुम ध्यान से सुनकर उसके अर्थ को धारण करो।"

१७. तब सभी भिक्षुणियों ने उल्टे क्रम से उस गाथा को कहने का प्रयास किया। लेकिन यह क्या ! उनका मुंह ही नहीं खुल सका। वे लज्जा से मर गईं। उन्होंने अपने सिर नीचे लटका लिये।

१८. तब भगवान् बुद्ध से प्राप्त शिक्षण के अनुसार वृद्ध पटिसेन ने उस गाथा को दोहरा कर उसकी व्याख्या करनी शुरू की।

१९. उसका प्रवचन सुनकर सब भिक्षुणियों को आश्चर्य्य हुआ। उस उपदेश को सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुईं। उन्होंने उसे सिर-माथे स्वीकार किया। वे अर्हत हो गईं।

२०. इसके अगले दिन राजा प्रसेनजित ने बुद्धप्रमुख भिक्षु संघ को अपने यहां भोजन के लिये निमंत्रित किया।

२१. बुद्ध ने पटिसेन की विशेष उन्नत स्थिति पहचान, उसे अपना भिक्षा-पात्र लेकर साथ साथ चलने के लिये कहा।

२२. लेकिन जब वे राज-महल के द्वार पर पहुँचे, तो उस द्वारपाल ने जो उससे पूर्व-परिचित था, वृद्ध पटिसेन को अन्दर नहीं जाने दिया। बोला—"जो भिक्षु केवल एक गाथा जानता है, हमें उसका आतिथ्य नहीं करना है। तुम्हारे जैसे सामान्यों के लिये स्थान नहीं है। अपने से श्रेष्ठतर लोगों को रास्ता दो और स्वयं चल दो।"

२३. तदनुसार पटिसेन दरवाजे के बाहर ही बैठ गये।

२४. अब बुद्ध आसन पर विराजमान हुए। उन्होंने हाथ धोये। लेकिन यह क्या ! भिक्षा-पात्र लिये हुए पटिसेन का हाथ वहां उपस्थित था।

२५. राजा, मन्त्रियों तथा अन्य उपस्थित जनों ने जब यह देखा तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे बोले— "ओह ! यह कौन है ?"

२६. तथागत ने उत्तर दिया—"यह भिक्षु पटिसेन है। इसने अभी बोधि प्राप्त की है। मैंने इसे अपना भिक्षापात्र लेकर पीछे पीछे आने के लिये कहा था, किन्तु द्वारपाल ने उसे नहीं आने दिया।"

२७. तब पटिसेन को भी प्रवेश मिला और वह भी संघ में आ सम्मिलित हुआ।

२८. तब राजा प्रसेनजित् ने बुद्ध से पूछा :— "मैं सुनता हूँ कि इस पटिसेन की कुछ योग्यता नहीं। यह केवल एक ही गाथा जानता है। तो उसे बोधि कैसे प्राप्त हो गई ?"

२९. तथागत ने उत्तर दिया— "ज्ञान अधिक न भी हो, शील मुख्य वस्तु है।

३०. "इस पटिसेन ने इस एक गाथा के मर्म को अच्छी तरह हृदयङ्गम कर लिया है। इसका शरीर, वाणी और विचार पूर्ण रूप से शान्त हो गये हैं। यदि किसी आदमी के पास ज्ञान अधिक भी हो, किन्तु यदि उसका आचरण तदनुसार नहीं है, तो फिर यह सारा ज्ञान उस आदमी को विनाशोन्मुख होने से नहीं बचा सकता।"

३१. इसके बाद तथागत ने कहा :—

३२. "चाहे कोई आदमी एक हजार गाथाओं का वाचन करें, लेकिन यदि वह उन गाथाओं के अर्थ से अपरिचित है, तो उसका वह वाचन किसी भी एक गाथा के वाचन के समान नहीं जिसे सुन कर चित्त शान्ति को प्राप्त हो। बिना समझे हजारों शब्दों के उच्चारण का भी क्या प्रयोजन ? लेकिन एक शब्द का सुनना, समझना और तदनुसार आचरण करना मोक्ष-लाभ का कारण हो सकता है।"[१३]

३३. "एक आदमी अनेक ग्रन्थों का वाचन कर सकता है, लेकिन यदि वह उन्हें समझता नहीं तो उसका वाचन निष्प्रयोजन है। धर्म के एक ही पद को जानना और तदनुसार चलना मोक्ष का मार्ग है।"[१४]

३४. इन शब्दों को सुनकर उपस्थित दो सौ भिक्षु, राजा तथा उसके मन्त्रीगण सभी प्रमुदित हुए।

८. "धर्म" की पुस्तकों को गलती की सम्भावना से परे मानना अ-धर्म है

१. ब्राह्मणो की घोषणा थी कि वेद न केवल पवित्र ग्रन्थ ही हैं, बल्कि वे स्वतः प्रमाण हैं।

२. ब्राह्मणों ने वेदों के स्वतः प्रमाण होने की घोषणा नहीं की, बल्कि उन्होंने वेदों को गलती की सम्भावना से परे माना।

३. इस विषय में भगवान बुद्ध ब्राह्मणों से सर्वथा विरोधी मत रखते थे।

४. उन्होंने वेदों को पवित्र नहीं माना। उन्होंने वेदों का स्वतः प्रमाण नहीं माना। उन्होंने वेदों को गलती की सम्भावना से परे नहीं माना।

५. उनके समकालीन कई दूसरे धर्मोपदेशक का भी यही मत था। लेकिन, बाद में या तो उन्होंने अथवा उनके अनुयायियों ने अपने अपने मत को ब्राह्मणों की दृष्टि में आदृत बनाने के लिये, अपना बुद्धिवादी पक्ष छोड़ दिया। लेकिन भगवान् बुद्ध ने इस विषय में कभी समझौता नहीं किया।

६. तेविज्ज सुत्त[१५] में भगवान् बुद्ध ने वेदों को जल-विहीन कान्तार कहा है, पथविहीन जंगल कहा है, वास्तव में विनाश-पथ। कोई भी आदमी जिसमें कुछ बौद्धिक तथा नैतिक प्यास है, वह वेदों के पास जाकर अपनी प्यास नहीं बुझा सकता।

७. जहां तक वेदो को गलत होने की सम्भावना से परे होने की बात है, तथागत ने कहा, कोई ऐसी चीजें हो ही नहीं सकती जो गलत होने की सम्भावना से सर्वथा परे हों—वेद भी नहीं। इसलिये भगवान् बुद्ध ने कहा कि हर चीज का परीक्षण और पुनर्परीक्षण होते रहना चाहिये।

८. यह बात उन्होंने कालाम लोगों को दिये गये अपने प्रवचन में स्पष्ट की है।

९. एक बार भिक्षु संघ सहित चारिका करते करते भगवान् बुद्ध कोसल जनपद के केस पुत्तिय नगर में आ पहुंचे। वह नगर कालाम नामक क्षत्रियों की बस्ती थी।

१०. जब कालाम नामक क्षत्रियों को तथागत के आगमन की सूचना मिली, वे वहां पहुंचे जहां तथागत विहार कर रहे थे और जाकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए कालाम क्षत्रियों ने भगवान् बुद्ध को इस प्रकार सम्बोधित किया :—

११. "हे श्रमण गौतम ! हमारे गाँव में कुछ श्रमण-ब्राह्मण आते हैं, वे अपने मत की स्थापना करते हैं, अपने मत को ऊंचा उठाते हैं और दूसरे के मत का खण्डन करते हैं, दूसरे के मत को नीचा दिखाते हैं। इसी प्रकार कुछ दूसरे श्रमण-ब्राह्मण आते हैं, वे भी अपने मत की स्थापना करते है, अपने मत को ऊँचा उठाते हैं और दूसरे के मत का खण्डन करते हैं, दूसरे के मत को नीचा दीखाते हैं।

१२. "इसलिये हे श्रमण गौतम ! हम सन्देह में पड़ जाते हैं कि इन श्रमण-ब्राह्मणों में कौन सत्य बोल रहा है और कौन झूठ ?"

१३. "हे कालामो ! तुम्हें योग्य विषय में सन्देह उत्पन्न हुआ है; तुम्हारे मन में योग्य विषय में शक उत्पन्न हुआ है।"

१४. "हे कालामो," तथागत ने कथन जारी रखा, "किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह तुम्हारे सुनने में आई है; किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह परम्परा से प्राप्त हुई है; किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि बहुत से लोग उसके समर्थक हैं, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह (धर्म–) ग्रन्थों में लिखी है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो, कि वह तर्क (-शास्त्र) के अनुसार है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह न्याय (-शास्त्र) के अनुसार है; किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि ऊपरी तौर पर वह मान्य प्रतीत होती है; किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह अनुकूल-विश्वास वा अनुकूल-दृष्टि की है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह ऊपरी तौर पर सच्ची प्रतीत होती है, किस बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह किसी आदरणीय आचार्य्य की कही हुई है।"

१५. "तो फिर हमें क्या करना चाहिये ? हमारी क्या कसौटी होनी चाहिये ? " कालाम क्षत्रियों ने प्रश्न किया।

१६. तथागत बोले—"कालामो ! कसौटी यही है कि स्वयं अपने से प्रश्न करो कि क्या अमुक बात का करना हितकर है ? क्या अमुक बात निन्दनीय है ? क्या अमुक बात विज्ञ जनों द्वारा निषिद्ध है ? क्या अमुक बात के करने से कष्ट और दुःख होता है ?

१७. "कालामो ! इतना ही नहीं, तुम्हें यह भी देखना चाहिये कि क्या मत-मत-विशेष तृष्णा, घृणा, मूढ़ता और द्वेष की भावना की वृद्धि में तो सहायक नहीं होता।

१८. "कालामो ! इतना ही नहीं, तुम्हें यह भी देखना चाहिये कि मत-विशेष किसी को उसकी अपनी इन्द्रियों का ग़ुलाम तो नहीं बनाता ? उसे हिंसा करने में प्रवृत्त तो नहीं करता ? उसे चोरी करने की प्रेरणा तो नहीं देता ? उसे कामभोग सम्बन्धी मिथ्याचार में प्रवृत्त तो नहीं करता ? उसे झूठ बोलने

में प्रवृत्त तो नहीं करता ? उसे दूसरों को वैसा ही करने की प्रेरणा देने में तो प्रवृत्त नहीं करता ?

१९. "और हे कालामो ! अंत में तुम्हें यही पूछना चाहिये कि यह दुःख के लिये, अहित के लिये तो नहीं है ?"

२०. "हे कालामो ! अब तुम क्या सोचते हो ?

२१. "इन बातों के करने में आदमी का अहित है वा हित है ? "

२२. "भन्ते ! अहित है ।"

२३. "हे कालामो ! क्या ये बातें लाभप्रद हैं वा हानि-प्रद ?"

२४. "भन्ते ! हानिप्रद ।"

२५. "क्या ये बातें निन्दनीय हैं ?"

२६. "भन्ते ! निन्दनीय हैं ।"

२७. "विज्ञ पुरुषों द्वारा निषिद्ध हैं वा समर्थित हैं ?"

२८. "विज्ञ पुरुषों द्वारा निषिद्ध ।"

२९. "इनके करने से कष्ट और दुःख होता है ?"

३०. "भन्ते ! इनके करने से कष्ट और दुःख होता है ।"

३१. "कोई धर्म-ग्रन्थ जो यह सब सिखाता हो, क्या वह स्वतः प्रमाण माना जा सकता है ? क्या वह गलत होने की सम्भावना से परे माना जा सकता है ?"

३२. "भन्ते ! नहीं !

३३. "लेकिन कालामो ! यही तो मैंने कहा है । मैंने कहा है किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह तुम्हारे सुनने में आई है; किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह परम्परा से प्राप्त हुई है; किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि बहुत से लोग उसके समर्थक हैं; किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह (धर्म-) ग्रन्थों में लिखी है; किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह तर्क (-शास्त्र) के अनुसार है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह न्याय (-शास्त्र) के अनुसार है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह ऊपरी तौर पर मान्य प्रतीत होती है; किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह अनुकूल-विश्वास वा अनुकूल-दृष्टि की है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह ऊपरी तौर पर सच्ची प्रतीत होती है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह किसी आदरणीय आचार्य की कही हुई है ।

३४. "केवल जब तुम आत्मानुभव से ही यह जानो कि 'ये बातें अहितकर हैं, ये बातें निन्दनीय हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा निषिद्ध हैं, ये बातें करने से कष्ट होता है, दुःख होता है'—हे कालामो ! तब तुम्हें उनका त्याग कर देना चाहिये ।"

३५. "भन्ते ! अद्भुत है। गौतम ! अद्भुत है। हम आपकी, आपके धर्म की और संघ की शरण ग्रहण करते हैं। आज से प्राण रहने तक भगवान् हमें अपना शरणागत उपासक जानें।"[१६]

३६. इस दलील का सार स्पष्ट है। किसी आदमी की शिक्षा को प्रमाणित स्वीकार करते समय इस बात का विचार मत करो कि वह किसी (धर्म-) ग्रन्थ में लिखी हुई है, इस बात का विचार मत करो कि वह तर्क (-शास्त्र) अनुकूल है, इस बात का विचार मत करो कि वह ऊपरी दृष्टि से मान्य प्रतीत होती है, इस बात का विचार मत करो कि वह अनुकूल-विश्वास वा अनुकूल-दृष्टि की है, इस बात का विचार मत करो कि वह ऊपरी दृष्टि से सच्ची प्रतीत होती है तथा इस बात का विचार न करो कि वह किसी आदरणीय आचार्य्य की कही हुई प्रतीत होती है।

३७. लेकिन इस बात का विचार करो कि जिन मतों को या जिस दृष्टि को तुम स्वीकार करना चाहते हो वे हितकर हैं वा नहीं, निन्दनीय हैं वा नहीं, कष्ट प्रद तथा हानि-प्रद हैं वा नहीं ?

३८. केवल एक इसी आधार पर कोई किसी दूसरे की दी हुई शिक्षा को स्वीकार या अस्वीकार कर सकता है।

१. तेविज्जसुत्तन्त (दीर्घ निकाय—१।१३)।
२. तेविज्जसुत्तन्त (दीर्घ निकाय—१।१३)।
३. मज्झिम निकाय, सब्बासव सुत्त।
४. महालि सुत्तन्त (दीर्घ निकाय १।६)।
५. सब्बासव सुत्तन्त, (दीर्घ निकाय)।
६. कूटदन्त सुत्त (दीर्घ निकाय १।४)।
७. उज्जय सुत्तन्त (अंगुत्तर निकाय)।
८. अंगुत्तर निकाय।
९. सब्बासव सुत्त (मज्झिम निकाय)।
१०. सब्बासव सुत्त (मज्झिम निकाय)।
११. पोट्ठपाद सुत्तन्त (दीर्घ निकाय)।
१२. भिक्खुवग्ग २५-३ (धम्मपद)।
१३. सहस्सवग्ग—१ (धम्मपद)।
१४. सहस्सवग्ग—३ (धम्मपद)।
१५. तेविज्जसुत्त—१—१३ (दीर्घनिकाय)
१६. अंगुत्तर निकाय—तिक निपात।

पाँचवाँ भाग

सद्धर्म क्या है ?

(क) सद्धर्म के कार्य्य

१. मन के मैल को दूर कर उसे निर्मल बनाना

१. एक समय जब भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में विहार कर रहे थे, तो कोशल-नरेश प्रसेनजित वहाँ आया जहाँ तथागत ठहरे हुए थे और अपने रथ से उतर अत्यन्त भक्ति-भाव से तथागत के समीप बैठा।

२. उसने तथागत से प्रार्थना की कि वे कल के लिये उसका निमंत्रण स्वीकार करें। उसने उनसे दूसरे दिन नगर में सार्वजनिक-धर्मोपदेश देने की भी प्रार्थना की ताकि लोग उनके दर्शन कर सकें और उनका उपदेश सुन, उसे ग्रहण कर सकें।

३. भगवान् बुद्ध ने स्वीकार किया। दूसरे दिन भिक्षु संघ सहित उन्होंने नगर में प्रवेश किया और नगर के चौरस्तों को पार कर वे वहाँ पहुंचे जो स्थान पूर्व निश्चित था, तथा वहाँ विराजमान हुए।

४. भोजनान्तर राजा ने तथागत से प्रार्थना की कि वे उस खुली सभा में भाषण दें। उस समय उनका प्रवचन सुनने वाले बहुत थे।

५. उस समय उनके श्रोताओं में दो व्यापारी भी थे।

६. एक ने सोचा "महाराज ने यह कितनी बड़ी बुद्धिमानी की बात की है कि इस प्रकार का सार्वजनिक धर्मोपदेश करवाया है! ये उपदेश कितने व्यापक हैं और ये उपदेश कितने गहरे हैं।"

७. दूसरे ने सोचा, "महाराज ने यह क्या मूर्खता की है कि इस प्रकार इस आदमी से यहाँ उपदेश दिलवा रहे हैं!

८. "जैसे कोई बछड़ा अपनी मां के पीछे पीछे चलता है उस गाड़ी से बंधा हुआ जिसे वह खींचती है, उसी प्रकार यह बुद्ध राजा से बंधा हुआ है।" दोनों व्यापारी नगर से बिदा हो एक सराय में पहुंचे, जहाँ दोनों एक साथ ठहरे।

९. सुरा-पान करते समय, जो भला व्यापारी था, उसे चातुर्महाराजिक देवताओं ने संयत रखा और उसकी रक्षा की।

१०. दूसरे को किसी दुष्ट प्रेतात्मा ने पीते रहने की प्रेरणा दी, जब तक वह नशे और नींद से बेहोश नहीं हो गया। वह सराय के पास ही सड़क पर पड़ा था।

११. प्रातःकाल जब व्यापारीयों की गाड़ियाँ वहाँ से बिदा होने लगीं तो गाड़ीवानों ने सड़क के बीच पड़े उसे नहीं देखा। वह गाड़ी के पहियों के नीचे आकर मर गया।

१२. दूसरा व्यापारी एक दूर देश में आ पहुंचा। वहाँ वह एक पवित्र घोड़े के घुटने टेकने के परिणामस्वरूप उस देश का राजा चुन लिया गया; और वह सिंहासन पर विराजमान हुआ।

१३. इसके बाद, इन घटनाओं की विचित्रता पर विचार करके, वह अपने देश लौट आया। तब उसने भगवान् बुद्ध को निमंत्रित किया कि वे जनता को उपदेश दें।

१४. इस अवसर पर तथागत ने उस दुष्ट-हृदय व्यापारी की मृत्यु का कारण बताया और दूसरे बुद्धिमान व्यापारी के ऐश्वर्यशाली बनने का भी। इसके बात तथागत ने यह भी कहा :—

१५. "मन ही सबका मूल है; मन ही मालिक है; मन ही कारण है।

१६. "यदि आदमी का मन दुष्ट होता है तो वह दुष्ट वाणी बोलता है और दुष्ट कार्य भी करता है। तब दुःख उस आदमी के पीछे पीछे ऐसे ही हो लेता है जैसे गाड़ी के पहिये, खींचनेवाले बैल के पीछे पीछे।

१७. "मन ही सबका मूल है, मन ही शासन करता है, मन ही योजना बनाता है।

१८. "यदि आदमी का मन शुद्ध होता है, तो वह शुद्ध वाणी बोलता है और अच्छे अच्छे कार्य करता है। तब सुख आदमी के पीछे पीछे ऐसे ही हो लेता है जैसे कभी साथ न छोड़ने वाली छाया, वस्तु या व्यक्ति के पीछे पीछे।"

१९. यह सुनने पर, राजा और उसके मन्त्री तथा अन्य अनगिनत लोगों ने धर्म-दीक्षा ग्रहण की और वे तथागत के शिष्य हुए।

२. संसार को 'धर्म-राज्य' बनाना

१. धर्म का प्रयोजन क्या है ?

२. भिन्न-भिन्न धर्मों ने इस प्रश्न के भिन्न भिन्न उत्तर दिये हैं।

३. आदमी को ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग पर लगाना और उसे अपने 'आत्मा' के 'मोक्ष' का महत्व समझाना—यह एक सामान्य उत्तर है।

४. बहुत से धर्म तीन राज्यों की बात करते हैं।

५. एक 'स्वर्ग का राज्य' कहलाता है, दूसरा 'पृथ्वी का राज्य' कहलाता है, तीसरा 'नरक का राज्य' कहलाता है।

६. कहा जाता है कि 'स्वर्ग के राज्य' पर ईश्वर का शासन है। 'नरक के राज्य' पर शैतान का एकाधिकार माना जाता है। 'पृथ्वी के राज्य' के बारे में झगड़ा है। इस पर शैतान का अधिकार नहीं है। साथ साथ इसे 'ईश्वर के राज्य' के अन्तर्गत भी नहीं माना जा सकता। आशा की जाती है कि शायद किसी दिन हो जाय।

७. कुछ धर्मों में माना जाता है कि 'स्वर्ग का राज्य' 'धर्म-राज्य' है, क्योंकि वहाँ ईश्वर का सीधा शासन है।

८. कुछ दूसरे धर्मों में 'स्वर्ग का राज्य' पृथ्वी पर नहीं है। यह केवल 'स्वर्ग' का ही दूसरा नाम है। जो कोई ईश्वर और उसके पैगम्बर पर ईमान लाता है, वह ही वहाँ पहुंच सकता है। जब पहुंचने वाले स्वर्ग पहुंचते हैं तो जीवन के जितने भी भोग-विलास के साधन हैं वे सब उन्हें वहाँ प्राप्त हो जाते हैं।

९. सभी धर्मों का यही उपदेश है कि आदमी के जीवन का उद्देश्य इस 'स्वर्ग के राज्य', को प्राप्त करना और कैसे प्राप्त करना—यही होना चाहिये।

१०. "धर्म का उद्देश्य क्या है ?" इस प्रश्न का बुद्ध ने सर्वथा भिन्न उत्तर दिया है।

११. भगवान् बुद्ध ने लोगों को यह नहीं कहा कि उनके जीवन का उद्देश्य किसी काल्पनिक 'स्वर्ग' की प्राप्ति होना चाहिये। उनका कहना था कि 'धर्मका राज्य' इस पृथ्वी पर ही है और वह धर्म-पथ पर चलकर प्राप्त किया जा सकता है।

१२. उन्होंने लोगों से कहा कि यदि तुम अपने दुःख का अन्त करना चाहते हो, तो हर किसी को दूसरे के साथ न्याय-संगत, धर्म-संगत व्यवहार करना होगा। तभी यह पृथ्वी 'धर्म का राज्य' बन सकेगी।

१३. अन्य सब धर्मों की अपेक्षा तथागत के धर्म की यही अपनी विशेषता है।

१४. तथागत के धर्म में पंचशीलों पर जोर दिया गया है, अष्टांगिक-मार्ग पर जोर दिया गया है और पारमिताओं पर जोर दिया गया है।

१५. भगवान् बुद्ध ने इन सब को अपने धर्म का आधार क्यों बनाया ? क्योंकि ये एक ऐसी जीवन-विधि हैं कि केवल यह ही आदमी को सदाचारी बना सकती हैं।

१६. आदमी आदमी के प्रति जो अनुचित व्यवहार करता है, उसी में से आदमी का सारा दुःख पैदा हुआ है।

१७. आदमी का आदमी के प्रति जो अनुचित व्यवहार है, उसका नाश केवल 'धर्म' ही कर सकता है और उससे उत्पन्न दुःख का भी।

१८. इसीलिये भगवान् बुद्ध ने कहा कि 'धर्म' का काम केवल 'उपदेश' देना नहीं है बल्कि जैसे भी हो आदमी के मन में यह बात जमाना है कि सर्वोपरि आवश्यकता सदाचारी बनने की है।

१९. लोगों में सदाचार की भावना भरने के लिये, धर्म के लिये आवश्यक है कि वह कुछ दूसरे कार्य भी करे।

२०. धर्म को यह शिक्षा देनी होगी कि आदमी जान सके कि कुशल-कर्म (=शुभ-कर्म) कौन सा होता है और वह उस कुशल-कर्म को कर सके।

२१. धर्म को यह भी शिक्षा देनी होगी कि आदमी जान सके कि अकुशल (=अशुभ) क्या है और जो अकुशल है, उससे वह बच सके।

२२. धर्म के इन दो कामों के अतिरिक्त, भगवान् बुद्ध ने धर्म के दूसरे भी काम बताये हैं और जिन्हें वे बहुत महत्वपूर्ण समझते थे।

२३. पहला है आदमी के स्वभाव और उसकी प्रवृत्तियों की ट्रेनिंग। यह प्रार्थना करने से भिन्न प्रक्रिया है। यह व्रत आदि रखने से भिन्न प्रक्रिया है। यह यज्ञ-बलि से भिन्न प्रक्रिया है।

२४. देवदह सुत्त-[१] में 'जैन-धर्म' की चर्चा करते हुए भगवान् बुद्ध ने यह बात स्पष्ट की है।

२५. जैन-धर्म के संस्थापक माने जाने वाले तीर्थंकर महावीर का कहना था कि व्यक्ति जो कुछ भी दुःख या सुख अनुभव करता है, यह सब उसके पूर्वजन्म के कर्मों का परिणाम होता है।

२६. ऐसा होने पर, पूर्वजन्म के दुष्कर्मों की निर्जरा हो जाने से और नये दुष्कर्म न करने से भविष्य के लिये कुछ संग्रह नहीं होता; जब भविष्य के लिये कुछ संग्रह नहीं होता, तो दुष्कर्मों का क्षय हो जाता है; जब दुष्कर्मों का क्षय हो जाता है, तो दुःख का क्षय हो जाता है; जब दुःख का क्षय हो जाता है तो सुख दुःख अनुभव करने की शक्ति (=वेदना) का क्षय हो जाता है। जब वेदना का क्षय हो जाता है तो सारे दुःख का मूलोच्छेद हो जाता है।

२७. यही निगण्ठनाथ की शिक्षा (=जैन-धर्म) थी।

२८. इस पर तथागत ने यह प्रश्न किया—"क्या तुम जानते हो कि यहाँ ही और अब ही, अकुशल प्रवृत्तियों का मूलोच्छेद हो गया और कुशल-प्रवृत्ति की स्थापना हो गई?"

२९. उत्तर था— "नहीं।"

३०. तब बुद्ध ने आपत्ति की : "तो पूर्व-दुष्कर्मों की निर्जरा से और नये दुष्कर्मों के भी न करने से क्या लाभ है, यदि चित्त को इसका अभ्यास नहीं है कि वह अकुशल-प्रवृत्ति को कुशल-प्रवृत्ति में बदल सके।"

३१. उनके मत में किसी भी धर्म की यह सबसे भारी कमी थी। शुभ-प्रवृत्ति या शुभ-संस्कार ही किसी के स्थायी रूप से अच्छा बने रहने की सबसे बड़ी गारण्टी है।

३२. यही कारण है कि बुद्ध ने चित्त की साधना को प्रथम स्थान दिया है, जो कि संस्कारों को सुधारने का ही दूसरा नाम है।

३३. दूसरी बात जिसे उन्होंने विशेष महत्व दिया वह यह है कि आदमी में इस बात का साहस हो कि चाहे वह अकेला ही हो तब भी उचित मार्ग से विचलित न हो।

३४. सल्लेख-सुत्त-[३] में तथागत ने इसी बात पर जोर दिया है।

३५. उन्होंने कहा है :–

३६. "तुम्हें अपने मन को निर्मल बनाने के लिये निश्चय करना चाहिये कि चाहे दूसरे लोग हानि करें, मैं हानि नहीं करूंगा।

३७. "चाहे दूसरे लोग हिंसा करें, मैं हिंसा नहीं करूंगा।

३८. "चाहे दूसरे लोग चोरी करें, मैं चोरी नहीं करूंगा।

३९. "चाहे दूसरे लोग श्रेष्ठ जीवन व्यतीत न करें, मैं श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करूंगा।

४०. "चाहे दूसरे लोग झूठ बोलें, चुगली खावें, कठोर बोले अथवा व्यर्थ बकवास करें, मैं नहीं करूंगा।

४१. "चाहे दूसरे लोग लोभी हों, मैं लोभ नहीं करूंगा।

४२. "चाहे दूसरे लोग द्वेष करें, मैं द्वेष नहीं करूंगा।

४३. "चाहे दूसरे लोग मिथ्या-दृष्टि हों, मिथ्या-संकल्प वाले हों, मिथ्या वाणी वाले हों, मिथ्या-कर्मान्त वाले हों, मिथ्या-समाधिवाले हों; मैं सम्यक-दृष्टि होऊंगा, सम्यक्-संकल्प वाला होऊंगा, सम्यक्-वाणी, सम्यक्-कर्मान्त, सम्यक्-आजीविका, सम्यक्-व्यायाम, सम्यक्-स्मृति तथा सम्यक्-समाधि वाला होऊंगा।

४४. "चाहे दूसरे सत्य के विषय में भी गलती पर हों, मुक्ति के विषय में भी गलती पर हों, मैं सत्य और मुक्ति दोनों विषयों में गलती पर न होऊंगा।

४५. "चाहे दूसरे आलस्य और तन्द्रा से युक्त हों, मैं आलस्य और तन्द्रा से मुक्त रहूंगा।

४६. "चाहे दूसरे उद्धत स्वभाव के हों, मैं विनम्र स्वभाव का रहूंगा।

४७. "चाहे दूसरे विचिकित्सा-युक्त हों, मैं विचिकित्सा से मुक्त रहूंगा।

४८. "चाहे दूसरे क्रोधी हों, द्वेषी हों, ईर्ष्यालु हों, कंजूस हों, लोभी हों, ढोंगी हों, ठग हों, बाधक हों, उद्धत हों, दुस्साहसी हों, कुसंगति वाले हों, ढीले-ढाले हों, अविश्वासी हों, निर्लज्ज हों, अधार्मिक हों, अशिक्षित हों, सुस्त हो, चकित हों तथा मूर्ख हों, मैं इन सबके विरुद्ध होऊंगा।

४९. "चाहे दूसरे लोग लौकिक वस्तुओं से चिपटे रहें, मैं जो लौकिक वस्तुऐं नहीं हैं उनसे चिपटूंगा और परित्याग-शील रहूंगा।"

५०. "चुन्द ! वाणी और कर्म का तो कहना ही क्या, विज्ञान भी चेतना से प्रभावित होता है। इसलिये मैं कहता हूँ कि चुन्द ! इन सभी संकल्पों के सम्बन्ध में जो मैंने बताये हैं, दृढ़-निश्चयी होना चाहिये।"

५१. भगवान् बुद्ध के अनुसार यही धर्म का उद्देश्य है।

(ख) धर्म तभी सद्धर्म कहला सकता है, जब वह प्रज्ञा की वृद्धि करे

१. धर्म तभी सद्धर्म है जब वह सभी के लिये ज्ञान का द्वार खोल दे

१. ब्राह्मणी सिद्धान्त था कि सभी ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। यह अनिवार्य तौर पर चन्द लोगों के लिये ही सीमित रहना चाहिये।

२. उन्होंने केवल ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों के लिये ज्ञान-प्राप्ति का द्वार खुला रखा। लेकिन इन तीन-वर्गों के भी केवल पुरुष-वर्ग के ही लिये ज्ञान-प्राप्ति का द्वार खुला था।

३. तमाम स्त्रियां, चाहे वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्ग की ही क्यों न हों और तमाम शूद्र—पुरुष तथा स्त्रियां दोनों—ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते थे। वे साक्षर तक नहीं हो सकते थे।

४. भगवान् बुद्ध ने ब्राह्मणों के इस अत्यन्त निर्दयतापूर्ण सिद्धान्त के विरुद्ध विद्रोह किया।

५. उनका कहना था कि ज्ञान-प्राप्ति का द्वार सभी के लिये खुला रहना चाहिये—पुरुषों के लिये भी और स्त्रियों के लिये भी।

६. बहुत से ब्राह्मणों ने उनसे शास्त्रार्थ करने का प्रयास किया। ब्राह्मण लोहिच्च के साथ तथागत का जो वाद-विवाद हुआ उससे उनके विचारों पर बड़ा प्रकाश पड़ता है।

७. महान् भिक्षुसंघ सहित चारिका करते करते भगवान् बुद्ध जब एक बार कोसल जनपद में से गुजर रहे थे, तो वे एक बार शाल-वृक्षों से घिरे हुए सालवतिका नामक ग्राम में पहुंचे।

८. उस समय सालवतिका खूब आबाद था। घास, जंगल और धन-धान्य की कमी न थी। कोशल नरेश प्रसेनजित् ने वह गाँव लोहिच्च ब्राह्मण को दे रखा था। उस गांव पर उसका वैसा ही अधिकार था, मानो वह वहां का राजा हो।

९. लोहिच्च ब्राह्मण का मत था कि यदि कोई श्रमण या ब्राह्मण विद्या प्राप्त कर ले तो उसे किसी स्त्री या शूद्र को उस विद्या का दान नहीं करना चाहिये।

१०. तब लोहिच्च ब्राह्मण ने सुना कि तथागत सालवतिका में ठहरे हुए हैं।

११. यह सुनकर उसने भेसिक नामक नाई को बुलाया और कहा :— "भले भेसिक ! आ और जहाँ श्रमण गौतम ठहरे हैं जहाँ जा और जाकर उनका कुशल-समाचार पूछ। तदनन्तर भिक्षुसंघ सहित तथागत को कल के भोजन के लिये लोहिच्च ब्राह्मण का निमंत्रण दे आ।"

१२. नाई ने कहा—"बहुत अच्छा।"

१३. लोहिच्च ब्राह्मण का कथन स्वीकार कर भेसिक नाई ने वही किया जो उसे करने के लिये कहा गया था। तथागत ने मौन रहकर उसकी प्रार्थना स्वीकार की।

१४. दूसरे दिन प्रातःकाल चीवर धारण कर, पात्र-चीवर ले, भिक्षुसंघ सहित तथागत सालवतिका पधारे।

१५. लोहिच्च ब्राह्मण ने भेसिक नाई को ही तथागत को लाने के लिये भेजा था। वह कदम-ब-कदम तथागत के पीछे पीछे चला आ रहा था। रास्ते में उसने तथागत को बताया कि लोहिच्च ब्राह्मण की यह मिथ्या-दृष्टि है कि किसी स्त्री या शूद्र को विद्या नहीं देनी चाहिये।

१६. "भेसिक ! ऐसा हो सकता है। भेसिक ! ऐसा हो सकता है", तथागत ने कहा।

१७. भगवान् बुद्ध लोहिच्च ब्राह्मण के निवासस्थान पर पहुंचे और बिछे आसन पर बैठे।

१८. तब लोहिच्च ब्राह्मण ने भिक्षुसंघ सहित तथागत को अपने हाथ—भोजन से—सब प्रकार के मधुर खाद्य-भोज्य से—संतर्पित किया।

१९. जब तथागत भोजन कर चुके और भोजनानन्तर उनके हाथ तथा उनका पात्र भी धोया जा चुका, तो लोहिच्च ब्राह्मण एक नीचा आसन लेकर तथागत के पास बैठ गया।

२०. इस प्रकार बैठे हुए उस लोहिच्च ब्राह्मण से तथागत ने पूछा—"क्या यह सत्य है, जैसा लोग कहते हैं कि तुम्हारा यह मत है कि स्त्रियों तथा शूद्रों को विद्या नहीं पढ़ानी चाहिये ?"

२१. लोहिच्च का उत्तर था —"गौतम ! ऐसा ही है।"

२२. "अच्छा लोहिच्च ! अब तुम क्या सोचते हो ? क्या तुम सालवतिका के मालिक नहीं हो ?" "गौतम ! ऐसा ही है।"

२३. "लोहिच्च ! अब उदाहरण के लिये समझो कि एक आदमी कहे—'लोहिच्च ब्राह्मण का सालवतिका पर अधिकार है। उसे ही सालवतिका से प्राप्त तमाम कर और सालवतिका की समस्त उपज का आनन्द लेना चाहिये। किसी दूसरे के लिये कुछ नहीं छोड़ना चाहिये।' तो इस प्रकार की बात कहने

वाला आदमी क्या उन लोगों के लिये खतरनाक नहीं होगा, जो तुम पर निर्भर करते हैं ?"

२४. "गौतम ! वह उनके लिये खतरनाक होगा।"

२५. "तो क्या ऐसा खतरनाक आदमी उनका हितचिन्तक समझा जायगा ?"

२८. लोहिच्च बोला :— "नहीं, ऐसा आदमी उनका हितचिन्तक नहीं होगा।"

२७. "जब वह उनकी हितचिन्ता नहीं करेगा, तो क्या वह उनका मित्र होगा वा शत्रु ?"

२८. "गौतम ! शत्रु।"

२९. "तो जो किसी को किसी का शत्रु बनाये, ऐसा सिद्धान्त ठीक है या ग़लत ?"

३०. "गौतम ! यह ग़लत सिद्धान्त है।"

३१. "लोहिच्च ! अब तुम क्या सोचते हो ? क्या काशी और कोसल जनपद राजा प्रसेनजित् के अधिकार में नहीं हैं ?"

३२. "गौतम ! हैं।"

३३. "लोहिच्च ! अब उदाहरण के लिये समझो कि एक आदमी कहे: 'कोसल-नरेश प्रसेनजित् का काशी और कोसल पर अधिकार है। उसे ही काशी-कोसल से प्राप्त तमाम कर और काशी-कोसल की समस्त उपज का आनन्द लेना चाहिये। किसी दूसरे के लिये कुछ नहीं छोड़ना चाहिये।' तो इस प्रकार की बात कहने वाला आदमी क्या उन सब लोगों के लिये जो राजा प्रसेनजित् पर निर्भर करते हैं—तुम और दूसरे सब लोग—खतरनाक नहीं होगा ?"

३४. "गौतम ! वह खतरनाक होगा।"

३५. "तो क्या ऐसा खतरनाक आदमी उनका हितचिन्तक समझा जायगा ?"

३६. लोहिच्च बोला—"नहीं, ऐसा आदमी उनका हितचिन्तक नहीं होगा।"

३७. "जब वह उनकी हितचिन्ता नहीं करेगा, तो क्या वह उनका मित्र होगा वा शत्रु ?"

३८. "गौतम ! शत्रु !"

३९. "तो जो किसी को किसी का शत्रु बनाये, ऐसा सिद्धान्त ठीक है या गलत है ?"

४०. "गौतम ! ऐसा सिद्धान्त गलत है।"

४१. "लोहिच्च ! तो तुम यह बात स्वीकार करते हो कि जो यह कहे कि क्योंकि सालवतिका पर तुम्हारा अधिकार है, इसलिये सालवतिका के तमाम कर और सारी उपज का तुम्हें ही उपभोग करना चाहिये, किसी दूसरे के लिये कुछ नहीं छोड़ना चाहिये; और जो यह कहे कि क्योंकि काशी और कोसल जन-पद

पर राजा प्रसेनजित् का अधिकार है, इसलिये राजा प्रसेनजित् को ही काशी कोसल के तमाम कर और सारी उपज का उपभोग करना चाहिये, किसी दूसरे के लिये कुछ नहीं छोड़ना चाहिये; तो ऐसा आदमी उन सब लोगो के लिये जो तुभ पर निर्भर करते हैं, अथवा उन सब लोगों के लिये जो तुम्हारे सहित कोसल-नरेश प्रसेनजित् पर निर्भर करते हैं खतरनाक नहीं होगा ? जो दूसरों के लिये खतरनाक होंगे वे उनके हितचिन्तक नहीं हो सकते। वे उनके शत्रु हो सकते हैं। और जो सिद्धान्त किन्हीं को किसी का शत्रु बनाये, वह गलत सिद्धान्त है।

४२. "तो लोहिच्च ! जो आदमी यह कहता है कि स्त्रियों और शूद्रों को विद्या नहीं देनी चाहिये, वह आदमी भी उस आदमी के ही समान है।

४३. "इसी प्रकार ऐसा आदमी उन दूसरों के पथ में रोड़े अटकाने वाला होगा और उनका हितचिंतक नहीं होगा।

४४. "इसी प्रकार ऐसा आदमी उनका हितचिंतक न होने के कारण उनका शत्रु हो जायगा; और जो सिद्धान्त किसी को किसी का शत्रु बनाये यह गलत सिद्धान्त है।"

२. धर्म तभी सद्धर्म है जब वह यह भी शिक्षा देता है कि केवल 'विद्वान' होना पर्याप्त नहीं, इससे आदमी 'पण्डिताऊपन' की ओर अग्रसर हो सकता है

१. एक बार जब भगवान् बुद्ध कौसाम्बी के "सुस्वर" विहार में ठहरे हुए, एकत्रित लोगों को धर्मोपदेश दे रहे थे, उस समय वही कौसाम्बी में ही एक ब्रह्मचारी रहता था।

२. उस ब्रह्मचारी को अभिमान था कि उस जैसा शास्त्रों का जानकार कोई नहीं। क्योंकि वह किसी दूसरे को शास्त्रार्थ करने में अपने जैसा नहीं समझता था, इसलिये वह जहां कहीं जाता अपने साथ एक जलती हुई मशाल केले जाता था।

३. एक दिन किसी नगर के एक साधारण आदमी ने उसके इस विचित्र आचरण का कारण पूछा। उसका उत्तर था :–

४. "संसार में इतना अधिक अन्धकार है, लोग इतने अधिक पथ-भ्रष्ट हैं कि मैं जहां तक उन्हें रास्ता दिखा सकता हूँ, वहां तक रास्ता दिखाने के लिये यह मशाल साथ लिये घूमता हूँ।"

५. तथागत ने यह सुना तो उस ब्रह्मचारी को सम्बोधित किया "अरे ! यह मशाल किस मतलब के लिये है ? यह मशाल लिये तुम कहां घूमते हो ?"

६. ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया:—"सभी आदमी अज्ञान और अन्धकार से इतने घिरे हैं कि मै उन्हें रास्ता दिखाने के लिये यह मशाल लिये फिरता हूँ।"

७. तब भगवान् बुद्ध ने उसे पूछा—"तो क्या धर्म ग्रन्थों में जिन चार प्रकार की विद्याओं—शब्द-विद्या, नक्षत्र-विद्या, राज-विद्या तथा युद्ध-विद्या—का उल्लेख है, तुम उन सबके जानकार हो ?"

८. ब्रह्मचारी को मजबूर होकर यह मानना पड़ा कि उसे इनकी जानकारी नहीं है। उसने अपनी मशाल फेंक दी। तब भगवान् बुद्ध ने कहा—

९. "यदि कोई आदमी चाहे पण्डित हो और चाहे अपण्डित, दूसरों को मूर्ख समझकर उनसे घृणा करता है तो वह उस अन्धे की तरह है जो स्वयं अन्धा होकर दूसरों को मशाल दिखाता फिरता है।"

३. धर्म तभी सद्धर्म है जब वह सिखाता है कि जिस चीज की आवश्यकता है वह 'प्रज्ञा' है

१. ब्राह्मण 'विद्या' को ही बहुत बड़ी बात समझते थे। आदमी चाहे शीलवान हो और चाहे न हो किन्तु यदि वह 'विद्वान' है, तो उनकी दृष्टि में वह 'पूज्य' था।

२. उन्होंने कहा है कि राजा तो अपने देश में ही पूजा जाता है किन्तु विद्वान सर्वत्र पूजित होता है, इसका मतलब था कि 'विद्वान' राजा से बढ़कर है।

३. तथागत ने 'प्रज्ञा' को 'विद्या' से भिन्न वस्तु माना है।

४. कहा जा सकता है कि ब्राह्मणों ने भी 'प्रज्ञा' और 'विद्या' को एक नहीं माना।

५. यह सही हो सकता है किन्तु भगवान् बुद्ध की 'प्रज्ञा' की कल्पना में और ब्राह्मणों की 'प्रज्ञा' की कल्पना में जमीन-आसमान का अन्तर है।

६. तथागत ने अंगुत्तर-निकाय में आये अपने एक प्रवचन में इस भेद को बहुत अच्छी तरह स्पष्ट किया है।

७. एक बार भगवान् बुद्ध राजगृह के समीप वेळुवनाराम के 'कलन्दक-निवाप' में ठहरे हुए थे।

८. उस समय मगध का एक बड़ा अमात्य वर्षकार ब्राह्मण भगवान् बुद्ध के दर्शनार्थ आया। कुशल-क्षेम पूछ चुकने पर वह जाकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठकर वर्षकार ब्राह्मण ने भगवान् बुद्ध को कहा—

९. "श्रमण गौतम। यदि किसी आदमी में ये चार गुण हैं, तो हम उसे बड़ा विद्वान समझते हैं, बड़ा आदमी मानते हैं। कौन से हैं वे चार गुण ?

१०. "श्रमण गौतम ! वह (१) विज्ञ होता है। जो कुछ वह सुनता है, सुनते ही वह उसके अर्थ को जानता है। वह कह सकता है कि 'इस कथन का यह अर्थ है।' (२) उसकी स्मरण-शक्ति अच्छी होती है। वह बहुत पुरानी कही गई या की गई बात को याद रख सकता है।

११. "वह (३) अपने गृहस्थी के कार्यों में कुशल होता है, (४) वह यह जानता है कि क्या करना योग्य होगा, क्या व्यवस्था उचित होगी ?

१२. "श्रमण गौतम ! यदि किसी आदमी में ये चार गुण हैं, तो हम उसे बड़ा विद्वान समझते हैं, बड़ा आदमी मानते हैं। अब हे श्रमण गौतम ! यदि आप मेरे कथन का समर्थन करना योग्य समझें तो समर्थन करें, खंडन करना योग्य समझें तो खण्डन करें।

१३. "ब्राह्मण ! मैं न तुम्हारा समर्थन करता हूँ और न विरोध करता हूँ। मैं उस आदमी को बड़ा विद्वान समझता हूँ, जिस में ये चार गुण हैं जो कि तुम्हारे बताये चार गुणों से सर्वथा भिन्न हैं।

१४. "हे ब्राह्मण ! एक आदमी बहुत जनों के हित के लिये होता है, बहुत जनों के कल्याण के लिये होता है। उसके कारण बहुत से आदमी सुन्दर, हितकर आर्य-पथ के अनुगामी हैं।

१५. "वह जिस विषय में मन को लगाना चाहता है, उस विषय में वह मन को लगा सकता है; जिस विषय में मन को नहीं लगाना चाहता उस विषय में वह मन को उधर जाने से रोक सकता है।

१६. "जिस संकल्प को वह मन में उत्पन्न होने देना चाहता है, उस संकल्प को मन में उत्पन्न होने देता है, जिस संकल्प को मन में उत्पन्न होने देना नहीं चाहता उस संकल्प को मन में उत्पन्न होने नहीं देता। इस प्रकार उसे अपने विचारों पर अधिकार होता है।

१७. "वह जब चाहे बिना कठिनाई के, बिना तकलीफ के चारों लोकोत्तर ध्यानों को प्राप्त कर सकता है जो इसी जीवन में भी सुख-विहार के लिये हैं।

१८. "और हे ब्राह्मण ! वह इसी जन्म में आस्रवों का क्षय कर, आस्रव-क्षय ज्ञान को प्राप्त हो, चित्त की विमुक्ति को प्राप्त करता है, प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति को प्राप्त कर वह इसमें विहार करता है।

१९. "इसलिये हे ब्राह्मण ! न मैं तुम्हारा समर्थन करता हूँ और न विरोध करता हूँ ! मैं उस आदमी को बड़ा 'विद्वान' आदमी समझता हूँ, मैं उस आदमी को 'बड़ा' आदमी समझता हूँ जिस में कि ये चार गुण हों, जो तुम्हारे बताये गुणों से सर्वथा भिन्न है।"

२०. "श्रमण गौतम ! यह अद्भुत है। श्रमण गौतम ! यह अद्भुत है। आपने यह कितनी सुन्दर व्याख्या की है।

२१. "मैं स्वयं समझता हूँ कि श्रमण गौतम में ये चारों गुण हैं। श्रमण गौतम बहुत जनों का हित करने में रत हैं। श्रमण गौतम बहुत जनों के कल्याण में रत हैं। श्रमण गौतम द्वारा बहुत से आदमी सुन्दर, हितकर आर्य-मार्ग में प्रतिष्ठित हुए हैं।

२२. "श्रमण गौतम जिस विषय में अपने मन को लगाना चाहते हैं, उस विषय में मन को लगा सकते हैं... इस प्रकार उन्हें अपने विचारों पर अधिकार होता है।

२३. "निश्चय से श्रमण गौतम जब चाहें बिना कठिनाई के, बिना तकलीफ के चारों ध्यानों को...... निश्चय से श्रमण गौतम इसी जन्म में आस्रवों का क्षय कर, आस्रव क्षय ज्ञान को प्राप्त हो, चित्त की विमुक्ति को प्राप्त करते हैं, प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति को; इसे प्राप्त कर वह इसमें विहार करते हैं।

२४. यह बिल्कुल साफ शब्दों में भगवान् बुद्ध द्वारा प्रतिपादित 'प्रज्ञा' में और ब्राह्मणों द्वारा प्रतिपादित 'प्रज्ञा' में भेद स्पष्ट कर दिया गया है।

२५. यहां यह भी स्पष्ट हो गया कि भगवान् बुद्ध 'विद्या' की अपेक्षा 'प्रज्ञा' को क्यों अधिक महत्व देते थे।

(ग) धर्म तो तभी सद्धर्म कहला सकता है, जब वह मैत्री की वृद्धि करे

१. धर्म तभी सद्धर्म है जब वह यह शिक्षा देता है कि केवल 'प्रज्ञा' भी अपर्याप्त है: इसके साथ शील अनिवार्य है

१. प्रज्ञा आवश्यक है। लेकिन शील अधिक आवश्यक है। शील के बिना प्रज्ञा खतरनाक है।

२. अकेली 'प्रज्ञा' खतरनाक है।

३. प्रज्ञा आदमी के हाथ की दुधारी तलवार है।

४. शीलवान आदमी के हाथ में होने पर यह खतरे में पड़े हुए किसी आदमी की रक्षा कर सकती है।

५. लेकिन शील-रहित आदमी के हाथ में होने पर यह किसी की हत्या भी करा सकती है।

६. इसलिये प्रज्ञा से भी शील का महत्व अधिक है।

७. प्रज्ञा विचार-धर्म है, सम्यक् विचार करना। शील आचार-धर्म है, सम्यक् आचरण करना।

८. भगवान् बुद्ध ने शील के पांच मूलाधार स्वीकार किये हैं।

९. एक का सम्बन्ध जीव-हिंसा से है।

१०. दूसरे का सम्बन्ध चोरी से है।

११. तीसरे का सम्बन्ध काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार से है।

१२. चौथे का सम्बन्ध झूठ बोलने से है।

१३. पांचवें का सम्बन्ध नशीले पदार्थ सेवन करने से है।

१४. इन पांचों मूलाधारों को लेकर तथागत ने लोगों को जीव-हत्या से विरत रहने के लिये कहा, चोरी से विरत रहने के लिये कहा, कामभोग सम्बन्धी मिथ्याचार से विरत रहने के लिये कहा, झूठ बोलने से विरत रहने के लिये कहा तथा शराब आदि नशीले पदार्थ ग्रहण करने से विरत रहने के लिये कहा।

१५. भगवान् बुद्ध ने 'शील' को 'विद्या' के भी ऊपर क्यों स्थान दिया—यह स्पष्ट ही है।

१६. ज्ञान का उपयोग आदमी के शील के अनुसार ही होकर रहेगा। शील के बिना ज्ञान का कोई मूल्य नहीं। यही उनके कथन का सार है।

१७. एक दूसरे स्थान पर उन्होंने कहा है "संसार में शील के समान कुछ नहीं।

१८. "शील ही आरम्भ है, शील ही शरण-स्थान है, शील ही समस्त कल्याण की जननी है। शील ही सर्वप्रथम है। इसलिये अपने शील को शुद्ध करो।"

२. धर्म तभी सद्धर्म है जब वह यह शिक्षा देता है कि प्रज्ञा और शील के साथ-साथ करुणा का होना भी अनिवार्य है

१. इस प्रश्न पर कि बौद्ध-धर्म की आधार-शिला क्या है, कुछ मतभेद रहा है।

२. क्या अकेली प्रज्ञा बौद्ध-धर्म की आधार-शिला है? क्या अकेली करुणा बौद्ध-धर्म की आधार-शिला है?

३. इस मत-भेद के कारण भगवान् बुद्ध के अनुयायी दो पक्षों में विभक्त हो गये थे। एक पक्ष का मत था कि अकेली 'प्रज्ञा' ही भगवान् बुद्ध के धर्म की आधार-शिला है। दूसरे पक्ष का कहना था कि अकेली 'करुणा' ही बौद्ध-धर्म की आधार-शिला है।

४. ये दोनों पक्ष अभी भी विभक्त हैं।

५. यदि 'बुद्ध-वचनों' को लेकर विचार किया जाय तो दोनों पक्ष गलत प्रतीत होते हैं।

६. इसमें कोई मतभेद नहीं है कि बुद्ध-धर्म के दो स्तम्भों में से एक 'प्रज्ञा' है।

७. प्रश्न यही है कि करुणा भी दूसरा स्तम्भ है वा नहीं।

८. करुणा भी भगवान् बुद्ध के धर्म का एक स्तम्भ है—यह विवाद से परे की बात है।

९. इसके समर्थन में 'बुद्ध-वचन' उद्धृत किया जा सकता है।

१०. पुराने समय में गान्धार देश में एक बहुत ही भयानक बीमारी से पीड़ित कोई साधु था। वह जहां कहीं बैठता, उसी जगह को गंदा कर देता।

११. वह एक ऐसे विहार में था, जहां कोई उसकी सहायता न करता था।

१२. पांच सौ भिक्षुओं के साथ तथागत आवश्यक बर्तन तथा गर्म पानी आदि लेकर वहां पहुँचे।

१३. वह स्थान इतना दुर्गन्धपूर्ण था कि सभी भिक्षुओं को उस साधु से भी घृणा हो गई। लेकिन तथागत ने शक्रदेव से पानी आदि डलवाकर उस रोगी को अपने हाथ से स्नान कराया और उसकी सेवा की।

१४. उस समय पृथ्वी काँपी और वह सारा स्थान एक अलौकिक प्रकाश से भर गया। तब राजा, उसके मंत्री, आकाश-स्थित देवता, नाग आदि सभी वहां एकत्रित हुए और तथागत की पूजा की।

१५. जितने भी वहां एकत्रित हुए थे, उन सभी को आश्चर्य्य हुआ, इसलिये उन्होंने पूछा कि इतने ऊंचे होकर आपने इतना सामान्य काम क्यों किया? तथागत ने समझाया :—

१६. "संसार में आने का तथागत का उद्देश्य ही यह है कि दरिद्रों, असहायों और अरक्षितों का मित्र बनना। जो रोगी हों—श्रमण हों वा दूसरे कोई भी हों—उनकी सेवा करना। दरिद्रों, अनाथों और बूढ़ों की सहायता करना तथा दूसरों को ऐसा करने की प्रेरणा देना।"*

३. धर्म तभी सद्धर्म हो सकता है, जब यह शिक्षा दे कि करुणा से भी अधिक मैत्री की आवश्यकता है

१. बुद्ध ने 'करुणा' को ही धर्म की 'इति' नहीं कहा।

२. 'करुणा' का अर्थ दुखी आदमियों के प्रति दया किया जाना है। बुद्ध ने और आगे बढ़कर 'मैत्री' की शिक्षा दी। 'मैत्री' का मतलब है प्राणि-मात्र के प्रति दया।

३. तथागत चाहते थे कि आदमी दुःखी मनुष्यों के प्रति 'करुणा' की भावना रखने से भी और आगे बढ़कर प्राणि-मात्र के प्रति मैत्री की भावना रखे।

४. जिस समय भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में विराजमान थे, उस समय अपने एक प्रवचन में उन्होंने यह बात अच्छी तरह से स्पष्ट कर दी है।

५. मैत्री के बारे में बोलते हुए भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को कहा—

६. "मान लो एक आदमी पृथ्वी खोदने के लिये आता है, तो क्या पृथ्वी उसका विरोध करती है?"

७. भिक्षुओं ने उत्तर दिया—"भगवान्! नहीं।"

८. "मान लो एक आदमी लाख और दूसरे रंग लेकर आकाश में चित्र बनाना चाहता है। क्या तुम समझते हो कि वह बना सकेगा ?"

९. "भगवान् ! नहीं ।"

१०. "क्यों ?" भिक्षु बोले—"क्योंकि आकाश काला नहीं है ।"

११. "इसी प्रकार तुम्हारे मन में कुछ कालिख नहीं होनी चाहिये, जो कि तुम्हारे राग-द्वेष का परिणाम है ।"

१२. "मान लो एक आदमी जलती हुई मशाल लेकर गंगा नदी में आग लगाने आता है, तो क्या वह आग लगा सकेगा ?"

१३. "भगवान् ! नहीं ।"

१४. "क्यों ?" भिक्षुओं ने उत्तर दिया—"क्योंकि गंगा-जल में जलने का गुण नहीं है ।"

१५. अपना प्रवचन समाप्त करते हुए तथागत ने कहा—भिक्षुओं ! जैसे पृथ्वी आघात अनुभव नहीं करती और विरोध नहीं करती, जिस प्रकार हवा में किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं होती, जिस प्रकार गंगा नदी का जल अग्नि से अप्रभावित रहकर बहता रहता है; इसी प्रकार हे भिक्षुओ ! यदि तुम्हारा कोई अपमान भी कर दे, यदि तुम्हारे साथ कोई अन्याय भी करे तो भी तुम अपने विरोधियों के प्रति मैत्री की भावना अपनाये रखो ।

१६. "भिक्षुओ ! मैत्री की धारा हमेशा प्रवाहित रहनी चाहिये । तुम्हारा मन पृथ्वी की तरह दृढ़ हो, वायु की तरह स्वच्छ हो और गंगा नदी की तरह गम्भीर हो । यदि तुम मैत्री का अभ्यास रखोगे तो कोई तुम्हारे साथ कैसा भी अप्रीतिकर व्यवहार करे, तुम्हारा चित्त विचलित नहीं होगा । क्योंकि विरोधी लोग शीघ्र ही थक जायेंगे ।

१७. "तुम्हारी मैत्री विश्व की तरह व्यापक होनी चाहिये और तुम्हारी भावनायें असीम होनी चाहिये, जिनमें कहीं द्वेष का लेश भी न हो ।

१८. "मेरे धर्म के अनुसार 'करुणा ही पर्याप्त नहीं है, आदमी में 'मैत्री' होनी चाहिये ।"

१९. अपने प्रवचन में भगवान् बुद्ध ने एक कथा सुनाई जो याद रखने के लायक है ।[६]

२०. "एक समय श्रावस्ती में विदेसिका नाम की एक सम्पन्न स्त्री रहती थी, जिसकी ख्याति थी कि वह बड़ी सुशील है, बड़ी शान्त है । उसकी एक नौकरानी थी, जिसका नाम काली था, बड़ी दक्ष, बहुत सुबह उठकर अपना काम करने वाली । एक दिन काली ने सोचा, 'क्या मेरी मालकिन को, जिसकी इतनी ख्याति है, क्रोध आता ही नहीं, वा वह अपना क्रोध प्रगट नहीं करती ? अथवा मैं अपना काम इतनी अच्छी तरह करती हूँ कि उसका क्रोध अप्रकट रहता है ?

२१. इसलिये दूसरे दिन वह विलम्ब से उठी। मालकिन बोली—"काली! काली!" लड़की बोली—"हां, मालकिन!" "तू इतनी देर करके क्यों उठी?" "मालकिन! कुछ बात नहीं।" "दुष्ट लड़की! कहती है, कुछ बात नहीं" कहते हुए मालकिन गुस्से के मारे धुधवाने लगी।

२२. "यद्यपि यह क्रोध को प्रकट नहीं होने देती, किन्तु भीतर क्रोध तो है। क्योंकि मैं अपना काम बहुत अच्छी तरह करती हूँ, इसीलिये इसका क्रोध अप्रकट रहता है। मैं इसकी और परीक्षा करूंगी"—लड़की ने सोचा। इसलिये दूसरे दिन वह और भी अधिक देर करके उठी। मालकिन बोली—"काली! काली!" उत्तर दिया—"हाँ मालकिन!" "तू इतनी देर करके क्यों उठी?" "मालकिन! कुछ बात नहीं है।" "दुष्ट लड़की! कहती है कुछ बात नहीं" कहते हुए मालकिन और भी अधिक भिनभिनाई।

२३. "हां! क्रोध तो निश्चित रूप से है। लेकिन क्योंकि मैं अपना काम अच्छी तरह से करती हूँ, इसीलिये वह अप्रकट रहता है। मैं इसकी और परीक्षा करूंगी।" इसलिये अगले दिन वह और भी विशेष देर करके उठी। मालकिन चिल्लाई—"काली! काली!" लड़की बोली—"हाँ मालकिन!" "तू इतनी देरी से क्यों उठी?" "मालकिन! यह कुछ बात नहीं है।"

२४. "दुष्ट लड़की! इतनी अधिक देर से उठना, कुछ बात ही नहीं है"—इतना कहा और गुस्से में आकर मालकिन ने दरवाजे की अर्गल निकाल कर लड़की के सिर में दे मारी। लड़की के सिर से खून बहने लगा।

२५. रक्त बहते हुए अपने फूटे सिर को लेकर लड़की चिल्ला चिल्लाकर पड़ोसियों को सुना रही थी—"देखो रे लोगो, अपनी शान्त मालकिन को। देखो रे लोगो, अपनी क्रोध-रहित मालकिन को। इतनी सी बात पर कि उसका काम करने वाली लड़की देर से उठी, वह क्रोध से इतनी पागल हो गई कि दरवाजे की अर्गल निकाल कर मेरे सिर में दे मारी और उसे फोड़ दिया।"

२६. "परिणाम-स्वरूप विदेसिका मशहूर हो गई कि बड़ी अशान्त है, बड़े क्रोधी स्वभाव की है—शान्त और विनम्र तो है ही नहीं।

२७. "इसी तरह से कोई भिक्षु भी बड़ा शान्त और विनम्र रह सकता है, जब तक उसे अप्रसन्न करने वाली बात न कही जाय। लेकिन किसी भिक्षु में मैत्री है या नहीं, इसकी परीक्षा तभी होती है जब उसके विरुद्ध कोई कुछ कहता है।"

२८. इसके आगे तथागत ने कहा—"मैं उस भिक्षु को मैत्री-भाव-सम्पन्न नहीं कहता जो केवल भोजन-वस्त्र प्राप्त करने के लिये मैत्री प्रदर्शित करता है। मैं उसे ही सच्चा भिक्षु कहता हूँ जिस की मैत्री का मूल स्रोत उसका धर्म है।

२९. "भिक्षुओ! कोई भी पुण्य-कर्म मैत्री-भावना के सोलहवें हिस्से के भी बराबर नहीं है। मैत्री जो कि चित्त की विमुक्ति है, उन सबको अपने

अन्तर्गत ले लेती है—यह प्रकाशमान होती है, यह प्रदीप्त होती है, यह प्रज्ज्वलित होती है ।

३०. "इसी प्रकार भिक्षुओ ! जैसे सभी तारों का प्रकाश मिलकर भी अकेले चन्द्रमा के प्रकाश के सोलहवें हिस्से के भी बराबर नहीं; चन्द्रमा का प्रकाश प्रकाशमान होता है, प्रदीप्त होता है, प्रज्ज्वलित होता है। इसी प्रकार भिक्षुओ ! कोई भी पुण्य-कर्म मैत्री-भावना के सोलहवें हिस्से के भी बराबर नहीं है। मैत्री, जो कि चित्त की विमुक्ति है, उन सबको अपने अन्तर्गत ले लेती है—यह प्रकाशमान होती है, यह प्रदीप्त होती है, यह प्रज्ज्वलित होती है ।

३१. "और भिक्षुओ ! जैसे वर्षा ऋतु की समाप्ति पर स्वच्छ, अनभ्र आकाश में उगने वाला सूर्य, तमाम अन्धकार को विदीर्ण कर देता है; वह प्रकाशित होता है, प्रदीप्त होता है तथा प्रज्ज्वलित होता है; और जैसे रात्रि की समाप्ति पर भोर का तारा प्रकाशित होता है, प्रदीप्त होता है तथा प्रज्ज्वलित होता है; ठीक उसी प्रकार कोई भी पुण्य-कर्म मैत्री-भावना के सोलहवें हिस्से के भी बराबर नहीं है। मैत्री, जो कि चित्त की विमुक्ति है, उन सबको अपने अन्तर्गत ले लेती है—यह प्रकाशमान होती है, यह प्रदीप्त होती है, यह प्रज्ज्वलित होती है।"

(ग) धर्म तभी सद्धर्म कहला सकता है, जब वह तमाम सामाजिक भेद-भावों को मिटा दे

१. धर्म तभी सद्धर्म हो सकता है, जब एक आदमी और दूसरे आदमी के बीच की तमाम दीवारों को गिरा दे

१. एक 'आदर्श-समाज' क्या है ? ब्राह्मणों के अनुसार वेदों ने आदर्श-समाज की परिभाषा की है, और क्योंकि वेद स्वतः प्रमाण हैं और उसमें कभी कोई गलती हो ही नहीं सकती, इसलिये आदमी का 'आदर्श-समाज' वही है जो वेदों में वर्णित है।

२. वेदों में जिस 'आदर्श-समाज' का विधान किया गया है, वह 'चातुर्वर्ण्य' कहलाता है ।

३. वेदों के अनुसार इस प्रकार के समाज में तीन बातें अवश्य होनी चाहिये।

४. इसमें चार वर्ग होने चाहिये—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ।

५. इन वर्गों का आपसी सम्बन्ध क्रमिक-असमानता के सिद्धान्त पर आश्रित होना चाहिये । दूसरे शब्दों में ये तमाम वर्ग एक दूसरे के समान नहीं हो सकते। उन्हें एक दूसरे के ऊपर-नीचे होना चाहिये—सामाजिक दर्जे के बारे में, अधिकारों के बारे में तथा सुविधाओं के बारे में ।'

६. सबसे ऊपर ब्राह्मण; उनके नीचे क्षत्रिय किन्तु वैश्यों से ऊपर, उनके भी नीचे वैश्य किन्तु शूद्रों से ऊपर। सबसे नीचे शूद्र।

७. चातुर्वर्ण्य से सम्बन्ध रखनेवाली तीसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि हर वर्ग को अपने अपने पेशे में लगा रहना होगा। ब्राह्मण का काम है पढ़ना, पढ़ाना और धार्मिक संस्कार करना। क्षत्रिय का काम है शस्त्र धारण करना और लड़ना। वैश्य का काम है व्यापार तथा दूसरे कारोबार करना। शूद्र का काम है ऊपर के तीनों वर्गों की सेवा करना—उनके सभी मैले-कुचैले काम करना।

८. कोई एक वर्ग दूसरे वर्गों का पेशा नहीं कर सकता। वह उसके पेशे की सीमा में पैर नहीं रख सकता।

९. इस 'आदर्श-समाज' के सिद्धान्त को ब्राह्मणों ने ऊंचा दर्जा दिया और लोगों में इसका प्रचार किया।

१०. यह स्पष्ट ही है कि इस चातुर्वर्ण्य के सिद्धान्त की "आत्मा" ही है असमानता। यह सामाजिक असमानता किसी सामाजिक-खेत की अनायास उगी हुई उपज नहीं है। असमानता ब्राह्मणवाद का शास्त्र-सम्मत सिद्धान्त है।

११. भगवान् बुद्ध ने इसका जड़-मूल से विरोध किया।

१२. भगवान् बुद्ध जाति-वाद के सबसे बड़े विरोधी थे। वे समानता के सबसे बड़े समर्थक थे।

१३. जातिवाद और असमानता का समर्थन करने वाला एक भी तर्क ऐसा नहीं है, जिसका उन्होंने खण्डन नहीं किया।

१४. ऐसे ब्राह्मण बहुत थे, जिन्होंने इस विषय में बुद्ध से विवाद करने का प्रयास किया। लेकिन तथागत ने उन्हें एकदम मौन कर दिया।

१५. अश्वलायन सुत्त[१] में कथा है कि एक बार सभी ब्राह्मणों ने इकट्ठे होकर अश्वलायन ब्राह्मण को भगवान् बुद्ध के पास भेजा कि वह जाकर उनसे जातिवाद के बारे में शास्त्रार्थ करे।

१६. अश्वलायन भगवान् बुद्ध के सामने उपस्थित हुआ और ब्राह्मणों की श्रेष्ठता का पक्ष भगवान् बुद्ध के सामने रखा।

१७. उसने कहा—"श्रमण गौतम! ब्राह्मणों का कहना है कि ब्राह्मण ही ऊँचे वर्ग के हैं, शेष सब उनके नीचे हैं; ब्राह्मण ही शुक्ल-वर्ण हैं, शेष सब कृष्ण-वर्ण हैं, पवित्रता या शुचिता का वास केवल ब्राह्मणों में ही है, अब्राह्मणों में नहीं; केवल ब्राह्मण ही ब्रह्मा के औरस-पुत्र हैं, उसके मुख से उत्पन्न, उसके रचे हुए, उसके पैदा किए हुए तथा उसके उत्तराधिकारी। श्रमण गौतम का इस विषय में क्या कहना है?"

१८. तथागत के उत्तर ने अश्वलायन को एक बार तो हतप्रभ ही कर दिया।

१९. बुद्ध ने कहा—"अश्वलायन! क्या ब्राह्मणों की ब्राह्मण-पत्नियां ऋतु-

मती नहीं होतीं, गर्भ धारण नहीं करती और सन्तान का प्रसव नहीं करतीं ? यह होते हुए भी क्या ब्राह्मणों का कहना है कि ब्राह्मण ही ऊंचे वर्ण के हैं. . . . . ब्राह्मण ही ब्रह्मा के औरस-पुत्र हैं. . . . . ब्राह्मण ही उसके उत्तराधिकारी हैं ?"

अश्वलायन—"यह तो ऐसा ही है, लेकिन तब भी ब्राह्मण कहते हैं कि वे ही ऊंचे वर्ण के हैं. . . . .वे ही ब्रह्मा के औरस-पुत्र हैं,. . . . . .वे ही ब्रह्मा के उत्तराधिकारी हैं ।"

२१. तब तथागत ने अश्वलायन से दूसरा प्रश्न पूछा—

२२. "अश्वलायन ! यदि एक क्षत्रिय एक ब्राह्मण कन्या से सहवास करे तो संतान मानव-संतान ही होगी अथवा उन दोनों के संयोग से कोई जानवर जन्म ग्रहण करेगा ?"

२३. अश्वलायन के पास कोई उत्तर न था ।

२४. "जहां तक नैतिक उन्नति कर सकने की बात है तो क्या एकमात्र ब्राह्मण ही अपने आप को राग-द्वेष से मुक्त कर सकता है, एक क्षत्रिय नहीं ? एक वैश्य नहीं ? एक शूद्र नहीं ?"

२५. अश्वलायन बोला—"नहीं, चारों वर्ण के लोग कर सकते हैं ।"

२६. "अश्वलायन ! क्या तुमने कभी सुना है कि यवन और कम्बोज देश में तथा अन्य पड़ोसी देशों में भी दो ही तरह के वर्ग होते है, एक आर्य (=स्वामी) दूसरे दास[१०] (=गुलाम) ; और एक आर्य दास बन सकता है, तथा एक दास आर्य ?"

२७. अश्वलायन—"हाँ, मैंने ऐसा सुना है ।"

२८. "यदि तुम्हारा चातुर्वर्ण्य एक आदर्श-समाज है तो फिर यह सभी देशों में क्यों नहीं ?"

२९. इनमें से किसी भी एक बात को लेकर अश्वलायन अपने जातिवाद और असमानता के पक्ष का समर्थन न कर सका । उसे एकदम मौन ही रह जाना पड़ा । अंत में अश्वलायन को बुद्ध का एक शिष्य ही बनना पड़ा ।

३०. वासेट्ठ नाम के एक ब्राह्मण ने तथागत की शरण ग्रहण कर ली थी । दूसरे ब्राह्मण इस बात के लिये उसे बुरा-भला कहते थे ।

३१. एक दिन वह भगवान् बुद्ध के पास गया और उन्हें जाकर वह सब सुना दिया, जो ब्राह्मण उसके बारे में कहते-सुनते थे ।

३२. वासेट्ठ ने कहा—"भगवान् ! ब्राह्मण कहते हैं कि ब्राह्मण का ही सामाजिक स्तर श्रेष्ठ है, बाकी सबका निकृष्ट है । केवल ब्राह्मण ही शुक्ल-वर्ण होता है; दूसरे वर्ण कृष्ण-वर्ण होते हैं । केवल ब्राह्मण ही शुद्ध वंशोत्पन्न हैं, अब्राह्मण नहीं, केवल ब्राह्मण ही ब्रह्मा के औरस पुत्र हैं, उसके मुंह से उत्पन्न, ब्रह्मा की संतान, ब्रह्मा द्वारा रचे गये, ब्रह्मा के उत्तराधिकारी ।

३३. "जहाँ तक तुम्हारी बात है तुमने अपने अभिजात वर्ग का त्याग करके

उस नीचे वर्ग की संगति की है। तुम उन सिरमुण्डों में शामिल हो गये हो, उन गंवारों में, उन कृष्णवर्णी लोगों में, उन शूद्रों में। तुम्हारे लिये ऐसा करना उचित नहीं। तुम्हारे लिये ऐसा करना ठीक नहीं। यह क्या है जो तुमने अपने अभिजात वर्ण का त्याग कर उस नीच वर्ग की संगति की है? तुम उन सिरमुण्डों में शामिल हो गये हो, उन गंवारों में, उन कृष्ण-वर्ण के लोगों में, उन शूद्रों में—हमारी जाति की जूतियों से उत्पन्न वर्ण में।

३४. "भगवान्! इन शब्दों में ब्राह्मण मुझे बुरा-भला कहते हैं, गाली देते हैं, किसी तरह की कोई कसर नहीं छोड़ते।"

३५. "वासेट्ठ! तो निश्चय से यदि ब्राह्मण ऐसा कहते हैं तो वह अपनी प्राचीन परम्परा को भूल गये हैं। सभी दूसरे वर्णों की स्त्रियों की तरह, ब्राह्मणियाँ भी सन्तान उत्पन्न करती तथा उसका पालन-पोषण करती देखी जाती हैं। ऐसा होने पर भी यह सभी, माता की योनि से उत्पन्न ब्राह्मण ही कहते हैं कि ब्राह्मण ब्रह्मा के औरस-पुत्र हैं, ब्रह्मा के मुंह से उत्पन्न हुए हैं, ब्राह्मण ब्रह्मा की सन्तान हैं, ब्राह्मण ब्रह्मा की रचना हैं तथा ब्राह्मण ब्रह्मा के उत्तराधिकारी हैं।-[११]

३६. एक बार एसुकारी ब्राह्मण तीन बातों को लेकर बुद्ध से शास्त्रार्थ करने गया।[१२]

३७. पहला प्रश्न जो उसने उठाया, वह पेशों के स्थायी वर्गीकरण के बारे में था। वर्गीकरण के पक्ष में बोलते हुए उसने कहा:—"मैं आप से एक प्रश्न पूछने आया हूँ। ब्राह्मणों का कहना है कि क्योंकि वे सर्वोपरि हैं, इसलिये वे किसी की सेवा नहीं करेंगे। सभी उन्हीं की सेवा करने के लिये उत्पन्न हुए हैं।

३८. "श्रमण गौतम! सेवा (=पेशों) के चार विभाग किये गये हैं—(१) ब्राह्मणों द्वारा की जाने वाली सेवा, (२) क्षत्रियों द्वारा की जाने वाली सेवा, (३) वैश्यों द्वारा की जाने वाली सेवा तथा (४) शूद्रों द्वारा की जाने वाली सेवा; किन्तु एक शूद्र की तो कोई दूसरा शूद्र ही सेवा कर सकता है। दूसरा कौन शूद्र की सेवा करेगा? श्रमण गौतम का इसके बारे में क्या मत है?"

३९. भगवान् बुद्ध ने एसुकारी ब्राह्मण से एक प्रति-प्रश्न पूछकर उसके प्रश्न का उत्तर दिया। तथागत ने कहा 'क्या सारा संसार ब्राह्मणों के इस वर्गीकरण से सहमत है?

४०. "जहाँ तक मेरी बात है न मैं यही कहता हूँ कि सभी सेवाएँ (=पेशे) की ही जानी चाहिये, न यही कहता हूँ कि सभी सेवायें (=पेशे) नहीं ही की जानी चाहिये। यदि किसी सेवा (=पेशे) के करने से आदमी की स्थिति अच्छी न होती हो, खराब होती हो तो वह सेवा (=पेशा) नहीं की जानी चाहिये; यदि किसी सेवा (=पेशे) के करने से आदमी की स्थिति खराब होने की बजाय बेहतर होती हो तो वह सेवा (=पेशा) की जानी चाहिये।

४१. इसी एक कसौटी पर क्षत्रियों, ब्राह्मणों, वैश्यों, शद्रों सभी की सेवा कसी जानी चाहिये; हर व्यक्ति को ऐसी सेवा (=पेशा) करने से इनकार करना चाहिये जो उसकी स्थिति को खराब बनाती हो, किन्तु हर व्यक्ति को ऐसी सेवा (=पेशा) करनी चाहिये जो उसकी स्थिति को अच्छा बनाती हो।

४२. चर्चा का दूसरा विषय जो एसुकारी ब्राह्मण ने उपस्थित किया, वह यही था कि आदमी के दर्जे का विचार करते समय उसकी वंश-परम्परा का भी विचार क्यों नहीं किया जाना चाहिये ?

४३. इस प्रश्न का तथागत ने यूं उत्तर दिया--"जहाँ तक वंश-परम्परा के अभिमान की बात है, एक आदमी जिस वंश में जन्म ग्रहण करता है, उससे उसका नाम-करण मात्र ही होता है कि यह क्षत्रिय-वंश में पैदा हुआ है, यह ब्राह्मण-वंश में पैदा हुआ है, यह वैश्य-वंश में पैदा हुआ है और यह शूद्र-वंश में पैदा हुआ है। जैसे, जिस प्रकार के ईंधन से आग उत्पन्न होती है, उससे उसका नाम-करण हो जाता है—यह लकड़ी की आग है, यह चैली की आग है, यह लकड़ी की गांठ की आग है और यह गोबर की आग है; इसी प्रकार आदमी के लिये सद्धर्म ही उसका वास्तविक धन है, जन्म से तो आदमी की चारों वर्णों में से किसी न किसी एक वर्ण में गिनती मात्र होती है।

४४. "न वंश-परम्परा से, न अच्छी शक्ल होने से और न धन होने से कोई आदमी अच्छा या बुरा होता है। अच्छे वंश में उत्पन्न हुआ एक आदमी भी हत्यारा होता है, चोर होता है, व्यभिचारी होता है, झूठा होता है, चुगलखोर होता है, कठोर बोलने वाला होता है, बकवास करने वाला होता है, लोभी होता है, द्वेषी होता है और मिथ्या-दृष्टि वाला होता है। इसीलिये मैं कहता हूँ कि अच्छे वंश में उत्पन्न होने से ही कोई आदमी अच्छा नहीं होता। और अच्छे वंश में उत्पन्न होने पर भी एक आदमी इन सभी दोषों से युक्त होता है। इसलिये मैं यह भी नहीं कहता हूँ कि अच्छे वंश में उत्पन्न होने से ही कोई आदमी अच्छा नहीं होता।"

४५. एसुकारी ब्राह्मण का तीसरा प्रश्न प्रत्येक वर्ग के पेशे वा जीविका के साधन के सम्बन्ध में था।

४६. एसुकारी ब्राह्मण ने तथागत से कहा—"ब्राह्मण चार तरह के जीविका के साधनों का विधान करते हैं—(१) ब्राह्मणों के लिये भिक्षा, (२) क्षत्रियों के लिये तीर-कमान, (३) वैश्यों के लिये व्यापार तथा पशु-पालन और (४) शूद्रों के लिये बैहेंगी पर (दूसरों का) धान ढोना। यदि इनमें से कोई अपना पेशा छोड़ कर किसी दूसरे का पेशा करता है तो यह उसके लिये अच्छा नहीं, ठीक वैसे ही जैसे कोई चौकीदार किसी दूसरे की सम्पत्ति पर अधिकार कर ले। श्रमण गौतम का इस बारे में क्या मत है ?"

४७. "क्या सारा संसार इस ब्राह्मणी-वर्गीकरण से सहमत है ?"

४८. एसुकारी ब्राह्मण का उत्तर था—"नहीं ।"

४९. वासेट्ठ को तथागत ने कहा था—"ऊंचे आदर्श का महत्व है, ऊंची जाति में जन्म ग्रहण करने का नहीं ।"

५०. जाति नहीं, असमानता नहीं, ऊंच-नीच-नहीं—यही तथागत की देशना थी ।

५१. "दूसरे के साथ अपने आप को एक कर दो । यही सोचो जैसे वे हैं, वैसा मैं हूँ, जैसा मैं हूँ, वैसे वे हैं ।"

२. धर्म तभी सद्धर्म है जब वह यह शिक्षा दे कि किसी आदमी के 'जन्म' से नहीं, बल्कि उसके 'कर्म' से ही उसका मूल्याङ्कन किया जाना चाहिए

१. ब्राह्मण जिस चातुर्वर्ण्य का उपदेश देते थे, उसका आधार जन्म था ।

२. जो ब्राह्मण माता-पिता के घर पैदा हो गया, वह ब्राह्मण है । जो क्षत्रिय माता-पिता के घर पैदा हो गया है, वह क्षत्रिय है । जो वैश्य माता-पिता के घर पैदा हो गया, वह वैश्य है । जो शूद्र माता-पिता के घर पैदा हो गया, वह शूद्र है ।

३. ब्राह्मणों के अनुसार आदमी अपने जन्म के ही हिसाब से छोटा-बड़ा होता है—और किसी दूसरी बात से नहीं ।

४. यह जन्माश्रित ऊँच-नीच का सिद्धान्त तथागत को उतना ही अप्रिय था, जितना चातुर्वर्ण्य का सिद्धान्त ।

५. भगवान् बुद्ध का सिद्धान्त ब्राह्मणों के सिद्धान्त से सर्वथा विरोधी था । उनका सिद्धान्त था कि किसी आदमी के 'जन्म' से नहीं, बल्कि उसके 'कर्म' से ही उसका मूल्यांकन किया जाना चाहिये ।

६. जिस अवसर पर भगवान् बुद्ध ने अपने इस सिद्धान्त का उपदेश दिया, वह अवसर भी विशेष था ।

७. एक समय भगवान् बुद्ध अनाथपिण्डक के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे । एक दिन पूर्वाह्न में उन्होंने अपना भिक्षा-पात्र लिया और भिक्षार्थ श्रावस्ती में प्रवेश किया ।

८. उस समय यज्ञाग्नि प्रज्ज्वलित थी और यज्ञ की तैयारी हो रही थी । भिक्षाटन करते-करते भगवान् बुद्ध उस अग्गिक के घर पर आ पहुंचे ।

९. तथागत को कुछ दूरी पर आता देख अग्गिक आग-बबूला हो गया । बोला—"मुण्डक वहीं रह । दरिद्र श्रमण वहीं रह । वृषल वहीं रह ।"

१०. जब ब्राह्मण को इस प्रकार बोलते सुना, तो तथागत ने उसे सम्बोधित

करके पूछा—"हे ब्राह्मण ! क्या तू जानता है कि वृषल (=अछूत) कौन होता है? क्या तू जानता है कि क्या करने से आदमी वृषल (=अछूत) बनता है ?"

११. "नहीं श्रमण गौतम ! मैं नहीं जानता कि वृषल कौन होता है ? अथवा क्या करने से आदमी वृषल (=अछूत) होता है ?"

१२. भगवान् बुद्ध ने कहा कि यदि तुम यह जान लोगे कि वृषल कौन होता है, तो इससे तुम्हारी कुछ हानि नहीं होगी। "अच्छा जब आप चाहते है कि मैं जान ही लूं तो बतायें।"

१३. ब्राह्मण के सुनने की इच्छा प्रकट करने पर तथागत ने कहा-[१३] :—

१४. "जो आदमी क्रोधी हो, लोभी हो, अनैतिक हो, चुगलखोर हो, मिथ्या-दृष्टि हो और वंचक हो—उसे 'वृषल' समझना।

१५. "जो भी चाहे एकज हों, चाहे द्विज (पक्षी आदि) हों, प्राणियों को हानि पहुंचाता है, जिसके मन में प्राणियों के लिये दया नहीं है—उसे 'वृषल' करके जानना।

१६. जो भी कोई ग्रामों और झोपड़ियों को नष्ट करता है, जो अत्याचारी है—उसे 'वृषल' करके जानना।

१७. "चाहे गाँव में, चाहे गाँव के बाहर जंगल में, जो भी किसी दूसरे की चीज को बिना दिये लेता है अर्थात् चुराता है—उसे 'वृषल' करके जानना।

१८. "जो किसी का 'ऋण' लेकर बिना लौटाये, यह कह कर कि मुझे तुम्हारा कुछ नहीं देना है, भाग जाता है—उसे 'वृषल' करके जानना।

१९. "जो भी किसी वस्तु की कामना से, सड़क पर चलते हुए किसी को मार डालता है वा लूट लेता है—उसे 'वृषल' करके जानना।

२०. "जो भी कोई, अपने हित में, वा किसी दूसरे के हित में, अथवा धन के लोभ से पूछ जाने पर झूठी गवाही देता है—उसे 'वृषल' करके जानना।

२१. "जो कोई जबर्दस्ती या रजामन्दी से अपने मित्रों वा सम्बन्धियों की पत्नी से अनाचार करता है—उसे 'वृषल' करके जानना।

२२. "जो अपने पास पैसा होने पर भी, गत-यौवन अपने वृद्ध माता-पिता का पालन-पोषण नहीं करता—उसे 'वृषल' करके जानना।

२३. "जो कोई 'कुशल' धर्म पूछे जाने पर "अकुशल" धर्म की शिक्षा देता है और 'रहस्य' बनाकर शिक्षा देता है—उसे 'वृषल' जानना।

२४. "जन्म से न कोई ब्राह्मण होता है, जन्म से न कोई शूद्र होता है।-[१४]"

२५. यह सब सुना तो अग्गिक ब्राह्मण ने जो कुछ बुरा-भला तथागत को कहा था, उसके लिये वह बहुत लज्जित हुआ।

३. धर्म तभी सद्धर्म है जब वह आदमी और आदमी के बीच समानता के भाव की अभिवृद्धि करे

१. आदमी असमान ही जन्म लेते हैं।

२. कुछ मजबूत होते हैं, कुछ कमजोर।

३. कुछ अधिक बुद्धिमान होते हैं, कुछ कम, कुछ एकदम नहीं।

४. कुछ अधिक सामर्थ्यवान् होते हैं, कुछ कम।

५. कुछ धनी होते हैं, कुछ गरीब।

६. सभी को "जीवन-संघर्ष" में प्रवेश करना पड़ता है।

७. इस "जीवन-संघर्ष" में यदि असमानता को स्वाभाविक स्थिति स्वीकार कर लिया जाय तो जो कमजोर है, उसका तो कही ठिकाना ही नहीं रहेगा।

८. क्या यह 'असमानता' का नियम जीवन का नियम बन जाना चाहिये ?

९. कुछ कहते हैं "हां" ! उनका तर्क है कि जो 'जीवन-संघर्ष' में टिकने के अधिक योग्य होगा, वह टिका रहेगा।

१०. प्रश्न यह है कि जो आदमी 'जीवन-संघर्ष' में टिके रहने के लिये योग्यतम है, क्या समाज के दृष्टि-कोण से भी वही आदमी श्रेष्ठतम है ?

११. कोई भी इस का निश्चयात्मक उत्तर नहीं दे सकता।

१२. इसी सन्देह के कारण धर्म "समानता" का उपदेशक है। हो सकता है कि "समानता" के कारण जो "श्रेष्ठतम" व्यक्ति है वह भी बना रह सके, चाहे वह 'जीवन-संघर्ष' की दृष्टि से योग्यतम न भी हो।

१३. समाज को "श्रेष्ठतम" आदमी चाहिये, "योग्यतम" नहीं।

१४. यही प्राथमिक कारण है जिस से धर्म 'समानता' का समर्थक है।

१५. भगवान् बुद्ध का यही दृष्टिकोण था और इसीलिये उनका यह कहना था कि जो धर्म 'समानता' का समर्थक नहीं है, वह अपनाने योग्य नहीं है।

१६. क्या आप किसी ऐसे धर्म में विश्वास कर सकते हैं या उसके लिये मन में आदर का भाव रख सकते हैं, जो दूसरों को दुःखी बनाकर स्वयं सुखी बनने की शिक्षा देता हो, अथवा अपने को दुःखी बनाकर दूसरों को सुखी बनाने की शिक्षा देता हो अथवा अपने को और दूसरों को—दोनों को—दुःखी बनाने शिक्षा देता हो ?

१७. क्या वह धर्म अधिक श्रेष्ठतर नहीं है जो अपने सुख के साथ साथ दूसरों के सुख में वृद्धि करता है और किसी प्रकार के अत्याचार को सहन नहीं करता ?

१८. जो ब्राह्मण 'असमानता' के विरोधी थे, भगवान् बुद्ध ने उनसे कई बड़े खास प्रश्न पूछे हैं।

१९. भगवान् बुद्ध का धर्म आदमी की अपनी पुण्य-परक प्रवृत्ति में से उत्पन्न होने वाला अत्यन्त न्याय-संगत धर्म है।

१. यमकवग्ग १—२ (धम्मपद)।

२. देवदह सुत्तन्त—मज्झिम निकाय (३।१।१)।

३. सल्लेख सुत्तन्त (मज्झिम निकाय १।१।८)।

४. लोहिच्च सुत्तन्त (दीर्घनिकाय—१२)।

५. स्वदेशे पूज्य राजा, विद्वान सर्वत्र पूज्यते।

६. वस्सकार सुत्त (अंगुत्तर-निकाय—चतुक्क निपात)।

७. देखो पूतिगत्त-तिस्स की कथा (धम्मपदट्ठकथा)।

८. ककचूपम सुत्तन्त (मज्झिम निकाय—२१)।

९. अश्वलायन-सुत्त (मज्झिम निकाय ९३)।

१०. 'दास का प्राचीन अर्थ 'गुलाम नहीं है। 'दास का प्राचीन अर्थ 'दाता' भी किया जाता है। (देखो भगवानबुद्ध—धर्मानंद कोसम्बी (पृष्ठ २५)।

११. सुत्तनिपात (पृष्ठ ११५)।

१२. एसुकारि सुत्तन्त (मज्झिम निकाय २।५।६)।

१३. देखो अग्गिक-भारद्वाज सुत्त (सुत्त निपात)।

१४. 'न जच्चा वसलो होति, न जच्चा होति ब्राह्मणो।'

चतुर्थ काण्ड

मज़हब और धर्म

पहला भाग — मज़हब और धर्म

दूसरा भाग — किस प्रकार शाब्दिक समानता तात्विक भेद को छिपाये रखती है ?

तीसरा भाग — बौद्ध जीवन-पथ

चौथा भाग — तथागत के प्रवचन

पहला भाग

मज़हब और धर्म

१. 'मज़हब' क्या है ?

१. 'मज़हब' एक अनिश्चित शब्द है, जिसका कोई स्थिर अर्थ नहीं।

२. यह शब्द तो एक है, किन्तु इसके अर्थ अनेक हैं।

३. इसका कारण है कि 'मज़हब' बहुत सी अवस्थाओं में से होकर गुजरा है। हर अवस्था में हम उस मान्यता विशेष को 'मज़हब' ही कहते रहे हैं। निस्सन्देह हर एक समय की मान्यता अपने से पूर्व की मान्यताओं से भी भिन्न रही है और अपने बाद में आने वाली मान्यताओं से भी भिन्न रही है।

४. 'मज़हब' की कल्पना कभी स्थिर नहीं रही है।

५. यह हर समय बदलती चली आई है।

६. एक समय था जब बिजली, वर्षा और बाढ़ की घटनायें आदिम-आदमी की समझ से सर्वथा परे की बातें थी। इन सब पर काबू पाने के लिये जो भी कुछ टोना-टोटका किया जाता था, 'जादू' कहलाता था। उस समय 'मज़हब' और 'जादू' एक ही चीज के दो नाम थे।

७. तब 'मज़हब' के विकास में दूसरा समय आया। इस समय 'मज़हब' का मतलब था—आदमी के विश्वास, धार्मिक कर्म-काण्ड, रीति-रिवाज, प्रार्थनायें और बलियों वाले यज्ञ !

८. लेकिन 'मजहब' का यह स्वरूप व्युत्पन्न है।

९. मजहब का केन्द्र-बिन्दु इस विश्वास पर निर्भर करता है कि कोई शक्ति विशेष है जिस के कारण ये सभी घटनायें घटती हैं और जो आदिम आदमी की समझ से परे की बातें थीं। अब इस अवस्था को पहुंच कर 'जादू' का प्रभाव जाता रहा।

१०. आरम्भ में यह शक्ति 'शैतान' का ही रूप थी। किन्तु बाद में यह माना जाने लगा कि यह 'शिव' रूप भी हो सकती है।

११. तरह तरह के विश्वास, कर्म-काण्ड और यज्ञ शिव स्वरूप शक्ति को प्रसन्न करने के लिये और क्रोधरूप शक्ति को संतुष्ट रखने के लिये भी आवश्यक थे।

१२. आगे चलकर वही शक्ति 'ईश्वर', 'परमात्मा' या दुनिया का बनाने वाला कहलाई।

१३. तब 'मजहब' की मान्यता ने तीसरी शक्ल ग्रहण की, जब यह माना जाने लगा कि इस एक ही शक्ति ने 'आदमी' और 'दुनिया' दोनों को पैदा किया है।

१४. इस के बाद मजहब की मान्यता में एक यह बात भी शामिल हो गई कि हर आदमी की देह में एक 'आत्मा' है, वह 'आत्मा' नित्य है, और आदमी जो कुछ भी भला-बुरा काम करता है, उस 'आत्मा' को 'ईश्वर' के प्रति उसके लिये उत्तरदायी रहना पड़ता है।

१५. यही थोड़े में 'मजहब' की मान्यता के विकास का इतिहास है।

१६. अब 'मजहब' का यही अर्थ हो गया है और अब 'मजहब' से यही भावार्थ ग्रहण किया जाता है—ईश्वर में विश्वास, आत्मा में विश्वास, ईश्वर की पूजा, आत्मा का सुधार, प्रार्थना आदि करके ईश्वर को प्रसन्न रखना।

२. 'धर्म' 'मज़हब' से कैसे भिन्न है?

१. भगवान् बुद्ध जिसे 'धर्म' कहते हैं वह 'मजहब' से सर्वथा भिन्न है।

२. यूं जिसे भगवान् बुद्ध 'धर्म' कहते हैं, वह उसके समानान्तर है जिसे यूरोप के देववादी 'रिलीजन' कहते हैं।

३. लेकिन दोनों में कोई खास 'समानता' नहीं है। बल्कि दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है।

४. इसी लिये कुछ यूरोपीय देव-वादी भगवान् बुद्ध के 'धर्म' को 'मजहब' स्वीकार करने से इन्कार करते हैं।

५. हमें इस के लिये कोई अफसोस नहीं है। नुकसान उन्हीं का है। इससे बुद्ध-धर्म की कोई हानि नहीं। बल्कि इस से 'रिलीजन' की कमियाँ स्पष्ट रूप से ध्यान में आ जाती हैं।

६. इस विवाद में पड़ने की अपेक्षा यह अच्छा है कि हम यह बतायें कि धर्म क्या है और फिर यह दिखाये कि यह 'मजहब' या 'रिलीजन' से कैसे भिन्न है?

७. कहा जाता है कि 'मजहब' या 'रिलीजन' व्यक्तिगत चीज है और आदमी को इसे अपने तक ही सीमित रखना चाहिये। इसे सार्वजनिक जीवन में बिल्कुल दखल नहीं देना चाहिये।

८. इसके सर्वथा विरुद्ध 'धर्म' एक सामाजिक वस्तु है। यह प्रधान रूप से और आवश्यक रूप से सामाजिक है।

९. धर्म का मतलब है सदाचरण, जिस का मतलब है जीवन के सभी क्षेत्रों में एक आदमी का दूसरे आदमी के प्रति अच्छा व्यवहार।

१०. इससे स्पष्ट है कि यदि कहीं एक आदमी अकेला ही हो तो उसे किसी 'धर्म' की आवश्यकता नहीं।

११. लेकिन यदि कहीं परस्पर सम्बन्धित दो आदमी भी एक साथ रहते हों, तो चाहे वे चाहें और चाहे न चाहें उन्हें 'धर्म' के लिये जगह बनानी होगी। दोनों में से कोई एक भी बचकर नहीं जा सकता।

१२. दूसरे शब्दों में बिना 'धर्म' के समाज का काम चल ही नहीं सकता।

१३. समाज को तीन बातों में से एक का चुनाव करना ही पड़ेगा।

१४. समाज चाहे तो अपने 'अनुशासन' के लिये धर्म का चुनाव नहीं कर सकता। यदि धर्म 'अनुशासन' नहीं करता तो वह 'धर्म' ही नहीं है।

१५. इसका मतलब है कि समाज 'अराजकता' के पथ पर आगे बढ़ना ठीक समझता है।

१६. दूसरे, समाज पुलिस को अर्थात् डिक्टेटर को 'अनुशासन' के लिये चुन सकता है।

१७. तीसरे समाज 'धर्म' और 'मजिस्ट्रेट' दोनों का चुनाव कर सकता है; जितने अंश में समाज 'धर्म' का पालन करे उतने अंश में 'धर्म' और जहाँ 'धर्म' का पालन न करे, वहाँ मजिस्ट्रेट।

१८. न अराजकता में स्वतन्त्रता है और न डिक्टेटर-राज्य में स्वतन्त्रता है।

१९. केवल तीसरी व्यवस्था में ही स्वतन्त्रता जीवित रहता है।

२०. इसलिये जो स्वतन्त्रता चाहते हैं, उनके लिये 'धर्म' अनिवार्य है।

२१. 'धर्म' क्या है? 'धर्म' की अनिवार्य आवश्यकता क्यों है? भगवान् बुद्ध के अनुसार धर्म के दो प्रधान तत्व हैं—प्रज्ञा तथा करुणा।

२२. प्रज्ञा क्या है? प्रज्ञा किस लिये? प्रज्ञा का मतलब है बुद्धि (=निर्मल बुद्धि)। भगवान् बुद्ध ने प्रज्ञा को अपने धर्म के दो स्तम्भों में से एक माना है, क्योंकि वह नहीं चाहते थे कि 'मिथ्या-विश्वासों' के लिये कहीं कोई गुंजाइश बची रहे।

२३. करुणा क्या है? और करुणा किस लिये? करुणा का मतलब है (दया) प्रेम, (मैत्री)। इसके बिना न समाज जीवित रह सकता है और न समाज की उन्नति हो सकती है—इसीलिये भगवान् बुद्ध ने करुणा को अपने धर्म का दूसरा स्तम्भ बनाया।

२४. भगवान् बुद्ध के 'धर्म' की यही परिभाषा है।

२५. 'मजहब' या 'रिलीजन' की परिभाषा से यह कितनी भिन्न है?

२६. कितनी प्राचीन और कितनी आधुनिक है यह भगवान् बुद्ध द्वारा दी गई 'धर्म' की परिभाषा!

२७. कितनी अलौकिक और कितनी मौलिक!

२८. किसी से उधार नहीं ली गई। कितनी सच्ची!

२९. 'प्रज्ञा' और 'करुणा' का एक अलौकिक सम्मिश्रण ही तथागत का 'धर्म' है।

१०. 'मजहब' अथवा 'रिलीजन' और 'धर्म' में इतना अन्तर है !

२. 'मज़हब' का उद्देश्य और 'धर्म' का उद्देश्य

१. 'मजहब' या 'रिलीजन' का उद्देश्य क्या है ? धर्म का उद्देश्य क्या है ? क्या वे दोनों एक ही समान हैं और एक ही हैं ? अथवा वे दोनों दो हैं और भिन्न-भिन्न हैं ?

२. इन प्रश्नों का उत्तर दो सूक्तों में है, एक जिसमें भगवान् बुद्ध और सुनक्खत्त की बातचीत का उल्लेख है,[१] और दूसरा जिसमें भगवान् बुद्ध और पोट्ठपाद ब्राह्मण की बातचीत का वर्णन है ।

३. तथागत एक बार मल्लों के नगर अनुपिय में विहार कर रहे थे ।

४. उस समय पूर्वाह्न में तथागत ने चीवर पहना तथा पात्र और चीवर ग्रहण किया और अनुपिय नगर में भिक्षाटन के लिये निकले ।

५. रास्ते में उन्हें लगा कि कदाचित् भिक्षाटन के लिये अभी थोड़ी देर रुकना चाहिये । इसलिये वह भग्गव परिव्राजक के आश्रम पर चले गये ।

६. उन्हें आता देखकर भग्गव परिव्राजक उठ खड़ा हुआ, अभिवादन किया और बोला—"आप कृपया आसन ग्रहण करें। आपके लिये आसन सज्जित है ।"

७. तब तथागत वहाँ विराजमान हुए । भग्गव परिव्राजक भी एक नीचा आसन लेकर पास ही बैठ गया । इस प्रकार बैठकर भग्गव परिव्राजक ने भगवान् बुद्ध को कहा—

८. "कुछ दिन हुए, काफी दिन हुए हे श्रमण गौतम ! सुनक्खत्त लिच्छवी मेरे पास आया था। कहता था कि अब मैंने श्रमण गौतम का शिष्यत्व त्याग दिया है । क्या जैसा उसने कहा, वैसा ठीक है ?"

९. "भग्गव ! यह ऐसा ही है जैसा सुनक्खत्त लिच्छवी ने कहा ।"

१०. इसके आगे तथागत बोले—"कुछ दिन हुए, काफी दिन हुए, सुनक्खत्त लिच्छवी मेरे पास आया था और कहने लगा—'अब मैं तथागत के शिष्यत्व का त्याग करता हूँ। अब मैं तथागत का शिष्य नहीं रहूँगा।' जब उसने मुझे यह कहा, तब मैंने उससे पूछा—"सुनक्खत्त ! क्या मैंने तुझे कभी कहा था कि सुनक्खत्त ! तू आ और मेरा शिष्य बनकर मेरे पास रह ?'

११. "भगवान् ! नहीं, ऐसा आपने कभी नहीं कहा ।"

१२. "अथवा तू ने ही मुझे कभी कहा था कि मैं तथागत को अपना 'गुरु' स्वीकार करता हूँ ।"

१३. "भगवान् ! नहीं । ऐसा मैंने कभी नहीं कहा ।"

१४. "तब मैंने उससे पूछा 'जब न मैंने ही तुझे कहा और न तू ने ही मुझे कहा तो क्या तो मैं हूँ और क्या तू है, जो तू त्यागने की बात कर रहा है ? मूर्ख कहीं के, क्या इसमें तेरा अपना ही दोष नहीं है ?"

१५. सुनक्खत्त बोला--"लेकिन भगवान् ! आप मुझे सामान्य मनुष्यों की शक्ति से परे कोई प्रातिहार्य (=चमत्कार) नहीं दिखाते ।"

१६. "सुनक्खत्त ! क्या मैंने कभी तुझे कहा था कि सुनक्खत्त तू आकर मेरा शिष्य बन जा, मैं तुझे सामान्य मनुष्यों की शक्ति से परे कोई प्रातिहार्य दिखाऊंगा ?"

१७. "भगवान् ! ऐसा आपने कभी नहीं कहा ।"

१८. "अथवा सुनक्खत्त ! तू ने ही मुझे कभी कहा था कि मै भगवान् का 'शिष्यत्व' स्वीकार करता हूँ, क्योंकि भगवान् मुझे सामान्य आदमियों की शक्ति से परे कोई 'प्रातिहार्य' दिखायेंगे ?"

१९. "भगवान् ! नहीं । मैंने ऐसा नहीं कहा था ।"

२०. "जब न मैंने ही तुझे कहा और न तूने ही मुझे कहा तो क्या मैं हूँ और क्या तू है, जो तू त्यागने की बात कर रहा है ? सुनक्खत्त ! तू क्या सोचता है, चाहे सामान्य मनुष्यों की शक्ति से परे चमत्कार दिखाये जायें और चाहे न दिखाये जायें, क्या मेरे धर्म का यही उद्देश्य नहीं है कि जो मेरे धर्म के अनुसार आचरण करेगा, वह अपने दुःख का नाश कर सकेगा ?"

२१. "भगवान् ! चाहे प्रातिहार्य दिखाई जायें और चाहे न दिखाई जायें निश्चय से तथागत की धर्म-देशना का यही उद्देश्य है कि जो कोई भी तथागत के धर्म के अनुसार आचरण करेगा, वह अपने दुःख का नाश कर सकेगा ।"

२२. "सुनक्खत्त ! जब धर्म के उद्देश्य की दृष्टि से इसका कोई महत्व ही नहीं कि कोई प्रतिहार्य दिखाई जाय अथवा न दिखाई जाय, तो तेरे लिये ही प्रातिहार्य-प्रदर्शन का क्या मूल्य है ? हे मूर्ख ! अब तू देख कि इसमें तेरा अपना ही कितना कसूर है ।"

२३. "लेकिन भगवान् ! आप मुझे सृष्टि के आरम्भ का भी पता नहीं देते ?"

२४. "अच्छा तो सुनक्खत्त ! मैंने तुझे कब कहा था कि आ सुनक्खत्त, तू मेरा शिष्य बन जा, मैं तुझे सृष्टि के आरम्भ का पता बताऊंगा ।"

२५. "भगवान् । आपने नहीं कहा था ।"

२६. "अथवा तू ने ही मुझे कभी कहा था कि मैं आपका शिष्य बनूंगा क्योंकि आप मुझे सृष्टि के आरम्भ का पता देंगे ?"

२७. "भगवान् ! मैंने नहीं कहा था ।"

२८. "जब न मैंने ही तुझे कहा और न तूने ही मुझे कहा तो क्या तो मैं हूँ और क्या तू है, जो तू त्यागने की बात कर रहा है ? सुनक्खत्त ! तू क्या सोचता है,

चाहे मैं सृष्टि के आरम्भ का पता बताऊं और चाहे न बताऊं, क्या मेरे धर्म का यही उद्देश्य नहीं है कि जो मेरे धर्म के अनुसार आचरण करेगा, वह अपने दुःख का नाश कर सकेगा ?"

२९. "भगवान् ! चाहे आप सृष्टि के आरम्भ का पता बतायें और चाहे न बतायें, निश्चय से तथागत की धर्म-देशना का यही उद्देश्य है कि जो कोई भी तथागत के धर्म के अनुसार आचरण करेगा, वह अपने दुःख का नाश कर सकेगा।"

३०. "सुनक्खत्त! जब धर्म के उद्देश्य की दृष्टि से इसका कोई महत्व ही नहीं कि चाहे सृष्टि के आरम्भ का पता बताया जाय और चाहे न बताया जाय, तो तेरे लिये ही इसका क्या मूल्य है कि सृष्टि के आरम्भ का पता बताया जाय ?"

३१. इससे यह प्रकट होता है कि 'मजहब' या 'रिलीजन' को तो सृष्टि के आरम्भ से सरोकार है, 'धर्म' का एकदम नहीं।

(२)

'मजहब' अथवा 'रिलीजन' और धर्म में जो दूसरे फर्क हैं वे उस चर्चा से स्पष्ट हो जाते हैं जो भगवान् बुद्ध और पोट्ठपाद के बीच हुई थी।-[२]

१. एक समय भगवान् बुद्ध अनाथपिण्डक के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे। उस समय पोट्ठपाद परिव्राजक मल्लिका के महाप्रासाद में ठहरा हुआ था। उसका उद्देश्य दार्शनिक चर्चा करना था।

२. उसके साथ बहुत से अनुयायी परिव्राजक थे—कोई तीन सौ। भगवान् बुद्ध और पोट्ठपाद के बीच बातचीत हुई। पोट्ठपाद ने पूछा—

३. "भगवान् ! यदि यह ऐसा ही है, तो कम से कम, मुझे इतना तो बता दें कि क्या यही मत ठीक है कि 'संसार अनंत है' और शेष मत मृषा हैं ?"

४. तथागत बोले—"पोट्ठपाद ! मैंने यह कब कहा है कि यही मत ठीक है कि 'संसार अनंत है' और सब मत मृषा हैं ? मैंने इस विषय में कभी अपना मत व्यक्त ही नहीं किया है।"

५. तब, इसी तरह से पोट्ठपाद ने इन सभी प्रश्नों को क्रमशः पूछा—

(क) क्या संसार अनन्त नहीं है ?

(ख) क्या संसार ससीम है ?

(ग) क्या संसार असीम है ?

(घ) क्या आत्मा और शरीर एक ही हैं ?

(ङ) क्या आत्मा और शरीर भिन्न भिन्न हैं ?

(च) क्या तथागत मरणान्तर रहते हैं ?

(छ) क्या तथागत मरणान्तर नहीं रहते हैं ?

(ज) क्या वे रहते भी हैं और नहीं भी रहते हैं ?

६. और इस प्रकार के हर प्रश्न का तथागत ने एक ही उत्तर दिया।

७. "पोट्ठपाद ! इस विषय में भी मैंने अपना मत कभी व्यक्त नहीं किया।"

८. "लेकिन तथागत ने इन विषयों में अपना मत क्यों व्यक्त नहीं किया ?"

९. "क्योंकि इन प्रश्नों का उत्तर देने से किसी को कुछ लाभ नहीं, इनका धर्म से कुछ भी सम्बन्ध नहीं, इनसे आदमी को अपना आचरण सुधारने में कुछ भी सहायता नहीं मिलती, इनसे विराग नहीं बढ़ता, इनसे राग-द्वेष से मुक्ति-लाभ नहीं होता, इनसे शान्ति नहीं मिलती, इनसे शमय लाभ नहीं होता, इनसे विद्या प्राप्त नहीं होती, इनसे प्रज्ञा का लाभ नहीं होता और न ये निर्वाण की ओर अग्रेसर करते हैं। इसी लिये मैंने इन विषयों पर अपना कोई मत व्यक्त नहीं किया है।

१०. "तो तथागत ने किन विषयों का व्याख्यान किया है ?"

११. "मैंने बताया है कि दुःख क्या है ? मैंने बताया है कि दुःख का समुदय (=मूल कारण) क्या है ? मैंने बताया है कि दुःख का निरोध क्या है ? मैंने बताया है कि दुःख के निरोध (=अन्त) का मार्ग क्या है ?"

१२. "और तथागत ने इन विषयों पर व्याख्यान क्यों दिया है ?"

१३. "क्योंकि पोट्ठपाद ! इनसे लोगों को लाभ है, इनका धर्म से सम्बन्ध है, इनसे आदमी को अपना आचरण सुधारने में सहायता मिलती है, इनसे विराग बढ़ता है, इनसे राग-द्वेष से मुक्ति मिलती है, इनसे शान्ति मिलती है, इनसे शमय होता है, इनसे विद्या प्राप्त होती है, इनसे प्रज्ञा का लाभ होता है और ये निर्वाण की ओर अग्रेसर करते हैं। इसीलिये पोट्ठपाद ! मैंने इन विषयों का व्याख्यान किया है।"

१४. इस संवाद से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'मजहब' और 'रिलीजन' के लिये कौन से प्रश्न विचारणीय हैं, और 'धर्म' के लिये कौन से प्रश्न विचारणीय हैं। दोनों का जमीन-आसमान का अन्तर है।

१५. 'धर्म' का उद्देश्य है संसार का पुनर्निर्माण करना।

४. मज़हब और नैतिकता

१. 'मजहब' या 'रिलीजन' में नैतिकता का स्थान क्या है ?

२. सच्ची बात तो यही है कि नैतिकता का 'मजहब' या 'रिलीजन' में कोई स्थान ही नहीं।

३. 'मजहब' या 'रिलीजन' के अन्तर्गत आते हैं 'ईश्वर', 'आत्मा', 'प्रार्थनायें', 'पूजा', 'कर्म-काण्ड', 'रीति-रिवाज', 'यज्ञ', 'बलि-कर्म'।

४. नैतिकता का सम्बन्ध वहीं आता है जहाँ एक आदमी का सम्बन्ध दूसरे से आरम्भ होता है।

५. "मजहब' या 'रिलीजन' में तो 'नैतिकता' बाहर से आने वाले हवा के एक

झोंके की तरह है, ताकि व्यवस्था और शान्ति की स्थापना में उपयोगी सिद्ध हो।

६. 'मजहब' या 'रिलीजन' एक त्रिकोण है।

७. अपने पड़ोसी के साथ अच्छा व्यवहार करो क्योंकि तुम दोनों एक ही पिता-परमात्मा के पुत्र हो।

८. यही 'मजहब' या 'रिलीजन' का तर्क है।

९. प्रत्येक 'मजहब' या 'रिलीजन' नैतिकता का उपदेश देता है, किन्तु नैतिकता 'मजहब' या 'रिलीजन' का मूलाधार नहीं है।

१०. यह एक रेल के उस डिब्बे की तरह है जो यूं ही साथ जोड़ दिया गया है। यह यथावसर साथ जोड़ भी दिया जाता है; और पृथक् भी कर दिया जाता है।

११. इसलिये 'मजहब' या 'रिलीजन' की क्रिया-परिपाटी में नैतिकता का स्थान आकस्मिक है और कभी कभी उसका भी प्रयोजन रहता है।

१२. इसीलिये 'मजहब' या 'रिलीजन' में नैतिकता प्रभावोत्पादक नहीं है।

५. धर्म और नैतिकता

१. धर्म में नैतिकता का स्थान क्या है ?

२. सीधा सरल उत्तर है कि नैतिकता ही धर्म है और धर्म ही नैतिकता है।

३. दूसरे शब्दों में यद्यपि धर्म में 'ईश्वर' के लिये कहीं कुछ स्थान नहीं है तो भी धर्म में 'नैतिकता' का वही स्थान है जो 'मजहब' या रिलीजन' में 'ईश्वर' का।

४. धर्म में प्रार्थनाओं के लिये, तीर्थ-यात्राओं के लिये, कर्मकाण्डों के लिये, रिति-रिवाजों के लिये तथा बलि-कर्मों के लिये कोई जगह नहीं।

५. नैतिकता ही धर्म का सार है। नैतिकता नहीं, तो धर्म भी नहीं।

६. धर्म में जो नैतिकता है उसका सीधा मूल-स्रोत आदमी को आदमी से मैत्री करने की जो आवश्यकता है, वही है।

७. इसमें ईश्वर की मंजुरी की आवश्यकता नहीं। ईश्वर को प्रसन्न करने के लिये आदमी को नैतिक बनने की आवश्यकता नहीं। अपने भले के लिये ही आदमी के लिये यह आवश्यक है कि वह आदमी से मैत्री करे।

६. केवल सदाचार भी पर्य्याप्त नहीं है, यह पवित्र और व्यापक होना चाहिये

१. कोई भी चीज या बात कब पवित्र बनती है ? क्यों पवित्र बनती है ?

२. हर मानव-समाज में—चाहे वह आदिम अवस्था में हो और चाहे वह उन्नत अवस्था में हो—कुछ चीजें या विश्वास ऐसे होते हैं जो 'पवित्र' माने जाते हैं और कुछ चीजें या विश्वास ऐसे होते हैं जो 'पवित्र' नहीं माने जाते।

३. जब कोई चीज या विश्वास 'पवित्रता' की सीमा में प्रवेश कर गया, इसका मतलब है कि उसके विरुद्ध आचरण नहीं किया जा सकता। ठीक बात तो यह है कि उसे स्पर्श ही नहीं किया जा सकता। ऐसा करना सर्वथा निषिद्ध हो जाता है।

४. इससे भिन्न जो चीज या बात "पवित्र" नहीं मानी जाती, उसके विरुद्ध आचरण किया जा सकता है, अर्थात् आदमी बिना किसी भय के अथवा आत्म-प्रताड़ना के उस विषय में जैसा चाहे कर सकता है।

५. 'पवित्र' का मतलब है 'धार्मिकता' लिये हुए। इस प्रकार की चीज या बात के विरुद्ध जाने का मतलब है मजहब की मर्य्यादा का उल्लंघन करना।

६. किसी भी चीज को 'पवित्र' क्यों बनाया जाता है? अपने प्रश्न को विषय के भीतर रखने के लिये, पूछा जा सकता है कि नैतिकता को 'पवित्र' क्यों बनाया गया?

७. नैतिकता के पवित्र बनाये जाने में, लगता है कि तीन बातों का प्रभाव पड़ा है।

८. पहली बात तो यह है कि जो श्रेष्ठ है, सामाजिक हित की दृष्टि से उसे सुरक्षित रहना चाहिये।

९. इस प्रश्न की पृष्ठ-भूमि का सम्बन्ध है उस बात से जिसे हम 'जीवन-संघर्ष' और उसमें 'योग्यतम का जीवित बने रहना' कहते हैं।

१०. यह प्रश्न 'विकास-वाद के सिद्धान्त' से सम्बन्धित है। सब कोई जानता है कि मानव-समाज में जो विकास हुआ है वह 'जीवन-संघर्ष' के कारण हुआ है, क्योंकि आरम्भिक युग में भोजन-सामग्री बड़ी सीमित मात्रा में प्राप्त थी।

११. भयानक संघर्ष रहा है। प्रकृति के पंजे और दांत रक्त-रंजित रहे हैं।

१२. ऐसे 'जीवन-संघर्ष' में जो भयानक और रक्त-रंजित होता है केवल 'योग्यतम' ही बचा रहता है।

१३. समाज की मूल अवस्था ऐसी ही रही है।

१४. बहुत प्राचीन काल में किसी न किसी ने यह प्रश्न अवश्य उठाया होगा कि क्या योग्यतम (=सबसे अधिक शक्ति सम्पन्न) ही श्रेष्ठतम भी माना जाना चाहिये? क्या जो निर्बलतम है, उसे भी संरक्षण देकर यदि बचाया जाय तो क्या यह आगे चलकर समाज के हित की दृष्टि से अच्छा सिद्ध न होगा?

१५. लगता है कि उस समय के समाज की जो स्थिति थी, उस समय उसने एक स्वीकारात्मक उत्तर अवश्य दिया होगा।

१६. तब प्रश्न पैदा होता है कि कमजोरों के संरक्षण का क्या उपाय है?

१७. जो योग्यतम (=सबसे अधिक शक्तिशाली) हो उस पर कुछ प्रतिबन्ध लगाने से कम और किसी भी तरह काम चल ही नहीं सकता था।

१८. इसी स्थिति में नैतिकता का मूल और आवश्यकता छिपी हुई है।

१९. इस नैतिकता के लिये 'पवित्र' बनाया जाना आवश्यक था, क्योंकि पहले पहले ये पाबन्दियाँ (=प्रतिबन्ध) योग्यतम (=सर्वाधिक शक्तिशाली) व्यक्तियों पर ही लगायी गई थीं।

२०. इसके बड़े गम्भीर परिणाम हो सकते थे।

२१. पहला प्रश्न तो यही पैदा होता है कि नैतिकता जब सामाजिक रूप ग्रहण करती है, तब कहीं यह असामाजिक (=सामाजिक हितों की विरोधिनी) तो नहीं हो जाती है?

२२. ऐसा नहीं है कि चोरों में अपनी कुछ 'नैतिकता' ही न हो। व्यापारियों में भी नैतिकता होती ही है। एक जातिवालों में भीतरी नैतिकता रहती ही है और डाकुओं के झुण्ड में भी अपनी भीतरी नैतिकता रहती ही है।

२३. लेकिन यह नैतिकता पार्थक्य की भावना लिये हुए है, इस नैतिकता में दूसरों के बहिष्कार की भावना निहित है। यह नैतिकता दल-विशेष के स्वार्थों का संरक्षण करने के लिये है। इसलिये यह नैतिकता समाज-हित-विरोधिनी है।

२४. यह इस प्रकार की नैतिकता की पार्थक्य और अपने में ही सीमित रहने की भावना ही है, जिससे इसकी समाज-हित-विरोधिनी प्रवृत्ति को क्रियाशील होने का अवसर मिलता है।

२५. यही बात उस समय लागू होती है जब कोई भी एक दल अपने स्वार्थों की रक्षा करने के लिये नैतिकता का आश्रय लेता है।

२६. समाज की इस दल-बन्दी का असर बड़ी दूर तक पहुंचता है।

२७. यदि समाज में इस प्रकार के अ-सामाजिक दल बने रहेंगे, तो समाज हमेशा असंगठित रहेगा और टुकड़े-टुकड़े रहेगा।

२८. एक असंगठित और टुकड़े-टुकड़े समाज का सबसे बड़ा खतरा यही है कि यह कई तरह के जीवन-मापों और आदर्शों को जन्म दे देता है।

२९. जब तक लोगों के जीवन के माप-दण्ड समान न हों और जब तक लोगों के जीवन-आदर्श समान न हों तब तक समाज परस्पर मिल-जुलकर रहने वाला समाज बन ही नहीं सकता।

३०. जब इतने तरह के जीवन के मापदण्ड रहेंगे और इतनी तरह के जीवन-आदर्श रहेंगे तो व्यक्ति के लिये मन का अविरोधी-भाव बनाये रखना असम्भव है।

३१. बुद्धिपूर्वक विचार करने से किसी की जनसंख्या आदि की दृष्टि से जो और जितना जिसका अधिकार होना चाहिये वह न होकर यदि किसी समाज के एक हिस्से की किसी दूसरे हिस्से पर अनुचित प्रधानता बनी रहेगी तो इसका अवश्यम्भावी परिणाम परस्पर का कलह होगा।

३२. कलह को रोकने का एक ही उपाय है कि सभी के लिये नैतिकता के समान नियम हों और सभी उन्हें पवित्र मानें।

३३. एक तीसरा कारण भी है जिसके कारण नैतिकता पवित्र मानी जानी चाहिये और इसको सर्वमान्य होना चाहिये; व्यक्ति की उन्नति के संरक्षण के हित में।

३४. जहाँ 'जीवन-संघर्ष' है अथवा जहाँ वर्ग-विशेष का शासन है, वहाँ व्यक्ति का हित सुरक्षित नहीं है।

३५. दलबन्दी व्यक्ति को चित्त की वह अविरोधी-भावना प्राप्त करने ही नहीं देती जो तभी सम्भव है जब समाज में समान 'जीवन-माप' हों और समान 'जीवन-आदर्श' हों। व्यक्ति के विचार बहक जाते हैं और वह एकता देख ही नहीं सकता।

३६. दूसरे, दलबन्दी में पक्षपात रहता है और न्याय की आशा नहीं रहती।

३७. दलबन्दी से वर्ग जड़ीभूत हो जाते हैं। मालिक हमेशा मालिक बने रहते हैं, गुलाम हमेशा गुलाम बने रहते हैं। मालिक हमेशा मालिक बने रहते हैं, मजदूर हमेशा मजदूर बने रहते हैं। विशिष्ट अधिकारी हमेशा विशिष्ट अधिकारी ही रहते हैं और गुलाम हमेशा गुलाम ही रहते हैं।

३८. इसका मतलब है कि कुछ लोगों के लिये तो स्वतन्त्रता हो सकती है, किन्तु सभी के लिये नहीं। इसका मतलब हुआ कि चन्द लोगों के लिये समानता हो सकती है, किन्तु अधिकांश के लिए नहीं हो सकती।

३९. इसका इलाज क्या है? एक ही इलाज है कि भ्रातृ-भावना को सर्व-मान्य और प्रभावशाली बनाया जाय।

४०. भ्रातृ-भाव क्या है? आदमी हर आदमी को अपना भाई समझे—यही नैतिकता है।

४१. इसीलिये भगवान् बुद्ध ने कहा कि धर्म नैतिकता है और जिस प्रकार धर्म पवित्र है; उसी प्रकार नैतिकता भी पवित्र है।

१. पाटिक सुत्त (दीघ निकाय—२४ वाँ सुत्तन्त)।
२. पोट्ठपाद सुत्तन्त (दीघ निकाय—१ : ९)।

दूसरा भाग

किस प्रकार शाब्दिक समानता तात्विक भेद को छिपाये रखती है

पुनर्जन्म

१. प्रास्ताविक

१. यह प्रश्न प्रायः पूछा जाता है कि मरने के बाद क्या होता है ?

२. बुद्ध के समकालीन आचार्य्यों के दो भिन्न तरह के मत थे। एक वर्ग 'आत्मवादी' या 'शाश्वतवादी' कहलाता था, दूसरा कहलाता था 'उच्छेदवादी'।

३. जो 'शाश्वतवादी' था, उसका कहना था कि 'आत्मा' का मरण होता ही नहीं; इसलिये जीवन शाश्वत है। पुनर्जन्म द्वारा इसका नवीकरण होता रहता है।

४. उच्छेदवादियों का मत इस एक शब्द 'उच्छेदवाद' से ही स्पष्ट हो जाता था। 'उच्छेदवाद' का मतलब है हर वस्तु का सम्पूर्ण विनाश। मृत्यु के बाद कुछ भी शेष नहीं।

५. भगवान् बुद्ध 'शाश्वतवादी' नहीं थे, क्योंकि इसका मतलब था कि एक पृथक् नित्य 'आत्मा' में विश्वास करना, जिसके वे विरोधी थे।

६. तो क्या तथागत उच्छेदवादी थे ? जब वे 'आत्मा' का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते थे, तो स्वाभाविक तौर पर उन्हें 'उच्छेदवादी' मानने की प्रवृत्ति हो सकती है।

७. लेकिन अलगद्दूपम सुत्तन्त[1] में भगवान् बुद्ध ने शिकायत की है कि वे 'उच्छेदवादी' नहीं हैं, किन्तु उन्हें 'उछेदवादी' समझा जाता है।

८. उन्होंने कहा है—"यद्यपि मैं इस मत को स्थापित करता हूँ, और इसी की देशना करता हूँ, तो भी कुछ श्रमण-ब्राह्मण भूल से, गलती से मुझ पर झूठा इलजाम लगाते हैं जो कि वास्तविकता के विरुद्ध है कि मैं उच्छेदवाद की देशना करता हूँ कि मैं आदमियों के टुकड़े-टुकड़े हो जाने की, नाश की, सम्पूर्ण विनाश की देशना करता हूँ।

९. "यह ऐसा मत है जो कि मेरा मत नहीं है, जिस मत का मैं समर्थन नहीं करता, जो कि भूल से गलती से और झूठी तौर पर ऐसे भले लोगों द्वारा मेरे सिर मढ़ा जाता है जो मुझे उच्छेदवादी बनाना चाहते हैं।"

१०. यदि यह कथन यथार्थ है और ऐसे लोगों द्वारा जो बौद्धधर्म को ब्राह्मणी रंग में रंग देना चाहते थे, प्रक्षिप्त नहीं है, तो इस कथन से मन में एक गम्भीर दुविधा पैदा हो जाती है।

११. यह कैसे हो सकता है कि भगवान् बुद्ध 'आत्मा' को भी नहीं मानें और तब भी कहें कि मैं 'उच्छेदवादी' नहीं हूँ ?

१२. इससे प्रश्न पैदा होता है कि क्या भगवान् बुद्ध 'पुनर्जन्म' मानते थे ?

२. पुनर्जन्म किस (चीज) का ?

१. क्या भगवान् बुद्ध पुनर्जन्म मानते थे ?

२. उत्तर "हां" में है।

३. यह अच्छा है कि इस प्रश्न को दो हिस्सों में बाँट लिया जायः (१) किस चीज का जन्म ? और (२) किस व्यक्ति का जन्म ?

४. यह अच्छा है कि इन दोनों प्रश्नों को एक एक करके लिया जाय।

५. पहले हम पहले प्रश्न को ही लें, पुनर्जन्म किस चीज़ का ?

६. प्रायः हमेशा इस प्रश्न की उपेक्षा की जाती है। यह दोनों प्रश्नों को एक बना देने का ही परिणाम है कि पुनर्जन्म की बात को लेकर इतनी गड़बड़ी है।

७. भगवान् बुद्ध के अनुसार चार भौतिक पदार्थ हैं, चार महाभूत हैं जिनसे शरीर बना है—(१) पृथ्वी, (२) जल, (३) अग्नि, (४) वायु।

८. प्रश्न है कि जब शरीर का मरण होता है तो इन चारों महाभूतों का क्या होता है ? क्या वे भी शरीर के साथ मर जाते हैं ? कुछ लोगों का कहना है कि वे भी मर जाते हैं।

९. भगवान् बुद्ध ने कहा कि "नहीं"। आकाश में जो समान भौतिक पदार्थ सामूहिक रूप से विद्यमान हैं, वे उनमें मिल जाते हैं।

१०. इस विद्यमान (=तैरती हुई) राशि में से जब इन चारों महाभूतों का पुनर्मिलन होता है, तो पुनर्जन्म होता है।

११. भगवान् बुद्ध का पुनर्जन्म से यही अभिप्राय था।

१२. इन भौतिक पदार्थों के लिये यह आवश्यक नहीं है कि वे उसी शरीर के हों जिसका मरण हो चुका है, वे नाना मृत-शरीरों के भौतिक अंश हो सकते हैं।

१३. यही बात ध्यान देने की है कि शरीर का मरण होता है लेकिन भौतिक पदार्थ बने रहते हैं।

१४. भगवान् बुद्ध इसी प्रकार के पुनर्जन्म को मानते थे।

१५. सारिपुत्त ने महाकोट्ठित के साथ जो बातचीत की उसमें इस विषय पर बहुत प्रकाश पड़ा है ।

१६. लिखा है कि एक समय जब भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिण्डक के जेतवनाराम में गये थे, तो महाकोट्ठित ध्यान कर चुकने पर सारिपुत्त के पास गये और उनसे कुछ ऐसे प्रश्नों को स्पष्ट कर देने की प्रार्थना की जो उन्हें हैरान कर रहे थे ।

१७. उन प्रश्नों में एक यह था :—

१८. "प्रथम-ध्यान की प्राप्ति होने पर कितने संयोजनों का प्रहाण होता है और प्रथम-ध्यान में कौन-कौन से अंग शेष रहते हैं ?"

१९. सारिपुत्त का उत्तर था—"दोनों के पाँच पाँच । कामछन्द, व्यापाद, थीनमिद्ध (=आलस्य), उद्धच्च-कौकृत्य तथा विचिकित्सा का प्रहाण हो जाता है। वितर्क, विचार, प्रीति, सुख तथा एकाग्रता शेष रहते हैं ।"

२०. महाकोट्ठित—"चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा और स्पर्श—इन पांचों इन्द्रियों को लें । प्रत्येक का विषय पृथक् है, क्षेत्र पृथक् है; प्रत्येक एक दूसरी इन्द्रिय से पृथक् पृथक् है और स्पष्ट रूप से पृथक् है । इनका अन्तिम आधार क्या है ? कौन है जो पांचों इन्द्रियों के विषयों और क्षेत्रों का उपभोग करता है ?"

२१. सारिपुत्त—"मन ।"

२२. महाकोट्ठित—"ये पांचों इन्द्रियाँ किस पर निर्भर करती हैं ?"

२३. सारिपुत्त—"चेतना (=जीवित इन्द्रिय) पर ।

२४. महाकोट्ठित—"चेतना किस पर निर्भर करती है ?"

२५. सारिपुत्त—"ऊष्णता पर ।"

२६. महाकोट्ठित—"ऊष्णता किस पर निर्भर करती है ?"

२७. सारिपुत्त—"चेतना पर ।"

२८. महाकोट्ठित—"आप कहते हैं कि चेतना ऊष्णता पर निर्भर करती है और ऊष्णता चेतना पर निर्भर करती है । इसका ठीक-ठीक क्या अर्थ समझा जाय ?"

२९. सारिपुत्त—"एक उदाहरण द्वारा समझाता हूँ । जैसे प्रदीप के प्रकाश से प्रदीप की लौ प्रकट होती है और प्रदीप की लौ से प्रदीप का प्रकाश प्रकट होता है, उसी प्रकार चेतना ऊष्णता पर निर्भर करती है, और ऊष्णता चेतना पर निर्भर करती है ।"

३०. महाकोट्ठित—"ऐसी कितनी चीजें हैं जिनसे मुक्त होने पर ही शरीर मरा हुआ समझा जाकर सूखे काठ की तरह फेंक दिया जाता है ?"

३१. सारिपुत्त—"जीवित-इन्द्रिय, ऊष्णता और विज्ञान ।"

३२. महाकोट्ठित—"मृत देह में और उस ध्यानी भिक्षु में जिसने संज्ञा और वेदना का निरोध कर रखा है, क्या अन्तर है ?"

३३. सारिपुत्त—"मृत देह में न केवल शरीर, वाणी और मन की क्रिया शान्त हो जाती है, बल्कि चेतना (=जीवित-इन्द्रिय) भी नहीं रहती, ऊष्णता भी नहीं रहती तथा इन्द्रियों का भी मूलोच्छेद हो जाता है; जबकि ध्यानी भिक्षु की चेतना बनी रहती है, ऊष्णता बनी रहती है तथा इन्द्रियां भी बनी रहती हैं; हाँ श्वास-प्रश्वास बंद हो जाता है, इन्द्रियों की वितर्क-विचार, संज्ञा आणि क्रियाएँ शान्त हो जाती हैं ।"

३४. सम्भवतः यह मृत्यु या उच्छेद की सर्वाधिक श्रेष्ठ तथा सर्वाधिक सम्पूर्ण व्याख्या है ।

३५. इस संवाद में केवल एक कड़ी की कमी है । महाकोट्ठित को चाहिये था कि वह सारिपुत्त से यह भी पूछते कि 'ऊष्णता' से क्या मतलब है ?

३६. सारिपुत्त ने क्या उत्तर दिया होता, इसकी कल्पना आसान नहीं लेकिन इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि 'ऊष्णता' का मतलब है 'शक्ति' ।

३७. इस तरह से यदि उत्तर को थोड़ा अधिक स्पष्ट कर दिया जाय तो इस प्रश्न का कि मरने पर क्या होता है, यही उत्तर हो सकता है कि शरीर शक्ति उत्पन्न करना बन्द कर देता है ।

३८. लेकिन, यह तो केवल उत्तर का एक हिस्सा ही है । क्योंकि मृत्यु का एक मतलब यह भी है कि शरीर में से जो शक्ति निकल कर गई है, वह उस सारे शक्ति-समूह के साथ मिलकर एक हो गई जो विश्व में संचार कर रहा है ।

३९. इसलिये मृत्यु के दो अर्थ हैं । एक ओर तो इस का अर्थ है कि नई शक्ति की उत्पत्ति रुक जाना, दूसरी ओर इसका अर्थ है कि विश्व में जो शक्ति-पुंज संचरण कर रहा है उसमें कुछ वृद्धि हो जाना ।

४०. सम्भवतः मृत्यु के इन दोनों पहलुओं के ही कारण भगवान् बुद्ध ने कहा कि वे 'उच्छेदवादी' नहीं थे । जहाँ तक 'आत्मा' की बात है, वे उच्छेदवादी थे । किन्तु जहाँ '(नाम-) रूप' की बात है वे उच्छेदवादी नहीं थे ।

४१. इस व्याख्या को स्वीकार कर लेने पर यह समझना कठिन नहीं है कि भगवान् बुद्ध ने ऐसा क्यों कहा कि वे 'उच्छेदवादी' नहीं हैं । वे (नाम-) रूप की पुनरुत्पत्ति में विश्वास रखते थे, 'आत्मा' के पुनर्जन्म में नहीं ।

४२. इस प्रकार व्याख्या होने पर भगवान् बुद्ध का मत वर्तमान विज्ञान के सर्वथा अनुकूल है ।

४३. केवल इसी अर्थ में कहा जा सकता है कि भगवान् बुद्ध पुनर्जन्म में विश्वास रखते थे ।

४४. शक्ति कभी 'शून्य' में परिणित नहीं होती । विज्ञान का यह पक्का सिद्धान्त

है। यदि 'मृत्यु' का यह अर्थ किया जाय कि मृत्यु के अनन्तर कुछ नहीं रहता, तो यह बात विज्ञान के विरुद्ध होगी। क्योंकि इसका मतलब यह होगा कि सामुहिक रूप से शक्ति में सातत्य नहीं है।

४५. यही एक ऐसा तरीका है जिससे पुनर्जन्म सम्बन्धी दुविधा का अंत हो सकता है।

३. पुनर्जन्म किस (व्यक्ति) का?

१. सबसे कठिन प्रश्न है पुनर्जन्म किस (व्यक्ति) का?

२. क्या वही मरा हुआ आदमी एक नया जन्म ग्रहण करता है?

३. क्या भगवान् बुद्ध इस सिद्धान्त को मानते थे?

उत्तर है, "इसकी कम से कम सम्भावना है।"

४. यदि मृत आदमी के देह के सभी भौतिक-अंश पुनः नये सिरे से मिलकर एक नये शरीर का निर्माण कर सकें, तभी यह मानना सम्भव है कि उसी आदमी का पुनर्जन्म हुआ।

५. यदि भिन्न भिन्न मृत शरीरों के अंशों के मेल से एक नया शरीर बना तो यह पुनर्जन्म तो हुआ, लेकिन यह उसी आदमी का पुनर्जन्म नहीं हुआ।

६. भिक्षुणी खेमा ने राजा प्रसेनजित् को यह बात अच्छी तरह समझा दी थी।

७. एक बार तथागत श्रावस्ती के पास अनाथपिण्डक के जेतवनाराम विहार में ठहरे हुए थे।

८. अब उस समय कोशल जनपद में चारिका कर चुकने के अनन्तर भिक्षुणी खेमा श्रावस्ती और साकेत के बीच तोरणवत्थु नामक स्थल पर ठहरी हुई थी।

९. उस समय कोशल-नरेश प्रसेनजित् साकेत से श्रावस्ती आ रहा था। साकेत और श्रावस्ती के रास्ते में वह एक रात के लिये तोरणवत्थु में रुका।

१०. कोशल-नरेश राजा प्रसेनजित् ने एक आदमी को बुलाकर कहा—"अरे भले आदमी! किसी श्रमण-ब्राह्मण का पता लगा जिसकी हम आज दिन संगति कर सकें।"

११. "महाराज! बहुत अच्छा", उस आदमी ने कहा। वह सारी तोरणवत्थु में घूमा किन्तु उसे एक भी श्रमण-ब्राह्मण ऐसा नहीं मिला, जिसकी महाराज संगति कर सकें।

१२. तब उस आदमी ने भिक्षुणी खेमा को देखा, जो तोरणवत्थु में ठहरी हुई थी। उसे देखकर वह कोशल-नरेश प्रसेनजित् के पास वापस गया और बोला—

१३. "महाराज! तोरणवत्थु में कोई ऐसा श्रमण-ब्राह्मण नहीं है जिसकी आप संगति कर सकें। लेकिन महाराज! भिक्षुणी खेमा नाम की तथागत की एक शिष्या है। उसकी ख्याति सुनी है कि वह अर्हत है, योग्य है, कुशल है, पण्डित है,

बात-चीत में पटु है और प्रत्युत्पन्न-मति है। महाराज ! आज दिन आप उसकी संगति करें।"

१४. तब कोशल-नरेश राजा प्रसेनजित् भिक्षुणी खेमा के पास गया। पास आकर अभिवादन किया और एक ओर बैठ गया। बैठकर उसने भिक्षुणी खेमा से कहा—

१५. "आपका इस विषय में क्या कहना है ? क्या तथागत मरणानन्तर रहते हैं ?"

१६. "महाराज ! यह बात भी तथागत द्वारा अव्याकृत ही है।"

१७. "तो यह कैसी बात है कि जब मैं पूछता हूँ कि क्या तथागत मरणानन्तर रहते हैं, तो आपका उत्तर होता है कि यह बात भी तथागत ने अव्याकृत रखी है, और जब मैं दूसरे प्रश्न पूछता हूँ तब भी आपका यही उत्तर होता है कि यह बात भी तथागत ने अव्याकृत रखी है। कृपया, यह बतायें कि क्या हेतु है, क्या कारण है कि तथागत ने यह बात अव्याकृत रखी है ?"

१८. "महाराज ! अब मैं आपसे एक प्रश्न पूछती हूँ। जैसा आपको लगे, वैसा उत्तर देना। अब आप क्या कहते हैं ? क्या आपके पास कोई गणक, कोई हिसाब लगाकर बता सकने वाला है जो हिसाब लगाकर बता सके कि गंगा में इतने सौ, इतने हजार वा इतने लाख बालू के कण हैं ?"

१९. "नहीं।"

२०. "तो कोई ऐसा गणक है, जो ऐसा हिसाब लगाकर बता सकने वाला है जो यह बता सके कि समुद्र में इतना जल है, इतने सौ (गैलन) है, इतने हजार (गैलन) हैं या इतने लाख (गैलन) है ?"

२१. "नहीं।"

२२. "तो यह कैसे है ?"

२३. "समुद्र असीम है, बहुत गहरा है, इसके तल तक नहीं पहुंचा जा सकता।"

२४. "इसी प्रकार महाराज ! यदि कोई तथागत के रूप से तथागत को मापना चाहे, तो तथागत का वह रूप परित्यक्त है, वह जड़मूल से कट चुका है, वह कटे ताड़-वृक्ष की तरह हो गया है, वह अभाव-प्राप्त हो गया है और अब उसकी पुनरुत्पत्ति की सम्भावना नहीं रही है। महाराज ! तथागत के रूप से तथागत की तह तक नहीं पहुंचा जा सकता। तथागत गम्भीर हैं, तथागत असीम हैं और तथागत की तह तक नहीं पहुंचा जा सकता, ठीक वैसे ही जैसे समुद्र की। इसलिये यह भी नहीं कहा जा सकता कि 'तथागत मरणानन्तर रहते हैं।' यह भी नहीं कहा जा सकता कि 'तथागत मरणानन्तर नहीं रहते हैं।' यह भी नहीं कहा जा सकता कि 'तथागत रहते भी हैं और नहीं भी रहते' और यह भी नहीं कहा जा सकता कि 'तथागत नहीं रहते हैं और नहीं नहीं भी रहते हैं।'

२५. "इसी प्रकार महाराज ! यदि कोई तथागत की वेदना से तथागत को मापना चाहे, तो तथागत की वह वेदना परित्यक्त है, वह जड़मूल से कट चुकी है, वह कटे ताड़-वृक्ष की तरह हो गयी है. . . सम्भावना नहीं रही है । महाराज तथागत की वेदना से तथागत की तह तक नहीं. . . . जैसे समुद्र की । इसलिये यह भी नहीं कहा जा सकता कि 'तथागत मरणानन्तर रहते हैं . . .नहीं नहीं भी रहते हैं ।'

२६. "इसी प्रकार महाराज । यदि कोई तथागत की संज्ञा से, तथागत के संस्कारों से, तथागत के विज्ञान से तथागत को मापना चाहे, तो तथागत का वह विज्ञान परित्यक्त है, वह जड़मूल से कट चुका है, वह कटे ताड़-वृक्ष की तरह हो गया है. . . .सम्भावना नहीं रही है । महाराज ! तथागत के विज्ञान से तथागत की तह तक नहीं. . .जैसे समुद्र की । इसलिये यह भी नहीं कहा जा सकता कि 'तथा-गण मरणानन्तर रहते हैं. . .नहीं नहीं भी रहते हैं ।"

२७. तब राजा प्रसेनजित् भिक्षुणी खेमा के शब्दों से प्रसन्न हुआ, आह्लादित हुआ । वह अपने स्थान से उठा, उसे अभिवादन किया और चला गया ।

२८. अब एक और अवसर पर राजा प्रसेन्जित तथागत के दर्शनार्थ गया । पास पहुंचकर अभिवादन किया और एक ओर बैठ गया । उसने तथागत से निवेदन किया—

२९. "भगवान् ! कृपया बतायें कि क्या तथागत मरणानन्तर रहते हैं ।"

३०. "महाराज ! मैंने इस बात को अव्यक्त रखा है ।"

३१. "भगवान् ! तो क्या तथागत मरणानन्तर नहीं रहते हैं ।"

३२. "महाराज ! यह भी मैंने अव्यक्त रखा है ।"

३३. तब राजा ने ऐसे ही दूसरे प्रश्न पूछे और सभी का ऐसा ही उत्तर मिला ।

३४. "भगवान् । यह कैसे है, जब मैं पूछता हूँ कि क्या तथागत मरणान्तर रहते हैं, तो आपका उत्तर होता है कि यह बात तथागत द्वारा अव्याकृत है; और जब मैं यह पूछता हूँ कि क्या तथागत मरणानन्तर नहीं रहते तो भी आपका उत्तर है कि यह बात तथागत द्वारा अव्याकृत है । भगवान् ! कृपया यह बतायें कि क्या हेतु है, क्या कारण है कि यह बात भी तथागत ने अव्याकृत रखी है ?"

३५. "तो महाराज ! ये आपसे प्रश्न पूछता हूँ, जैसा आपको ठीक लगे वैसा उत्तर देना । क्या आपके पास कोई गणक है. . . .(सारा पूर्ववत्) ?"

३६. "अद्भत है गौतम ! अद्भूत है सुगत ! यह कितने बड़े आश्चर्य की बात है कि शास्ता और श्राविका के उत्तर में न अर्थ की दृष्टि से और न व्यञ्जन की दृष्टि से, कहीं कुछ भी अन्तर नहीं । एकदम समान उत्तर है, एकदम मेल खाता हुआ उत्तर है, उच्चतम बात के बारे में !

३७. "भगवान् ! एक समय मैं भिक्षुणी खेमा के पास गया और उससे यही

प्रश्न पूछा। उसने मुझे ठीक इन्हीं शब्दों में, ठीक इन्हीं अक्षरों में उत्तर दिया। अद्भूत है गौतम! अद्भुत है सुगत! यह कितने बड़े आश्चर्य की बात है कि शास्ता और श्राविका के उत्तर में न अर्थ की दृष्टि से और न व्यंजन की दृष्टि से कहीं कुछ भी अन्तर नहीं। एकदम समान उत्तर है, एकदम मेल खाता हुआ उत्तर है, उच्चतम बात के बारे में।

३८. "अच्छा! भगवान्! अब आज्ञा दें। हम जाना चाहते हैं। हमें बहुत कार्य्य है।"

३९. "महाराज! इस समय आप जो करना उचित समझें वह करें।"

४०. तब कोशल-नरेश राजा प्रसेनजित् तथागत के वचनों से प्रसन्न हुआ, आह्लादित हुआ। वह अपने स्थान से उठा और तथागत को अभिवादन कर चला गया।

कर्म

१. क्या 'बुद्ध' का 'कर्म' का सिद्धान्त ब्राह्मणी 'कर्म' के सिद्धान्त के समान ही है?

१. बुद्धधर्म का कोई भी दूसरा ऐसा सिद्धान्त नहीं है जिसने इतनी 'गलत-फहमी' पैदा की हो, जितनी इस 'कर्म' के सिद्धान्त ने।

२. बुद्धधर्म में 'कर्म' का क्या स्थान है और क्या वास्तविक महत्व है?

३. अज्ञ हिन्दू बेसमझी के ही कारण केवल शब्दों की समानता की ओर देखकर कहते हैं कि ब्राह्मणवाद वा हिन्दू-धर्म तथा बौद्धधर्म एक ही हैं।

४. ब्राह्मणों का पढ़ा-लिखा और कट्टर वर्ग भी यही कहता है। वह अज्ञ जनता को गलत रास्ते पर चलने के लिये जान-बूझकर कहता है।

५. पढ़े-लिखे ब्राह्मण भली प्रकार जानते हैं कि बुद्ध का 'कर्म' का सिद्धान्त ब्राह्मणी 'कर्म' के सिद्धान्त से सर्वथा भिन्न है। लेकिन तब भी वे यही कहे जाते हैं कि बुद्ध-धर्म वही है जो ब्राह्मणवाद या हिन्दु-धर्म है।

६. शब्दों की समानता के कारण उनको अपना झूठा तथा दुष्ट प्रचार करने में आसानी हो जाती है।

७. इसलिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि स्थिति की पूर्ण परीक्षा की जाय।

८. भगवान् बुद्ध का 'कर्म' का सिद्धान्त—शाब्दिक समानता कितनी ही हो—अपने अर्थ में ब्राह्मणी 'कर्म' के सिद्धान्त के समान हो ही नहीं सकता।

९. दोनों की मूल स्थापनायें एक दूसरे से परस्पर इतनी अधिक भिन्न है कि परिणाम एक हो ही नहीं सकता। दोनों के दो भिन्न परिणाम होने ही चाहिये।

१०. सुविधा के लिये हिन्दु 'कर्म' की मान्यताओं को क्रमश: इस प्रकार गिना जा सकता है :-

११. हिन्दु 'कर्म' का सिद्धान्त 'आत्मा' की मान्यता पर निर्भर करता है। बौद्ध नहीं। क्योंकि बौद्धधर्म में तो 'आत्मा' है ही नहीं।

१२. ब्राह्मणी 'कर्म' का सिद्धान्त 'वंशानुगत है।

१३. यह एक जन्म से दूसरे जन्म तक चलता रहता है। यह इसलिये क्योंकि 'आत्मा' का संसरण होता है।

१४. 'कर्म' के बौद्ध-सिद्धान्त के बारे में यह भी बात सत्य नहीं है। यह भी इसीलिये कि बौद्धधर्म में 'आत्मा' नहीं है।

१५. 'कर्म' का हिन्दु-सिद्धान्त शरीर से पृथक् एक 'आत्मा' पर आधारित है। शरीर मरता है, तो 'आत्मा' उसके साथ नहीं मरता। 'आत्मा' फुरे से उड़ जाता है।

१६. 'कर्म' के बौद्ध-सिद्धान्त के बारे में यह बात भी सच नहीं है।

१७. 'कर्म' के हिन्दु-सिद्धान्त के अनुसार जब आदमी कोई कर्म करता है तो उसके 'कर्म' के दो परिणाम होते हैं। एक तो उस 'कर्म' से वह करने वाला प्रभावित होता है, दूसरे उस 'कर्म' का उसके 'आत्मा' पर प्रभाव पड़ता है।

१८. वह जो भी 'कर्म' करता है, उसके 'आत्मा' पर उसका प्रभाव पड़ता ही है।

१९. जब आदमी मरता है, और जब 'आत्मा' उसका शरीर छोड़ कर निकल भागती है (या निकल भागता है) तो 'आत्मा' उन संस्कारों से संस्कृत रहता है।

२०. यह संस्कार ही हैं जो उसके भावी जन्म और स्थिति का निर्णय करते हैं।

२१. हिन्दु 'आत्मवाद' का बौद्ध 'अनात्मवाद' से कुछ भी मेल नहीं।

२२. इन कारणों से 'कर्म' का बौद्ध-सिद्धान्त और 'कर्म' का हिन्दु-सिद्धान्त न एक है और न एक हो सकता है।

२३. इसलिये 'कर्म' के बौद्ध-सिद्धान्त और 'कर्म' के ब्राह्मणी-सिद्धान्त को एक ही बताना महज मूर्खता है।

२४. अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि इस शाब्दिक माया-जाल से सावधान रहना चाहिये।

२. क्या भगवान् बुद्ध यह मानते थे कि पूर्व-कर्म का भविष्य-जन्म पर प्रभाव पड़ता है?

१. भगवान् बुद्ध ने 'कर्म' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। सर्वप्रथम उन्होंने ही कहा था: "जैसा बोओगे, वैसा काटोगे।"

२. उन्होंने 'कर्म' के सिद्धान्त पर इतना अधिक जोर दिया है कि उनका कहना था कि यदि 'कर्म' के सिद्धान्त को दृढ़ता पूर्वक न माना जाय तो नैतिक-अनुशासन निभ ही नहीं सकता।

३. बुद्ध के 'कर्म' के सिद्धान्त का सम्बन्ध मात्र 'कर्म' से था और वह भी वर्तमान जन्म के 'कर्म' से।

४. तो 'कर्म' का एक वृद्धि-प्राप्त सिद्धान्त भी है। इसके अनुसार 'कर्म' का मतलब है पूर्वजन्म का 'कर्म' अथवा पूर्व-जन्मों के 'कर्म'।

५. यदि आदमी का जन्म गरीब परिवार में हुआ है तो यह उसके पूर्वजन्म के बुरे कर्म का परिणाम है। यदि एक आदमी धनी घर में पैदा हुआ है तो यह उसके पूर्वजन्म के अच्छे कर्मों का परिणाम है।

६. यदि किसी में कोई जन्म-जात दोष है तो इसका कारण उसके पूर्वजन्म का बुरा कर्म है।

७. यह एक बड़ा ही खतरनाक सिद्धान्त है। क्योंकि यदि 'कर्म' की यह व्याख्या स्वीकार कर ली जाय तो मानव-प्रयास के लिये कहीं कुछ गुंजायश नहीं रह जाती। पूर्वजन्म के कर्म से ही सभी कुछ पूर्व-निश्चित रहता है।

८. यह वृद्धि-प्राप्त सिद्धान्त भी बहुधा भगवान् बुद्ध के सिर मढ़ दिया गया है।

९. क्या भगवान् बुद्ध ऐसे सिद्धान्त को मानते थे ?

१०. इस वृद्धि-प्राप्त सिद्धान्त की भली प्रकार परीक्षा करने के लिये, जिस भाषा में इसका प्रायः उल्लेख किया जाता है, उसमें थोड़ा परिवर्तन कर देना होगा।

११. यह कहने की बजाय कि पूर्वजन्म के 'कर्म' का संसरण होता है, हम यह कहें कि पूर्वजन्म का 'कर्म' वंश-परम्परा से प्राप्त होता है।

१२. इस भाषा के परिवर्तन से हम 'वंशपरम्परा' के कानून के अनुसार इसकी परीक्षा कर सकते हैं। ऐसा करने से न इसके कानूनी अर्थ में ही कोई अन्तर आता है और न वास्तविक अर्थ में।

१३. इस भाषा के परिवर्तन से दो ऐसे प्रश्न हैं जो आसानी से पूछे जा सकते हैं और जो कदाचित् अन्यथा न पूछे जा सकते और जिनका बिना उत्तर दिये बात स्पष्ट नहीं होती।

१४. पहला प्रश्न यह है कि पूर्वजन्म का कर्म वंशानुगत-क्रम से कैसे प्राप्त होता है ? उसकी क्या विधि है ?

१५. दूसरा प्रश्न है कि वंशानुगत-क्रम के हिसाब से पूर्व-जन्म के उस कर्म की अपनी स्थिति क्या है ? क्या यह वंशानुगत क्रम से प्राप्त कोई 'गुण' है, अथवा स्वयं अर्जित किया हुआ कोई 'गुण' है ?

१६. वंशानुगत क्रम के हिसाब से हमें अपने माता-पिता से क्या प्राप्त होता है ?

१७. विज्ञान के अनुसार सोचें तो नये प्राणी का आरम्भ उस समय से होता है जब वीर्य्य और रज का संयोग होता है। प्राणी की उत्पत्ति तभी होती है जब वीर्य्य-कण रज-कण में प्रवेश करता है।

१८. हर मानव का श्रीगणेश तभी होता है जब दो जीवित कण मिलकर एक होते हैं—माता का रज-कण और पिता का वीर्य्य-कण।

१९. इस विषय की चर्चा करने के लिये जो यक्ष, भगवान् बुद्ध के पास आया था, उसे भगवान् बुद्ध ने कहा था कि आदमी की उत्पत्ति माता-पिता पर निर्भर करती है।

२०. उस समय भगवान् बुद्ध राजगृह में इन्द्रकूट पर्वत पर ठहरे हुए थे।

२१. तब एक यक्ष, भगवान् बुद्ध के पास आया और उसने उन्हें इस प्रकार सम्बोधित किया :–

"आपका कहना है
कि केवल 'रूप' जीव नहीं है,
तो जीव सशरीर कैसे होता है ?
जीव को यह हड्डियों और आंतों का ढेर कैसे प्राप्त होता है ?
माता के गर्भ में जीव किस प्रकार लटकता रहता है ?"

२२. इसका तथागत ने उत्तर दिया :—

सर्वप्रथम कलल होता है,
तब अर्बुद होता है,
तब पेशी होती है,
तब घन होता है,
और घन में ही बाल और नाखून आदि उत्पन्न होते हैं और मां जो कुछ भी खाना-पीना खाती है, उससे बालक मां के गर्भ में बढ़ता है।

२३. हिन्दु सिद्धान्त इससे सर्वथा भिन्न है।

२४. इसका कहना है कि शरीर तो वंशानुगत अथवा माता-पिता से प्राप्त है। किन्तु 'आत्मा' नहीं। यह शरीर में बाहर से प्रवेश करती है या करता है। कहां से ?—यह बात इस सिद्धान्त में स्पष्ट नहीं की गई है।

२५. दूसरा प्रश्न है कि पूर्वजन्म के उस कर्म की अपनी स्थिति क्या है ? क्या यह वंशानुगत क्रम से प्राप्त कोई 'गुण' है अथवा स्वयं अर्जित किया हुआ कोई 'गुण' है ?

२६. जब तक इस प्रश्न का उत्तर न मिले तब तक वंशानुक्रम के वैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार इसका परीक्षण नहीं हो सकता।

२७. लेकिन यदि मान भी लिया जाय कि इस प्रश्न का इधर उधर कुछ भी उत्तर सम्भव है, तो भी हम विज्ञान की सहायता से यह कैसे निर्णय कर सकते हैं कि यह सिद्धान्त कुछ बुद्धिसंगत है अथवा एकदम मूर्खतापूर्ण ?

२८. विज्ञान के अनुसार बालक वंश-परम्परा से अपने माता-पिता के गुण प्राप्त करता है।

२९. 'कर्म' के हिन्दू सिद्धान्त के अनुसार अपने माता-पिता से शरीर के अतिरिक्त और कुछ नहीं प्राप्त करता। 'कर्म' के हिन्दु सिद्धान्त के अनुसार बालक का पूर्व-कर्म उसका अपना किया हुआ 'कर्म' है, और वह उसे अपने द्वारा ही, अपने लिये ही स्वयं प्राप्त करता है।

३०. माता-पिता बालक को कुछ नहीं देते। बालक ही सब कुछ साथ लेकर आता है।

३१. इस तरह का सिद्धान्त बेहूदगी से कम कुछ नहीं है।

३२. जैसे ऊपर दिखाया गया है, भगवान् बुद्ध इस प्रकार की बेहूदगी में विश्वास नहीं करते थे।

[इसकी चर्चा चलने पर कि क्या आदमी अपने भले-बुरे कर्मों के परिणाम से मुक्त हो जाता है, स्थविर नागसेन ने राजा मिलिन्द को उत्तर दिया था :—]

३३. "यदि पुनरुत्पत्ति न हो तो वह अपने कर्मों के फल से मुक्त हो जाता है, यदि हो, तो नहीं।"

३४. राजा मिलिन्द ने कहा— "मुझे एक उदाहरण दें।"

३५. "राजन्! उदाहरण के लिये एक आदमी किसी के आम चुराये, तो क्या चोर दण्ड का अधिकारी होगा?

३६. "हां!"

३७. "लेकिन जो आम (के बीज) उसने जमीन में बोये थे, वे तो उसने चुराये नहीं, तब उसे दण्ड क्यों मिले?"

३८. "क्योंकि जो उसने चुराये वे उन्हीं में से उत्पन्न हुए थे, जो जमीन में बोये गये थे।"

३९. "ठीक इसी प्रकार यह नाम-रूप कर्म करता है—भले या बुरे— और उस कर्म से दूसरा नाम-रूप जन्म ग्रहण करता है। इसीलिये वह अपने कर्म के फल से मुक्त नहीं होता।"

४०. "नागसेन! बहुत अच्छा।"

४१. तब फिर राजा मिलिन्द ने पूछा—"नागसेन! जब एक नाम-रूप से कार्य्य किये जाते हैं तो उन कार्य्यों का क्या होता है?"

४२. "राजन्! वे कर्म की छाया की तरह पीछा करते रहेंगे।"

४३. "क्या कोई उन कर्मों के बारे में बता सकता है कि ये कर्म यहां हैं अथवा वहां हैं?"

४४. "नहीं!"

४५. "मुझे एक उपमा दें।"

४६. "तो हे राजन! क्या कोई किसी वृक्ष के उन फलों को दिखा सकता है और यह बता सकता है कि :—

४७. "ये यहां हैं अथवा वहां हैं ?"

४८. "निश्चय से नहीं ।"

४९. "इसी प्रकार राजन् ! जब तक जीवन-स्रोत का उच्छेद नहीं होता तब तक कृत-कर्मों को बता सकना असम्भव है ।"

५०. "नागसेन ! बहुत अच्छा ।"

३. क्या भगवान् बुद्ध यह मानते थे कि पूर्व कर्मों का भविष्य-जन्मों पर प्रभाव पड़ता है ?

(२)

१. इस तरह से भगवान् बुद्ध का पूर्व-कर्म का सिद्धान्त विज्ञान से बेमेल नहीं है ।

२. भगवान् बुद्ध पूर्व-जन्मों के कर्मों के संसरण में विश्वास नहीं करते थे ।

३. जब वे यह मानते थे कि जन्म माता-पिता से प्रदत्त होता है और बालक में जो कुछ भी गुण-दोष होते हैं वह वंशानुगत क्रम से माता-पिता के माध्यम से ही प्राप्त होते हैं, तो वे कर्मों के संसरण में विश्वास ही कैसे कर सकते थे ?

४. तर्क के अतिरिक्त इस बात का सीधा प्रमाण भी उस सूक्त में विद्यमान है जो 'चूळ-दुक्ख-खन्ध-सूक्त' कहलाता है और जिसमें भगवान् बुद्ध तथा जैनों की बातचीत का वर्णन है ।

५. इस संवाद में भगवान् बुद्ध ने कहा है:— "निगण्ठो ! तुम्हारा यही कहना है न कि हमें यह शिक्षा अच्छी लगती है और कि हम इसे मानते हैं कि हमने पूर्व जन्म में जो पाप-कर्म किया है, उसे हम इन कठोर तपस्याओं द्वारा समाप्त करते हैं । शरीर, वाणी और मन का वर्तमान संयम पूर्व-जन्म के पाप-कर्मों को समाप्त कर देगा । इस प्रकार तपस्या द्वारा अपने पुराने सभी पाप-कर्मों को समाप्त कर देने से और नये पाप-कर्म न करने से भविष्य स्वच्छ हो जाता है, भविष्य के स्वच्छ हो जाने के साथ पूर्व भी साफ हो जाता है; पूर्व के साफ हो जाने के साथ दुःख नहीं रहता; दुःख न रहने से दुःखद वेदना नहीं रहतीं; और अब दुःखद वेदनाओं के एकदम न रहने से समस्त दुःख का ही क्षय हो जाता है ?"

६. उन निगण्ठों के 'हां' करने पर मैंने कहा कि "क्या तुम जानते हो कि इससे पूर्व तुम्हारा पूर्व-जन्म था, और यह जानते हो कि ऐसा नहीं था कि तुम्हारा पूर्व-जन्म न हो ?"

७. "नहीं जानते ।"

८. "क्या तुम जानते हो कि अपने पूर्व-जन्म में तुम निश्चयात्मक रूप से सदोष थे; तुम यह जानते हो कि तुम निर्दोष नहीं थे ?"

९. "नही !"

१०. "क्या तुम जानते हो कि उस पूर्व-जन्म में तुमने अमुक पाप-कर्म किया था या नहीं किया था ?"

११. "नहीं !"

१२. अब भगवान् बुद्ध यह भी जोर देकर कहते हैं कि एक आदमी की स्थिति उसके वंशपरम्परागत आगत गुणों पर उतनी निर्भर नहीं करती, जितनी उसकी परिस्थिति पर निर्भर करती है ।"

१३. भगवान् बुद्ध ने देवदह-सुत्त–५ में कहा है:—"कुछ श्रमण-ब्राह्मणों का मत है कि जो कुछ भी आदमी भुगतता है, यह सब उसके पूर्व जन्मों के कर्मों का परिणाम है—चाहे सुख हो, चाहे दुःख हो, चाहे असुख-अदुख हो। इसलिये (उनका कहना है) कि पूर्व-कर्मों की निर्जरा द्वारा और नये अशुभ कर्मों से विरत रहने से पाप-कर्मो का क्षय हो जाता है, जब पाप-कर्मों का क्षय हो जाता है तो दुःख का क्षय हो जाता है; जब दुःख का क्षय हो जाता है (दुःखद) वेदनाओं का क्षय हो जाता है; और जब वेदनाओं का क्षय हो जायगा तो तमाम दुःख का समूल उच्छेद हो जायगा।" यह निगण्ठों (जैनों) का मत है ।

१४. "यदि प्राणियों के (पूर्व-) जन्म की परिस्थिति उनके दुःख-सुख भोगने का कारण है तब भी निगण्ठ गर्हा के भाजन है; यदि परिस्थिति कारण नहीं है तब भी वे गर्हा के भोजन हैं ।"

१५. भगवान् बुद्ध के ये वचन प्रस्तुत विषय से सम्बन्धित हैं । यदि भगवान् बुद्ध पूर्व-कर्म में विश्वास रखते तो वे यहां इस समय पूर्व-कर्म के बारे में सन्देह क्यों प्रकाशित करते ? और यदि भगवान् बुद्ध यह मानते कि सुख-दुख पूर्व-जन्म का परिणाम है तो वे यह क्यों कहते कि वर्तमान जीवन का सुख-दुःख परिस्थित का परिणाम होता है ।

१६. पूर्व-कर्म (सुख-दुःख का कारण होते हैं) का सिद्धान्त शुद्ध ब्राह्मणी सिद्धान्त है। पूर्व-कर्म का वर्तमान जीवन पर प्रभाव पड़े—इसका ब्राह्मणी 'आत्मा' के सिद्धान्त से पूर्णतया मेल बैठता है, क्योंकि वे मानते हैं कि 'कर्म' का 'आत्मा' पर प्रभाव पड़ता है । लेकिन बुद्ध-धर्म के 'अनात्मवाद' से इसका किसी भी तरह मेल नहीं बैठ सकता ।

१७. लगता है कि यह सारा का सारा (बाद के) बौद्धधर्म में प्रक्षिप्त कर दिया गया है—या तो किसी ऐसे द्वारा जो बौद्धधर्म को हिन्दु धर्म सदृश ही बनाना चाहता था, या किसी ऐसे द्वारा जो यथार्थ बुद्ध-धर्म से अपरिचित था ।

१८. यह एक कारण है जिससे यह मानना चाहिये कि बुद्ध ने कभी इस सिद्धान्त की देशना नहीं की होगी ।

१९. एक दूसरा और अधिक सामान्य कारण भी है जिससे यह मानना चाहिये कि भगवान् बुद्ध कभी इस सिद्धान्त की देशना नहीं कर सकते थे ।

२०. भावी-जन्म के संचालक के रूप में पूर्व-जन्म को स्वीकार करने के हिन्दु सिद्धान्त का आधार अन्यायपूर्ण है । इस प्रकार के सिद्धान्त का आविष्कार करने का आखिर क्या प्रयोजन हो सकता था ?

२१. इसका एक ही उद्देश्य हो सकता है कि राज्य अथवा समाज को गरीबों और दरिद्रों की दुरवस्था की जिम्मेदारी से सर्वथा मुक्त कर दिया जाय ।

२२. अन्यथा इस प्रकार के अत्याचारपूर्ण तथा बेहूदा सिद्धान्त का कभी आविष्कार न होता ।

२३. यह कल्पना कर सकना असम्भव है कि महाकारुणिक बुद्ध ने कभी इस प्रकार के सिद्धान्त का समर्थन किया हो ।

अहिंसा

१. अहिंसा के नाना अर्थ और व्यवहार

१. अहिंसा अथवा जीव-हिंसा न करना बुद्ध की शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग है ।

२. इसका करुणा तथा मैत्री से अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है ।

३. तो भी प्रश्न है कि क्या अपने व्यवहार में भगवान् बुद्ध की अहिंसा सापेक्ष थी वा निरपेक्ष थी ? क्या यह एक शील मात्र थी अथवा एक नियम थी ?

४. जो लोग भगवान् बुद्ध के उपदेशों को मानते हैं उन्हें अहिंसा को एक निरपेक्ष बंधन के रूप में स्वीकार करने में कठिनाई होती है । उनका कहना है कि ऐसी अहिंसा से बुराई के लिये भलाई का बलिदान हो जाता है अथवा दुर्गुण के लिये सद्गुण का ।

५. इस प्रश्न को स्पष्ट करने की ज़रूरत है । यह 'अहिंसा' का प्रश्न सर्वाधिक गड़बड़ी पैदा करने वाला प्रश्न है ।

६. बौद्ध देशों के लोगों ने अहिंसा को किस रूप में समझा है और किस प्रकार व्यवहार किया है ?

७. यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, जिसका विचार करना ही होगा ।

८. सिंहल के भिक्षु स्वयं लड़े और उन्होंने लोगों को विदेशी आक्रमण-कारियों के विरुद्ध लड़ने के लिये कहा ।

९. दूसरी ओर बर्मा के भिक्षुओं ने विदेशी आक्रमणकारियों से लड़ने से

इनकार किया और लोगों को भी न लड़ने के लिये कहा।

१०. वर्मा के लोग अण्डा खा लेते हैं मछली नहीं।

११. अहिंसा इसी प्रकार समझी जाती है और व्यवहार में आती है।

१२. कुछ समय पूर्व जर्मन बौद्ध समिति ने एक प्रस्ताव पास किया कि वे पांच शीलों में से (जीव-हिंसा से विरत रहने के प्रथम शील को छोड़कर) शेष चार शीलों को ही स्वीकार करेंगे।

१३. अहिंसा के सिद्धान्त को लेकर ऐसी स्थिति है।

२. 'अहिंसा' का अर्थ

१. अहिंसा का क्या मतलब है ?

२. भगवान् बुद्ध ने कहीं भी 'अहिंसा' की परिभाषा नहीं की है। ठीक बात तो यह है कि उन्होंने बहुत ही कम अवसरों पर निश्चित शब्दावलि में इस विषय की चर्चा की है।

३. इसलिये यह आवश्यक है कि परिस्थितिजन्य साक्षी से ही भगवान् बुद्ध क्या चाहते थे इसका पता लगाया जाय।

४. पहली परिस्थितिजन्य साक्षी यह है कि यदि भिक्षा में मिले तो भगवान् बुद्ध को मांस ग्रहण करने पर कोई आपत्ति नहीं थी।

५. यदि भिक्षु किसी प्रकार से भी किसी जानवर की हत्या से सम्बन्धित नहीं है तो वह भिक्षा में प्राप्त मांस ग्रहण कर सकता है।

६. भगवान् बुद्ध ने देवदत्त के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया जो चाहता था कि भिक्षा में दिये जाने पर भी भिक्षु मांसाहार ग्रहण न करें।

७. इस विषय में यह भी एक साक्षी का अंश है कि वह यज्ञों में (ही) पशु-हिंसा के विरोधी थे। यह उन्होंने स्वयं कहा है।

८. 'अहिंसा परमो धर्मः' यह एक दूसरे सिरे पर पहुंचा हुआ सिद्धान्त है। यह एक जैन-सिद्धान्त है। यह बौद्ध सिद्धान्त नहीं।

९. एक और साक्षी है जो परिस्थितिजन्य साक्षी की अपेक्षा सीधी साक्षी है और जो एक प्रकार से "अहिंसा" की परिभाषा ही है। उन्होंने कहा है—"सबसे मैत्री करो, ताकि तुम्हें किसी प्राणी को मारने की आवश्यकता न पड़े।" यह अहिंसा के सिद्धान्त के कहने का स्वीकारात्मक ढंग है।

१०. इससे ऐसा लगता है कि 'अहिंसा' का बौद्ध सिद्धान्त यह नहीं कहता कि 'मारो नहीं' बल्कि यह कहता है कि 'सभी प्राणियों से मैत्री रखो।"

११. उक्त कथनों के प्रकाश में यह समझ सकना कठिन नहीं है कि 'अहिंसा' से भगवान् बुद्ध का क्या अभिप्राय था ?

१२. यह एकदम स्पष्ट है कि भगवान् बुद्ध 'जीव-हत्या करने की चेतना' और 'जीव-हत्या करने की आवश्यकता' में भेद करना चाहते थे।

१३. जहां 'जीव-हत्या करने की आवश्यकता थी', वहां उन्होंने जीव-हत्या करना मना नहीं किया।

१४. उन्होंने वैसी जीव-हत्या को मना किया जहाँ केवल "जीव-हत्या की चेतना" है।

१५. इस तरह समझ लेने पर "अहिंसा" के बौद्ध सिद्धान्त में कहीं कुछ गड़बड़ी नहीं है।

१६. यह एक सोलह आने पक्का, स्थिर नैतिक सिद्धान्त है, जिसका हर किसी को आदर करना चाहिये।

१७. इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने इस बात का निर्णय व्यक्ति पर ही छोड़ दिया है कि 'जीव-हत्या की आवश्यकता' है या नहीं? व्यक्ति के अतिरिक्त और किस पर यह निर्णय छोड़ा भी जा सकता था? आदमी के पास प्रज्ञा है और उसे इसका उपयोग करना चाहिये।

१८. एक नैतिक आदमी पर यह भरोसा किया जा सकता है कि वह सही विभाजक रेखा खींच सकेगा।

१९. ब्राह्मणी-धर्म में 'जीव-हिंसा करने की चेतना' है।

२०. जैन-धर्म में जीव-हिंसा न करने की चेतना' है।

२१. भगवान् बुद्ध का सिद्धान्त उनके मध्यम मार्ग के अनुरूप है।

२२. इसी बात को दूसरे शब्दों में कहा जाय तो भगवान् बुद्ध ने शील (Principle) और विनय—नियम (rule) में भेद किया है। उन्होंने अहिंसा को नियम नहीं बनाया। उन्होंने इसे जीवन का एक पथ माना है।

२३. इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसा करके भगवान् बुद्ध ने बड़ी ही प्रज्ञा-सहगत बात की है।

२४. एक शील (Principle) तुम्हें कार्य करने के लिये स्वतन्त्र छोड़ता है। एक नियम (rule) स्वतन्त्र नहीं छोड़ता। या तो तुम नियम को तोड़ते हो, या नियम तुम्हें तोड़ डालता है।

संसरण

१. आत्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में जाना

१. भगवान् बुद्ध ने पुनर्जन्म की देशना की है। किन्तु भगवान् बुद्ध ने यह भी कहा है कि संसरण नहीं है।

२. ऐसे लोगों की कमी नहीं थी जो भगवान् बुद्ध पर यह दोषारोपण करते थे कि वे दो परस्पर विरोधी सिद्धान्तों की देशना करते हैं।

३. आलोचक प्रश्न करते थे—बिना संसरण के पुनर्जन्म हो ही कैसे सकता है?

४. वे कहते थे—यह बिना संसरण के पुनर्जन्म की बात है। भला क्या कभी यह सम्भव है ?

५. इसमें कहीं कुछ भी विरोध नहीं है; बिना संसरण के पुनर्जन्म हो सकता है।

६. राजा मिलिन्द के प्रश्नों के उत्तर में भदन्त नागसेन ने इसे अच्छी तरह समझा दिया है।[८]

७. बैक्टरिया—नरेश मिलिन्द ने स्थविर नागसेन से प्रश्न किया—"क्या भगवान् बुद्ध पुनर्जन्म (संसरण) मानते थे ?"

८. स्थविर नागसेन का उत्तर था—"हाँ"

९. "तो क्या इसमें परस्पर विरोध नहीं ?"

१०. नागसेन—"नहीं।"

११. "क्या बिना 'आत्मा' के पुनर्जन्म संभव है।"

१२. स्थविर नागसेन बोले, "हाँ, ऐसा निश्चय से हो सकता है।"

१३. "कृपया समझायें कि यह कैसे हो सकता है ?

१४. राजा बोला—"नागसेन ! जहाँ संसरण नहीं है, क्या वहां पुनर्जन्म हो सकता है ?"

१५. "हाँ, हो सकता है।"

१६. "लेकिन यह कैसे हो सकता है, मुझे एक उदाहरण देकर समझायें।"

१७. "राजन् ! यदि एक आदमी एक दीपक से दूसरा दीपक जलाये तो क्या यह कहा जायगा कि एक का संसरण दूसरी जगह हो गया ?"

१८. "निश्चय से नहीं।"

१९. "राजन् ! इसी प्रकार बिना संसरण के पुनर्जन्म होता है।"

२०. "मुझे एक और उदाहरण दें।"

२१. "महाराज ! क्या आपको कोई छन्द (=कविता का चरण) याद है जो आपने बचपन में अपने आचार्य से सीखा हो ?"

२२. "हां, मुझे याद है।"

२३. "तो क्या वह छन्द आप के आचार्य के मुंह में से निकलकर आपके मुंह में आया ?"

२४. "निश्चय से नहीं।"

२५. "राजन् इसी प्रकार बिना संसरण के पुनर्जन्म होता है।"

२६. "नागसेन ! बहुत अच्छा।"

२७. राजा बोला—"नागसेन ! क्या 'आत्मा' जैसी कोई चीज़ है ?"

२८. "यथार्थ दृष्टि से सोचा जाय तो 'आत्मा' जैसी कोई वस्तु नहीं है।"

२९. "नागसेन ! बहुत अच्छा।"

२. गलत-फहमी के कारण

१. भगवान् बुद्ध ने जो उपदेश दिये वे श्रोताओं द्वारा सुने जाते थे जो कि अधिकांश में भिक्षु थे।

२. किसी भी विषय में भगवान् बुद्ध का क्या कहना था, उसे जनसाधारण तक पहुंचाने वाले भिक्षुगण ही थे।

३. लेखनकला अभी विकसित नहीं हुई थी। जो कुछ सुनते थे वह भिक्षुओं को कण्ठ कर लेना होता था। प्रत्येक भिक्षु जो जो वह सुनता था, उसे कण्ठ करने की चिन्ता न करता था। लेकिन कुछ भिक्षु थे, जिन्होंने कण्ठस्थ करना अपना काम ही बना लिया था। वे 'भाणक' कहलाते थे।

४. बौद्ध त्रिपिटक और उसकी अट्ठकथायें समुद्र की तरह विशाल हैं। उन्हें कण्ठस्थ कर सकना सचमुच एक बड़ी असाधारण बात थी।

५. एक से अधिक बार ऐसा हुआ है कि भगवान् बुद्ध ने जोकुछ कहा उसकी 'रिपोर्ट' ठीक ठीक नहीं हुई।

६. भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में ही कोई बार उनके वचनों की 'ग़लत-रिपोर्ट' की बात उन तक पहुंची थी।

७. उदाहरण के तौर पर ऐसे पांच अवसरों का उल्लेख किया जा सकता है। एक उल्लेख तो अलगद्दुपम सुत्त[९] में आया है, दूसरा महाकम्मविभंग सुत्त[१०] में, तीसरा कण्णकट्ठल सुत्त[११] में, चौथा महातण्हा-संखय सुत्त[१२] में और पांचवां जीवक सुत्त[१३] में।

८. शायद इस तरह के और भी अनेक अवसर आये हों जब तथागत के वचनों की ठीक 'रिपोर्ट' न हुई हो। क्योंकि हम देखते हैं कि भिक्षु भी भगवान् बुद्ध के पास गये हैं और प्रश्न किया है कि ऐसी परिस्थिति में उन्हें क्या करना चाहिये?

९. 'कर्म' और 'पुनर्जन्म' के बारे में जब जब गलत रिपोर्ट हुई है, उसके अनेक अवसर हैं।

१०. इन सिद्धान्तों को ब्राह्मणी 'धर्म' में भी स्थान प्राप्त है। इसलिये भाणकों के लिये अपेक्षाकृत सुगम था कि वह बौद्ध-धर्म में ब्राह्मणी-धर्म की भी खिचड़ी पका दें।

११. इसलिये त्रिपिटक में भी जो 'बुद्ध-वचन' करके माना गया है, उसे भी 'बुद्ध-वचन' स्वीकार करने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है।

१२. लेकिन इसकी एक कसौटी विद्यमान है।

१३. भगवान् बुद्ध के बारे में एक बात बड़े ही विश्वास के साथ कही जा सकती है: वे कुछ नहीं थे, यदि उनका कथन बुद्धिसंगत, तर्कसंगत नहीं होता था। दूसरी

बातों का यथायोग्य मूल्यांकन करते हुए यह बात कही जा सकती है कि जो बात बुद्धिसंगत है, जो बात तर्कसंगत है, वह 'बुद्ध-वचन' है।

१४. दूसरी बात यह है कि भगवान् बुद्ध ने कभी ऐसी बेकार की चर्चा में नहीं पड़ना चाहा जिसका आदमी के कल्याण से कोई सम्बन्ध न हो। इसलिये कोई भी ऐसी बात जिसका आदमी के कल्याण से कोई सम्बन्ध नहीं, यदि भगवान् बुद्ध के सिर मढ़ी जाती है, तो उसे 'बुद्ध-वचन' नहीं स्वीकार किया जा सकता।

१५. एक तीसरी कसौटी भी है। वह यह कि भगवान् बुद्ध ने सभी विषयों को दो वर्गों में विभक्त रखा था। ऐसे विषय जिनके बारे में वे निश्चित थे और ऐसे विषय जिनके बारे में वे निश्चित नहीं थे। जो विषय पहली श्रेणी में आते हैं उनके बारे में उन्होंने अपने विचार निश्चयात्मक रूप से और अन्तिम रूप से व्यक्त किये हैं। जो विषय दूसरी श्रेणी में आते हैं उनके बारे में उन्होंनें अपनी राय भर व्यक्त कर दी है। लेकिन उनके वे विचार ऐसे हैं जो बदल भी सकते हैं।

१६. जिन तीन प्रश्नों के बारे में सन्देह है और मतभेद है उनके बारे में यह निश्चय करने से पहले कि भगवान् बुद्ध का निश्चित मत क्या था, यह आवश्यक है कि हम इन कसौटियों को न भूलें।

१. अलगद्दूपम सुत्तन्त (मज्झिम निकाय १।३।२)।
२. खेमा तथा प्रसेनजित के प्रसंग के लिये देखो संयुत्त-निकाय
३. कुतूहल सुत्त (संयुत्त निकाय)।
४. चूल-दुक्ख-क्खन्ध-सुत्तन्त (१।२।४)।
५. देवदह सुत्त (मज्झिम निकाय १०१)।
६. सिंहल-भिक्षु मछली खा लेते हैं, अण्डा नहीं।
७. अहिंसा परमो धर्मः—यह महाभारत का भी वचन है।
८. मिलिन्द-प्रश्न।
९. अलगद्दूपम सुत्तन्त—मज्झिम निकाय (२२)।
१०. महाकम्मविभंग सुत्त—मज्झिम निकाय (१३६)।
११. कण्णकत्थल सुत्त—(मज्झिम निकाय ९०)।
१२. महातण्हा संखय—(मज्झिम निकाय ३८)।
१३. जीवक—(मज्झिम निकाय ५५)।

तीसरा भाग

बौद्ध जीवन-मार्ग

१. शुभ-कर्म अशुभ-कर्म तथा पाप

१. शुभ कर्म करो। अशुभ कर्मों में सहयोग न दो। कोई पाप-कर्म न करो।

२. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है।[1]

३. यदि आदमी शुभ कर्म करे तो इसे उसे पुनः पुनः करना चाहिये। उसी में चित्त लगाना चाहिये। शुभ कर्मों का संचय सुखकर होता है।[2]

४. भलाई के बारे में यह मत सोचो कि मैं इसे प्राप्त न कर सकूंगा। बूंद बूंद पानी करके घड़ा भर जाता है। इसी प्रकार थोड़ा थोड़ा करके बुद्धिमान आदमी बहुत शुभ-कर्म कर सकता है।[3]

५. जिस काम को करके आदमी को पछताना न पड़े और जिसके फल को वह आनन्दित मन से भोग सके उस काम का करना अच्छा है।[4]

६. जिस काम को करके आदमी को अनुताप न हो और जिसके फल को प्रफुल्लित मन से भोग सके, उस काम का करना अच्छा है।[5]

७. यदि आदमी कोई शुभ कर्म करे तो उसे वह शुभ कर्म बार बार करना चाहिये। उसे इसमें आनन्दित होना चाहिये। शुभ कर्म का करना आनन्ददायक होता है।[6]

८. अच्छे आदमी को भी बुरे दिन देखने पड़ जाते हैं जब तक उसे अपने शुभ कर्मों का फल मिलना आरम्भ नहीं होता; लेकिन जब उसे अपने शुभ कर्मों का फल मिलना आरम्भ होता है, तब अच्छा आदमी अच्छे दिन देखता है।[7]

९. भलाई के बारे में यह कभी न सोचे कि मैं इसे प्राप्त न कर सकूंगा। जिस प्रकार बूंद बूंद करके पानी का घड़ा भर जाता है, उसी प्रकार थोड़ा थोड़ा करके भी भला आदमी भलाई से भर जाता है।[8]

१०. शील (=सदाचार) की सुगन्ध चन्दन, तगर तथा मल्लिका—सबकी सुगन्ध से बढ़कर है।[9]

११. धूप और चन्दन की सुगन्ध कुछ ही दूर तक जाती है, किन्तु शील की सुगन्ध बहुत दूर तक जाती है।[10]

१२. बुराई के बारे में भी यह न सोचे कि यह मुझ तक नहीं पहुंचेगी। जिस

प्रकार बूंद बूंद करके पानी का घड़ा भर जाता है, उसी प्रकार थोड़ा थोड़ा करके अशुभ-कर्म भी बहुत हो जाते हैं।[१]

१३. कोई भी ऐसा काम करना अच्छा नहीं, जिसके करने से पछताना हो और जिस का फल अश्रु-मुख होकर रोते हुए भोगना पड़े।[२]

१४. यदि कोई आदमी दुष्ट मन से कुछ बोलता है या कोई काम करता है तो दुःख उसके पीछे पीछे ऐसे ही हो लेता है जैसे गाड़ी का पहिया खींचने वाले (पशु) के पीछे पीछे।[३]

१५. पाप-कर्म न करे। अप्रमाद से न रहे। मिथ्या-दृष्टि न रखे।[४]

१६. शुभ कर्मों में अप्रमादी हो। बुरे विचारों का दमन करे। जो कोई शुभ कर्म करने में ढील करता है, उसका मन पाप में रमण करने लगता है।[५]

१७. जिस काम के कर चुकने के बाद पछताना पड़े उसका करना अच्छा नहीं, जिसका फल अश्रु-मुख होकर सेवन करना पड़े।[६]

१८. पापी भी सुख भोगता रहता है, जब तक उसका पापकर्म नहीं पकता; लेकिन जब उसका पापकर्म पकता है तब वह दुःख भोगता है।[७]

१९. कोई आदमी बुराई को 'छोटा' न समझे और अपने दिल में यह न सोचे कि यह मुझ तक नहीं पहुंच सकेगी। पानी की बूंदों के गिरने से भी एक पानी का घड़ा भर जाता है। इसी प्रकार थोड़ा थोड़ा पापकर्म करने से भी मूर्ख आदमी पाप से भर जाता है।[८]

२०. आदमी को शुभ कर्म करने में जल्दी करनी चाहिये और मन को बुराई से दूर रखना चाहिये। यदि आदमी शुभ कर्म में ढील करता है तो उसका मन पाप में रमण करने लग जाता है।[९]

२१. यदि एक आदमी पाप करे; तो उसे बार बार न करे। वह पाप में आनन्द न माने। पाप इकट्ठा होकर दुःख देता है।[१०]

२२. कुशल कर्म करे, अकुशल कर्म न करे। कुशल कर्म करने वाला इस लोक में सुखपूर्वक रहता है।[११]

२३. कामुकता से दुःख पैदा होता है, कामुकता से भय पैदा होता है। जो कामुकता से एकदम मुक्त है, उसे न दुःख है और न भय है।[१२]

२४. भूख सबसे बड़ा रोग है, संस्कार सब से बड़ा दुःख है। जो इस यथार्थ बात को जान लेता है उसके लिये निर्वाण सबसे बड़ा सुख है।[१३]

२५. स्वयं-कृत, स्वयं-उत्पन्न तथा स्वयं-पोषित पापकर्म करने वाले को ऐसे ही पीस डालता है जैसे वज्र मूल्यवान् मणि को भी।[१४]

२६. जो आदमी अत्यन्त दुःशील होता है, वह अपने आप को उस स्थिति में पहुंचा देता है, जहां उसका शत्रु उसे चाहता है, ठीक वैसे ही जैसे आकाश-बेल उस वृक्ष को जिसे वह घेरे रहती है।[१५]

२७. अकुशल कर्मों का तथा अहितकर कर्मों का करना आसान है। कुशल कर्मों का तथा हितकर कर्मों का करना कठिन है।[1]

२. लोभ और तृष्णा

१. लोभ और तृष्णा के वशीभूत न हो।

२. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है।

३. धन की वर्षा होने से भी आदमी का कामना की पूर्ति नहीं होती। बुद्धिमान आदमी जानता है कि कामनाओं की पूर्ति में अल्प-स्वाद है और दुःख है।[2]

४. वह दिव्य काम-भोगों में भी आनन्द नहीं मानता। वह तृष्णा के क्षय में ही रत रहता है। वह सम्यक्-सम्बुद्ध का श्रावक है।[3]

५. लोभ से दुःख पैदा होता है, लोभ से भय पैदा होता है। जो लोभ से मुक्त है, उसके लिये न दुःख है न भय है।[4]

६. तृष्णा से दुःख पैदा होता है, तृष्णा से भय पैदा होता है। जो तृष्णा से मुक्त है, उसके लिये न दुःख है, न भय है।[5]

७. जो अपने आप को मान के समर्पित कर देता है, जो जीवन के यथार्थ उद्देश्य को भूल कर काम-भोगों के पीछे पड़ जाता है, वह बाद में ध्यानी की ओर ईर्षा-भरी दृष्टि से देखता है।

८. आदमी किसी भी वस्तु के प्रति आसक्त न हो, वस्तु-विशेष की हानि से दुःख होता है। जिन्हें न किसी से प्रेम है और न घृणा है, वे बंधन-मुक्त हैं।[6]

९. काम-भोग से दुःख पैदा होता है, काम-भोग से भय पैदा होता है, जो काम-भोग से मुक्त है, उसे न दुःख है और न भय है।[7]

१०. आसक्ति से दुःख पैदा होता है, आसक्ति से भय पैदा होता है, जो आसक्ति से मुक्त है, उसे न दुःख है और न भय है।[8]

११. राग से दुःख पैदा होता है, राग से भय पैदा होता है, जो राग से मुक्त है, उसे न दुःख है और न भय है।[9]

१२. लोभ से दुःख पैदा होता है, लोभ से भय पैदा होता है, जो लोभ से मुक्त है, उसे न दुःख है और न भय है।[10]

१३. जो शीलवान है, जो प्रज्ञावान है, जो न्यायी है, जो सत्यवादी है तथा जो अपने कर्तव्य को पूरा करता है—उससे लोग प्यार करते हैं।[11]

१४. जो आदमी चिरकाल के बाद प्रवास से सकुशल लौटता है, उसके रिश्तेदार तथा मित्र उसका अभिनन्दन करते है।[12]

१५. इसी प्रकार शुभ कर्म करने वाले के गुण-कर्म परलोक में उसका स्वागत करते हैं।[13]

३. क्लेश और द्वेष

१. किसी को क्लेश मत दो; किसी से द्वेष मत रखो।

२. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है।

३. क्या संसार में कोई आदमी इतना निर्दोष है कि उसे दोष दिया ही नहीं जा सकता, जैसे शिक्षित घोड़ा चाबुक की मार की अपेक्षा नहीं रखता ?[१]

४. श्रद्धा, शील, वीर्य्य, समाधि, धर्म-विचय (=सत्य की खोज), विद्या तथा आचरण की पूर्णता तथा स्मृति (=जागरूकता) से इस महान् दुःखका अन्त करो।[२]

५. क्षमा सबसे बड़ा तप है, 'निर्वाण' सबसे बड़ा सुख है—ऐसा बुद्ध कहते हैं। जो दूसरों को आघात पहुंचाये वह प्रव्रजित नहीं; जो दूसरों को पीड़ा न दे —वही श्रमण है।[३]

६. वाणी से बुरा वचन न बोलना, किसी को कोई कष्ट न देना, विनयपूर्वक (=नियमानुसार) संयत रहना—यही बुद्ध की देशना है।[४]

७. न जीवहिंसा करो और न कराओ।[५]

८. अपने लिये सुख चाहने वाला जो, सुख चाहने वाले प्राणियों को न कष्ट देता है और न जान से मारता है, वह सुख प्राप्त करेगा।[६]

९. यदि एक टूटे भाजन की तरह तुम निःशब्द हो जाओ, तो तुमने निर्वाण प्राप्त कर लिया, तुम्हारा क्रोध से कोई सम्बन्ध नहीं।[७]

१०. जो निर्दोश और अहानिकर व्यक्तियों को कष्ट देता है, वह स्वयं कष्ट भोगता है।[८]

११. चाहे वह अलंकृत हो, तो भी यदि उसकी चर्या विषय नहीं, यदि वह शान्त है, दान्त है, स्थिरचित्त है, ब्रह्मचारी है, दूसरों के छिद्रान्वेषण करता नहीं फिरता—वह सचमुच एक श्रमण है, एक भिक्षु है।[९]

१२. क्या कोई आदमी लज्जा के मारे ही इतना संयत रहता है कि उसे कोई कुछ कह न सके, जैसे अच्छा घोड़ा चाबुक की अपेक्षा नहीं रखता ?[१०]

१३. यदि कोई आदमी किसी अहानिकर, शुद्ध और निर्दोष आदमी के विरुद्ध कुछ करता है तो उसकी बुराई आकर उसी आदमी पर पड़ती है, ठीक वैसे ही जैसे हवा के विरुद्ध फेंकी हुई धूल फेंकने वाले पर ही आकर पड़ती है।[११]

४. क्रोध और शत्रुता

१. क्रोध न करो। शत्रुता को भूल जाओ। अपने शत्रुओं को मैत्री से जीत लो।

२. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है।

३. क्रोधाग्नि शान्त होनी ही चाहिये।

४. जो यही सोचता रहता है 'उसने मुझे गाली दी, उसने मेरे साथ बुरा व्यवहार किया, उसने मुझे हरा दिया, उसने मुझे लूट लिया' उसका वैर कभी शान्त नहीं होता।[१]

५. जो ऐसे विचार नहीं रखता उसी का वैर शान्त होता है।

६. शत्रु शत्रु की हानि करता, घृणा करने वाला घृणा करने वाले की, लेकिन अन्त में यह किस की हानि होती है?

७. आदमी को चाहिये कि क्रोध को अक्रोध से जीते, बुराई को भलाई से जीते, लोभी को उदारता से जीते और झूठे को सच्चाई से जीते।[२]

८. सत्य बोले, क्रोध न करे; थोड़ा होने पर भी दे।[३]

९. आदमी को चाहिये कि क्रोध का त्याग कर दे, मान को छोड़ दे, सब बन्धनों को तोड़ दे; जो आदमी नाम-रूप में आसक्त नहीं है, जो किसी भी चीज़ को "मेरी" नहीं समझता है, उसे कोई कष्ट नहीं होता।[४]

१०. जो कोई उत्पन्न क्रोध को उसी प्रकार रोक लेता है जैसे सारथी भ्रान्त रथ को, उसे ही मैं (जीवन-रथ का) सच्चा सारथी कहता हूँ; शेष तो रस्सी पकड़ने वाले ही हैं।[५]

११. जय से वैर पैदा होता है। पराजित आदमी दुखी रहता है। शान्त आदमी जय-पराजय की चिंता छोड़कर सुखपूर्वक सोता है।[६]

१२. कामाग्नि के समान आग नहीं, घृणा के समान दुर्भाग्य नहीं। उपादान-स्कन्धों के समान दुःख नहीं, निर्वाण से बढ़कर सुख नहीं।[७]

५. मान, मन और मन के मैल

१. आदमी वही कुछ होता है, जो कुछ उसका मन उसको बना देता है।

२. सन्मार्ग पर आगे बढ़ने के लिये मन की साधना पहला कदम है।

३. बौद्ध जीवन-मार्ग में यह मुख्य शिक्षा है।

४. हर बात में मन ही पूर्वगामी है, मन ही मुख्य है।

५. यदि कोई आदमी दुष्ट मन से कुछ बोलता है या करता है तो दुःख उसके पीछे पीछे ऐसे ही हो लेता है जैसे गाड़ी के पहिये गाड़ी खींचने वाले पशु के पीछे पीछे।[८]

६. यदि आदमी स्वच्छ मन से कुछ बोलता है या करता है तो सुख उसके पीछे पीछे ऐसे ही हो लेता है जैसे कभी साथ न छोड़ने वाली छाया आदमी के पीछे पीछे।[९]

७. इस चंचल, अस्थिर, दुःरक्ष्य, दुःनिवार्य मन को मेधावी आदमी ऐसे ही सीधा करता है जैसे बाण बनाने वाला बाण को।[१०]

८. जिस प्रकार पानी से बाहर स्थल पर फेंकी हुई मछली तड़पती है, उसी प्रकार मार के बंधन से मुक्त होता हुआ यह मन तड़पता है।[1]

९. जिसे काबू में रखना कठिन है, जो चंचल है, जो हमेशा 'मौज' ही खोजता रहता है—ऐसे मन को काबू में रखना अच्छा है। काबू में रहा हुआ मन सुख के देने वाला होता है।[2]

१०. अपने आप को एक प्रदीप (या द्वीप) बनाओ, परिश्रम करो, जब तुम्हारे चित्त-मलों का नाश हो जायगा और तुम निर्दोष हो जाओगे तो तुम दिव्यभूमि को प्राप्त होओगे।[3]

११. जिस प्रकार सुनार क्षण-क्षण करके, थोड़ा थोड़ा करके चाँदी के मैल को दूर कर देता है, उसी प्रकार बुद्धिमान आदमी को चाहिये कि क्षण-क्षण करके, थोड़ा थोड़ा करके अपने चित्त के मैल को दूर कर दे।[4]

१२. जिस प्रकार लोहे से उत्पन्न हुआ मोर्चा लोहे को ही खा जाता है, उसी प्रकार पापी के अपने कर्म उसे दुर्गति तक ले जाते हैं।[5]

१३. लेकिन सब मलों से भी बढ़कर मल है। अविद्या सबसे बढ़कर मल है। हे भिक्षुओ! इस मल का त्याग कर निर्मल हो जाओ।[6]

१४. जो आदमी कौवे की तरह निर्लज्ज है, शरारती है, दुस्साहसी है, दुष्ट है—उसके लिये जीवन सुकर है।[7]

१५. लेकिन जो आदमी विनम्र है, सदैव पवित्रता की खोज में रहता है, अनासक्त है, शान्त है, निर्मल है, बुद्धि-मुक्त है—ऐसे आदमी के लिये जीवन सुकर नहीं होता।[8]

१६-१७. जो आदमी जीवहिंसा करता है, जो झूठ बोलता है, जो चोरी करता है, जो पर-स्त्री गमन करता है, जो आदमी शराब आदि नशीली चीज़ें पीता है—वह यहीं इसी संसार में अपनी क़बर अपने आप खोदता है।[9]

१८. हे आदमी! इस बात को जान ले कि असंयत की हालत अच्छी नहीं रहती। सावधान रह कि लोभ और पाप-कर्म तुम्हें चिरकाल तक दुःख में ही न डाले रहें।[10]

१९. संसार किसी को कुछ देता है तो या तो श्रद्धा से देता है या खुशी से देता है; यदि आदमी दूसरे को मिलने वाले पानीय या भोजन को देखकर जलता है तो उसको न दिन को शान्ति मिल सकती है न रात को।[11]

२०. जिसके मन में ऐसी भावना नहीं रही है, जड़-मूल से जाती रही है वह दिन को भी शान्ति से रहता है और रात को भी शान्ति से रहता है।[12]

२१. राग के समान आग नहीं और लोभ के समान ओघ (=बाढ़) नहीं।[13]

२२. दूसरों के दोष आसानी से दिखाई देते हैं, अपने कठिनाई से। आदमी

दूसरों के दोषों को तो भुस की तरह उड़ाता है, किन्तु अपने दोषों को तो वैसे ही छिपाता है जैसे दुष्ट जुआरी गोटी को।[1]

२३. जो आदमी दूसरों के दोष ही देखता रहता है और अपने सदा खिन्न ही रहता है, उसके आस्रव बढ़ते ही जाते हैं। वह चित्त-मलों के क्षय से बहुत दूर है।[2]

२४. सभी पापों से बचो, कुशल कर्म करो, अपने विचारों को शुद्ध रखो—यही बुद्ध की शिक्षा है।[3]

६. अपना-आप और आत्म-विजय

१. यदि अपना-आप है तो आदमी को आत्मविजयी होना चाहिये।

२. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है।

३. आदमी का अपना-आप ही उसका मालिक है, दूसरा कौन मालिक हो सकता है? यदि आदमी अपने-आप को संयत रखता है तो वह दुर्लभ स्वामित्व को प्राप्त करता है।[4]

४. जो मूर्ख अर्हतों के, आर्यों के अथवा शीलवानों के शासन को उपेक्षा की दृष्टि से देखता है और झूठे सिद्धान्तों का अनुकरण करता है, तो जिस प्रकार काष्ठ (=बांस) के फल उसके अपने विनाश का ही कारण बनते हैं, उसी प्रकार उस आदमी के कर्म उसके अपने विनाश का ही कारण बनते हैं।[5]

५. आदमी अपने आप ही पाप-कर्म करता है, अपने आप ही उससे मैला होता है। अपने आप ही पाप-कर्म से विरत रहता है, अपने आप ही उससे शुद्ध होता है। शुद्धि-अशुद्धि प्रत्येक की व्यक्तिगत बात है। एक दूसरे को शुद्ध नहीं कर सकता।[6]

६. जो 'सुन्दर ही सुन्दर' देखता रहता है, जो इन्द्रियों में असंयत है, जो भोजन में मात्रज्ञ नहीं है जो शिथिल होता है और जो हीन-वीर्य्य होता है उस आदमी को उसके अपने असंयत कर्म ही ऐसे पछाड़ देते हैं जैसे वायु दुर्बल पेड़ को।[7]

७. जो 'सुन्दर ही सुन्दर' नहीं देखता रहता, जिस की इन्द्रियां संयत हैं, जो भोजन में मात्रज्ञ है, जो श्रद्धावान है तथा वीर्य्यवान है वह उसी प्रकार पछाड़ नहीं खा सकता जैसे वायु से पर्वत।[8]

८. यदि आदमी को अपना-आप प्रिय है तो उसे अपने-आप पर कड़ी नजर रखनी चाहिये।[9]

९. सबसे पहले अपने-आप को ही ठीक मार्ग पर लगाये, तब दूसरों को उपदेश दे। बुद्धिमान आदमी को चाहिये कि कोई ऐसा अवसर न दे कि दूसरे ही उसे कुछ कह-सुन सकें।[10]

१०. अपने-आप को ही काबू में रखना कठिन है। यदि आदमी जैसा उपदेश दूसरों को देता है, स्वयं उसके अनुसार चले तो वह दूसरों को काबू में रख सकता है। अपना-आप ही काबू में रखना कठिन है।[११]

११. आदमी स्वयं पाप करता है और स्वयं भोगता है। स्वयं ही वह पाप से विरत रहता है और स्वयं ही परिशुद्ध होता है। शुद्धि और अशुद्धि दोनों ही व्यक्तिगत हैं। कोई एक किसी दूसरे को परिशुद्ध नहीं कर सकता।[१]

१२. एक आदमी युद्ध में हजारों-लाखों को जीत ले, एक आदमी अपने-आप को जीते ले, वही सच्चा संग्राम-विजयी है।[२]

१३. यदि आदमी जैसा उपदेश दूसरों को देता है, स्वयं उसके अनुसार चले तो वह दूसरों को काबू में रख सकता है। अपना-आप ही काबू में रखना कठिन है।[४]

१४. निश्चय से आदमी आप अपना रक्षक है। दूसरा कौन रक्षक हो सकता है? यदि आदमी आप अपनी रक्षा करता है तो वह ऐसे रक्षक को प्राप्त करता है, जिसके समान रक्षक मिलना दुर्लभ है।[५]

७. बुद्धि, न्याय और संगति

१. बुद्धिमान बनो, न्यायशील रहो और संगति अच्छी रखो।

२. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है।

३. यदि कोई ऐसा आदमी मिले जो वरजने-योग्य से वर्जित करे, जो ताड़ना भी दे और जो बुद्धिमान हो; तो उस आदमी का कहना ऐसे ही माने जैसे किसी खजाना बताने वाले का। जो उसका अनुकरण करेगा, उसके लिये यह अच्छा ही होगा, बुरा नहीं होगा।[९]

४. जो सख्त-सुस्त कहता है, जो शिक्षा देता है, जो अनुचित कर्म से रोकता है—उससे सत्पुरुष प्यार करते हैं, असत्पुरुष घृणा।[१०]

५. पापी पुरुषों की संगति न करे। नीच पुरुषों की संगति न करे। सदाचारियों को मित्र बनाये, श्रेष्ठ पुरुषों को मित्र बनाये।[११]

६. जो धर्मामृत का पान करता है, वह विप्रसन्न चित्त से सुखपूर्वक रहता है। श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा उपदिष्ट धर्म में पण्डित आदमी सदा सुखी रहता है।[१]

७. पानी ले जाने वाले जहां चाहते हैं वहां पानी को ले जाते हैं, जो बाण बनाने वाले हैं वे बाण को सीधा करते हैं, बढ़ई लोग लकड़ी को सीधा करते हैं और पण्डितजन अपने आप को विनीत (=नियमासानुर चलने वाला) बनाते हैं।[२]

८. जिस प्रकार एक घन पर्वत वायु के झोंके से हिलता-डोलता नहीं, उसी प्रकार पण्डितजन निन्दा-प्रशंसा से विचलित नहीं होते।[३]

९. धर्म सुन चुकने के अनन्तर पण्डित जन गहरी, गम्भीर झील की तरह शान्त हो जाते हैं।[४]

१०. सत्पुरुष सभी परिस्थितियों में सम बने रहते हैं। सत्पुरुष इच्छाओं की तृप्ति के निमित्त कभी मुंह नहीं खोलते, वे सुख वा दुःख का, अनुभव होने पर ऊंचा-नीचा भाव प्रदर्शित नहीं करते।[५]

११. जब तक पाप-कर्म पकता नहीं तब तक मूर्ख आदमी इसे मधु की तरह मधुर समझता है। लेकिन जब पाप-कर्म पकता है तब मूर्ख आदमी दुःखी होता है।[६]

१२. जब मूर्ख आदमी पाप-कर्म करता है, तो वह नहीं जानता है (कि मैं पाप-कर्म कर रहा हूँ), लेकिन वह आग से जले की तरह अपने पाप-कर्मों से जलता है।[७]

१३. जागने वाले की रात लम्बी होती है, श्रान्त आदमी का योजन लम्बा होता है, धर्म न जानने वाले मूर्ख आदमी का जीवन लम्बा होता है।[८]

१४. यदि आदमी को अपने से श्रेष्ठ वा अपने समान साथी न मिले, तो उसे अकेले ही अपने जीवन-पथ पर आगे बढ़ना चाहिये, मूर्ख आदमियों की संगति (अच्छी) नहीं।[९]

१५. 'यह मेरे पुत्र हैं, यह मेरा धन है' यही सोच सोच कर मूर्ख आदमी दुःखी होता रहता है। अपना-आप ही अपना नहीं है, कहाँ पुत्र और कहाँ धन![१०]

१६. जो मूर्ख आदमी अपने को मूर्ख समझता है, उतने अंश में वह भी पण्डित है; असली मूर्ख वह है जो मूर्ख होकर भी अपने-आप को पण्डित समझता है।[११]

१७. यदि एक मूर्ख आदमी जन्म भर भी किसी पण्डित की संगति करे तो भी वह सद्धर्म को नहीं जान सकता जैसे कड़छी दाल के रस को।[१२]

१८. लेकिन कोई मेधावी यदि मुहूर्त भर भी पण्डित की संगति करे तो भी वह सद्धर्म को जान ले सकता है, जैसे जिह्वा दाल के रस को।[१३]

१९. दुर्मेधा मूर्ख स्वयं अपना शत्रु आप होता है, क्योंकि वह ऐसे पाप-कर्म करता है जिनका फल कटु होता है।[१४]

२०. उस कार्य का करना अच्छा नहीं जिसके लिये आदमी को पछताना पड़े जिसका फल रोते हुए भोगना पड़े।[1]

२१. उस कार्य का करना अच्छा है, जिसके कर चुकने के बाद पछताना न पड़े और जिसका फल आदमी प्रफुल्ल मन से प्रीतियुक्त होकर भोग सके।[2]

२२. जब तक पाप-कर्म पकता नहीं, तब तक मूर्ख आदमी उसे मधु की तरह मधुर समझता रहता है। लेकिन जब पाप-कर्म पकता है, तब मूर्ख आदमी दुःखी होता है।[3]

२३. छिपा हुआ पाप-कर्म प्रकट होकर जब मूर्ख के लिये दुःख का कारण बनता है, तो वह उसके शुक्ल अंश का नाश कर देता है, बल्कि उसके सिर के टुकड़े टुकड़े कर देता है।[4]

२४. झूठे यश की कामना, भिक्षुओं और विहारोंमें अपनी प्रधानता की इच्छा, दूसरों से सत्कृत पूजित होने की भावना—एक मूर्ख के लिये छोड़ दो।[5]

२५. आदमी के बाल पक जाने से ही वह 'वृद्ध' नहीं होता। उसके बाल भले ही सफेद हो गये हों, वह 'व्यर्थ बूढ़ा हुआ' कहलाता है।[6]

२६. जिसमें सत्य है, शील है, करुणा है, संयम है, शुद्धि है तथा बुद्धि है—वही वास्तविक 'बुद्ध' है।[7]

२७. अधिक बोलने से वा सुवर्ण होने से ही कोई ईर्ष्यालु, कंजूस, बेईमान आदमी 'आदरणीय' नहीं बनता।[8]

२८. जिसके ये सब दुर्गुण जड़-मूल से जाते रहे हैं, जो घृणा से मुक्त है तथा जो बुद्धिमान है—वही आदरणीय कहलाता है।[9]

२९. एक आदमी यदि जोर-जबर्दस्ती किसी से कोई काम करा लेता है तो उससे वह 'न्यायी' नहीं माना जाता। ऐसा नहीं, जो 'धर्म' और 'अधर्म' की पहचान रखता है, जो बुद्धिमान है और जो जोर-जबर्दस्ती से नहीं, बल्कि धर्मानुसार दूसरों का मार्ग-प्रदर्शन करता है, ऐसे विज्ञ, धर्मरक्षक को ही 'न्यायी' कह सकते हैं।[10]

३०. बहुत बोलने से ही कोई आदमी 'पण्डित' नहीं होता। जो क्षमाशील होता है, जो घृणा और भय से मुक्त होता है, वही पण्डित कहलाता है।[11]

३१. बहुत बोलने से आदमी धर्म-धर नहीं होता; बल्कि जो चाहे थोड़ा धर्म सुने किन्तु जो उसे कार्य्य रूप में परिणित करता है, जो धर्म के विषय में कभी प्रमाद नहीं करता, वही 'धर्मधर' कहलाता है।[12]

३२. यदि आदमी को कोई बुद्धिमान साथी मिले, धैर्यवान्; तो वह सब खतरों से बचकर, सुखपूर्वक किन्तु विवेक-युक्त, उसके साथ रह सकता है।[13]

३३. लेकिन यदि आदमी को कोई बुद्धिमान साथी न मिले, धैर्यवान्; तो उसे चाहिये कि उस राजा की तरह जिसने अपने विजित देश को पीछे छोड़ दिया है या जंगल में हाथी की तरह अकेला ही रहे।[14]

३४. अकेला रहना अच्छा है, मूर्ख आदमी की संगति अच्छी नहीं; आदमी अकेला रहे, कोई पाप-कर्म न करे; थोड़ी सी इच्छायें रखे; जैसे जंगल में हाथी।[१]

३५. समय पड़ने पर, मित्रों का होना सुखकर होता है, भोग की सामग्री सुखकर होती है, शुभ कर्म का करना सुखकर होता है, अन्त समय आ पड़ने पर पुण्यों का किया रहना सुखकर होता है, सारे दुःख का नाश सुखकर है।[२]

३६. मातृत्व सुखकर है, पितृत्व सुखकर है तथा श्रमणत्व सुखकर है।[३]

३७. वृद्ध होने तक शील-पालन सुखकर है, दृढ़तापूर्वक प्रतिष्ठित श्रद्धा सुखकर है, प्रज्ञा का लाभ सुखकर है तथा पापों का न करना सुखकर है।[४]

३८. मूर्ख की संगति देर तक कष्ट देती है, मूर्ख की संगति शत्रु की संगति के समान सदा दुःखद है; बुद्धिमान की संगति सगे-सम्बन्धियों की संगति के समान सदा सुखद है।[५]

३९. इसलिये आदमी को चाहिये कि वह प्रज्ञावान्, बुद्धिमान, विज्ञ, क्षमाशील, धर्मधर तथा श्रेष्ठ आदमी का ऐसे ही अनुसरण करे जैसे चन्द्रमा नक्षत्र-पथ का।[६]

४०. प्रमाद में न पड़े और काम-भोगों के पीछे भी न पड़े। अप्रमादी को विपुल सुख प्राप्त होता है।[७]

४१. जब बुद्धिमान आदमी प्रमाद को अप्रमाद से दबा देता है तो प्रज्ञा के प्रासाद पर चढ़कर, स्वयं शोक-रहित होता हुआ वह धैर्यवान शोकग्रस्त मूर्ख जनता को ऐसे देखता है जैसे पर्वत पर चढ़ा हुआ कोई धैर्यवान्, नीचे जमीन पर खड़ी हुई जनता को।[८]

४२. प्रमादियों में अप्रमादी, सोने वालों में जागरूक बुद्धिमान् आदमी दूसरों को पीछे छोड़कर स्वयं इस प्रकार आगे बढ़ जाता है जैसे किसी दुर्बल घोड़े को पीछे छोड़कर शीघ्रगामी घोड़ा।[९]

८. चित्त की जागरूकता और एकाग्रता

१. प्रत्येक कार्य करते समय जागरूक रहो, प्रत्येक काम में सोच-विचार से काम लो; हर विषय में अप्रमादी और उत्साही रहो।

२. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है।

३. जो कुछ हम हैं, यह सब कुछ हमारे विचारों का ही परिणाम है; यह हमारे विचारों पर ही आधारित है, यह हमारे विचारों से ही निर्मित है। यदि आदमी बुरे विचारों से कुछ भी बोलता या करता है, तो वह दुःख भोगता है। यदि आदमी पवित्र विचारों से कुछ भी बोलता या करता है, तो उसे सुख मिलता है। इसलिये पवित्र विचार महत्वपूर्ण हैं।[१०]

४. विचारहीन मत बनो, विचारवान् बनो। दलदल में फंसे हुए हाथी की तरह अपने आप को पाप में से उबारो।[1]

५. आदमी को चाहिये कि अपने चित्त की रक्षा करे, इसकी रक्षा करना आसान नहीं, यह जहां चाहे वहां जाने वाला है; किन्तु चित्त की रक्षा सुख-दायिनी है।[2]

६. जिस प्रकार ठीक से न छाई गई छत में पानी घुस जाता है, उसी प्रकार यदि चित्त साधना-विहीन है, तो उसमें राग प्रवेश कर जाता है।[3]

७. जिस प्रकार ठीक से छाई हुई छत में पानी नहीं प्रवेश कर पाता है; उसी प्रकार साधना-युक्त चित्त में राग का प्रवेश नहीं हो पाता है।[4]

८. पहले तो यह चित्त जहां चाहे वहां गया; लेकिन अब मैं इस चित्त को वैसे ही काबू में रखूंगा जैसे अंकुश-धारी हयवान् मस्त हाथी को।[5]

९. जहां चाहे वहां जाने वाले चित्त को साधना अच्छा है, इसे काबू में रखना कठिन है। किन्तु साधना-युक्त चित्त सुखवह होता है।[6]

१०. जो इस दूर-गामी चित्त को संयत रखेंगे, वे मार (=कामराग) के बन्धन से मुक्त रहेंगे।[7]

११. यदि आदमी का चित्त अस्थिर है, यदि वह धर्म का जानकार नहीं है, यदि उसका चित्त शान्त नहीं है तो उसकी प्रज्ञा कभी पूर्णता को प्राप्त नहीं होगी।[8]

१२. एक द्वेषी अपने द्वेषी की जितनी हानि कर सकता है, एक शत्रु अपने शत्रु को जितना नुकसान पहुंचा सकता है, गलत रास्ते पर गया हुआ चित्त आदमी की उससे कहीं अधिक हानि कर सकता है।[9]

१३. इसी प्रकार, ठीक रास्ते पर गया हुआ चित्त आदमी की जितनी भलाई कर सकता है उतनी भलाई न माता-पिता ही कर सकते हैं और न अन्य रिश्तेदार ही कर सकते हैं।[10]

९. अप्रमाद और वीर्य

१. जब अप्रमादी, प्रमाद को जीत लेता है तो शोक-मुक्त हुआ वह स्वयं शोक-ग्रस्त मानव-जाति को प्रज्ञारूपी प्रासाद पर चढ़ा हुआ ऐसे देखता है जैसे कोई पर्वत-शिखर पर चढ़ा हुआ बुद्धिमान् आदमी नीचे तलहटी में खड़े हुए मूर्खों को देखता है।[11]

२. प्रमादियों को अप्रमादी, सोते हुओं को जागने वाला ऐसे ही पीछे छोड़कर चला जाता है जैसे शीघ्रगामी अश्व दुर्बल अश्व को।[12]

३. प्रमाद में मत पड़ो। काम-भोगों में मत फंसो। अप्रमादी ही ध्यान-लाभ करता है।[13]

४. अप्रमाद अमृत पद है, प्रमाद तो मृत्यु के ही समान है। जो अप्रमादी हैं वे नहीं मरते हैं और प्रमादी तो मरे समान ही होते हैं।[१]

५. अपने (जीवन के) उद्देश्य को, दूसरे के बड़े अर्थ के लिये भी न छोड़े। जब एक बार अपना उद्देश्य स्पष्ट हो जाय तो दृढ़तापूर्वक उसे ही पकड़े रहे।[२]

६. अप्रमादी बनो। प्रमाद को दूर भगाओ। सत्पथ पर चलो; जो आदमी सत्पथ पर चलता है, वह दुनिया में सुख से रहता है।

७. प्रमाद एक कलंक है, सतत् प्रमाद एक काला धब्बा है। निरन्तर प्रयास और प्रज्ञा की सहायता से प्रमाद रूपी विषैले तीर को निकाल बाहर करो।

८. प्रमाद में मत पड़ो। काम-भोगों में मत फंसो। अप्रमादी तथा ध्यानी ही असीम सुख लाभ करते हैं।[३]

९. यदि कोई अप्रमाद-युक्त आदमी जागरूक रहता है, यदि वह विस्मरण-शील नहीं है, यदि उसकी चर्या शुद्ध है, यदि वह विवेक से काम लेता है, यदि वह संयत है तथा उसका आचरण धर्मानुसार है तो उसका यश बढ़ता है।[४]

१०. दुःख और सुख, दान तथा दया

१. गरीबी से दुःख पैदा होता है।

२. लेकिन यह आवश्यक नहीं कि गरीबी दूर होने से आदमी सुखी भी हो जाय।

३. ऊँचा जीवन-स्तर नहीं, बल्कि ऊंचा-आचरण सुख का मूलमंत्र है।

४. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है।

५. भूख सबसे बड़ा रोग है।

६. आरोग्य सबसे बड़ा लाभ है, सन्तोष सबसे बड़ा धन है, विश्वास सबसे बड़ा रिश्तेदार है और निर्वाण सबसे बड़ा सुख है।[५]

७. वैरियों के बीच में भी अवैरी बनकर हम सुखपूर्वक जीयेंगे।[६]

८. आतुरों के बीच में भी अनातुर बनकर हम सुखपूर्वक जीयेंगे।[७]

९. लोभियों में निर्लोभी बनकर हम सुखपूर्वक जीयेंगे।[८]

१०. जिस प्रकार बेकार की घास खेतों को हानि पहुंचाती है उसी प्रकार काम-राग जनता को कष्ट देता है। इसलिये जो राग-मुक्त है उन्हें दान देने का महान् फल है।[९]

११. जिस प्रकार बेकार की घास खेतों को हानि पहुंचाती है उसी प्रकार प्रमाद जनता को कष्ट देता है। इसलिये जो प्रमाद-मुक्त हैं उन्हें दान देने का महान् फल है।

१२. जिस प्रकार बेकार की घास खेतों को हानि पहुंचाती है, उसी प्रकार

तृष्णा जनता को कष्ट देती है। इसलिये जो तृष्णा-मुक्त हैं उन्हें दान देने का महान् फल है।[1]

१३. धर्म का दान सब दानों से बढ़कर है। धर्म का माधुर्य सब माधुर्यों से बढ़कर है। धर्म का आनन्द सब आनन्दों से बढ़कर है।[2]

१४. जय से वैर पैदा होता है, पराजित दुःखी रहता है। जिसने यह और पराजय की भावना का त्याग कर दिया है वह संतोष से सुखी रहता है।[3]

१५. रागाग्नि के समान आग नहीं, घृणा के समान पराजय नहीं, इस शरीर के समान कोई दुःख (का कारण) नहीं, शान्ति के समान कोई सुख नहीं।[4]

१६. दूसरों की कमियों की ओर वा दूसरों के कृत-अकृत की ओर मत देखो। अपनी ही कमियों या अपने ही कृत-अकृत की ओर देखो।[5]

१७. जो विनम्र है, जो शुद्धि-गवेषक है, जो आसक्ति-रहित है, जो एकान्त का इच्छुक है, जो पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहता है तथा जो विवेक-प्रिय है —उसके लिये जीवन कठिन है।[6]

१८. क्या संसार में कोई आदमी ऐसा है जो ऐसा अवसर ही नहीं देता कि उसे कोई कुछ कह-सुन सकें, जैसे अच्छा घोड़ा अपने सवार को कभी चाबुक चलाने का अवसर नहीं देता ?

१९. किसी से कठोर वचन मत बोलो। दूसरे भी वैसा ही प्रत्युत्तर देंगे। क्रोध-युक्त वाणी दुःखद है। किसी पर भी प्रहार करोगे तो तुम पर भी प्रहार होगा।

२०. स्वतन्त्रता, उदारता, सदाशयता और निःस्वार्थपरता का संसार के लिये वैसा ही महत्व है जैसा पहिये की धुरी का पहिये के लिये।

२१. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है।

११. ढोंग

१. कोई झूठ न बोले। कोई दूसरे को झूठ बोलने की प्रेरणा न करे और कोई दूसरे के झूठ बोलने का समर्थन न करे। सभी प्रकार का मिथ्याभाषण दूर दूर रहे।

२. जैसे तथागत बोलते हैं तदनुसार आचरण करते हैं। जैसा आचरण करते हैं, वैसा ही बोलते हैं। क्योंकि वे 'यथाभाषी तथा कारी और यथाकारी तथा भाषी' हैं, इसीलिये वे तथागत कहलाते हैं।

३. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है।

१२. सम्यक् मार्ग का अनुसरण

१. सन्मार्ग को चुनो। उस पथ से विचलित न हो।

२. यूँ पथ बहुत हैं, किन्तु सभी सन्मार्ग की ओर नहीं जाते।

३. सन्मार्ग थोड़े से ही लोगों को सुखी बनाने के लिये नहीं है, बल्कि सभी को सुखी बनाने के लिये है।

४. यह आदि में कल्याणकारी होना चाहिये, मध्य में कल्याणकारी होना चाहिये और अन्त में कल्याणकारी होना चाहिये।

५. सन्मार्ग पर चलने का मतलब है बौद्ध जीवन-मार्ग पर चलना।

६. सर्वश्रेष्ठ मार्ग आर्य-अष्टांगिक मार्ग है, सर्वश्रेष्ठ सत्य चार आर्य-सत्य हैं, सर्वश्रेष्ठ धर्म विराग है, सर्वश्रेष्ठ पुरुष वह है जो चक्षुमान (=बुद्ध) है।[१]

७. यही एक मार्ग है, प्रज्ञा की विशुद्धि का दूसरा मार्ग ही नहीं है। इसलिये इसी पर चलो।[२]

८. यदि तुम इस मार्ग पर चलोगे, तो तुम दुःख का अन्त कर सकोगे। मैंने दुःखरूपी शल्य की सम्यक् जानकारी प्राप्त करने के अनन्तर इस मार्ग का उपदेश दिया है।[३]

९. प्रयास तो तुम्हें स्वयं करना होगा। तथागत तो केवल पथ-प्रदर्शक हैं।[४]

१०. 'सभी संस्कार अनित्य हैं', जब प्रज्ञा की आँख से कोई इसे देख लेता है, तो वह दुःख का अन्त कर सकता है।[५]

११. 'सभी धर्म अनात्म हैं' जब कोई प्रज्ञा से इसे देखता है तो उसे दुःख से मुक्ति प्राप्त होती है।[६]

१२. जो उत्साहपूर्वक कार्य करने के समय उत्साहपूर्वक कार्य नहीं करता, जो तरुण और सशक्त होने पर भी अत्यन्त आलसी रहता है, जिसकी संकल्प-शक्ति दृढ़ नहीं है—ऐसा सुस्त आदमी कभी प्रज्ञावान नहीं हो सकता।[७]

१३. वाणी पर ध्यान दे, विचारों को संयत रखे तथा शरीर से कोई बुरा कर्म न करे। आदमी यदि केवल तीन कर्म-पंथों को निर्मल रखे तो वह बुद्ध-उपदिष्ट पथ को प्राप्त कर लेगा।[८]

१४. वास्तविक ज्ञान लाभ है, ज्ञान का अभाव हानि है—इन दोनों बातों को जानकर आदमी को चाहिये कि ऐसा व्यवहार करे कि ज्ञान में वृद्धि हो।[९]

१५. अपने ही हाथ से, शरद्कालीन कुमुद की तरह, स्नेह-सूत्र को काट डालो। शान्ति-पथ पर आरूढ़ हो। सुगत (=बुद्ध) ने निर्वाण की देशना की है।[१०]

१६. असद्धर्म का सेवन न करे। अविचारवान् बनकर न रहे। मिथ्या मत में वृद्धि करने वाला न हो।[११]

१७. उठ कर खड़ा हो जाये। प्रमाद न करे। सद्धर्म का पालन करे। शील-वान् संसार में सुखी रहता है।[१२]

१८. जो पहले भले प्रमादी रहा हो, किन्तु बाद में जो प्रमाद को छोड़ देता है वह बादलों से मुक्त चन्द्रमा की तरह इस संसार को प्रभावित करता है।[१३]

१९. जिसके अच्छे कर्म उसके बुरे कर्मों को ढक लेते हैं, वह बादलों से मुक्त चन्द्रमा की तरह इस लोक को प्रकाशित करता है ।[1]

२०. जो आदमी धर्म का अतिक्रमण करता है और जो मृषावादी है, वह कोई भी पाप-कर्म कर सकता है ।[2]

२१. जो सदा जागरूक हैं, जो दिन-रात अपने आप को अधिकाधिक शिक्षित करते रहते हैं और जो निर्वाणाभिमुख हैं, उनके आस्रव अस्त हो जाते हैं ।[3]

२२. यह पुरानी बात है जो चुप रहता है उसकी भी निन्दा होती है, जो अधिक बोलता है उसकी भी निन्दा होती है, जो कम बोलता है उसकी भी निन्दा होती है; इस पृथ्वी पर कोई ऐसा नहीं जिसकी कोई न कोई निन्दा न करता हो ।[4]

२३. न कोई ऐसा आदमी हुआ है, न होगा और न है, जिसकी निरन्तर निन्दा ही निन्दा होती हो अथवा निरन्तर ही प्रशंसा होती हो ।[5]

२४. वाणी के क्रोध के प्रति सावधान रहो । अपनी जिह्वा पर संयम रखो । मन के कोप के प्रति सावधान रहे । अपने मन पर संयम रखो ।[6]

२५. अप्रमाद अमृत (निर्वाण) का पथ है, प्रमाद मृत्यु का पथ है । जो अप्रमादी हैं वे मरते नहीं हैं, जो प्रमादी हैं वे तो मरे हुए ही हैं ।[7]

१३. सद्धर्म के साथ मिथ्या धर्म को मत मिलाओ

१. जो झूठ को सच और सच को झूठ समझ बैठते हैं---ऐसे मिथ्या-दृष्टि-सम्पन्न लोगों को कभी सत्य की प्राप्ति नहीं होती ।[8]

२. जो सच को झूठ और झूठ को सच समझ बैठते हैं---ऐसे मिथ्या-दृष्टि-सम्पन्न लोगों को कभी सत्य की प्राप्ति नहीं होती ।[9]

३. जो सत्य को सत्य और झूठ को झूठ समझ लेते हैं---ऐसे सम्यक्-दृष्टि-सम्पन्न लोगों को ही सत्य की प्राप्ति होती है ।[10]

४. जैसे ठीक से न छाई गई छत में पानी प्रवेश कर जाता है, उसी प्रकार साधना-रहित चित्त में राग प्रवेश कर जाता है ।[11]

५. जैसे ठीक से छाई गई छत में पानी प्रवेश नहीं करता, उसी प्रकार साधनायुक्त चित्त में राग प्रवेश नहीं करता ।[12]

६. उठे । प्रमाद न करे । सन्मार्ग पर चले । सन्मार्ग पर चलने वाला इस लोक तथा दूसरे सभी लोकों में सुखी रहता है ।[13]

७. सन्मार्गगामी बने । कुमार्गगामी न बने । सन्मार्ग पर चलने वाला इस लोक तथा दूसरे सभी लोकों में सुखी रहता है ।[14]

पृष्ठ २८०—१. धम्मपद, बुद्धवग्गो (५), २. धम्मपद, पापवग्गो (३), ३. धम्मपद, पापवग्गो (७), ४. धम्मपद, बालवग्गो (८), ५. धम्मपद, बाल-वग्गो, (९), ६. धम्मपद, पापवग्गो (३), ७. धम्मपद, पापवग्गो (५), ८. धम्मपद, पापवग्गो (७), ९. धम्मपद, पुप्फवग्गो (१२), १०. पुप्फवग्गो (१३)।

पृष्ठ २८१—१. पापवग्गो (६), २. बालवग्गो (८), ३. यमक वग्गो (१), ४. लोकवग्गो (१), ५. निरयवग्गो (८), ६. बालवग्गो (८), ७. पापवग्गो—८. पापवग्गो—६, ९. पापवग्गो—१, १०. पापवग्गो—२, ११. लोकवग्गो—३, १२. पियवग्गो—७, १३. सुखवग्गो—७, १४. अत्तवग्गो—५, १५. अत्तवग्गो—६।

पृष्ठ २८२—१ से १३ तक; अत्तवग्गो (७), बुद्धवग्गो (८), बुद्धवग्गो (९), पियवग्गो (६), पियवग्गो (८), पियवग्गो (३), पियवग्गो (७), पियवग्गो (६), पियवग्गो (४), पियवग्गो (८), पियवग्गो (९), पियवग्गो (११), पियवग्गो (१२)।

पृष्ठ २८३—१ से ११ तक; दण्डवग्गो (१५), दण्डवग्गो (१६), बुद्धवग्गो (६), बुद्धवग्गो (७), दण्डवग्गो (१), दण्डवग्गो (४), दण्डवग्गो (६), दण्डवग्गो (९), दण्डवग्गो (१४), दण्डवग्गो (१५), पापवग्गो (१०)।

पृष्ठ २८४—१ से १० तक; यमकवग्गो (३), कोधवग्गो (३), कोधवग्गो (४), कोधवग्गो (१), कोधवग्गो (२), सुखवग्गो (५), सुखवग्गो (६), यमक-वग्गो (१), यमकवग्गो (२), चित्तवग्गो (१)।

पृष्ठ २८५—१ से १३ तक; चित्तवग्गो (२), चित्तवग्गो (३), मलवग्गो (२), मलवग्गो (५), मलवग्गो (६), मलवग्गो (९), मलवग्गो (१०), मलवग्गो (११), मलवग्गो (१२, १३), मलवग्गो (१४), मलवग्गो (१५), मलवग्गो (१६), मलवग्गो (१७)।

पृष्ठ २८६—१ से ११ तक; मलवग्गो (१८), मलवग्गो (१९), बुद्धवग्गो (५), अत्तवग्गो (४), अत्तवग्गो (८), अत्तवग्गो (९), यमकवग्गो (७), यमक-वग्गो (८), अत्तवग्गो (१), अत्तवग्गो (२), अत्तवग्गो (३)।

पृष्ठ २८७—१ से ११ तक; अत्तवग्गो (९), सहस्सवग्गो (४), अत्त-वग्गो (२), अत्तवग्गो (३), अत्तवग्गो (४), अत्तवग्गो (१), अत्तवग्गो (९), अत्तवग्गो (४), पण्डितवग्गो (१), पण्डितवग्गो (२), पण्डितवग्गो (३)।

पृष्ठ २८८—१ से १४ तक; पण्डितवग्गो (४), पण्डितवग्गो (५), पण्डित-वग्गो (६), पण्डितवग्गो (७), पण्डितवग्गो (८), बालवग्गो (१०), बालवग्गो (१२), बालवग्गो (१), बालवग्गो (२), बालवग्गो (३), बालवग्गो (४), बालवग्गो (५), बालवग्गो (६), बालवग्गो (७)।

पृष्ठ २८९—१ से १४ तक; बालधग्गो (८), बालवग्गो (९), बालवग्गो (१०), बालवग्गो (१३), बालवग्गो (१४), धम्मट्ठवग्गो (५), धम्मपट्ठवग्गो (६), धम्मट्ठवग्गो (७), धम्मट्ठवग्गो (८), धम्मट्ठवग्गो (१, २), धम्मट्ठवग्गो (३), धम्मट्ठवग्गो (४), नागवग्गो (९), नागवग्गो (१०)।

पृष्ठ २९०—१ से १०, तक; नागवग्गो (११), नागवग्गो (१२), नागवग्गो (१३), नागवग्गो (१४), सुखवग्गो (११), सुखवग्गो (१२), अप्पमादवग्गो (७), अप्पमादवग्गो (८), अप्पमादवग्गो (९), यमकवग्गो (१, २)।

पृष्ठ २९१—१ से १३ तक; नागवग्गो (८), चित्तवग्गो (३), यमकवग्गो (१३), यमकवग्गो (१४), नागवग्गो (७), चित्तवग्गो, (३), चित्तवग्गो (५), चित्तवग्गो (६), चित्तवग्गो (१०), चित्तवग्गो (११), अप्पमादवग्गो (८), अप्पमादवग्गो (९), अप्पमादवग्गो (७)।

पृष्ठ २९२—१ से ९ तक; अप्पमादवग्गो (१), अत्तवग्गो (१०), अप्पमादवग्गो (७), अप्पमादवग्गो (४), सुखवग्गो (८), सुखवग्गो (१), सुखवग्गो (२), सुखवग्गो (३), तण्हवग्गो (२३)।

पृष्ठ २९३—१ से ६ तक; तण्हावग्गो (२६), तण्हावग्गो (२१), सुखवग्गो (५), सुखवग्गो (६), पुप्फवग्गो (७), मलवग्गो (११)।

पृष्ठ २९४—१ से १३ तक; मग्गवग्गो (१), मग्गवग्गो (२), मग्गवग्गो (३), मग्गवग्गो (४), मग्गवग्गो (५), मग्गवग्गो (७), मग्गवग्गो (८), मग्गवग्गो (९), मग्गवग्गो (१०), मग्गवग्गो (१३), लोकवग्गो (१), लोकवग्गो (२), लोकवग्गो (६)।

पृष्ठ २९५—१ से १४ तक; लोक वग्गो (७), लोकवग्गो (१०), कोधवग्गो (६), कोधवग्गो (७), कोधवग्गो (८), कोधवग्गो (१२, १३), अप्पमादवग्गो (१), यमकवग्गो (११), यमकवग्गो (११), यमकवग्गो (१२), यमकवग्गो (१३), यमकवग्गो (१४), लोकवग्गो (२), लोकवग्गो (३)।

चौथा भाग

बुद्ध-प्रवचन

गृहस्थों के लिये प्रवचन

१. सुखी-गृहस्थ

१. एक बार अनाथपिण्डक जहाँ भगवान् बुद्ध थे, वहाँ आया। अभिवादन किया और एक ओर बैठ गया।

२. अनाथपिण्डक जानना चाहता था कि गृहस्थ कैसे सुखी रह सकता है?

३. तदनुसार अनाथपिण्डक ने भगवान् बुद्ध से प्रार्थना की कि वे उसे गृहस्थ जीवन के सुख का रहस्य समझायें।

४. भगवान् बुद्ध ने कहा कि गृहस्थ को पहला सुख तो सम्पत्ति का मालिक होने का होता है। एक गृहस्थ के पास धार्मिक तरीके से, न्यायतः बड़े परिश्रम से, बाहुबल से, पसीना बहाकर कमाया हुआ धन होता है। इस विचार से कि मेरे पास न्यायतः अर्जित धन है, उसे प्रसन्नता होती है।

५. दूसरा सुख सम्पत्ति के भोगने का सुख है। एक गृहस्थ के पास धार्मिक तरीके से, न्यायतः, बड़े परिश्रम से, बाहुबल से, पसीना बहाकर कमाया हुआ धन होता है। वह अपने धन का उपभोग करता है और पुण्य-कर्म करता है। इस विचार से कि मैं अपने न्यायतः अर्जित धन से पुण्य कर्म करता हूँ, उसे प्रसन्नता होती है।

६. तीसरा सुख 'ऋण' ग्रस्त न होने का है। एक गृहस्थ के सिर पर किसी का भी कम या ज्यादा 'ऋण' नहीं होता। इस विचार से कि मेरे सिर पर किसी का भी कम या ज्यादा 'ऋण' नहीं है, उसे प्रसन्नता होती है।

७. चौथा सुख दोष-रहित होने का है। एक गृहस्थ के शारीरिक कर्म निर्दोष होते हैं, वाणी के कर्म निर्दोष होते हैं और मन के कर्म निर्दोष होते हैं। उसे निर्दोषता का सुख प्राप्त होता है।

८. अनाथपिण्डक! निश्चय से ये चार सुख ऐसे हैं जिन्हें यदि गृहस्थ प्रयास करे तो प्राप्त कर सकता है।[1]

२. पुत्री पुत्र से अच्छी हो सकती है

१. जिस समय भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में ठहरे हुए थे, कोशल-नरेश प्रसेनजित् उनके दर्शनार्थ आया।

२. जिस समय कोशल-नरेश प्रसेनजित् भगवान् बुद्ध से बातचीत कर रहा था, राजमहल से एक दूत आया और उसने आकर राजा को कान में सूचना दी कि मल्लिका ने एक पुत्री को जन्म दिया है

३. राजा बड़ा दुखी और खिन्न-मन हो गया। भगवान् बुद्ध ने राजा से उसकी खिन्नता का कारण पूछा।

४. राजा बोला कि उसे अभी अभी यह अप्रसन्न करने वाला समाचार मिला है कि रानी ने एक पुत्री को जन्म दिया है।

५. तब उस समय भगवान् बुद्ध ने इसी की चर्चा करते हुए कहा——"महाराज! यह हो सकता है कि पुत्री पुत्र से भी अच्छी निकले। वह बुद्धिमति हो, सुशीला हो और पति के माता-पिता की सेवा करने वाली हो——एक अच्छी लड़की।

——और हो सकता है कि जिस पुत्र को वह जन्म दे वह बड़े काम करे, बड़े राज्यों का शासक हो। श्रेष्ठ माता का इस प्रकार का पुत्र अपने देश का नेता हो।[१]"

३. पति और पत्नी

१. एक समय भगवान् बुद्ध मधुरा (=मथुरा) और नेरज्जा के बीच के महापथ से चले जा रहे थे। बहुत से गृहस्थ तथा उनकी पत्नियाँ मधुरा (=मथुरा) और नेरज्जा के बीच के महापथ से चली जा रही थीं।

२. उस समय भगवान् बुद्ध सड़क छोड़कर एक वृक्ष के नीचे जा विराजमान हुए। इन गृहस्थों और उनकी पत्नियों ने भी भगवान् बुद्ध को एक वृक्ष के नीचे बैठे देखा।

३. यह देख वे जहाँ तथागत विराजमान थे, वहाँ आये। आकर अभिवादन किया और एक ओर बैठ कर उन्होंने तथागत से पूछा कि पति-पत्नी का आपस का ठीक व्यवहार कैसा होना चाहिये? इस प्रकार बैठे हुए उन गृहस्थों तथा उनकी पत्नियों को भगवान् बुद्ध ने कहा——

४. "गृहपतियो! पति-पत्नी के इकट्ठे रहने के चार रूप हैं। एक दुष्ट पुरुष एक दुष्ट स्त्री के साथ रहता है, एक दुष्ट पुरुष एक देवी के साथ रहता है, एक देवता एक दुष्ट स्त्री के साथ रहता है, और एक देवता एक देवी के साथ रहता है।

५. "गृहपतियो! एक पति हत्या करता है, चोरी करता है, व्यभिचार करता है, झूठ बोलता है, नशीली चीजें पीता है, दुष्ट है, पापी है, लोभ-युक्त मन से गृहस्थ

जीवन व्यतीत करता है, सदाचारियों को कटु-वचन बोलता है और गालियां देता है। उसकी पत्नी भी हत्या करती है, चोरी करती है, व्यभिचार करती है, झूठ बोलती है, नशीली चीजें पीती है, दुष्ट है, पापी है, लोभ-युक्त मन से गृहस्थ जीवन व्यतीत करती है, सदाचारियों को कटु-वचन बोलती है और गालियां देती है। हे गृहपतियों ! इस प्रकार एक दुष्ट पुरुष, एक दुष्ट स्त्री के साथ रहता है।

६. "गृहपतियो ! एक पति हत्या करता है, चोरी करता है, व्यभिचार करता है, झूठ बोलता है, नशीली चीजें पीता है, दुष्ट है पापी है, लोभ-युक्त मन से गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है, सदाचारियों को कटु-वचन बोलता है और गालियाँ देता है। लेकिन उसकी पत्नी न हत्या करती है, न चोरी करती है, न व्यभिचार करती है, न झूठ बोलती है, न नशीली चीज़ें पीती हैं, न दुष्ट है, न पापी है, न लोभ-युक्त मन से गृहस्थ जीवन व्यतीत करती है, न सदाचारियों को कटु-वचन बोलती है और न गालियाँ देती है। इस प्रकार गृहपतियो ! निश्चय से एक दुष्ट आदमी एक देवी के साथ रहता है।

७. "गृहपतियो ! एक पति हत्या नहीं करता, चोरी नहीं करता, व्यभिचार नहीं करता, झूठ नहीं बोलता नशीली चीज़ें नहीं पीता, दुष्ट नहीं है, पापी नहीं है, लोभ-युक्त मन से गृहस्थ जीवन व्यतीत नहीं करता, सदाचारियों को कटु-वचन नहीं बोलता और गालियां नहीं देता। लेकिन, उसकी पत्नी हत्या करती है, चोरी करती है, व्यभिचार करती है, झूठ बोलती है, नशीली चीज़ें पीती है, दुष्ट है, पापी है, लोभ-युक्त मन से गृहस्थ जीवन व्यतीत करती है, सदाचारियों को कटु-वचन बोलती है और गालियाँ देती है। इस प्रकार गृहपतियो ! निश्चय से एक देवता एक दुष्ट स्त्री के साथ रहता है।

८. "गृहपतियो ! एक पति-पत्नी न हत्या करते हैं, न चोरी करते हैं, न व्यभिचार करते हैं, न झूठ बोलते हैं, न नशीली चीज़ें पीते हैं, न दुष्ट हैं, न पापी हैं, न लोभ-युक्त मन से गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हैं, न सदाचारियों को कटु-वचन बोलते हैं और न गालियाँ देते हैं। इस प्रकार गृहपतियो ! निश्चय से एक देवता एक देवी के साथ रहता है।

९. "गृहपतियो ! पति-पत्नी के इकट्ठे रहने के ये चार रूप हैं।"[३]

सुचरित्र बने रहने के लिये प्रवचन

१. आदमी का पतन कैसे होता है ?

१. एक बार भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिण्डक के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे।[४]

२. अब जब रात काफी बीत चुकी थी, तो एक देवता, जिसके प्रकाश ने सारे

जेतवन को प्रकाशित कर दिया था तथागत के पास आया और पास आकर श्रद्धा-पूर्वक अभिवादन किया और एक ओर खड़ा हो गया। इस प्रकार खड़े होकर उसने तथागत से निवेदन किया—

३. "तथागत ! मैं आपकी सेवा में प्रश्न पूछने के लिये उपस्थित हुआ हूँ। कृपया बताएँ कि आदमी का पतन कैसे होता है।" भगवान् बुद्ध ने आदमी के पतन के कारणों का वर्णन करना स्वीकार किया—

४. "उन्नतिशील आदमी के लक्षण भी आसान हैं और पतनोन्मुख आदमी के लक्षण भी आसान हैं। जो धर्म से प्रेम करता है वह उन्नत होता है जो धर्म से घृणा करता है, उसका पतन होता है।

५. "असत्पुरुष उसे अच्छे लगते हैं, सत्पुरुष उसे अच्छे नहीं लगते, असत्पुरुषों का धर्म अच्छा लगता है—यह पतनोन्मुख आदमी का दूसरा लक्षण है।

६. वह तन्द्रालु होता है, उसे गप्प मारना अच्छा लगता है, वह परिश्रमी नहीं होता, सुस्त होता है और क्रोधी होता है—यह पतनोन्मुख का तीसरा लक्षण है।

७. "जो पास में पैसा रख कर भी अपने गत-यौवन वृद्ध माता-पिता का पालन-पोषण नहीं करता—यह पतनोन्मुख का चौथा लक्षण है।

८. "जो झूठ बोलकर किसी भले आदमी (=ब्राह्मण) को, किसी श्रमण को वा किसी अन्य साधु को ठगता है—यह पतनोन्मुख का पांचवां लक्षण है।

९. जो आदमी बहुत सम्पत्ति रखता है, जिसके पास बहुत धन-धान्य है; लेकिन जो उसे अकेला ही भोगता है—यह पतनोन्मुख का छठा लक्षण है।

१०. "जिस आदमी को अपने जन्म का, धन का वा जाति का अभिमान है और अपने सम्बन्धियों से ही दूर दूर रहता है—यह पतनोन्मुख आदमी का सातवां लक्षण है।

११. "जो आदमी व्यभिचारी है, शराबी है, जुआरी है और जो कुछ पास है उसे ऐशआराम में लुटाता है—यह पतनोन्मुख आदमी का आठवां लक्षण है।

१२. "जो अपनी पत्नी से ही सन्तुष्ट न रहकर, वेश्याओं तथा पर-स्त्रियों के पास जाता है—यह पतनोन्मुख आदमी का नौवां लक्षण है।

१३. "जो आदमी किसी असंयत फजूल-खर्च आदमी वा स्त्री को अधिकारी बना देता है—यह पतनोन्मुख आदमी का ग्यारहवां लक्षण है।

१४. "जो क्षत्रिय, अल्प साधन रखते हुए किन्तु बड़ी महत्वाकांक्षा होने के कारण राजा बनने की आकांक्षा रखता है—यह पतनोन्मुख आदमी का बारहवां लक्षण है।

१५. "हे देव ! पतन के इन कारणों को जान ले। यदि तू इनसे बचा रहेगा, तो तू सुरक्षित रहेगा।"

२. बुरा आदमी

१. चारिका करते समय भगवान् बुद्ध ने उन भिक्षुओं को जो साथ चल रहे थे यह उपदेश दिया—

२. भिक्षुओं को सम्बोन्धित करके भगवान् बुद्ध ने कहा—

"क्या तुम जानते हो कि बुरे आदमी की पहचान क्या है ?"

"भन्ते ! नहीं।"

३. "मैं तुम्हें एक बुरे आदमी की पहचान बतलाता हूँ।"

४. "कोई कोई आदमी होता है जो पूछे जाने पर तो कहना ही क्या, बिना पूछे ही दूसरों के दुर्गुणों का वर्णन करता है। लेकिन पूछे जाने पर, प्रश्न किये जाने पर, वह दूसरों के दुर्गुण बिना ढके, बिना छिपाये, बड़े विस्तार से कहता है। भिक्षुओ ऐसा आदमी बुरा आदमी होता है।

५. "कोई कोई आदमी होता है, जो न पूछे जाने पर तो कहना ही क्या, पूछे जाने पर भी दूसरे आदमियों के गुण नहीं कहता। पूछे जाने पर, प्रश्न किये जाने पर, वह दूसरों के गुण कहता है।

६. "कोई कोई आदमी होता है, जो न पूछे जाने पर तो कहना ही क्या, पूछे जाने पर भी अपने दुर्गुण प्रकट नहीं करता। पूछे जाने पर, प्रश्न किये जाने पर वह अपने दुर्गुण प्रकट करता है, लेकिन उन्हें ढकता है और छिपाता है और उनका पूरा व्योरा नहीं बताता। भिक्षुओ, ऐसा आदमी बुरा आदमी होता है।

७. "कोई कोई आदमी होता है, जो पूछे जाने की तो बात ही क्या, बिना पूछे जाने पर ही अपने गुणों का वर्णन करता है। पूछे जाने पर, प्रश्न किये जाने पर, वह अपने सद्गुणों का वर्णन करता है। वह उनको ढकता नहीं, छिपाता नहीं। वह उनका पूरा विवरण देता है। भिक्षुओ, ऐसा आदमी बुरा आदमी होता है।

३. सर्वश्रेष्ठ आदमी

१. चारिका करते समय भगवान् बुद्ध ने उन भिक्षुओं को जो साथ चल रहे थे, यह उपदेश दिया—

२. भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए भगवान् बुद्ध ने कहा:—

"भिक्षुओ ! इस संसार में चार तरह के लोग हैं।"

३. "(१) जिसने न अपना भला किया और न किसी दूसरे का भला किया, (२) जिसने दूसरों का भला किया, किन्तु अपना भला नहीं किया, (३) जिसने अपना भला किया, किन्तु दूसरों का भला नहीं किया तथा (४) जिसने अपना भी भला किया तथा दूसरों का भला भी किया।

४. जिस आदमी ने न अपना भला करने का प्रयास किया और न दूसरों का

भला करने का प्रयास किया, वह श्मशान की उस लकड़ी की तरह है जो दोनों सिरों पर जल रही है, और जिसके बीच में मैला लगा है। वह न गाँव में ही जलावन के काम आती है और न जंगल में। इस तरह का आदमी न संसार के किसी काम का होता है, न अपने किसी काम का।

५. "जो अपनी हानि करके दूसरों का उपकार करता है, वह दोनों में अधिक अच्छा है।

६. "लेकिन भिक्षुओ ! चारों तरह के आदमियों में सबसे अच्छा तो वही है जिसने दूसरों का भला करने का भी प्रयास किया है और अपना भला करने का भी प्रयास किया है।

४. ज्ञानी आदमी

१. एक बार भगवान् बुद्ध उकट्ठ और सेतव्य नामक दो नगरों के बीच के महापथ पर जा रहे थे। उसी समय दोण नामक ब्राह्मण भी उकट्ठ और सेतव्य नामक दो नगरों के बीच के महापथ पर जा रहा था।

२. उस समय तथागत ने सड़क छोड़ दी और एक वृक्ष के नीचे जाकर पद्मासन लगा कर बैठे। तब दोण ब्राह्मण भी उनके चरण-चिन्हों को देखता हुआ वहाँ जा पहुँचा जहाँ तथागत उस वृक्ष के नीचे शान्त-मुद्रा में, संयतेन्द्रिय, प्रसन्न-वदन और एकाग्रचित्त बैठे थे। यह देख दोण ब्राह्मण तथागत के पास पहुंचा।

३. पास पहुंचकर उसने प्रश्न किया--
"क्या आप देवता नहीं हैं ?"
"ब्राह्मण ! मैं निश्चय से देवता नहीं हूँ।"
"क्या आप गन्धर्व नहीं है ?"
"ब्राह्मण ! मैं निश्चय से गन्धर्व नहीं हूँ।"
"आप यक्ष नहीं हैं ?"
"ब्राह्मण ! मैं निश्चय से यक्ष नहीं हूँ।"
"आप आदमी नहीं है ?"
"ब्राह्मण ! मैं निश्चय से (सामान्य) आदमी नहीं हूँ।"
४. तथागत के ये उत्तर सुने तो दोण ब्राह्मण बोला--
"आप से देवता हैं, पूछे जाने पर आपका उत्तर है नहीं,
आप से गन्धर्व हैं, पूछे जाने पर आपका उत्तर है नहीं,
आप से यक्ष हैं, पूछे जाने पर आप का उत्तर है नहीं,
आप से मनुष्य हैं, पूछे जाने पर आपका उत्तर है नहीं,
तो आखिर आप क्या हैं ?"

५. "ब्राह्मण ! मैं निश्चय से एक देव, एक गन्धर्व, एक यक्ष, एक मानव सब कुछ था, जब तक मैंने अपने आस्रवों का क्षय नहीं किया था। अब मैं इन आस्रवों से मुक्त हूँ, ये कटे ताड़-वृक्ष के समान हो गये हैं, ये जड़मूल से जाते रहे हैं। इनकी पुनरुत्पत्ति की सम्भावना नहीं रही है।

६. "जिस प्रकार एक कँवल पानी में उत्पन्न होता है, पानी में बढ़ता है, पानी से बाहर निकल आता है और फिर पानी से अस्पृष्ट होकर रहता है; इसी प्रकार हे ब्राह्मण ! मैं संसार में उत्पन्न हुआ हूँ, संसार में बड़ा हुआ हूँ किन्तु अब संसार को जीतकर संसार से अस्पृष्ट होकर रहता हूँ।

७. "इसलिये ब्राह्मण ! अब तुम मुझको तथागत (=ज्ञानी आदमी) जानो।"[७]

५. मनुष्य—न्यायी तथा सज्जन

१. भिक्षुओं को सम्बोधित करके भगवान् बुद्ध ने कहा—'चार प्रकार के लोगों का भेद जानना चाहिये, यदि तुम न्यायी और सज्जन आदमी की पहचान करना चाहते हो।'

२. "भिक्षुओ, कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अपनी भलाई करने की कोशिश करते हैं, दूसरों को नहीं।

३. "भिक्षुओ, एक आदमी अपने कामच्छन्द को दूर करने की कोशिश करता है, किन्तु दूसरों के कामच्छन्द को दूर करने की प्रेरणा नहीं करता; अपने व्यापाद (=क्रोध) को दूर करने की कोशिश करता है, किन्तु दूसरों के क्रोध को दूर करने की प्रेरणा नहीं करता; अपनी अविद्या को दूर करने की कोशिश करता है, किन्तु दूसरों की अविद्या दूर करने की प्रेरणा नहीं करता।

४. "भिक्षुओ ! यह आदमी निश्चय से अपनी भलाई करने की कोशिश करता है दूसरों की नहीं।

५. भिक्षुओ, कुछ लोग ऐसे होते हैं जो दूसरों की भलाई करने की कोशिश करते हैं, अपनी नहीं।

६. "भिक्षुओ, एक आदमी अपने कामच्छन्द, व्यापाद तथा अविद्या को दूर करने की कोशिश नहीं करता, किन्तु दूसरों के कामच्छन्द, व्यापाद तथा अविद्या दूर करने की प्रेरणा देता है।

७. "भिक्षुओ ! यह आदमी निश्चय से दूसरों की भलाई करने की कोशिश करता है, अपनी नहीं।

८. "भिक्षुओ, कुछ लोग ऐसे होते हैं जो न अपनी भलाई करने की कोशिश करते हैं और न दूसरों की भलाई करने की कोशिश करते हैं।

९. भिक्षुओ, एक आदमी न अपने कामच्छन्द, व्यापाद तथा अविद्या को दूर

करने की कोशिश करता है न दूसरों के कामच्छन्द, व्यापाद तथा अविद्या के दूर करने की प्रेरणा देता है।

१०. "भिक्षुओ ! यह आदमी निश्चय से न अपनी भलाई करने की कोशिश करता है और न दूसरों की।

११. "भिक्षुओ ! कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अपनी भलाई करने की कोशिश भी करते हैं तथा दूसरों की भलाई करने की कोशिश भी करते हैं।

१२. "भिक्षुओ ! एक आदमी अपने कामच्छन्द, व्यापाद तथा अविद्या को दूर करने की भी कोशिश करता है तथा दूसरों के भी कामच्छन्द, व्यापाद तथा अविद्या दूर करने की प्रेरणा करता है।

१३. "भिक्षुओ ! यह आदमी निश्चय से अपनी भलाई करने की भी कोशिश करता है तथा दूसरों की भलाई करने की भी कोशिश करता है।"[८]

१४. यह अन्तिम आदमी ही न्यायी और सज्जन माना जाना चाहिये।

६. शुभ-कर्म करने की आवश्यकता

१. एक अवसर पर भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को इस प्रकार सम्बोधित किया—

२. "भिक्षुओ, कुशल-कर्म करने में मत झिझको। यह जो 'कुशल-कर्म' शब्द है यह एक प्रकार से 'सुख' का, या जिसकी हम इच्छा करते हैं उसका, या जो कुछ हमको प्रिय है उसका अथवा जो कुछ हमें आनन्द देने वाला है उसका पर्याय ही है। भिक्षुओ ! मैं स्वयं साक्षी हूँ कि मैंने स्वयं चिरकाल तक शुभ-कर्मों के इच्छित, रुचिकर, प्रिय तथा आनन्द-दायक फल का उपभोग किया है।[९]

३. "मैं प्रायः अपने आप से पूछता हूँ कि यह किस कुशल-कर्म का परिणाम है, यह किस कुशल-कर्म का फल है कि मैं इस समय इतना सन्तुष्ट और सुखी हूँ ?

४. "जो उत्तर मुझे मिलता है वह यह है कि यह तीन कुशल-कर्मों का फल है—दान का, शील का तथा संयम का।

५. "वह घड़ी मंगल घड़ी होती है, वह घड़ी उत्सव मनाने की घड़ी होती है, वह घड़ी आनन्द मनाने की घड़ी होती है, वह घड़ी मंगलमय-मुहूर्त होती है जब दान के योग्य अधिकारियों को दान दिया जाता है, जब शुभ-कर्म, शुभ-वचन तथा शुभ-विचारों के परिणाम-स्वरूप इन का अभ्यास करने वालों को शुभ-फल की प्राप्ति होती है।

६. "भाग्यवान् हैं वे जिन्हें इस लाभ की प्राप्ति होती है, जिन्हें इस समृद्धि की प्राप्ति होती है ! इसलिये तुम भी अपने सब सगे-सम्बन्धियों सहित निरोग और सुखी रहते हुए सत्पथ की समृद्धि को प्राप्त करो।"

७. शुभ संकल्प करने की आवश्यकता

१. एक बार श्रावस्ती में जेतवन में विहार करते समय भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को कहा––

२. "भिक्षुओ, पवित्र और सुखी जीवन व्यतीत करने के लिये शुभ-संकल्पों की नितान्त आवश्यकता है।

३. "मैं तुम्हें बताता हूँ कि तुम्हारे शुभ-संकल्प कैसे होने चाहिये।

४. (१) संकल्प होना चाहिये कि हम जीवन भर माता-पिता की सेवा करेंगे। (२) संकल्प होना चाहिये कि हम अपने बड़ों का आदर करेंगे। (३) संकल्प होना चाहिये कि हम मधुर-भाषी रहेंगे। (४) संकल्प होना चाहिये कि हम किसी की बुराई नहीं करेंगे, (५) संकल्प होना चाहिये कि हम अपने हृदय को स्वार्थ-परता से मुक्त कर, दान-शील होकर रहेंगे। (६) संकल्प होना चाहिये कि हमें जो कुछ प्राप्त होगा, वह हम दूसरों में बाँट कर ग्रहण करेंगे।

५. "संकल्प होना चाहिये कि हम जीवन भर शान्त रहेंगे और यदि क्रोध उत्पन्न होगा तो हम उसे शान्त कर लेंगे।

६. भिक्षुओ, ये सात संकल्प हैं जिन्हें तुम अपने मन में जगह देने से और जिनके अनुसार आचरण करने से जीवन को सुखी और पवित्र बना सकोगे।"

सदाचरण सम्बन्धी प्रवचन

१. सदाचरण क्या है ?

१. एक बार जब भगवान् बुद्ध महान् भिक्षु संघ सहित चारिका कर रहे थे तो वह शाला नाम के एक ब्राह्मण-ग्राम में पहुंचे। यह ग्राम कोशल-जनपद में था।

२. शाला ग्राम के ब्राह्मण-मुखियों ने सुना कि चारिका करते करते भगवान् बुद्ध उनके कोशल जनपद स्थित गाँव में आये हैं।

३. उनको लगा कि भगवान् बुद्ध के दर्शनार्थ जाना अच्छा है। इसलिये शाला ग्राम के ब्राह्मण भगवान् बुद्ध के पास गये और कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गये।

४. उन्होंने तथागत से प्रार्थना की कि वे बतायें कि सदाचरण का क्या मतलब है ?

५. ध्यान देकर सुनने के लिये उद्यत ब्राह्मणों को भगवान् बुद्ध ने कहा–– "शरीर के तीन दुराचरण होते हैं, वाणी के चार दुराचरण होते हैं और मन के तीन दुराचरण होते हैं।

६. जहाँ तक शरीर के दुराचरण की बात है एक आदमी (१) रक्त-रंजित हाथों

से, हत्यारा होने के कारण प्राणियों के प्रति किसी भी प्रकार की दया न होने के कारण-जीव हत्या कर सकता है, (२) वह गाँव या जंगल में जो वस्तु उसकी नहीं है, उसे चोरी की नियत से बिना दिये गये ले सकता है; अथवा वह व्यभिचार कर सकता है, माता, पिता, भाव, बहन अथवा अन्य सम्बन्धियों की अधीनता में रहने वाली (अविवाहित) लड़कियों से, ऐसी लड़कियों से भी जिनकी मंगनी हो गई है, जिनके गले में मंगनी की माला पड़ी है।

७. जहाँ तक वाणी के दुराचरण की बात है कि (१) आदमी झूठ बोल सकता है, जब उसे सभा के सामने या ग्राम-पंचायत के सामने या परिवार-परिषद के सामने या राजकीय-परिषद के सामने या अपनी श्रेणी के सामने साक्षी देने के लिये कहा जाय तो वह न जानते हुए कह सकता है कि मैं जानता हूँ, जानता हुआ कह सकता है कि मैं नहीं जानता हूँ; न देखते हुए कह सकता है कि मैंने देखा है और देखते हुए कह सकता है कि मैंने नहीं देखा, वह अपने हित में, किसी दूसरे के हित में अथवा किसी लोभ के कारण जानबूझ कर झूठ बोल सकता है। अथवा (२) वह एक चुगल-खोर हो सकता है, यहाँ सुनी और वहाँ जाकर कह दी ताकि यहाँ के लोगों और वहाँ के लोगों का झगड़ा हो जाय, अथवा वहाँ सुनी और यहाँ कर दी ताकि वहाँ के लोगों और यहाँ के लोगों का झगड़ा हो जाय, वह शान्तिको भंग करने वाला और अशान्ति को उत्तेजित करने वाला होता है, झगड़ा लगाने की नीयत से ही वह बोलता है, झगड़ा लगाने में ही उसे आनन्द आता है, मजा आता है, प्रसन्नता होती है। अथवा (३) वह ज़बान का कड़ुवा हो सकता है, जो कुछ वह बोलता है वह अप्रिय और कठोर होता है, दूसरों के दिलों को जख्मी करने वाला, दूसरों को दुःख पहुँचाने वाला, क्रोध को उत्तेजित करने वाला और एकाग्रता को भंग करने वाला। अथवा (३) वह एक बकवासी हो सकता है, व्यर्थ बिना मतलब की बात करते रहने वाला, कभी धर्म की बात न करने वाला, कभी नीति की बात न करने वाला, हमेशा ही तुच्छ, असामयिक, निरुद्देश्य तथा निष्प्रयोजन बात करने वाला।

८. जहाँ तक मन के दुराचरण की बात है एक आदमी (१) लोभी हो सकता है, वह यह इच्छा कर सकता है कि दूसरे सभी लोगों की सम्पत्ति उसी की हो; अथवा (२) वह द्वेष-बहुल हो सकता है, वह यह इच्छा कर सकता है कि उसके आस-पास के प्राणी मारे जायें, नष्ट हो जायें, किसी तरह न रहें; अथवा (२) वह मिथ्या-दृष्टि हो सकता है, मिथ्या-धारणाओं वाला, वह यह सोच सकता है कि दान, त्याग (=यज्ञ) और दक्षिणा जैसी कोई चीज नहीं, शुभाशुभ कर्मों के फल जैसी कोई चीज नहीं, लोक-परलोक जैसी कोई चीज नहीं, माता-पिता या दूसरे सम्बन्धी जैसी कोई चीज नहीं और कि संसार में कोई ऐसे श्रमण-ब्राह्मण नहीं हैं जिन्होंने सम्यक्-मार्ग ग्रहण कर या सम्यक्-मार्ग पर चलकर इस लोक तथा पर-लोक का यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया हो और दूसरों को भी कराया हो।

९. इनके विरुद्ध तीन शरीर के सदाचरण हैं, चार वाणी के सदाचरण हैं और तीन मन के सदाचरण हैं ।

१०. जहाँ तक शारीरिक सदाचरण की बात है, एक आदमी (१) जीव-हिंसा से विरत होता है, हर तरह की प्राणी-हिंसा से विरत रहता है; दण्ड-त्यागी, खड्ग-त्यागी; वह निरपराधी होता है, वह दयालु होता है, उसके मन में हर प्राणी के लिये करुणा और अनुकम्पा रहती है । (२) वह चोरी का त्याग करता है, वह दूसरों की किसी ऐसी चीज का ग्रहण नहीं करता, जो उसे दी न गई हो । वह ईमानदारी का जीवन व्यतीत करता है । (३) वह काम-भोग सम्बन्धी मिथ्या-चार से दूर रहता है । वह ऐसी लड़कियों से सहवास नहीं करता जो माता-पिता भाई-बहन अथवा अन्य सम्बन्धियों की अधीनता में रहने वाली (अविवाहित) लड़कियाँ हों और ऐसी लड़कियों से भी जिनकी मंगनी हो गई है वा जिनके गले में मंगनी की माला पड़ गई है ।

११. जहाँ तक वाणी के सदाचरण की बात है एक आदमी (१) झूठ का त्याग करता है, मृषावाद से विरत रहता है, जब उसे सभा के सामने या ग्राम-पंचायत के सामने या परिवार-परिषद के सामने या राजकीय-परिषद के सामने या अपनी श्रेणी के सामने साक्षी देने के लिए कहा जाता है तो वह न जानते हुए कहता है कि मैं नहीं जानता हूँ, जानते हुए कहता है कि मैं जानता हूँ, नहीं देखता होता तो कहता है कि मैंने नहीं देखा, देखा होता है तो कहता है कि देखा है; वह अपने हित में, वा दूसरे के हित में अथवा किसी लोभ के कारण जान-बूझकर झूठ नहीं बोलता । (२) वह चुगल-खोरी नहीं करता, यहाँ सुनी और वहाँ कह दी ताकि यहाँ के लोगों और वहाँ के लोगों का झगड़ा हो जाय, अथवा वहाँ सुनी और यहाँ कह दी कि वहाँ के लोगों और यहाँ के लोगों का झगड़ा हो जाय, वह शान्ति को भंग करने वाला और अशान्ति को उत्तेजित करने वाला नहीं होता, शान्ति कराने की नीयत से ही वह बोलता है, मेल-मिलाप कराने में ही उसे आनन्द आता है, मजा आता है अथवा प्रसन्नता होती है । (३) वह ज़बान का कड़ुवा नहीं होता, जो कुछ वह बोलता है बिना कटुता के होता है, प्रिय होता है, मैत्री-भाव लिये होता है, दिल से बोलता है, शिष्ट बोलता है, अनुकूल बोलता है तथा सब को अच्छा लगने वाला बोलता है । (४) वह बकवासी नहीं होता, बिना मतलब की व्यर्थ बात करने वाला नहीं होता । हमेशा धर्म की बात, नीति की बात करने वाला होता है, ऐसी बात जो समयानुकूल है, ऐसी बात जो याद रहे, ऐसी बात जो-ज्ञान भरी हो, ऐसी बात जो ठीक से कही गई हो तथा ऐसी बात जो हितकर हो ।

१२. जहाँ तक मन के दुराचरण की बात है वह आदमी (१) निर्लोभी होता है, वह कभी यह नहीं चाहता कि दूसरे लोगों की सारी सम्पत्ति पर उसका अपना अधिकार हो जाय, (२) वह कभी अपने मन में द्वेष को स्थान नहीं देता,

उसकी यही इच्छा रहती है कि उसके आसपास के सभी प्राणी शान्ति और सुख के साथ रहें, हर प्रकार की शत्रुता और अत्याचार से सुरक्षित रहें। (३) उसकी दृष्टि सम्यक् होती है तथा उसके संकल्प और धारणायें भी ठीक होती हैं।[१०]

१३. "दुराचरण तथा सदाचरण से मेरा यही अभिप्राय है।"

२. सदाचरण की आवश्यकता

१. तब तथागत ने पाटलिग्राम के उपासकों को सम्बोधित किया :—

२. "हे गृहपतियो! दुश्शील दुष्ट आदमी को यह दुष्परिणाम भुगतने पड़ते हैं।

३. दुश्शील दुष्ट आदमी प्रमाद के कारण धन की बहुत हानि उठाता है।

४. उसका अपयश होता है, जो उसे दुनिया की नज़रो में गिरा देता है।

५. वह किसी भी जमात में जाये, चाहे यह क्षत्रिय परिषद हो, चाहे ब्राह्मण-परिषद हो, चाहे गृहपति-परिषद हो अथवा चाहे श्रमण-परिषद हो—वह हर जगह बड़े संकोच से जाता है, व्यग्र-चित्त हो जाता है। वह निर्भय नहीं होता। यह तीसरी हानि है।

६. फिर उसे मरते समय शान्ति नहीं होती, वह मरण-काल में दुःखी रहता है। यह चौथी हानि है।

७. हे गृहपतियो! दुश्शील दुष्ट आदमी को ये दुष्परिणाम भुगतने पड़ते हैं।

८. हे गृहपतियो! अब उन लाभों का विचार करो जो सज्जन शीलवान् आदमी को प्राप्त होते हैं।

९. "सज्जन शीलवान् आदमी अप्रमाद के कारण बहुत धन-संग्रह कर लेता है।

१०. "उसका सुयश फैल जाता है। वह जहाँ जाता है सम्मानित होता है।

११. "वह किसी भी जमात में जाये, चाहे वह क्षत्रिय-परिषद हो, चाहे ब्राह्मण परिषद हो, चाहे गृहपति-परिषद हो, अथवा चाहे श्रमण-परिषद हो—वह हर जगह निस्संकोच जाता है, निर्भय हो प्रवेश करता है।

१२. फिर, उसे मानसिक शान्ति प्राप्त रहती है, मरते समय वह चित्त की शान्ति के साथ शरीर त्यागता है।

१३. मूर्ख अदमी पाप करते समय यह तक नहीं जानता कि वह पाप कर रहा है। अग्नि के समान उसके पाप-कर्म उसे जला देते हैं।

१४. जो कोई ऐसे व्यक्ति को—जो अहानिकर है, जो निर्दोष है—दुःख देता है, वह या तो किसी बड़ी दुर्घटना का शिकार हो जाता है या उसका चित्त ही विक्षिप्त हो जाता है या उसके धन की बड़ी हानि होती है।"[११]

३. सदाचरण और दुनिया की जिम्मेदारियाँ

१. एक बार जब भगवान् बुद्ध राजगृह के वेळुवनाराम में उस जगह ठहरे हुए थे, जहाँ गिलहारियों को दाना चुगाया जाता था, उसी समय बहुत से भिक्षुओं को साथ लिये आयुष्मान् सारिपुत्र दक्षिण की पहाड़ियों में चारिका कर रहे थे।[12]

२. रास्ते में उनकी एक भिक्षु से मुलाकात हुई जिसने राजगृह में वर्षावास किया था। शिष्टाचार की बात हो चुकी तब सारिपुत्र ने भगवान् बुद्ध का तथा संघ का कुशल-समाचार पूछा। उन्हें बताया गया कि वे अच्छी तरह हैं। तब सारिपुत्र ने राजगृह के तण्डुलपाल-द्वार के धानञ्जानि ब्राह्मण का कुशल-समाचार पूछा। उन्हें बताया गया कि वह भी अच्छी तरह है।

३. तब सारिपुत्र ने उस भिक्षु से प्रश्न किया :—"और क्या धानञ्जानी ब्राह्मण अप्रमाद पूर्वक रह रहा है ?"

४. भिक्षु का उत्तर था :—"धानञ्जानी ब्राह्मण अप्रमादपूर्वक कैसे रह सकता है ? वह ब्राह्मणों और गृहपतियों को मूण्डने के लिये राजा का उपयोग करता है और राजा को मूण्डने के लिये ब्राह्मणों और गृहपतियों का उपयोग करता है। और बड़े सुशील कुल से आई हुई जो उसकी सुशील पत्नि थी, वह भी अब मर गई है। उसने अब एक दूसरी पत्नि रखी है जो न सुशील-कुल से आई है और न स्वयं सुशील है।"

५. सारिपुत्र बोले :— "धानञ्जानी के प्रमाद के बारे में यह तो सचमुच बुरा समाचार, बहुत बुरा समाचार सुनने के लिये मिला। शायद कहीं कभी उससे भेंट हो तो मैं उससे बातचीत करना पसन्द करूँगा।"

६. दक्षिण की पहाड़ियों में यथेच्छ रह चुकने के बाद सारिपुत्र चारिका करते करते राजगृह आये और वेळुवनाराम में निवास किया।

७. दूसरे दिन प्रातःकाल, चीवर पहन और पात्र हाथ में ले सारिपुत्र भिक्षाटन के लिये नगर में गये। वह ऐसे समय गये जब धानञ्जानि ब्राह्मण नगर से बाहर अपनी गौओं का दुहा जाना देख रहा था।

८. भिक्षाटन के अनन्तर भिक्षा ग्रहण कर चुकने पर सारिपुत्र ने उस ब्राह्मण को ढूंढ लिया। सारिपुत्र को आता देख वह ब्राह्मण उन्हें मिलने के लिये आया और आते ही पहले दूध पीने का निमन्त्रण दिया।

९. "ब्राह्मण ! नहीं आज का भोजन मैं समाप्त कर चुका और अब मध्याह्न के समय एक वृक्ष की छाया के नीचे विश्राम करूँगा। मुझे मिलने के लिये वहाँ आना।"

१०. धानञ्जानी ने स्वीकार किया और अपना खाना खा चुकने के बाद सारिपुत्र के पास आया और अभिवादन कर बैठ गया।

११. सारिपुत्र ने ही बात-चीत आरम्भ की—"धानञ्जानी ! क्या मैं विश्वास करूँ कि तुम पहले जैसे ही अप्रमादी तथा सदाचरण की चिन्ता करने वाले हो ?"

१२. "यह कैसे हो सकता है जब अपनी खाने-पीने की चिन्ता करने के अतिरिक्त मुझे अपने माता-पिता का पालन करना पड़ता है; अपनी पत्नी और परिवार का पोषण करना पड़ता है; अपने दासों और नौकर-चाकरों को खाना देना पड़ता है, अपने परिचितों, मित्रों, रिश्तेदारों और अतिथियों का आतिथ्य करना पड़ता है, अपने मृत-पितरों का श्राद्ध भी करना पड़ता है, देवताओं को भी बलि देनी पड़ती है और राजा को भी कर चुकाना पड़ता है ?"

१३. "धानञ्जानी ! तुम क्या सोचते हो ? मान लो कि एक आदमी ने अपने माता-पिता के कारण न्याय और औचित्य का मार्ग छोड़ दिया है और अब वह पकड़ा जा रहा है, तो क्या इससे उसे कोई लाभ होगा यदि वह कहे कि उसने अपने माता-पिता के लिये न्याय और औचित्य के पथ का त्याग कर दिया था और इसलिये उसे न पकड़ा जाये ?"

१४. "नहीं, सब प्रार्थनाओं के बावजूद, जेलर उसे जेल में डाल देगा।"

१५. "क्या इससे उसे कोई लाभ होगा यदि वह स्वयं कहे अथवा उसकी पत्नी और परिवार के सदस्य कहें कि उसने उनकी खातिर न्याय और औचित्य के पथ का त्याग किया था ?"

१६. "नहीं।"

१७. "क्या इससे उसे कोई लाभ होगा यदि उसके दास या दूसरे नौकर-चाकर उसकी वकालत करें ?"

१८. "बिल्कुल नहीं।"

१९. "अथवा उसके मित्रों वा परिचितों ने उसकी वकालत की ?"

२०. "बिल्कुल नहीं।"

२१. "अथवा उसके रिश्तेदारों वा अतिथियों ने उसकी वकालत की ?"

२२. "बिल्कुल नहीं।"

२३. "अथवा उसके मृत-पितरों ने ही उसकी वकालत की कि इसने देवताओं को 'बलि' देने के लिये या राजा को 'कर' देने के लिये न्याय और औचित्य के मार्ग का त्याग किया था ?"

२४. "बिल्कुल नहीं।"

२५. "अथवा इससे उसे कोई लाभ होगा यदि या तो वह स्वयं कहे या उसकी ओर से दूसरे कहें कि इसने अपने खाने पीने के लिये ही न्याय और औचित्य का मार्ग छोड़ा है ?"

२६. "नहीं।"

२७. धानञ्जानि ! तुम क्या सोचते हो ? दोनों में से कौन अच्छा आदमी है ? क्या वह जो अपने माता-पिता के लिये न्याय और औचित्य का पथ त्याग देता है अथवा वह जो उनकी चिन्ता न कर न्याय और औचित्य के पथ को नहीं त्यागता ?"

२८. धानञ्जानि का उत्तर था :— "दूसरा, क्योंकि न्याय और औचित्य के पथ को त्यागने से न्याय और औचित्य के पथ का न त्यागना अच्छा है ।"

२९. "और फिर धानञ्जानि ! दूसरे रास्ते हैं, जिनसे बिना न्याय और औचित्य का त्याग किये, बिना कुमार्ग पर चले वह अपने माता-पिता का पालन कर सकता है। तो क्या स्त्री, परिवार और सभी दूसरों के सम्बन्ध में यही बात नहीं है।"

३०. "सारिपुत्र ! यही बात है।"

३१. तब सारिपुत्र के कथन से प्रसन्न हो धानञ्जानि ब्राह्मण ने सारिपुत्र को धन्यवाद दिया और उठकर चला गया।

४. सदाचरण में सम्पूर्णता कैसे प्राप्त की जाय ?

१. एक बार जब भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में जेतवनाराम में विराजमान थे, उनके पास पांच सौ उपासक आये। उनमें से एक का नाम 'धार्मिक' था।

२. धार्मिक ने तथागत से पूछा :— "आपके श्रावक सदाचरण में पूर्णता कैसे प्राप्त करते हैं ?

३. "मैं आपसे यह प्रश्न इसलिये पूछता हूँ क्योंकि आप मानव-कल्याण के अनुपम शास्ता हैं।

४. "समर्थ तैर्थिक और परिव्राजक आप से पार नहीं पा सके। आयु-प्राप्त वृद्ध ब्राह्मण और दूसरे भी शास्त्रार्थ-प्रिय लोग आपके अनुयायी बन जाते हैं। आप के द्वारा उपदिष्ट सत्य बड़ा सूक्ष्म है, किन्तु बड़ा सु-आख्यात है। सब लोग इसके लिये तरसते हैं। भगवान् ! कृपा करके हमें इस प्रश्न का उत्तर दें।[१३]

५. "भगवान् ! हम उपासकों को आप का परिशुद्ध धर्म श्रवण करना मिले।

६. तथागत ने उन (व्रती) उपासकों पर दया करके कहा :—"ध्यान दो। मैं तुम्हें शुद्धाचरण के नियम कहता हूँ। सुनो और तदनुसार आचरण करो।"[१]

७. "जान से मारो नहीं, हत्या न करो, हत्या का अनुमोदन न करो। सबल या दुर्बल कैसा भी प्राणी हो—उसकी हिंसा न करो।[२]

८. "कोई उपासक जानबूझ कर न चोरी करे, न चोरी कराये और न चोरी का अनुमोदन करे—दूसरे जो दें वही ले।[३]

९. "अब्रह्मचर्य्य को आग के गढ़े के समान समझे। अब्रह्मचारी बनकर विवाहिता स्त्री से भी संसर्ग न करे।[४]

१०. "निजी परिषद में, अदालत में या बात-चीत में झूठ न बोले, न वह किसी

को झूठ बोलने को प्रेरित करे और न उसका समर्थन करे। उसे चाहिये कि वह असत्य का त्याग कर दे।

११. "उपासक को चाहिये कि इस नियम को मानें, नशीले पदार्थों को ग्रहण न करे। किसी को पान न कराये। किसी के पान करने का अनुमोदन न करे। देखे कि शराब आदमी को कैसा पागल बना देती है।

१२. शराब के नशे में उपासक पाप कर बैठते हैं तथा दूसरे प्रमादी उपासकों को पाप में प्रवृत्त करते हैं। इस लिये इस पागल बनाने वाले व्यसन का, इस मूर्खता का, इस "मूर्खों के स्वर्ग" का परित्याग करे।

१३. "प्राणी-हिंसा न करे, चोरी न करे, झूठ न बोले, नशीले पेय पदार्थों से दूर रहे, अब्रह्मचर्य से विरत रहे तथा रात को विकाल भोजन न करे।

१४. ''सुगन्धियों तथा पुष्प-मालाओं आदि का त्याग करे तथा ऊंची-बड़ी शैय्या पर न सोये—इस प्रकार सभी उपोसथ दिनों में यह व्रत ग्रहण करे; और पवित्र मन से इस अष्टांगिक व्रत का पालन करे।

१५. "प्रातःकाल इन व्रतों को ग्रहण करे और शुद्ध, श्रद्धायुक्त चित्त से भिक्षुओं को यथा-सामर्थ्य भोजन तथा पेय पदार्थों का दान करे।

१६. "माता-पिता की सेवा करे। धार्मिक-धन्धा करे। इस प्रकार दृढ़ श्रद्धावान उपासक ऊंचे पद को प्राप्त करता है।"

५. सन्मार्ग पर चलने के लिये साथी की प्रतीक्षा अनावश्यक

१. जिस प्रकार हाथी, युद्ध में बाण से गिरे हुए तीरों को सहन करता है, उसी प्रकार मुझे दुष्टों के दुर्वचनों को सहन करना चाहिये; क्योंकि संसार में दुश्शीलों की कमी नहीं।[1]

२. जो हाथी शान्त-दान्त होता है, उसी को युद्ध में ले जाया जाता है; जो हाथी शान्त-दान्त है उसी पर राजा चढ़ता है; इसलिये प्राणियों में वह शान्त-दान्त व्यक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है जिसे कोई कटु-वचन विचलित नहीं करता।[2]

३. शिक्षित खच्चर अच्छा होता है, सिन्धु का शिक्षित श्रेष्ठ-अश्व अच्छा होता है, शिक्षित बल-सम्पन्न हाथी अच्छा होता है; आदमियों में आत्म-संयत सबसे अच्छा होता है।[3]

४. "ऐसे श्रेष्ठ वाहन भी हमें निर्वाण-पथ पर आगे नहीं ले जा सकते। हम स्वयं आत्म-निर्भर, आत्म-संयत होकर ही निर्वाण-पथ पर अग्रसर हो सकते हैं।[4]

५. "अप्रमाद में आनन्द मनाओ। स्मृति-सम्प्रजन्य युक्त रहो। कभी प्रमाद

मत करो। अपने आप को कुपथ से हटाकर सुपथ पर लाओ; हाथी को दलदल में से निकालो।[1]

६. यदि तुम्हें कोई एक श्रेष्ठ, बुद्धिमान, दृढ़ साथी मिला है तो सब चिन्ताओं को छोड़कर उसके साथ प्रसन्नतापूर्वक विचरण करो।[2]

७. यदि तुम्हें कोई श्रेष्ठ, बुद्धिमान साथी नहीं मिला है, तो जिस प्रकार राजा अपने विजित प्रदेश को छोड़कर जंगल में अकेले विचरने वाले हाथी की तरह अकेला चल देता है, उसी प्रकार अकेले ही विचरण करो।[3]

८. अकेला रहना अच्छा है। मूर्खों का साथ हो ही नहीं सकता। अकेला रहे। कोई पाप-कर्म न करे। अल्पेच्छ रहे। एकान्त में रहे—जैसे जंगल में बल-सम्पन्न हाथी।[4]

९. तमाम अकुशल-चेतनाओं का त्याग करे।

१०. अकुशल-चेतनाओं से मुक्ति-लाभ करने की विधि यह है :—

११. तुम्हें यह संकल्प करना होगा कि चाहे दूसरे लोग हानि करने वाले हों, तुम्हें किसी को नुकसान नहीं पहुंचाना होगा।

१२. चाहे दूसरे हिंसक हो, तुम कभी हिंसा नहीं करोगे।

१३. चाहे दूसरे चोरी करें, तुम नहीं करोगे!

१४. चाहे दूसरे पवित्र जीवन व्यतीत न करें, तुम करोगे।

१५. चाहे दूसरे किसी की निन्दा करें विरुद्ध बोलें, व्यर्थ बोलें, तुम नहीं बोलोगे।

१६. चाहे दूसरे लोभ-लालच करें, तुम नहीं करोगे।

१७. चाहे दूसरे द्वेषी हों, तुम द्वेष नहीं करोगे।

१८. चाहे दूसरे मिथ्या-दृष्टि हों, तुम नहीं होगे। चाहे दूसरों के मिथ्या-संकल्प हों, तुम सम्यक्-संकल्प वाले रहोगे। चाहे दूसरों की मिथ्या-वाणी हो, तुम अपनी वाणी सम्यक् रखोगे। चाहे दूसरों के कर्म मिथ्या हों, तुम अपने कर्म सम्यक् रखोगे। चाहे दूसरों के जीविका के साधन मिथ्या हों, तुम अपने जीविका के साधन सम्यक् रखोगे। चाहे दूसरों का प्रयास (=साधना) असम्यक् हो, तुम अपना प्रयास सम्यक् करोगे। चाहे दूसरों की स्मृति और समाधि असम्यक् हो, तुम अपनी स्मृति और समाधि सम्यक् रखोगे।

१९. चाहे दूसरे (आर्य-) सत्यों और मुक्ति के बारे में गलत हों, तुम सत्यों और मुक्ति के (पथ के) बारे में ठीक होगे।

२०. चाहे दूसरे आलस्य और तन्द्रा से युक्त हों, तुम आलस्य और तंद्रा से मुक्त रहोगे।

२१. चाहे दूसरे अभिमानी हों, तुम विनम्र रहोगे।

२२. चाहे दूसरे विचिकित्सा-युक्त हों, तुम विचिकित्सा-मुक्त रहोगे।

२३. चाहे दूसरे क्रोधी हों, दुष्ट हों, ईर्ष्यालु हों, कंजूस हों, लोभी हों, ढोंगी हों, ठग हों, वंचक हों, उद्धत हों, दुस्साहसी हों, किसी नीति के मानने वाले न हो, अशिक्षित हों, जड़ हों, भ्रमित हों, तथा अज्ञ हों—तुम नहीं होंगे, अर्थात् तुम इन सब के विरुद्ध होगे।

निर्वाण-सम्बन्धी प्रवचन

१. निर्वाण क्या है?

१. एक बार भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे। वहीं सारिपुत्र भी थे।

२. तथागत ने भिक्षुओं को सम्बोधित करके कहा—"भिक्षुओं! तुम्हें धर्म का दायाद (=उत्तराधिकारी) बनना चाहिये, भौतिक वस्तुओं का नहीं। क्योंकि मेरे मन में तुम सब के लिये अनुकम्पा है, इसलिये मैं तुम्हें यह कह रहा हूँ।[१४]

३. इतना कहा और तथागत उठकर अपनी कुटी में चले गये।

४. सारिपुत्र पीछे रह गये। तब भिक्षुओं ने सारिपुत्र से प्रार्थना की कि वे बतायें कि निर्वाण क्या है?

५. तब सारिपुत्र ने भिक्षुओं को सम्बोधित करके कहा—"भिक्षुओ! तुम जानते हो कि लोभ अकुशल-धर्म है, द्वेष अकुशल-धर्म है।"

६. "इस लोभ और द्वेष से मोक्ष लाभ करने के हेतु मध्यम-मार्ग है, जो हमें आँख देने वाला है, ज्ञान देने वाला है, शान्ति, प्रज्ञा, बोधि तथा निर्वाण की ओर ले जाने वाला है।

७. "यह मध्यम-मार्ग क्या है? यह अष्टांगिक मार्ग के अतिरिक्त और कुछ नहीं, यही सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्-वाणी, सम्यक्-कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक्-व्यायाम (=चित्त की साधना), सम्यक्-स्मृति तथा सम्यक् समाधि। भिक्षुओं! यही मध्यम-मार्ग है!

८. "हाँ भिक्षुओ! क्रोध अकुशल-धर्म है, पटिघ (=विरोधी-भाव) अकुशल-धर्म हैं, ईर्ष्या और मात्सर्य्य अकुशल-धर्म हैं, कंजूसपन और लालच अकुशल-धर्म हैं, ढोंग, ठगी और उद्धतपन अकुशल-धर्म हैं, अभिमान अकुशल-धर्म है तथा प्रमाद अकुशल-धर्म है।

९. "अभिमान और प्रमाद के त्याग के लिये मध्यम-मार्ग है जो आँख देने वाला है, ज्ञान देने वाला है तथा शान्ति, प्रज्ञा और बोधि की ओर से ले जाने वाला है।

१०. "आर्य अष्टांगिक मार्ग का ही दूसरा नाम निर्वाण है।'

११. इस प्रकार महास्थविर सारिपुत्र ने कहा तो सभी भिक्षुओं ने आनन्दित हो उनका अनुमोदन किया ।

२. निर्वाण का मूल

१. एक बार राध स्थविर तथागत के पास आये। आकर तथागत को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। इस प्रकार बैठे हुए राध स्थविर नें तथागत से निवेदन किया—"भगवान् ! निर्वाण किस लिये ?"

२. भगवान् बुद्ध ने उत्तर दिया–"निर्वाण का मतलब है राग-द्वेष से मुक्ति।"

३. "लेकिन भगवान् ! निर्वाण का उद्देश्य क्या है ?"

४. "राध ! श्रेष्ठ जीवन निर्वाणाश्रित है। निर्वाण ही लक्ष्य है। निर्वाण ही उद्देश्य है।"[१५]

(२)

१. एक बार तथागत श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार कर रहे थे । तब तथागत ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"भिक्षुओ !" "भदन्त !" कहकर भिक्षुओं ने प्रत्युत्तर दिया। तब तथागत ने कहा :—

२. "भिक्षुओ, क्या तुम्हें मेरे बताये उन पांच बन्धनों का ध्यान है जो आदमी को नीचे की ओर घसीट ले जाते हैं ?"

३. इतना पूछने पर स्थविर मालुंक्य-पुत्र ने तथागत से निवेदन किया :—

४. "भगवन् ! मुझे उन पांच बंधनों का ध्यान है।"

५. "मालुंक्य पुत्र ! तुझे उन पांच बंधनों का कैसे ध्यान है ?"

६. "भगवान् ! मुझे ध्यान है कि आपने बताया है कि (छोटे बालक को) सक्काय-दिट्ठि (=शरीरात्म-दृष्टि), विचिकित्सा, शील-व्रतों पर निर्भर रहने की दृष्टि, काम-राग तथा द्वेष—ये पांच बंधन नीचे की ओर घसीट ले जाते हैं। भगवान् ! इन पाँच बंधनों का मुझे ध्यान है।"

७. "मालुंक्यापुत्र ! तू ये पांच बंधन किसके लिये बताये गये मानता है ? क्या दूसरे मतों के अनुयायी छोटे बालक को ही उपमा देकर तुझे यह कह कर दोष नहीं देंगे कि—

८. "मालुंक्यपुत्र ! आकाश की ओर मुंह करके लेटे हुए अबोध छोटे बालक की अभी काया ही अविकसित होती है। उसमें सक्काय-दिट्ठि कहाँ से उत्पन्न हो सकती है ? हां ! उसमें भी सक्काय-दिट्ठि का अंकुर तो मौजूद है।

९. "इसी प्रकार मालुंक्य-पुत्र ! आकाश की ओर मुंह करके लेटे हुए अबोध छोटे बालक का अभी चित्त ही अविकसित होता है। तो फिर अभी उसमें चित्त की विचिकित्सा कहां से उत्पन्न होगी ? हां, विचिकित्सा का अंकुर अवश्य मौजूद है।

१०. "इसी प्रकार मालुंक्य पुत्र ! अभी इस अवस्था में उसका कुछ शील ही नहीं हो सकता। तब शील-व्रत पर निर्भरता कहां से आयगी ? हां शील व्रत-सम्बन्धी निर्भरता का अंकुर अवश्य मौजूद है।

११. "इसी प्रकार मालुंक्य-पुत्र ! उस अबोध बालक में अभी काम-राग ही अविकसित रहता है। तो उसमें काम-राग की उत्तेजना कहां से आयगी ? हां ! उसमें भी काम-राग का अंकुर तो अवश्य रहता है।

१२. "इसी प्रकार मालुंक्य-पुत्र ! उस अबोध बालक के लिये अभी प्राणियों का अस्तित्व ही नहीं है। तब उसके मन में प्राणियों का द्वेष कहां से आयेगा ? हां उसमें भी द्वेष का अंकुर तो अवश्य है।

१३. "तो क्या मालुंक्य पुत्र। दूसरे मतों के अनुयायी छोटे अबोध बालक को ही उपमा देकर तुझे दोष नहीं देंगे ?"

१४. जब यह कहा जा चुका तब महास्थविर आनन्द ने तथागत से निवेदन किया —"सुगत ! अब आप के लिये विश्राम करने का समय है। सुगत ! अब आपके लिये विश्राम करने का समय है।"

सद्धर्म सम्बन्धी प्रवचन

१. सम्यक्-दृष्टि का पहला स्थान क्यों है ?

१. आर्य अष्टांगिक मार्ग में सम्यक-दृष्टि श्रेष्ठतम है।

२. सम्यक्-दृष्टि श्रेष्ठ जीवन की प्रत्येक बात की भूमिका है, चाबी है।

३. और सम्यक्-दृष्टि का न होना सभी बुराइयों की जड़ है।

४. सम्यक्-दृष्टि के विकास के लिये आवश्यक है कि आदमी जीवन की प्रत्येक घटना को प्रतीत समुत्पन्न जाने। सम्यक्-दृष्टि का मतलब ही है प्रतीत्य समुत्पाद के नियम को जान लेना।

५. "भिक्षुओ ! जो कोई भी व्यक्ति मिथ्या-दृष्टि रखता है, मिथ्या-संकल्प रखता है, मिथ्या-वाणी रखता है, मिथ्या-कर्मान्त रखता है, मिथ्या-जीविका रखता है, मिथ्या-प्रयास करता है, मिथ्या-स्मृति तथा मिथ्या-समाधि रखता है, जिस का ज्ञान और विमुक्ति मिथ्या रहती है, उसका हर कार्य्य, उसका हर वचन, उसका हर विचार, उसकी हर चेतना, उसकी हर आकांक्षा, उसका हर निश्चय, उसकी हर प्रक्रिया—ये सभी चीजें उसे ऐसी स्थिति की ओर ले जाती हैं जो कि अरुचिकर होती है, अप्रीतिकर होती है, बुरी लगती है, अलाभ-प्रद होती है तथा दुःखद होती है। ऐसा क्यों ? मिथ्या दृष्टि के कारण।

६. "ठीक आचरण ही पर्याप्त नहीं है। एक छोटा बालक ठीक आचरण कर सकता है, लेकिन इस का यह मतलब नहीं कि उसे इसका ज्ञान है कि

उसका आचरण ठीक है। ठीक आचरण के लिये ठीक आचरण का ज्ञान आवश्यक है।

७. "आनन्द ! यथार्थ भिक्षु किसे कहते हैं ? यथार्थ भिक्षु उसे ही कहते हैं जो बुद्धिपूर्वक संभव और असंभव के भेद को समझ लेता है।"

२. मृत्यु के बाद के जीवन की चिन्ता व्यर्थ

१. एक बार स्थविर महाकाश्यप तथा स्थविर सारिपुत्त बनारस के पास, ऋषिपतन के मृग-दाय में ठहरे हुए थे।[१०]

२. स्थविर सारिपुत्त, शाम के समय, ध्यानावस्था से उठ, स्थविर महाकाश्यप के पास गये और एक ओर बैठ गये।

३. इस प्रकार बैठे हुए सारिपुत्त ने स्थविर महाकाश्यप से कहा: "काश्यप ! क्या तथागत मरणानन्तर रहते हैं ?

४. "भगवान् बुद्ध ने यह व्याकृत नहीं किया कि तथागत मरणान्तर रहते हैं।

"तो क्या तथागत मरणानन्तर नहीं रहते ? '

"भगवान् बुद्ध ने यह व्याकृत नहीं किया कि तथागत मरणान्तर नहीं रहते हैं।"

५. "तो क्या तथागत मरणानन्तर रहते भी हैं और नहीं भी रहते हैं ?"

६. "भगवान् बुद्ध ने यह भी व्याकृत नहीं किया कि तथागत रहते भी हैं और नहीं भी रहते हैं।"

७. "तो क्या तथागत मरणान्तर नहीं भी रहते हैं और नहीं नहीं भी रहते हैं ?" "भगवान् बुद्ध ने यह भी व्याकृत नहीं किया कि तथागत मरणानन्तर नहीं भी रहते हैं और नहीं नहीं भी रहते हैं।"

८. "लेकिन तथागत ने इसे अव्याकृत क्यों नहीं किया ?"

९. यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर देने से मनुष्य का कुछ भी लाभ नहीं। यह श्रेष्ठ-जीवन का आरम्भ भी नहीं। इससे न प्रज्ञा की प्राप्ति होती है और न यह निर्वाण की ओर ले जाता है। यही कारण है कि तथागत ने इसको अव्याकृत रखा है।"

३. 'ईश्वर' से प्रार्थनायें और याचनायें करना बेकार

१. एक बार भगवान् बुद्ध ने वासेट्ठ से बातचीत करते हुए कहा :–

२. "यदि यह अचिरवती नदी किनारे तक लबालब भरी हो और एक आदमी जिसे नदी के दूसरे तट पर काम हो, इसे पार करना चाहे;

३. "और किनारे पर खड़ा होकर वह दूसरे किनारे को पुकार लगाये : 'हे उधर के किनारे ! इधर आओ ! हे उधर के किनारे ! इधर आओ।'

४. "हे वासेट्ठ ! अब यह सोचो कि क्या उस आदमी के प्रार्थना करने से, याचना करने से, आशा लगाने से, स्तुति करने से वह दूसरा किनारा उधर से इधर चला आयगा ?

५. "ठीक इसी तरह वासेट्ठ ! तीन वेदों के जानकार-ब्राह्मण-उन गुणों की अपेक्षा करके जो वास्तव में किसी को सच्चा ब्राह्मण बनाते हैं, उन दुर्गुणों का अभ्यास करते हैं जो किसी को भी अ-ब्राह्मण बनाते हैं–ऐसी प्रार्थनायें करते हैं—

६. "हे इन्द्र ! हम तेरा आवाहन करते हैं। हे ब्रह्म ! हम तेरा आवाहन करते हैं। हे ईशान ! हम तेरा आवाहन करते हैं। हे प्रजापति ! हम तेरा आवाहन करते हैं। हे ब्रह्म। हम तेरा आवाहन करते हैं।

७. "वासेट्ठ ! यह निश्चित है कि ऐसा हो नहीं सकता कि अपनी प्रार्थनाओं, अपनी याचनाओं, अपनी आशाओं और अपनी स्तुति के कारण यह ब्राह्मण अपनी मृत्यु के बाद 'ब्रह्म' में लीन हो जांय; ऐसा निश्चय से हो नहीं सकता।[१८]

४. आदमी का भोजन उसे 'पवित्र' नहीं बनाता

१. एक ब्राह्मण भगवान् बुद्ध के पास आया और उसने प्रश्न उठाया कि भोजन का आदमी के चरित्र पर प्रभाव पड़ता है या नहीं ?

२. "ब्राह्मण बोला ! जौ, गिरि, दाल, फलियां, कोपलें—इस तरह का भोजन यदि ठीक से मिले तो सदाचरण का सहायक होता है। 'मुर्दार-मांस' का खाना खराब है।"

३. "भगवान् ! यद्यपि आप कहते हैं कि आप 'मुर्दार-मांस' नहीं खाते, लेकिन आप पक्षियों के मांस का बना हुआ एक से एक बढ़िया भोजन कर लेते हैं—मैं आप से पूछता हूँ कि 'मुर्दा-मांस' किसे कहा जाता है ?"

४. तथागत ने उत्तर दिया—"किसी प्राणी की हत्या करना, किसी का अंग-छेद करना, मारना-पीटना-बंध-बंधन, चोरी, झूठ बोलना, ठगी, वञ्चा, व्यभिचार–ये सब 'मुर्दार-मांस' हैं, मांस भोजन नहीं।

५. "काम-भोगों के पीछे पड़े रहना, पेटू-पन, अपवित्र-जीवन, वैर-विरोध—वे सब मुर्दार मांस हैं, मांस-भोजन नहीं।

६. "चुगल-खोरी, निर्दयता, विश्वास-घात, अत्यन्त-अभिमान तथा कमीना-कंजूसपन—ये सब मुर्दार-मांस हैं, मांस भोजन नहीं।

७. क्रोध, मान, विद्रोह, चालाकी, ईर्ष्या, उबाल, अहंकार, कुसंगति ये सब मुर्दार-मांस हैं, मांस भोजन नहीं।

८. नीच-जीवन, किसी को झूठ-मूठ बदनाम करना, धोखा देना, वंचक होना, धोखा-धड़ी, बदनामी—ये सब मुर्दार-मांस हैं, मांस-भोजन नहीं।

९. ये हत्या करने तथा चोरी करने का व्यसन—ये अपराध—ये खतरों से भरे हैं, ये नरक के द्वार हैं—ये सब मुर्दार-मांस हैं, मांस-भोजन नहीं।

१०. जो आदमी शक्की है, उसके शक्क को न मत्स्य-मांस से विरत रहना दूर कर सकता है, न नग्न रहना, न जटायें, न मुण्डन, न (मृग—) छाल, न अग्निपूजा, न भावी सुख प्राप्ति के उद्देश्य से की गई कठोर-तपस्या, न जल द्वारा सफाई, न यज्ञ-हवन और न कोई दूसरी ऐसी ही संस्कार-क्रिया।

११. अपनी इन्द्रियों को संयत रखो, अपने ऊपर काबू रखो, सत्य का आग्रह रखो और दयावान बनो। जो शान्त-पुरुष सब बन्धनों को तोड़ देता है और सब दु:खों को जीत लेता है, वह फिर देखते-सुनते रहने के बावजूद (अनासक्त) रहने के बावजूद (अनासक्त रहने के कारण) निर्मल रहता है।

१२. तथागत से इस ऊंचे, त्राण करने वाले धर्म की देशना सुन—जिसमें 'मुर्दार-मास की निन्दा की गई थी, और जो दु:ख का क्षय करने वाली थी—ब्राह्मण ने विनम्रतापूर्वक वंदना की और तत्क्षण प्रव्रज्या की याचना की।

५. भोजन नहीं, 'पवित्र कर्मों' का महत्व है

१. आमगन्ध नाम का एक ब्राह्मण तपस्वी अपने शिष्यों के साथ हिमालय में रहता था।

२. वे मत्स्य-मांस नहीं खाते थे। प्रति वर्ष वे कुछ नमक-खटाई खाने के लिये अपने आश्रम से नीचे उतर कर वस्ती में आते थे। गांव के लोग उनका बड़ा स्वागत करते और चार महीने तक लगातार उनका आतिथ्य करते थे।

३. तब भिक्षु-संघ सहित भगवान् बुद्ध भी वहीं आये। लोगों ने तथागत का धर्मोपदेश सुना तो उनके श्रावक बन गये।

४. सदा की भांति तपस्वी 'आमगन्ध' और उसके शिष्य भी उस गाँव में आये, लेकिन लोगों ने उसी उत्साह से उनका स्वागत नहीं किया।

५. आमगन्ध को यह जानकर निराशा हुई कि तथागत ने मत्स्य-मांस के भोजन का निषेध नहीं किया। इस बारे में यथार्थ जानकारी प्राप्त करने के लिये वह श्रावस्ती के जेतवन विहार पहुँचा, जहां तथागत ठहरे हुए थे। वह बोला :—

६. "जौ, फलियां और फल, खाने लायक पत्ते और जड़ें, किसी भी लता पर लगने वाली सब्जी—इन चीजों को न्यायत: प्राप्त कर जो भी कोई खाने वाला खाता है, वह सुख भोग के लिये झूठ नहीं बोलता।

७. "आप दूसरों के दिये हुए दूसरों के द्वारा तैयार किये गये बढ़िया-बढ़िया सामिष भोजन ग्रहण करते हैं। जो इस प्रकार का चावल (-मांस) का पुलाव खाता है, वह आम-गंध खाता है। आप पक्षी के मांस के साथ पका हुआ बढ़िया चावल खाते हैं और कहते हैं कि मुझ पर 'आम-गंध' का दोष लागू नहीं होता!

८. "मैं आप से इस का अर्थ जानना चाहता हूँ। यह आपका 'आम-गन्ध' किस तरह का है?"

९. तथागत ने उत्तर दिया:—"जीव हिंसा करना, पीटना, काटना, बांधना, चुराना, झूठ बोलना, ठगना, वंचना करना, अनुपयोगी जानकारी तथा व्यभिचार—यह आम-गंध है; मांस का खाना नहीं।

१०. "इन्द्रिय-विषयों में असंयत होना, मधुर वस्तुओं के प्रति लोभी होना, अपवित्र कार्य्यों से सम्बन्धित होना, मिथ्या-दृष्टि होना, सीधा-सरल न होना, अननुकरणीय होना—यह आम-गंध है; मांस का खाना नहीं।

११. "कटु होना, कठोर होना, चुगल-खोर होना, विश्वासघाती होना, निर्दयी होना, अहंकारी होना, अनुदार होना तथा किसी को कुछ भी देने वाला न होना—यह आमगंध है; मांस का खाना नहीं।

१२. "क्रोध, अभिमान, उजड्डपन, विरोधी-भाव, ठगी, ईर्ष्या, शेखी मारना, अधिक अहंकार, कुसंगति—यह आमगंध है, मांस का खाना नहीं।

१३. "दुश्शीलता, लिये कर्ज का न देना, दूसरे का झूठा अपयश फैलाना, वंचक होना, बहानेबाज होना—इस संसार में निकृष्टतम लोगों का इस प्रकार के कुकर्म करना—यह आम-गंध है, मांस भोजन नहीं।

१४. "प्राणियों (की जान लेने) के विषय में असंयत होना, दूसरों को कष्ट पहुंचाने पर तुला होना, दूसरों की वस्तुएँ छीन लेना, दुश्शील होना, निर्दयी होना, कठोर होना तथा आदर की भावना रहित होना—यह आमगंध है, मांस भोजन नहीं।

१५. "लोभ या द्वेष से प्राणियों पर आक्रमण करना तथा सदैव कुकर्म करने के लिये उद्यत रहना—मरणान्तर आदमियों को अन्धकार से ले जाकर नरक में पहुंचा देता है—यह आमगन्ध है, मांस भोजन नहीं।

१६. "न मत्स्य-मांस से विरत रहने से, न नंगे रहने से, न सिर मुड़ाने से, न जटायें रखने से, न भभूत रमाने से, न मृग-छाल धारण करने से, न अग्नि-पूजा करने से, न अमृत-प्राप्ति के निमित्त तमाम तरह की तपस्यायें करने से, न मन्त्र-जाप से, न बलि चढ़ाने से और ऋतु के अनुसार भिन्न यज्ञ आदि करने से ही वह आदमी शुद्ध हो सकता है, जिसके सन्देह दूर नहीं हुए।

१७. जो संयतेन्द्रिय है, जो धर्म में स्थित है, जिसे शीलपालन में आनन्द का अनुभव होता है, जिसने आसक्ति को त्याग दिया है और दुःख का क्षय कर चुका है; वह आदमी देखे-सुने के साथ आसक्त नहीं होता।

१८. यह अकुशल-कर्म ही है, जो आमगन्ध है, मांस-भोजन नहीं।

६. बाह्य-शुद्धि अपर्याप्त है

१. एक बार भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में विहार कर रहे थे। उस समय सङ्गारव

ब्राह्मण भी वहीं रहता था। वह पानी से शुद्धि मानने वाला था और पानी से शुद्धि की क्रिया करता था। रात-दिन वह प्रायः स्नान करने में ही लगा रहता।[२०]

२. अब आनन्द महास्थविर चीवर धारण कर, अपना पात्र चीवर साथ ले, श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिये निकले। भिक्षाटन से लौटकर, भिक्षा ग्रहण कर चुकने पर, आनन्द महास्थविर तथागत के पास पहुँचे, अभिवादन किया और एक ओर बैठ गये। इस प्रकार बैठे हुए आनन्द महास्थविर ने कहा :—

३. "भगवान्! यहां श्रावस्ती में सङ्गारव नाम का एक ब्राह्मण रहता है। वह पानी से शुद्धि में विश्वास रखता है और पानी से शुद्धि ही करता रहता है। रात-दिन उसका अधिकांश समय स्नान करने में ही खर्च होता है। भगवान्! यह अच्छा होगा यदि आप सङ्गारव ब्राह्मण पर दया कर उससे भेंट करने चलें।"

४. तथागत ने मौन रहकर स्वीकार किया।

५. दूसरे दिन प्रातः काल तथागत अपना चीवर पहन, पात्र-चीवर साथ ले, सङ्गारव ब्राह्मण के घर जा पहुंचे। वहां जाकर बिछे आसन पर बैठे।

६. तब सङ्गारव ब्राह्मण जहां तथागत थे, वहां आया और कुशल-क्षेम पूछ एक ओर बैठ गया।

७. उस के बैठ जाने पर सङ्गारव ब्राह्मण से तथागत ने पूछा:—"ब्राह्मण! जैसा लोग कहते हैं, क्या यह सच है कि तुम जल से शुद्धि में विश्वास रखते हो, पानी से शुद्धि ही करते रहते हो? तुम्हारा रात-दिन का अधिकांश समय स्नान करने में ही खर्च होता है।"

८. "श्रमण गौतम! यह सच है।"

९. "ब्राह्मण! इस प्रकार रात-दिन स्नान आदि करते रहने में ही तुम क्या लाभ देखते हो?"

१०. "श्रमण गौतम! यह इस तरह है कि दिन में मुझसे जो कुछ भी पाप-कर्म होता है, मैं उसे उसी दिन शाम को धो डालता हूँ। और रात को मुझसे जो पाप-कर्म होता है, वह मैं प्रातः काल उठते ही स्नान करके धो डालता हूँ। इस प्रकार रात-दिन स्नान आदि करने रहने में मुझे यही लाभ दिखाई देता है।"

११. तब तथागत ने कहा—

१२. "धर्म ही वह जल-स्रोत है, जो स्वच्छ है, जो निर्मल है।

१३. "यहां जब शास्त्रों के ज्ञाता स्नान करने आते हैं, तो उनका प्रत्येक अंग शुद्ध हो जाता है तथा वे दूसरे तट पर चले जाते हैं।"

१४. तथागत के ऐसा कहने पर सङ्गारव ब्राह्मण बोला—"श्रमण गौतम! यह अद्भुत है। आज से जीवनपर्यन्त आप मुझे अपना शरणागत उपासक जाने"।

पवित्र जीवन क्या है ?

१. एक बार भगवान् बुद्धने चारिका करते समय भिक्षुओं को निम्नलिखित प्रवचन दिया :—

२. "भिक्षुओ ! यह पवित्र जीवन न लोगों को ठगने के लिये है, न उनसे कुछ प्राप्त करने के लिये है, न लाभ-यश की प्राप्ति के लिये है, न शास्त्रार्थ करना सीखने के लिये है, न इसलिये है कि लोग जान जायें कि यह अमुक है। निश्चय से भिक्षुओ ! इस पवित्र जीवन का अभ्यास किया जाता है शरीर और वाणी को संयत रखने के लिये, आस्रवों को दूर करने के लिये तथा चित्त की विमुक्ति और तृष्णा का क्षय प्राप्त करने के लिये।"[21]

सामाजिक-राजनीतिक प्रश्नों पर प्रवचन

१. राजाओं की कृपा के भरोसे मत रहो

१. एक बार भगवान् बुद्ध राजगृह में वेळुवनाराम में कलन्दक-निवाप में ठहरे हुए थे।

२. उस समय राजकुमार अजातशत्रु देवदत्त का सहायक बना हुआ था, जो भगवान् बुद्ध का विरोधी बन गया था।

३. वह पांच सौ गाड़ियों में भोजन भरे पांच सौ बर्तन लाद कर देवदत्त के समर्थकों तक सुबह-शाम पहुँचाता था।[22]

४. तब कुछ भिक्षु तथागत के पास आये, अभिवादन किया और एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए भिक्षुओं ने ये सभी बातें तथागत को सुनाई।

५. तब तथागत ने भिक्षुओं को सम्बोधित करके कहा—"भिक्षुओ ! राजाओं से लाभ-सत्कार की, खुशामद की इच्छा न करो। जब तक भिक्षुओ ! अजातशत्रु पांच सौ गाड़ियों में, भोजन भरे पांच सौ बर्तन लाद कर देवदत्त के समर्थकों तक सुबह-शाम पहुंचाता है, तब तक इस में देवदत्त की हानि ही है, लाभ नहीं है।

६. भिक्षुओ ! यदि कोई किसी पगले कुत्ते की नाक तक किसी की कलेजी ले जाता है तो वह उस कुत्ते को और भी अधिक पागल ही बनायेगी, इसी प्रकार जब तक भिक्षुओ ! अजातशत्रु पांच सौ गाड़ियों में, भोजन भरे पांच सौ बर्तन लाद कर देवदत्त के समर्थकों तक सुबह-शाम पहुँचाता है, तब तक इसमें देवदत्त की हानि ही है, लाभ नहीं। भिक्षुओ ! राजाओं से मिलने वाले लाभ-सत्कार-खुशामद और भेंट आदि इतने भयानक होते हैं।

७. "वे शान्ति-प्राप्ति के मार्ग की बड़ी ही कटु, दुःखद बाधायें हैं।

८. "इसलिये भिक्षुओ ! ऐसा अभ्यास डालना चाहिये कि जब हमें राजाओं

से लाभ-सत्कार, खुशामद और भेंटें आदि मिलेंगी, हम उन्हें अस्वीकार करेंगे और जब वह सिर पर आ ही पड़ें तो वे हमें जकड़ नहीं पायेंगी, हमारे हृदय में उनका कोई स्थान नहीं होगा और वे हमें राजकुमारों का गुलाम नहीं बना सकेंगी।"

२. राजा धार्मिक होगा, तो प्रजा भी धार्मिक होगी

१. एक बार भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए कहा—

२. "भिक्षुओ! ऐसे समय में जब राजा अधार्मिक हो जाते हैं तो उनके मन्त्री-गण और अफसर भी अधार्मिक हो जाते हैं। जब मन्त्री-गण और अफसर अधार्मिक हो जाते हैं। तो ब्राह्मण और गृहपति भी अधार्मिक हो जाते हैं। जब ब्राह्मण और गृहपति अधार्मिक हो जाते हैं, तो नगरों के नागरिक और ग्रामों के ग्रामीण भी अधार्मिक हो जाते हैं।

३. "लेकिन भिक्षुओ ! ऐसे समय जब राजा धार्मिक होते हैं तो उनके मन्त्री गण और अफसर भी धार्मिक होते रहते हैं, जब मन्त्री गण और अफसर धार्मिक रहते हैं तो ब्राह्मण और गृहपति भी धार्मिक हो जाते हैं। जब ब्राह्मण गृहपति धार्मिक रहते हैं, तो नगरों के नागरिक और ग्रामों के ग्रामीण और भी धार्मिक हो जाते हैं।

४. "जब गौवें नदी पार करती होती हैं, तब यदि बूढ़ा बैल गलत रास्ते पर जाता है तो उसका अनुकरण करती हुईं वे भी सब गलत पथ का अनुकरण करती हैं। इस प्रकार आदमियों में जो मुखिया होता है यदि वह कुमार्गी बनता है तो दूसरे भी कुमार्गी बनते हैं।

५. "इसी प्रकार जब राजा पथभ्रष्ट होता है, तो समस्त राज्य दुःखी होता है। जब गौवें नदी पार करती हैं, तब यदि वृषभ सीधा जाता है, तो सभी गौवें भी उसका अनुकरण कर सीधी जाती हैं। इस प्रकार आदमियों में जो मुखिया होता है यदि वह सन्मार्गी होता है तो दूसरे भी सन्मार्गी होते हैं। जब राजा धार्मिक होता है तो सारा राज्य सुखी रहता है।"[२३]

३. राजनीतिक तथा सामरिक शक्ति सामाजिक व्यवस्था पर निर्भर करती है

१. एक समय भगवान् बुद्ध राजगृह में गृध्रकूट पर्वत पर ठहरे थे।[२४]

२. उस समय मगध-नरेश, वैदेही-पुत्र अजातशत्रु वज्जियों पर आक्रमण करना चाहता था। उसने अपने मन में कहा—"चाहे ये कितने ही शक्तिशाली क्यों न हों, मैं इन वज्जियों की जड़ खोद डालूँगा, मैं इन वज्जियों को नष्ट कर डालूंगा, मैं इन वज्जियों का सर्वथा विनाश कर डालूंगा।"

३. तब उसने मगध के प्रधान मन्त्री वर्षकार ब्राह्मण को बुलाया और कहा—

४. "ब्राह्मण ! तुम आओ और भगवान् बुद्ध के पास जाओ, मेरी ओर से उनके चरणों में नमस्कार करो, तब उनका कुशल-समाचार पूछो कि वे निरोग और स्वस्थ हैं या नहीं ?

५. "और तब उनसे कहो कि मगध-नरेश वैदेही-पुत्र अजातशत्रु वज्जियों पर आक्रमण करना चाहता है। उसका कहना है कि चाहे वे कितने ही शक्तिशाली हों, वह उनकी जड़ उखाड़ देगा, वह उनको नष्ट कर डालेगा, वह उनका सर्वथा विनाश कर देगा।

६. "ऐसा कहने पर जो कुछ तथागत कहें उसे ध्यानपूर्वक सुनना और आकर मुझे बताना। क्योंकि बुद्धों का कथन कभी अन्यथा नहीं होता।"

७. तब वर्षकार ब्राह्मण ने राजा के वचनों को सुना और कहा—"जैसा आप चाहते हैं, वैसा होगा।" और बहुत से सुन्दर-सुन्दर रथ जुतवाकर वह गृध्र-कूट पर्वत पर पहुंचा।

८. तब वहां पहुंच कर वर्षकार ब्राह्मण ने तथागत को अभिवादन किया, उनका कुशल-समाचार पूछा और राजा की आज्ञा के अनुसार मगध-नरेश का संदेश तथागत के सामने निवेदन कर दिया।

९. उस समय आनन्द स्थविर तथागत के पास खड़े थे। तथागत ने आनन्द को सम्बोधित करके पूछा :—"आनन्द ! क्या तुमने सुना है कि वज्जिगण के लोग प्रायः अपनी सार्वजनिक समितियों की बैठकें करते रहते हैं ?'

१०. आनन्द स्थविर ने उत्तर दिया—"हाँ भगवान् ! मैंने ऐसा सुना है।"

११. तथागत ने कहा—"आनन्द ! जब तक वज्जी अपनी सार्वजनिक समितियों की बैठकें करते रहेंगे, तब तक वज्जियों की वृद्धि ही होती रहेगी, उनका ह्रास नहीं होगा।

१२. "आनन्द ! जब तक वज्जी मिल-जुलकर बैठेंगे, मिल-जुलकर उठेंगे और मिल-जुलकर अपने निश्चयों को कार्यरूप में परिणत करेंगे तब तक ... होगा।"

१३. "आनन्द ! जब तक वह बिना नियम बनाये कोई कारंवाई नहीं करेंगे, जो नियम बन चुका है उसका उल्लंघन नहीं करेंगे, और पुराने समय से चली आई वज्जियों की परम्परा के अनुसार कार्य्य करेंगे तब तक......होगा।

१४. "जब तक वे अपने ज्येष्ठ वज्जिओं का आदर-सत्कार करते रहेंगे, उनकी आवश्यकतायें पूरी करते रहेंगे और उनकी बातों को महत्त्व देते रहेंगे तब तक ....होगा।

१५. "जब तक वे किसी वज्जी लड़की या स्त्री को जबर्दस्ती अपने यहां लाकर नहीं रखेंगे तब तक...होगा।

१६. "जब तक वज्जीगण के लोक धर्म का पालन करते रहेंगे तब तक. ....होगा।

१७. "जब तक वे ये बातें करते रहेंगे तब तक वज्जियों की वृद्धि ही होती रहेगी, उनका ह्रास नहीं होगा, और कोई उनका नाश नहीं कर सकता।"

१८. थोड़े शब्दो में भगवान् बुद्ध ने कहा कि जब तक वज्जीगण प्रजातन्त्र में विश्वास करते हैं और प्रजातन्त्रात्मक ढंग से रहते हैं तब तक उनके गणराज्य को कोई खतरा नहीं।

१९. तब तथागत ने वर्षकार को सम्बोधित किया—

२०. "हे ब्राह्मण ! जब मैं वैशाली में ठहरा हुआ था, तब मैंने वज्जियों को ये बातें सिखाई थीं।"

२१. ब्राह्मण बोला—"तो हम वज्जियों की उन्नति की ही आशा कर सकते हैं, अवनति की नहीं। हे गौतम ! मगध-नरेश वज्जियों को नहीं जीत सकता।"

२२. इस प्रकार वर्षकार ब्राह्मण ने तथागत के वचन सुने, वह अपने आसन से उठा और राजगृह वापस लौट कर उसने मगध-नरेश को वह सब कह सुनाया जो उसने तथागत से सुना था।

४. युद्ध निषिद्ध है

१. ऐसा हुआ कि मगध-नरेश अजातशत्रु ने घुड़सवार और पैदल सेना इकट्ठी कर कोशल-नरेश प्रसेनजित के राज्य के एक हिस्से काशी-जनपद पर आक्रमण कर दिया।

२. दोनों लड़े। अजातशत्रु ने प्रसेनजित को हरा दिया। प्रसेनजित वापस श्रावस्ती चला गया।

३. जो भिक्षु श्रावस्ती से भिक्षाटन कर लौट रहे थे, उन्होंने आकर भगवान् बुद्ध को लड़ाई का तथा प्रसेनजित के हार कर वापस लौट आने का समाचार कहा। "भिक्षुओ ! मगध-नरेश अजातशत्रु अकुशल का पक्ष लेने वाला है। कोशल-नरेश प्रसेनजित कुशलधर्मी है। अभी प्रसेनजित राजा पराजित हो जाने के कारण दुःखी रहेगा।

५. "जय से वैर पैदा होता है। पराजित दुःखी रहता है। लेकिन जो उपशान्त है, जिसे जय-पराजय की चिन्ता नहीं, वह सुखपूर्वक सोता है।"

६. फिर ऐसा हुआ कि वे दोनों राजा दूसरी बार युद्ध-भूमि में मिले। लेकिन इस बार कोशल-नरेश प्रसेनजित ने अजातशत्रु को हरा दिया और जीवित पकड़ लिया। तब प्रसेनजित ने सोचा:—"यद्यपि अजातशत्रु ने—जिसे मैं कुछ हानि नहीं पहुँचा रहा था, मुझे कष्ट दिया है, तो भी वह मेरा भानजा है। कैसा हो यदि मैं

उसे जीता छोड़ दूँ, किन्तु उसकी सारी सेना, हाथी, घोड़े, रथ और पैदल ले लूं।" उसने वैसा ही किया।

७. श्रावस्ती में भिक्षाटन करके लौटने पर भिक्षुओं ने आकर तथागत को यह समाचार सुनाया। तब तथागत ने कहा—"एक आदमी दूसरे की यथेच्छ हानि कर सकता है, लेकिन जिसकी हानि होती है वह भी फिर दूसरे को हानि पहुंचाता ही है।

८. "जब तक पाप-कर्म फल देना आरम्भ नहीं करता तब तक मूर्ख आदमी आनन्द मना सकता है। लेकिन जब पाप-कर्म फल देता है, तब मूर्ख आदमी दुःखी होता है।

९. "हत्यारे को हत्यारा मिलता है, जो दूसरों को लड़ाई में हराते हैं उन्हें हराने वाले मिल जाते हैं, जो दूसरों को गाली देता है, उसे गाली देने वाले मिल जाते हैं।

१०. "इस प्रकार कर्म के विकास के फलस्वरूप जो आदमी दूसरे को कष्ट देता है, वह कष्ट पाता है।"

५. युद्ध-विजेता के कर्तव्य

१. जब योधा युद्ध-विजयी हो जाता है तो सामान्य तौर पर वह अपना अधिकार समझता है कि यदि वह पराजित को अपना दास बनाकर न रखे तो उसे कम से कम जलील तो खूब करे। भगवान् बुद्ध का इस विषय में सर्वथा भिन्न दृष्टिकोण था। वे समझते थे कि यदि 'शान्ति' का कुछ भी अर्थ है तो उसका यही अर्थ होना चाहिये कि विजेता अपनी 'विजय' से विजित की सेवा करे। इस बारे में उन्होंने भिक्षुओं को कहा :—

२. "शान्ति स्थापित हो जाने पर (युद्ध) कुशल आदमी के लिये आवश्यक है कि वह योग्य सिद्ध हो, सीधा-सरल सिद्ध हो, मृदुभाषी हो, कोमलस्वभाव हो, अभिमानी न हो, सन्तुष्ट रहने वाला हो, सुभर (=जिसके भार का अनुभव न हो) हो, अल्पकृत्य, हलकी-फुलकी वृत्ति वाला, इन्द्रिय-विजयी हो, बुद्धिमान हो, अप्रगल्भ हो, योग्य व्यवहार करने वाला हो तथा कभी छोटे से छोटा भी कोई ऐसा खराब काम न करे जिसकी पण्डित लोग निन्दा कर सकें।

३. "सभी प्राणी सुखी रहें, सभी का कल्याण हो—सबल हों वा दुर्बल हों, बड़े हों या छोटे हों, दृश्य हों वा अदृश्य हों, पास रहने वाले हों वा दूर रहने वाले हों, उत्पन्न हो चुके हों वा उत्पन्न होने वाले हों—सभी प्राणी शान्त रहें।

४. "कोई एक दूसरे का अपमान न करें, क्रोध या घृणा के वशीभूत होकर कोई किसी का बुरा न चाहे।

५. "जिस प्रकार माता अपने प्राण देकर भी अपने इकलौते बच्चे से प्यार करती है वैसी ही भावना सभी प्राणियों के प्रति रखें। ऊपर, नीचे, चारों

ओर असीम मैत्री भावना रखें—जिसमें घृणा का लव-लेश न हो, शत्रुता का लव-लेश न हो ।

६. "खड़े होते समय, चलते समय, बैठे रहते समय, लेटे रहते समय यही भावना रखें—यही 'ब्रह्म विहार' कहलाती है ।"

१. अंगुत्तर निकाय, चतुक्क निपात ।
२. संयुत्त निकाय ।
३. अंगुत्तर निकाय, चतुक्क निपात ।
४. पराभव सुत्त (सुत्त-निपात) ।
५. अंगुत्तर निकाय, चतुक्क निपात, तृतीय वर्ग ।
६. अंगुत्तर निकाय, चतुक्क निपात, पाँचवाँ सर्ग ।
७. अंगुत्तर निकाय, चतुक्क निपात, चक्कवग्गो ।
८. अंगुत्तर निकाय, चतुक्क निपात ।
९. अंगुत्तर निकाय —सत्तक निपात ।
१०. सालेय्य सुत्तन्त, मज्झिम निकाय (१।५।१) ।
११. धम्मपद, दण्डवग्गो (९—१२) ।
१२. धानञ्जानि सुत्तन्त, मज्झिम निकाय (२।५।७) ।
१३. संयुक्त निकाय (सुत्तपिटक) ।

पृष्ठ ३१२—१ से ४ तक; नागवग्गो (१), नागवग्गो (२), नागवग्गो (३), नागवग्गो (४),

पृष्ठ ३१३—१ से ४ तक; नागवग्गो (८), नागवग्गो (९), नागवग्गो (१०), नागवग्गो (११),

पृष्ठ ३१४—१; सुखवग्गो (१ से ४),

१४. धम्मदायाद सुत्तन्त (मज्झिम निकाय १।१।३) ।
१५. राध संयुत्त—संयुत्त निकाय ।
१६. महामालुंक्य सुत्तन्त, मज्झिम निकाय (२।२।४) ।
१७. कस्सप संयुत्त, संयुत्त निकाय ।
१८. तेविज्ज सुत्तन्त (दीर्घ निकाय १।१३) ।
१९. धम्मपद—दण्डवग्गो—१३ ।
२०. संगारव सुत्त (संयुत्त निकाय) ।
२१. महासारोपम सुत्त मज्झिम निकाय (१।३२) ।
२२ ...सुत्तनिकाय
२३. चतुक्क निपात (अंगुत्तर निकाय)—दूसरा वर्ग ।
२४. महापरिनिब्बाण सुत्त—दीघनिकाय (१६) ।

पञ्चम काण्ड

संघ

पहला भाग

संघ

१. संघ का संगठन

१. भगवान् बुद्ध के श्रावक दो हिस्सों में विभक्त थे, भिक्षु और गृहस्थ-श्रावक जो उपासक कहलाते थे ।

२. भिक्षुओं का एक संगठित 'संघ' था, गृहस्थों का नहीं था ।

३. बौद्ध भिक्षु प्रथमत: एक परिव्राजक है । यह 'परिव्राजक संस्था' बौद्ध भिक्षुओं से भी प्राचीन है ।

४. पुराने 'परिव्राजक' ऐसे लोग थे, जिन्होंने पारिवारिक जीवन छोड़ दिया था और इधर से उधर घूमते रहते थे ।

५. उनके एक जगह से दूसरी जगह जाने का उद्देश्य था भिन्न भिन्न आचार्यों तथा दार्शनिकों से मिलकर सत्य का पता लगाने का प्रयास करना, उन के प्रवचन सुनना और नीति, दर्शन, प्रकृति तथा रहस्यवाद आदि विषयों पर उनसे चर्चा करना।

६. कुछ पुराने ढंग के ऐसे भी 'परिव्राजक' थे कि जब तक उन्हें कोई दूसरा 'गुरु' न मिले तब तक किसी एक 'गुरु' की अधीनता में रहते थे । कुछ दूसरे थे जो किसी को अपना 'गुरु' नहीं मानते थे और अकेले ही रहते थे ।

७. इन पुराने ढर्रे के परिव्राजकों में कुछ स्त्रियां परिव्राजिकायें भी थीं । स्त्री परिव्राजिकायें कभी कभी पुरुष परिव्राजकों के साथ रहती थीं और कभी कभी अपने ही अकेली भी ।

८. इन पुराने ढंग के परिव्राजकों का कोई संघ न था, उनके कोई निश्चित नियम-उपनियम न थे । उन के सामने कोई निश्चित आदर्श भी न था ।

९. इतिहास में पहली बार तथागत ने अपने भिक्षुओं का एक संघ बनाया, उसकी व्यवस्था के लिये संघ के नियम बनाये और संघ के सदस्यों के सामने एक निश्चित आदर्श उपस्थित किया ।

२. संघ में प्रवेश

१. संघ का प्रवेश सभी के लिये खुला था ।

२. जाति-पाँति की कोई बाधा न थी ।

३. स्त्री पुरुष की कोई बाधा न थी ।

४. हैसियत की कोई बाधा न थी ।

५. जाति-पाँति के लिये संघ में कोई स्थान न था ।

६. सामाजिक-स्थिति का संघ में कोई स्थान न था ।

७. संघ के भीतर, सभी सदस्य समान थे ।

८. संघ के अन्दर 'छोटे-बड़े' का निर्णय सदस्य के गुणों से होता था, न कि उसके जन्म से ।

९. जैसा तथागत ने कहा था कि संघ एक समुद्र के समान है, और भिक्षु उन नदियों के समान है जो समुद्र में विलीन हो जाती है ।

१०. नदी का अपना नाम होता है और अपना पृथक अस्तित्व रहता है ।

११. लेकिन जैसे ही नदी समुद्र में प्रवेश करती है, न उसका कोई पृथक नाम रहता है और न पृथक अस्तित्व ।

१२. वह सब के साथ मिलकर एक हो जाती है ।

१३. यही हाल 'संघ' का है । जब एक 'भिक्षु' संघ में प्रवेश करता है, तो वह समुद्र के जल की तरह अन्य सब के साथ मिलकर एक हो जाता है ।

१४. तथागत ने कहाः—उसकी कोई पृथक् जाति नहीं रही । उसकी कोई पृथक हैसियत नहीं रही ।

१५. 'संघ' के अन्दर यदि कोई वर्गी करण था तो पुरुष-स्त्री की दृष्टि से था । भिक्षु-संगठन पृथक था और भिक्षुणी-संगठन पृथक ।

१६. संघ में प्रवेश पाने वालों के दो वर्ग थेः श्रामणेर तथा भिक्षु ।

१७. बीस वर्ष के कम आयु रहने पर कोई भी श्रामणेर बन सकता था ।

१८. त्रिशरण तथा दस-शीलों को ग्रहण करने से कोई भी बालक श्रामणेर बन सकता है ।

१९. 'मैं बुद्ध की शरण ग्रहण करता हूँ, मैं धर्म की शरण ग्रहण करता हूँ तथा मैं संघ की शरण ग्रहण करता हूँ—ये ही तीन शरण हैं ।

२०. 'मैं प्राणी-हिंसा से विरत रहूंगा; मैं चोरी नहीं करूँगा, मैं अब्रह्मचर्य से विरत रहूँगा, मैं झूठ नहीं बोलूंगा तथा मैं नशीले पेय-पदार्थों से विरत रहूँगा ।

२१. 'मैं विकाल-भोजन से विरत रहूँगा, मैं नाचना-गाना-बजाना आदि से विरत रहूँगा, मैं अपने आप को सजाने तथा अलंकृत करने से विरत रहूँगा, मैं ऊंची महान् शैय्याओं अर्थात् ऐशोआराम से विरत रहूँगा तथा मैं जात रूप-रजत (सोने-च[illegible]) का [illegible]हण करने से विरत रहूँगा ।'

२२ [illegible] स 'शील' हैं ।

२३. एक श्रामणेर जब चाहे 'संघ' छोड़कर गृहस्थ-वेष धारण कर सकता है । एक श्रामणेर एक भिक्षु से बंधा रहता है और उसका अधिकांश समय उसी की

सेवा में खर्च होता है। वह एक प्रकार से 'प्रव्रजित' नहीं ही गिना जाता।

२४. दो अवस्थाओं में से गुजरने से आदमी 'भिक्षु' पद का अधिकारी बनता है—पहली अवस्था 'प्रव्रज्या' कहलाती है और और दूसरी अवस्था 'उपसम्पदा'। 'उपसम्पन्न' होने पर ही कोई भिक्षु बनता है।

२५. जो प्रार्थी आगे चलकर 'भिक्षु' बनने के उद्देश्य से 'प्रवज्या' ग्रहण करना चाहता है उसे एक उपाध्याय की खोज करनी पड़ती है। कम से कम दस वर्ष तक जो भिक्षु रहा हो, वही 'उपाध्याय' हो सकता है।

२६. इस प्रकार का प्रार्थी, यदि उपाध्याय द्वारा स्वीकार कर लिया गया हो, तो 'परिव्राजक' कहलाता है और उसे उपाध्याय की सेवा करते हुए, उसी के 'संरक्षण' में रहना पड़ता है।

२७. 'शिक्षण' काल समाप्त होने पर उपाध्याय को ही अपने 'परिव्राजक' का नाम 'संघ' के सामने प्रस्तावित करना पड़ता है। 'संघ' की हि विशेष बैठक किसी को उपसम्पन्न करने के लिये ही बुलाई जाती है। 'उपसम्पदा' के लिये 'उपसम्पदापेक्षी' को स्वयं 'संघ' से प्रार्थना करनी पड़ती है।

२८. 'संघ' पहले इस विषय में अपना संतोष कर लेता है कि प्रार्थी योग्य व्यक्ति है वा नहीं और 'भिक्षु' बनने का अधिकारी है वा नहीं है ? इसके लिये कुछ निश्चित प्रश्न हैं, जिनका प्रार्थी को उत्तर देना पड़ता है।

२९. 'संघ' के अनुमति देने पर ही उसे 'उपसम्पदा' मिलती है और वह 'भिक्षु' बनता है।

३०. भिक्षुणी-संघ में प्रवेश पाने के नियम भी बहुत कुछ वे ही वा वैसे ही हैं जो भिक्षु संघ में प्रवेश पाने के नियम।

३. भिक्षु के व्रत

१. एक उपासक और एक श्रामणेर भी 'शील' ग्रहण करता है। उसे वे पालन करने होते हैं।

२. एक भिक्षु उन 'शीलों' को 'शील' रूप में ग्रहण करता ही है, किन्तु वह उन्हें 'व्रत' रूप में भी ग्रहण करता है। उसे अपने 'व्रतों' को भंग नहीं करना होता यदि वह उन्हें तोड़ता है तो वह 'दण्डनीय' होता है।

३. एक भिक्षु स्त्री-गमन से विरत रहने का व्रत लेता है।

४. एक भिक्षु चोरी से विरत रहने का व्रत लेता है।

५. एक भिक्षु (किसी परा-प्राकृतिक शक्ति के सम्बन्ध में) शेखी न मारने का व्रत लेता है।

६. एक भिक्षु किसी मनुष्य की हत्या न करने का व्रत लेता है।

७. एक भिक्षु किसी भी नियम-बाह्य वस्तु को अंगीकार न करने का व्रत लेता है।

८. भिक्षु के पास इन आठ चीजों के अतिरिक्त और कुछ नहीं होना चाहिये—

तीन चीवर—(१) अन्तर-वासक (अन्दर का वस्त्र); (२) उत्तरासंग (=ऊपर का वस्त्र); (३) संघाटी (=शीतादि से बचाव के लिये दोहरी चादर)।

(४) कमर पर लपेटने की एक पेटी
(५) भिक्षा-पात्र
(६) उस्तरा (=छुरा-कुल्हाड़ी ?)
(७) सूई धागा
(८) पानी छानने का कपड़ा

९. एक भिक्षु अकिंचनता का व्रत लेता है। उसे मुख्य रूप से अपनी भिक्षा मांग कर खानी होती है। उसे 'भिक्षा-जीवी' होना चाहिये। उसे एकाहारी वा विकाल-भोजन-विरत होना चाहिये। जहां 'संघ' के लिये विहार न हों, वहां वृक्ष के तले भी रहना चाहिये।

१०. एक भिक्षु किसी भी व्यक्ति की हर आज्ञा मानने का व्रत नहीं लेता। अपने ज्येष्ठों के प्रति बाह्य सम्मान प्रदर्शन आदि की अपेक्षा एक श्रामणेर से अवश्य रखी जाती है। उसकी अपनी मुक्ति और एक धर्मोपदेशक के रूप में उसकी उपयोगिता उसकी अपनी साधना पर निर्भर करती है। उसे अपने से बड़े किसी एक व्यक्ति की आज्ञा में नहीं रहना होता, बल्कि धर्म की आज्ञा में रहना होता है। उसका बड़ा न किसी परा-प्राकृतिक प्रज्ञा का ही मालिक माना जाता है और न उसके पास कोई ऐसी ही सामर्थ्य होती है जो उसे 'पाप-मुक्त' कर सके। वह यदि खड़ा रहता है तो अपने बल पर खड़ा रहता है और यदि गिरता है तो अपने से गिरता है। इसके लिये उसे सोचने की स्वतन्त्रता रहनी ही चाहिये।

११. चार विशेष-व्रत ऐसे हैं जिनका भंग होने से भिक्षु 'पाराजिका' का अपराधी बन जाता है। 'पाराजिका' का दोषी होने पर संघ-त्याग ही एकमात्र दण्ड है।

४. सांघिक नियमों सम्बन्धी दोष

१. अपने लिये किसी भी 'व्रत' का भंग भिक्षु के लिये 'धर्म' के विरुद्ध किया गया अपराध है।

२. उक्त अपराधों के अतिरिक्त कुछ और भी अपराध थे जो भिक्षु कर सकता था। वे संघादिसेस कहलाते थे—सांघिक नियमों सम्बन्धी दोष।

३. विनय-पिटक के अनुसार संघादिसेस तेरह हैं।

४. संघादिसेसों का नम्बर पाराजिकाओं के बाद है।

५. भिक्षु और प्रतिबन्ध

१. इन अपराधों से साफ साफ बचे रहने की कोशिश के साथ साथ भिक्षु को कुछ और भी प्रतिबन्ध स्वीकार करने पड़ते हैं। एक गृहस्थ के समान एक भिक्षु जो चाहे सो नहीं ही कर सकता।

२. इस प्रकार के कुछ प्रतिबन्ध 'निस्सग्गीय-पाचित्तिय' कहलाते हैं। इनकी संख्या छब्बीस है।

३. उनका सम्बन्ध चीवरों की स्वीकृति-अस्वीकृति से है, ऊनी बिछावन, भिक्षा पात्र तथा 'रोगी की आवश्यकताओं' की स्वीकृति-अस्वीकृति से है।

४. उनका सम्बन्ध चाँदी सोने के लेने न लेने से भी है। भिक्षु द्वारा किये जाने वाले क्रय-विक्रय से है तथा सांघिक-वस्तु को निजी बना लेने न बना लेने से है।

५. इन दोषों का दण्ड भी निस्सग्गीय (नैसर्गिक) और पाचित्तिय (पश्चाताप प्रकट करना) ही है।

६. इन प्रतिबन्धों के अतिरिक्त भिक्षु जीवन के कुछ और भी प्रतिबन्ध हैं। वे केवल पाचित्तिय कहलाते हैं। उनकी संख्या बानवे है।

६. भिक्षु और शिष्टाचार के नियम

१. एक भिक्षु का व्यवहार बहुत अच्छा होना चाहिये। शिष्टाचार के नियम पालन करने में उसे आदर्श होना चाहिये।

२. इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए तथागत ने बहुत से शिष्टाचार सम्बन्धी नियम बनाये।

३. ये शिष्टाचार के नियम 'सेखिय-धर्म' कहलाते थे। उनकी संख्या पचहत्तर है।

७. भिक्षु और अपराधों का विचार

१. ये नियम, ये विधान केवल 'विधान' बनाने के लिये न थे। उनकी कानूनी-स्थिति थी जिस के अनुसार पहले किसी पर निश्चित 'आरोप' लगाना होता था, तब संघ उसका विचार करता था और तभी वह या तो दोष-मुक्त मान कर छोड़ दिया जाता था या दण्ड दिया जाता था।

२. बिना विधिवत् अदालती विचार के कभी किसी भिक्षु को दण्डित नहीं किया जा सकता था।

३. जिस जगह पर अपराध हुआ हो, उसी जगह के निवासी भिक्षुओं का ही न्यायालय होता था।

४. न्यायालय के लिये आवश्यक संख्या में भिक्षु उपस्थित न हों तो कोई मुकद्दमा नहीं चल सकता था ।

५. जब तक किसी पर कोई निश्चित 'आरोप' न लगाया जाय तब तक कोई मुकद्दमा कानूनी नहीं माना जाता था ।

६. कोई मुकद्दमा कानूनी नहीं माना जाता था जब तक उसकी सारी कार्रवाई उस व्यक्ति की उपस्थिति में न हो जिस पर 'आरोप' लगाया गया हो ।

७. कोई मुकद्दमा कानूनीं नहीं माना जाता था जब तक कि उस भिक्षु को जिस पर कोई 'आरोप' लगाया गया हो, अपनी सफाई देने का पूरा अवसर न मिला हो ।

८. एक अपराधी भिक्षु को निम्नलिखित दण्ड दिये जा सकते थे—

(१) तर्जनीय कर्म
(२) नियस्स कर्म
(३) प्रव्राजनीय -कर्म
(४) उत्क्षेपणीय-कर्म
(५) प्रतिसारणीय-कर्म

९. विहार से बाहर कर देने के कर्म (= परिवास-कर्म) के बाद अब्भान-कर्म (आवाहन-कर्म) हो सकता था । यह परिवास-कर्म के बाद संघ द्वारा क्षमा-दान दिये जाने पर हो सकता था ।

८. भिक्षु और अपराध-स्वीकृति

१. भिक्षुओं के संगठन को लेकर जो सर्वाधिक मौलिक और अनुपम संस्था या प्रथा भगवान् बुद्ध ने आरम्भ की, वह अपराध-स्वीकृति की संस्था थी । यह उपोसथ कहलाती थी ।

२. तथागत ने इस बात को समझ लिया था कि जिन बातों को उन्होंने 'अपराधों' की कोटि में रखा है उनका पालन कराया जा सकता है । लेकिन कुछ दूसरे प्रतिबन्ध भी थे जो अपराध नहीं थे । उनका कहना था कि चरित्र-निर्माण के लिये और चरित्र को सुदृढ़ बनाये रखने के लिये ऐसे प्रतिबन्धों का होना आवश्यक है और यह भी देखना आवश्यक है कि उनका पालन होता है या नहीं ?

३. लेकिन इन प्रतिबन्धों को पालन कराने का कोई प्रभावशाली ढंग खोज निकालना आसान न था । इसलिये उन्होंने खुली अपराध-स्वीकृति को भिक्षु के अन्तर्मन के संगठन करने और उसे गलत कदम उठाने से बचाये रखने का एक साधन बनाया ।

४. अपराध-स्वीकृति प्रतिबन्धों के न पालन करने को लेकर थी । भिक्षु नियमों का संग्रह 'प्रातिमोक्ष' कहलाता है ।

५. उपोसथ (= अपराध-स्वीकृति) के लिये एक 'सीमा' के भिक्षुओं का एक जगह इकट्ठा होना आवश्यक है। दोनों पक्षों की दो अष्टमियाँ, कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी और शुक्ल-पक्ष की पंचदशी--ये चार दिन उपोसथ माने जाते हैं। इनमें से चतुर्दशी और पंचदशी को 'प्रातिमोक्ष' का पाठ और उसके हिसाब से उपोसथ-कर्म हो सकता था।

६. उपोसथ होने पर भिक्षु एक एक करके प्रातिमोक्ष के नियमों का पाठ करता है और प्रत्येक नियम का पारायण कर चुकने पर कहता है, "क्योंकि आप सब लोग चुप हैं, इसलिये मैं समझता हूँ कि आप में से किसी ने भी इनमें से किसी नियम का उल्लंघन नहीं किया।" वह यह तीन बार कहता है। उसके बाद अगले प्रतिबंधन नियम को पढ़ता है।

७. भिक्षुणी-संघ को भी ऐसी ही उपोसथ बैठक करनी होती है।

८. अपराध-स्वीकृति पर 'आरोप' और मुकद्दमा चल सकता है।

९. यदि कोई अपराध स्वीकार न करे, तो कोई भी भिक्षु किसी के 'अपराध' की रिपोर्ट कर सकता है—यदि उसने उसे नियम का उल्लंघन करते देखा हो--और तब 'आरोप' और उसके बाद मुकद्दमा आरम्भ हो सकता है।

१. स्थविरवाद-परम्परा में उनकी संख्या तीस है—अनु०।

दूसरा भाग

भिक्षु—भगवान् बुद्ध की कल्पना

१. भगवान् बुद्ध की आदर्श भिक्षु की कल्पना

१. भगवान् बुद्ध ने स्वयं ही भिक्षुओं को कह दिया कि वे भिक्षुओं को किस रूप में देखना चाहते थे। उन्हों ने कहा था:—

२. बिना संयम और सत्य के, अपने आप को चित्त-मलों (काषायों) से परिशुद्ध किये बिना जो काषाय-वस्त्र को धारण करता है, वह काषाय-वस्त्र धारण करने के योग्य नहीं है।

३. किन्तु जो संयम और सत्य से युक्त होकर, अपने आप को चित्त-मलों (= काषायों) से परिशुद्ध करके काषाय वस्त्र को धारण करता है, वह काषाय-वस्त्र धारण करने के योग्य है।

४. एक आदमी केवल इसलिये 'भिक्षु' नहीं कहला सकता क्योंकि वह दूसरों से 'भिक्षा' मांग कर खाता है। जब वह 'धर्म' को सम्यक् प्रकार से ग्रहण करता है, तभी भिक्षु कहला सकता है।

५. "जो शीलवान् है, जो ब्रह्मचारी है, जो सावधानीपूर्वक संसार में विचरता है, वह निश्चय से 'भिक्षु' कहलाता है।

६. हे भिक्षु! न नियमों के पालन-मात्र से, न बहुत श्रुत (= अध्ययन) होने मात्र से, न ध्यान लाभ मात्र से और न एकान्त-वास मात्र से ही कोई उस विमुक्ति को प्राप्त कर सकता है, जिसका आनन्द पृथक-जन (अनार्य-जन) कभी उठा ही नहीं सकते। हे भिक्षु! जब तक त आस्रवों का क्षय न कर ले तब तक तू विश्वस्त होकर निश्चिन्त मत बैठ।

७. जो भिक्षु वाणी को संयत रखता है, जो बुद्धिमानीपूर्वक और शान्तिपूर्वक बोलता है, जो 'धर्म' का अर्थ समझता है, उसका बोलना 'मधुर' होता है।

८. जो 'धर्म' में निवास करता है, जो 'धर्म' में आनन्दित रहता है, जो 'धर्म' का विचार करता है, जो 'धर्म' का अनुस्मरण करता है—ऐसा भिक्षु कभी सद्धर्म से पतित नहीं होता।

९. जो कुछ भी भिक्षु को प्राप्त हो, उसे उसे 'बहुत' समझना चाहिये; उसे

किसी दूसरे की ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये। एक 'भिक्षु' जो दूसरे की ईर्षा करता है उसे कभी चित्त की शान्ति प्राप्त नहीं होती।

१०. जो भिक्षु थोड़ा मिलने पर भी उसे 'बहुत' समझता है और जिस भिक्षु का जीवन पवित्र तथा अप्रमाद रहित है, देवता भी उसकी प्रशंसा करते हैं।

११. जिस की नाम-रूप में तनिक आसक्ति नहीं है जो किसी वस्तु या व्यक्ति के न रहने पर तनिक सोच नहीं करता—वही यथार्थ भिक्षु है।

१२. जिस भिक्षु के हृदय में करुणा (मैत्री) है, जो बुद्ध के शासन में प्रसन्न है, वह निर्वाण को प्राप्त करेगा—आस्रव क्षय से प्राप्त होने वाले सुख को।

१३. हे भिक्षु! इस (जीवन-रूपी) नौका को हलका कर डाल। हलका कर देने से इसकी गति तेज हो जायगी। राग और द्वेष के बंधन को काट देने से तू निर्वाणाभिमुख हो जायगा।

१४. पांच (बंधनों) को काट दे, पांच को छोड़ दे, पांचों से ऊपर उठ जा। एक भिक्षु जिसने पाँचों बन्धनों से मुक्ति प्राप्त कर ली "ओघतीर्ण" कहलाता है, अर्थात् बाढ़ से बचा हुआ।

१५. भिक्षु! ध्यान लगा। प्रमाद मत कर। सावधान रह ताकि तेरा चित्त काम-सुखों में ही न घूमता रहे।

१६. जो प्रज्ञावान नहीं वह ध्यान नहीं लगा सकता, जो ध्यान नहीं लगाता वह प्रज्ञा नहीं प्राप्त कर सकता; जो प्रज्ञावान है और ध्यानी है वही निर्वाण के समीप है।

१७. भिक्षु जब अपने एकान्त-वास में प्रवेश करता है और जब उसका चित्त शान्त होता है और जब उसे सद्धर्म का साक्षात्कार होता है अतो उसे दिव्य सुखका अनुभव होता है।

१८. और एक बुद्धिमान भिक्षु के लिये यही प्रगति-क्रम श्रेष्ठ है—इन्द्रिय-संयम, संतोष, प्रातिमोक्ष के नियमों का पालन, पवित्र, अप्रमादी मित्रों की संगति।

१९. जो भिक्षु भिक्षाजीवी होगा, जो अपने कर्तव्य-पालन में प्रमाद नहीं करेगा, वह प्रीति-प्रमुदता की बहुलता में दुःख का अन्त कर सकेगा।

२०. हे भिक्षु! अपने से अपने को उत्साहित कर, अपने से अपनी परीक्षा कर। जब तू आत्म-रक्षित रहेगा और मेधावी होगा तो सुखी रहेगा।

२१. क्योंकि अपना-आप ही अपना स्वामी है, अपना आप ही अपनी गति है, इसलिये अपने-आप को उसी तरह काबू में रख जैसे व्यापारी अच्छे घोड़े को।

२२. जो भिक्षु-अप्रमाद में आनन्दित रहता है और प्रमाद से डरता है वह आग की तरह अपने छोटे बड़े बंधनों को जलाता हुआ विचरता है।

२३. जो भिक्षु अप्रमाद में आनन्दित रहता है और प्रमाद से डरता है, उस का पतन नहीं हो सकता, उसे निर्वाण के समीप ही जानो।

२४. गौतम (बुद्ध) के श्रावक सदैव जागरूक रहते हैं। उन्हें दिन-रात 'बुद्ध' का ध्यान रहता है।

२५. गौतम (बुद्ध) के श्रावक सदैव जागरूक रहते हैं। उन्हें दिन-रात 'संघ' का ध्यान रहता है।

२६. गौतम (बुद्ध) के श्रावक सदैव जागरूक रहते हैं। उन्हें दिन-रात 'धर्म' का ध्यान रहता है।

२७. गौतम (बुद्ध) के श्रावक सदैव जागरूक रहते हैं। उन्हें दिन-रात अपनी शरीर सम्बन्धी क्रियाओं का ध्यान रहता है।

२८. गौतम (बुद्ध) के श्रावक सदैव जागरूक रहते हैं। उन्हें दिन-रात 'करुणा' (अहिंसा) का ध्यान रहता है।

२९. गौतम (बुद्ध) के श्रावक सदैव जागरूक रहते हैं। उन्हें दिन-रात योगाभ्यास (भावना) का ध्यान रहता है।

३०. संसार छोड़ना भी कठिन है, संसार में रहना भी कठिन है। विहार भी दुष्कर है, घर भी दुष्कर है। अपने समान लोगों के साथ गृहस्थी भी आसान नहीं, प्रव्रजित का जीवन भी आसान नहीं है।

३१. जो आदमी श्रद्धायुक्त है, जो शीलवान् है, जो यशस्वी है तथा जो ऐश्वर्यवान है वह जहाँ जहाँ भी जाता है, हर जगह पूजित होता है।

२. भिक्षु और 'तपस्वी'

१. क्या भिक्षु 'तपस्वी' होता है? उत्तर "नहीं" ही है।

२. निग्रोध परिव्राजक से बातचीत करते हुए स्वयं तथागत ने नकारात्मक उत्तर दिया है।

३. एक बार भगवान् बुद्ध राजगृह में गृध्र-कूट पर्वत पर ठहरे हुए थे। उस समय उदुम्बरिक रानी के उद्यान में बहुत से परिव्राजकों के साथ निग्रोध परिव्राजक रहता था। यह उद्यान परिव्राजकों के लिये ही परित्यक्त था।

४. उस समय भगवान् बुद्ध गृध्रकूट से नीचे उतर कर जहां मोरों के चुगने की जगह थी, वहाँ आये और सुमगधा नदी के तट पर चहल-कदमी करने लग गये। तब निग्रोध ने तथागत को इस प्रकार खुले में चहल-कदमी करते देखा और उस ने अपने अनुयायियों को सावधान किया— "चुप करो, शान्ति रखो। श्रमण गौतम सुमगधा के तट पर चहल-कदमी कर रहे हैं।" उसके ऐसा कहने पर परिव्राजक चुप हो गये।

५. तब तथागत निग्रोध-परिव्राजक के पास पहुंचे। निग्रोध-परिव्राजक बोला— हे भगवान्! हे सुगत! आप पधारें! भगवान् का स्वागत है। तथागत का स्वागत

है। चिरकाल के बाद भगवान् ने इधर दर्शन देने की कृपा की है। आप कृपया आसन ग्रहण करें। आप के लिये आसन सुसज्जित है।"

६. तथागत ने सज्जित आसन ग्रहण किया। निग्रोध भी एक नीचा आसन लेकर समीप बैठ गया। वह बोला :—

७. "क्योंकि श्रमण गौतम हमारे यहाँ आये हैं, हम श्रमण गौतम से यह प्रश्न पूछना चाहते हैं कि क्या है यह तथागत का 'धर्म-विनय' जिससे तथागत अपने श्रावकों को विनीत करते हैं और जिस धर्म-विनय को सीख कर तथागत के श्रावक संतोष लाभ करते हैं, उसे अपना शरण-स्थान स्वीकार करते हैं और उसे लोकोत्तर धर्म मानते हैं ?"

८. "निग्रोध, दूसरी दृष्टि वाले के लिये, दूसरी प्रवृत्ति वाले के लिये तथा दूसरी मान्यता वाले के लिये बिना अभ्यास और बिना शिक्षण के यह कठिन है कि वह यह समझ सके कि क्या है यह तथागत का 'धर्म-विनय' जिससे तथागत अपने श्रावकों को विनीत करते हैं और जिस धर्म-विनय को सीखकर तथागत के श्रावक संतोष लाभ करते हैं, उसे अपना शरण-स्थान स्वीकार करते हैं और उसे लोकोत्तर धर्म मानते हैं।

९. "लेकिन हे निग्रोध ! तू मुझ से अपने ही सिद्धान्त के बारे में, इस कठोर तपस्या के ही बारे में पूछ कि इन तपस्याओं से किस बात की पूर्ति होती है और किस बात की पूर्ति नहीं होती ?"

१०. तब निग्रोध ने तथागत से कहा। "भगवान्, हम आत्म-क्लेष-दायक कठोर तपस्याओं के समर्थक हैं, हम उन्हें आवश्यक मानते हैं, हम उन से चिपटे हुए हैं। इनसे किस बात की पूर्ति होती है और इन से किस बात की पूर्ति नहीं होती ?"

११. "निग्रोध ! उदाहरण के लिये एक तपस्वी नग्न रहता है, कुछ भद्दी बातें करता है, अपने हाथ चाटता है; यदि कोई कहे कि 'भिक्षार्थ पधारिये' तो उसकी भी नहीं सुनता, यदि कोई कहे कि 'भिक्षार्थ रुकिये' तो उस की भी नहीं सुनता, जो कुछ उसके लिये खास तौर पर लाया गया हो, उसे स्वीकार नहीं करता" जो कुछ उसके लिये खास तौर पर तैयार किया गया है, उसे स्वीकार नहीं करता; कोई निमन्त्रण स्वीकार नहीं करता वह पकाने के बरतन में से दी हुई चीज स्वीकार नहीं करता, देहली के अन्दर रखी हुई कोई चीज स्वीकार नहीं करता, न ऊखल में रखी हुई, न लकड़ियों में रखी हुई, न चक्की में पीसी हुई; न उन दो जनों द्वारा दी गई कोई चीज स्वीकार करता है जो इकट्ठे बैठ कर खा रहे हों, न एक गर्भिणी से, न किसी दाई से, न उस स्त्री से जो किसी आदमी के साथ सहभोग कर रही हो; न उस समय इकट्ठी की हुई भोजन-सामग्री जब सूखा पड़ा हो; न उस स्थान से कोई चीज स्वीकार करता है, जहाँ कुत्ता हो, न जहां मक्खियां भिनभिना रही हों; न वह मांस-मछली ही स्वीकार करता है, न वह तेज नशीले पेय पदार्थ ही स्वीकार करता

है, न वह चावलका माण्ड ही स्वीकार करता है। वह या तो एक ही घर से भोजन ग्रहण करने वाला होता है, एक कौर खाने वाला; या दो घर से भोजन ग्रहण करने वाला होता है, दो कौर खाने वाला; या सात घर से भोजन ग्रहण करने वाला होता है, सात कौर खाने वाला। वह एक, दो या सात भिक्षाओं पर गुजारा करता है। वह या तो दिन में एक बार भोजन ग्रहण करता है, या दो दिन में एक बार और या सात दिन में एक बार। इस प्रकार वह नियमानुसार भोजन ग्रहण करता है, पन्द्रह दिन में एक बार तक वह या तो गमलों में उगाये हुए पौदों पर गुजारा करता है, या जंगली चावलों पर या नीवार-बीजों पर, या चमड़े पर या सेवाल पर, या चावल की भूसी के आटे पर, या कांजी पर, या आटे पर, या खली पर, या घासों पर, या गोबर पर, या जंगल के फल-फूल पर या उन पर जो स्वयं पेड़ से गिर पड़ें। वह मोटे सन का कपड़ा पहनता है, वह मोटा-झोटा मिला-जुला कपड़ा पहनता है, वह कफन का फेंका हुआ कपड़ा पहनता है, वह फेंके हुए चीथड़े पहनता है, वह वल्कल पहनता है, या वह मृग-छाल धारण करता है, या मृग-छाल की पट्टियों से ही बुनी जाली धारण करता है, या कुशा-तृण धारण करता है, या छाल-वस्त्र धारण करता है, या मिट्टी धारण करता है, या आदमी के बालों का बुना कम्बल धारण करता है, या घोड़े के बालों का बुना कम्बल धारण करता है अथवा उल्लू के परों का बना वस्त्र धारण करता है। वह अपनी डाढ़ी और बालों का लुञ्चन करने वाला होता है, वह दोनों का लुञ्चन करने वाला होता है, वह निरन्तर खड़ा ही रहने वाला होता है, वह एड़ियों के बल चलने वाला होता है, वह बैठकर आगे आगे सरकने वाला होता है, वह कांटों की शैय्या पर सोने वाला होता है, वह अपनी शैय्या पर कांटे या लोहे की मेखें गाड़ कर उन पर सोने वाला होता है, वह लकड़ी के तख्ते पर सोने वाला होता है, वह जमीन पर सोने वाला होता है, वह एक ही पार्श्व पर सोने वाला होता है, वह मिट्टी-धूल रमाने वाला होता है, वह खुली हवा में रहने वाला होता है; वह कहीं भी बैठ जाने वाला होता है, वह गन्दगी खाने का अभ्यासी होता है, वह पानी न पीने वाला होता है, वह (गर्म ही) पानी पीने वाला होता है और वह होता है, प्रातः, मध्याह्न और सन्ध्या को स्नान करने वाला।"

१२. इतना कर चुकने पर भगवान् बुद्ध ने पूछा, "हे निग्रोध! तुम क्या सोचते हो क्या आत्म-क्लेश-कारक कठोर तपस्या की पूर्ति हुई या नहीं?"

"भगवान्! सचमुच, यदि ऐसा हो तो आत्म-क्लेश-कारक कठोर-तपस्या की पूर्ति हो गई।"

१३. "हे निग्रोध! अब मैं कहता हूँ कि इस प्रकार की आत्म-क्लेश-परक कठोर तपस्या में नाना दोष हैं।"

१४. "भगवान्! आप इसमें क्या क्या दोष देखते हैं?"

१५. "हे निग्रोध ! जब एक तपस्वी तपस्या करता है तो उस से उसे झूठा संतोष हो जाता है कि उसका उद्देश्य पूरा हो गया है। हे निग्रोध ! यह उसका एक दोष हो जाता है।

१६. "हे निग्रोध ! जब एक तपस्वी तपस्या करता है तो उससे वह अपने को ऊँचा और दूसरों को नीचा समझने लगता है। हे निग्रोध ! यह भी उसका एक दोष हो जाता है।

१७. "हे निग्रोध ! जब एक तपस्वी तपस्या करता है तो उसे उसका नशा चढ़ जाता है और वह लापरवाह हो जाता है। हे निग्रोध ! यह भी उसका एक दोष हो जाता है।

१८. "हे निग्रोध ! जब एक तपस्वी तपस्या करता है तो उसे लाभ और यश की प्राप्ति होती है। उस से उसे झूठा संतोष प्राप्त हो जाता है। वह संतुष्ट रह जाता है। यह भी उसका एक दोष हो जाता है।

१९. "हे निग्रोध ! जब एक तपस्वी को लाभ और यश की प्राप्ति होती है, तो उस से वह अपने को ऊँचा और दूसरों को नीचा समझने लगता है। हे निग्रोध ! यह भी उसका एक दोष हो जाता है।

२०. "हे निग्रोध ! जब एक तपस्वी के लाभ और यश की प्राप्ति होती है तो उसे उसका नशा चढ़ जाता है और वह लापरवाह हो जाता है। हे निग्रोध !' यह भी उसका एक दोष हो जाता है।

२१. "हे निग्रोध ! जब एक तपस्वी तपस्या करने लगता है तो वह भिन्न-भिन्न प्रकार के भोजनों में भेद करने लगता है 'यह मेरे अनुकूल पड़ता है, यह मेरे प्रतिकूल पड़ता है। जिन भोजनों को वह समझता है कि उसके प्रतिकूल पड़ते हैं उन्हें वह जान-बूझकर त्यागता है। जिन्हें वह समझता है कि उसके अनुकूल पड़ते हैं, उनके प्रति वह लोभी और मस्त हो जाता है। उनमें उसकी आसक्ति बढ़ जाती है। उन में उसे कोई भय, कोई खतरा नहीं दिखाई देता। उन्हें वह रस ले लेकर खाता है। हे निग्रोध ! यह भी उसका एक दोष हो जाता है।

२२. "हे निग्रोध ! एक तपस्वी अपनी लाभ और यश की कामना के कारण यह सोचने लगता है मेरी ओर राजा-गण आकर्षित होंगे, उनके मन्त्री-गण आकर्षित होंगे, क्षत्रिय आकर्षित होंगे, ब्राह्मण आकर्षित होंगे, गृहपति आकर्षित होंगे तथा बड़े-बड़े आचार्यों आकर्षित होंगे। हे निग्रोध ! यह भी उसका एक दोष हो जाता है।

२३. "हे निग्रोध ! एक तपस्वी किसी दूसरे तपस्वी या ब्राह्मण को लेकर बड़-बड़ाने लगता है—अमुक आदमी दुनिया भर की चीजें खाता है, आलू की तरह के कन्द, शाखाओं पर लगने वाले फल, झाड़ियों में लगने वाले बेर आदि, जिमी कन्द और नाना तरह के बीज—इन सभी चीज़ों को जबड़ों के वज्र से पीस डालता है।

और तब भी लोग उसे धर्मात्मा कहते हैं। हे निग्रोध ! यह भी तपस्वी का एक दोष हो जाता है।

२४. "हे निग्रोध ! एक तपस्वी देखता है कि किसी दूसरे श्रमण या ब्राह्मण को बहुत लाभ-यश प्राप्त होता रहा है, बहुत सत्कार-सम्मान मिल रहा है। इसे देख-कर वह सोचता है—नागरिक, इस आदमी का जो इतने ऐशो-आराम के साथ रहता है, इतना आदर-सत्कार करते हैं, इसे नागरिकों से इतना लाभ और यश प्राप्त है, लेकिन मैं जो तपस्वी हूँ, मैं जो इतनी कठोर तपस्या करता हूँ, मेरी ओर कोई ध्यान नहीं देता, मेरा कोई आदर-सत्कार नहीं करता, मुझे लाभ और यश की प्राप्ति नहीं होती। इसलिये उसे उन नागरिकों से शिकायत हो जाती है। यह भी तपस्वी का एक दोष हो जाता है।

२५. "हे निग्रोध ! एक तपस्वी 'रहस्यमय' हो जाता है। उससे यदि पूछा जाय कि आप इस बात को स्वीकार करते हैं वा नहीं तो स्वीकार करते हुए वह कहेगा कि स्वीकार नहीं करता और अस्वीकार करते हुए कहेगा कि स्वीकार करता हूँ। इस प्रकार वह जान-बूझ कर झूठ बोलता है। यह भी तपस्वी का एक दोष हो जाता है।

२६. "हे निग्रोध ! एक तपस्वी गुस्से भी हो जा सकता है और उसके मन में द्वेष भी अपना घर बना सकता है। यह भी तपस्वी का एक दोष बन जाता है।

२७. "हे निग्रोध ! तपस्वी ढोंगी बन जा सकता है, वंचक बन जा सकता है, ईर्ष्यालु बन जा सकता है, बड़बड़ाने वाला बन जा सकता है, वह बड़ा चालाक बन जा सकता है, वह बड़ा कठोर-हृदय और अभिमानी बन जा सकता है, वह मन में बुरी बुरी इच्छायें रखता है और उनका गुलाम बन जाता है, वह मिथ्या धारणायें बना लेता है और परा-प्राकृतिक बातें करने लगता है, वह अपने अनुभवों की ग़लत व्याख्या करता है, वह लोभी होता है और वैराग्य से पराङ्ग-मुख होता है। यह भी तपस्वी का एक दोष हो जाता है।

२८. "निग्रोध ! तुम क्या सोचते हो ? आत्म-क्लेश-कर तपस्या में ये सब दोष हैं वा नहीं हैं ?"

२९. "भगवान् ! आत्म-क्लेश-कर तपस्या में ये सभी दोष निश्चय से हैं। भगवान् ! यह असम्भव नहीं कि कोई तपस्वी इन दोषों में से किसी से ही नहीं सभी से भी युक्त हों।"

३०. भिक्षुओं को इन दोषों से मुक्त रहना चाहिये।

३. भिक्षु तथा ब्राह्मण

१. क्या भिक्षु और ब्राह्मण में कोई अन्तर नहीं ? क्या दोनों एक ही हैं ? इस प्रश्न का भी उत्तर नकारात्मक ही है।

२. इस विषय की चर्चा किसी भी एक स्थल पर नहीं मिलेगी। बुद्ध-वचनों में यह जगह जगह बिखरी पड़ी है। लेकिन दोनों में जो अन्तर है, उसे आसानी से एक जगह एकत्र किया जा सकता है।

३. एक ब्राह्मण 'पुरोहित' होता है। उसका मुख्य कार्य किसी के जन्म, विवाह मरणादि के अवसर पर 'संस्कार' कराना है।

४. यह 'संस्कार' आवश्यक हो जाते हैं क्योंकि कहीं कहीं माना जाता है कि आत्मा मूलतः पाप में लिप्त है और उसे निर्मल कर निष्पाप बनाना है, और क्योंकि 'आत्मा' तथा 'परमात्मा' का अस्तित्व भी स्वीकार किया जाता है।

५. इन सब 'संस्कारों' के करने-कराने के लिये 'पुरोहित' होना ही चाहिये। एक भिक्षु न तो किसी 'मूल पाप' में विश्वास करता है और न 'आत्मा' या 'परमात्मा' में। इसलिये उसे कोई संस्कार करने कराने नहीं हैं। इसलिये एक भिक्षु 'पुरोहित' नहीं होता।

६. ब्राह्मण पैदा होता है। भिक्षु बनता है।

७. ब्राह्मण की 'जाति' होती है। भिक्षु की कोई 'जाति' नहीं होती।

८. एक बार 'ब्राह्मण' के घर पैदा हो गया, जन्म भर के लिये 'ब्राह्मण'। कोई 'पाप', कोई 'जुर्म' ऐसा नहीं जो एक 'ब्राह्मण' को 'अब्राह्मण बना सके।

९. लेकिन एक बार 'भिक्षु' बन जाने पर यह आवश्यक नहीं होता कि एक भिक्षु जन्म भर के लिये 'भिक्षु' ही बना रहे। एक 'भिक्षु' 'भिक्षु' बनता है किन्तु यदि वह कभी कोई ऐसी बात कर बैठे कि जो उसे 'भिक्षु' बने रहने देने के अयोग्य बना दे, तो वह 'भिक्षु' नहीं ही रह सकता।

१०. 'ब्राह्मण' बनने के लिये किसी भी प्रकार का मानसिक या नैतिक शिक्षण अनिवार्य नहीं। ब्राह्मण से जिस बात की आशा (केवल आशा) की जाती है वह है उसके अपने धार्मिक शास्त्र-ज्ञान की।

११. भिक्षु की बात इसके सर्वथा प्रतिकूल है। मानसिक तथा नैतिक शिक्षण उसका जीवन-प्राण है।

१२. एक ब्राह्मण जितनी चाहे उतनी सम्पत्ति प्राप्त कर सकता है। एक भिक्षु नहीं कर सकता।

१३. यह कोई छोटा फर्क नहीं है। आदमी की मानसिक और नैतिक स्वतन्त्रता पर—विचार के क्षेत्र में भी और कार्य के क्षेत्र में भी—सम्पत्ति कड़े से कड़े प्रतिबन्ध का काम करती है। इससे दो प्रवृत्तियों में संघर्ष पैदा होता है। इसीलिये ब्राह्मण हमेशा परिवर्तन का विरोधी रहा है, क्योंकि उसके लिये परिवर्तन का मतलब है शक्ति की हानि, धन की हानि।

१४. सम्पत्ति-विहीन भिक्षु मानसिक और नैतिक तौर पर स्वतन्त्र होता है।

कोई ऐसा व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं होता, जो उसकी ईमानदारी और सच्चाई में बाधक बन सके।

१५. ब्राह्मण होते हैं। लेकिन हर ब्राह्मण अपने में एक अकेला व्यक्ति होता है। कोई ऐसा धार्मिक संगठन नहीं, जिस के वह अधीन हो। हर ब्राह्मण अपना कानून आप है। हां, ब्राह्मण आपस में भौतिक स्वार्थों से अवश्य बन्धे हुए हैं।

१६. दूसरी ओर एक भिक्षु हमेशा संघ का सदस्य होता है। यह कल्पना से परे की बात है कि कोई भिक्षु हो और संघ का सदस्य न हो। भिक्षु आप अपना कानून नहीं होता। वह 'संघ' के अधीन होता है। 'संघ' एक आध्यात्मिक संगठन है।

४. भिक्षु और उपासक

१. सद्धर्म ने भिक्षु के 'धर्म' और उपासक के 'धर्म' में स्पष्ट रूप से विभाजक रेखा खींची है।

२. भिक्षु को पत्नी-विहीन रहना ही होगा। उपासक को नहीं। वह शादी कर सकता है।

३. भिक्षु का कोई घर नहीं हो सकता। भिक्षु का कोई परिवार नहीं हो सकता। उपासक के लिये यह आवश्यक नहीं है। उपासक का घर हो सकता है, उपासक का परिवार हो सकता है।

४. भिक्षु की कोई सम्पत्ति नहीं हो सकती। लेकिन गृहस्थ की सम्पत्ति हो सकती है—वह सम्पत्ति रख सकता है।

५. भिक्षु के लिये प्राणि-हत्या अनिवार्य तौर पर वर्जित है। गृहस्थ के लिये नहीं। वह (अवस्था-विशेष में) जीव-हत्या कर भी सकता है।

६. यूं पंचशील के नियम दोनों के लिये समान हैं। लेकिन भिक्षु के लिये वे व्रत रूप हैं। वह उन्हें तोड़ेगा तो दण्ड का भागी होगा ही। उपासक (गृहस्थ) के लिये वे अनुकरणीयशील-मात्र हैं।

७. भिक्षु के लिये पंचशील का पालन अनिवार्य विषय है। गृहस्थ के लिये उसके अपने विवेक पर निर्भर करता है।

८. तथागत ने दोनों के 'धर्म' में ऐसा भेद क्यों रखा? इस के पीछे कोई न कोई खास कारण होना चाहिए। क्योंकि बिना विशेष कारण के तथागत कभी भी कुछ करने वाले नहीं थे।

९. कहीं भी इसका कारण तथागत ने स्पष्ट रूप से नहीं कहा है। यह हमारे अनुमान का विषय है। तो भी यह आवश्यक है कि इस विभाजक-रेखा का कारण स्पष्ट समझ में आ जाय।

१०. इस में कोई सन्देह नहीं कि तथागत अपने धर्म द्वारा इस पृथ्वी पर धर्म-राज्य स्थापित करना चाहते थे। इसलिये उन्होंने सभी को अपने धर्म का उपदेश

दिया—भिक्षुओं को भी, गृहस्थों को भी।

११. लेकिन तथागत यह भी जानते थे कि सर्व-सामान्य आदमियों को धर्म का उपदेश देने मात्र से वे उस आदर्श-समाज की स्थापना न कर सकेंगे जिसका आधार एकमात्र 'धर्म' होगा।

१२. आदर्श के लिये 'व्यावहारिक' होना आवश्यक है। इतना ही नहीं लोगोंको वह 'व्यावहारिक' लगना भी चाहिये। तभी लोग उस तक पहुंचने का प्रयास कर सकते हैं।

१३. इस तरह का प्रयत्न भी तभी आरम्भ हो सकता है जब लोगों के दिमाग के सामने उस आदर्श पर आश्रित एक समाज का यथार्थ स्वरूप हो, जिस से सर्व-सामान्य जनता भी यह समझ सके कि 'आदर्श' कोई 'अव्यावहारिक' नही था, बल्कि ऐसा था कि जो साकार हो सके।

१४. तथागत ने जिस 'धर्म' का उपदेश दिया, संघ उसी का एक साकार सामाजिक नमूना है।

१५. यही कारण है कि भगवान् बुद्ध ने एक भिक्षु के 'धर्म' और एक उपासक (गृहस्थ) के धर्म में यह विभाजक-रेखा खींची। भिक्षु तथागत के आदर्श-समाज की मिसाल भी था और उपासक को यथा सामर्थ्य उसका अनुकरण करना था।

१६. एक प्रश्न और भी है और वह यह कि भिक्षु का जीवन-कार्य क्या है?

१७. क्या भिक्षु-जीवन व्यक्तिगत-साधना के लिये ही है अथवा उसे लोगों की सेवा तथा उनका मार्ग-दर्शन भी करना ही है?

१८. ये दोनों ही उसके जीवन-कार्य हैं।

१९. बिना व्यक्तिगत-साधना के वह नेतृत्व कर नहीं सकता। इसलिये उसे अपने में एक सम्पूर्ण, सर्वश्रेष्ठ, धार्मिक और ज्ञान-सम्पन्न व्यक्ति बनना ही होगा। इसके लिये उसे व्यक्तिगत-साधना करनी ही होगी।

२०. एक भिक्षु गृह-त्याग करता है। वह संसार-त्याग नहीं करता। वह अपने घर को इसलिये छोड़ता है ताकि उसे उन लोगों की सेवा करने का अवसर और मौका मिल सके जो अपने अपने घर में बुरी तरह आसक्त हैं, और जो दुःख में पड़े हैं, जो चिन्ता में पड़े हैं, जिन्हें चैन नहीं है और जिन्हें सहायता की अपेक्षा है।

२१. करुणा—जो कि धर्म का सार है—का तकाजा है कि हर आदमी दूसरों से प्रेम करे और दूसरों की सेवा करे। भिक्षु भी इस का अपवाद नहीं।

२२. व्यक्तिगत-साधना में चाहे कोई कितना ही ऊंचा क्यों न हो यदि कोई भिक्षु, पीड़ित मानवता की ओर से उदासीन है, तो वह भिक्षु नहीं है। वह दूसरा और कुछ भी हो सकता है; किन्तु वह भिक्षु नहीं ही है।

१. उदुम्बरिक सीहनाद सुतन्त (दीर्घ निकाय—२५)।

तीसरा भाग

भिक्षु के कर्तव्य

१. दूसरों को धर्म-दीक्षा देना भिक्षु का कर्तव्य है

१. यश कुल-पुत्र और उसके मित्रों के धर्म में दीक्षित हो जाने का समाचार दूर दूर तक फैल गया। परिणाम यह हुआ कि ऊंचे ऊंचे कुलों के कुल-पुत्र और उनके निचले दर्जों के कुलों के भी कुल-पुत्र तथागत के पास शिक्षा ग्रहण करने और 'बुद्ध तथा धर्म' की शरण ग्रहण करने के लिये आने लगे।

२. 'धर्म' की शिक्षा ग्रहण करने के लिये तथागत के पास बहुत लोग आने लगे। भगवान् बुद्ध जानते थे कि हर किसी को व्यक्तिशः शिक्षा देना उनके लिये भी आसान नहीं। उन्हें इसकी भी आवश्यकता अनुभव हुई कि रोज रोज बढ़ती हुई प्रव्रजितों की 'जमात' को एक संघ में संगठित कर दें।

३. इसलिये उन्होंने प्रव्रजितों को 'संघ' का सदस्य बना दिया और अनुशासन-क्रम या सिस्त के अपेक्षित नियम भी बना दिये, जो 'विनय' कहलाये। 'संघ' के सदस्यों के लिये 'विनय' के नियमों का पालन अनिवार्य था।

४. तथागत ने आगे चलकर 'भिक्षु' बनने के इच्छुक किसी भी श्रावक के लिये दो सिढ़ियां आवश्यक ठहरा दीं। पहली अवस्था में उसे 'प्रव्रजित' होना होता था और एक 'प्रव्रजित' की ही हैसियत से उसे कई वर्षों तक किसी भिक्षु की देख-रेख में रहना होता था। जब उसका 'शिक्षण' समाप्त हो जाता तो उसे 'उपसम्पन्न' होने की अनुमति मिलती थी, लेकिन यह तभी कि जब उसके 'परीक्षक' इस विषय में अपना संतोष कर लेते थे कि वह 'संघ' का सदस्य बनने के योग्य है।

५. धर्म-प्रचार की आरम्भिक अवस्था में इस तरह की व्यवस्था करने की गुंजाइश न थी। उस समय तथागत ने उन्हें 'भिक्षु' बनाया और चारों दिशाओं में "धर्म-दूत" की हैसियत से धर्म-प्रचार करने के लिये भेजा।

६. उन्हें धर्म-प्रचारार्थ विदा करने से पूर्व तथागत ने कहा—"भिक्षुओं! मैं जितने भी दिव्य तथा मानुष बन्धन हैं, उन सभी से मुक्त हूं। तुम भी भिक्षुओं! जितने भी दिव्य तथा मानुष-बन्धन हैं, उन सभी से मुक्त हो। भिक्षुओ, अब जाओ, बहुत जनों के हित के लिये, बहुत जनों के सुख के लिये, संसार पर अनुकम्पा करने

के लिये, और देवताओं तथा मनुष्यों के हित, सुख और कल्याण के लिये विचरण करो।

७. "तुम में से कोई दो एक दिशा में मत जाओ! भिक्षुओ, उस धर्म की देशना करो, जो आदि में कल्याणकारक है, जो मध्य में कल्याणकारक है, जो अन्त में कल्याणकारक है। भिक्षुओ अर्थ और व्यञ्जन (=शब्दों) से युक्त ऐसे धर्म की देशना करो जो परिशुद्ध और श्रेष्ठ जीवन है।[1]

८. "इसलिये प्रत्येक जनपद में विचरो, जो अभी धर्म में अदीक्षित हैं, उन्हें दीक्षित करो, दुःख से दग्ध इस समस्त संसार में विचरो, हर जगह शिक्षा दो। सभी अज्ञानियों को ज्ञान का दान दो।

९. "जाओ, जहां कहीं महर्षि रहते हों, राजर्षि रहते हों, ब्रह्मर्षि रहते हों, वहां रहो और उनके अपने अपने मत के अनुसार उन्हें प्रभावित करो।

१०. "इसलिये जाओ, अकेले अकेले जाओ। अनुकम्पा से प्रेरित होकर जाओ। लोगों को (बन्धन-) मुक्त करो और उनको दीक्षित करो।"

११. तथागत ने उन भिक्षुओं को यह भी कहा—

१२. "धर्म-दान सब दानों से बढ़कर है, धर्म का माधुर्य सब माधुर्यों से बढ़कर है, धर्म का आनन्द सब आनन्दों से बढ़कर है।[2]

१३. "खेत (व्यर्थ की) घास से नष्ट हो जाते हैं। प्रजा राग के होने से नष्ट हो जाती है। इसलिये धर्म-दान का महान् फल है।[3]

१४. खेत (व्यर्थ की) घास से नष्ट हो जाते हैं। प्रजा द्वेष के होने से नष्ट हो जाती है। इसलिये धर्म-दान का दान महान् फल है।[3]

१५. "खेत (=व्यर्थ की) घास से नष्ट हो जाते हैं। प्रजा मान के होने से नष्ट हो जाती है। इसलिये धर्म-दान का महान् फल है।[3]

१६. "खेत (=व्यर्थ की) घास से नष्ट हो जाते हैं। प्रजा तृष्णा के होने से नष्ट हो जाती है। इसलिये धर्म-दान का महान् फल है।[3]

१७. तब वे साठ भिक्षु धर्म-प्रचारार्थ चारों दिशाओं में फैल गये।

१८. तथागत ने उन्हें 'धर्म-दीक्षा' के विषय में और भी हिदायतें दीं।

२. चमत्कारों (=प्राति-हार्यो) द्वारा धर्म-दीक्षा नहीं

१. तथागत एक बार मल्लों के नगर अनुपिय में विहार कर रहे थे।"[4]

२. उस समय पूर्वाह्न में तथागत ने चीवर पहना तथा पात्र और चीवर ग्रहण किया और अनुपिय नगर में भिक्षा के लिये निकले।

३. रास्ते में उन्हें लगा कि कदाचित्, भिक्षाटन के लिये अभी थोड़ी देर रुकना चाहिये। तब तक जहां भग्गव परिव्राजक रहता है, मैं वहां ही क्यों न चला चलूं और उससे भेंट करूं?

४. इसलिये तथागत भग्गव परिव्राजक के आश्रम पर चले गये ।

५. तब भग्गव ने तथागत को कहा—"भगवान् ! आप पधारें ! भगवान् ! आपका स्वागत है । आपने चिरकाल के बाद इधर आने की अनुकम्पा की है । आप कृपया आसन-ग्रहण करें । आपके लिये आसन सज्जित है ।"

६. तब तथागत वहाँ विराजमान हुए । भग्गव परिव्राजक भी एक नीचा आसन लेकर पास ही बैठ गया । इस प्रकार बैठकर भग्गव परिव्राजक ने भगवान् बुद्ध को कहा—

७. "कुछ दिन हुए, काफी दिन हुए, हे श्रमण गौतम् ! सुनक्खत्त लिच्छवी मेरे पास आया था । कहता था कि अब मैंने श्रमण गौतम का शिष्यत्व त्याग दिया है । क्या जैसा उसने कहा, वैसा ठीक है ?"

८. "भग्गव ! यह ऐसा ही है जैसा सुनक्खत्त लिच्छवी ने कहा है ।"

९. "कुछ दिन हुए, काफी दिन हुए सुनक्खत लिच्छवी मेरे पास आया था और कहने लगा—अब मैं तथागत के 'शिष्यत्व' का त्याग करता हूँ । अब मैं तथागत का शिष्य नहीं रहूँगा ।' जब उसने मुझे यह कहा, तब मैंने उससे पूछा—'सुनक्खत्त ! क्या मैंने तुझे कभी कहा था कि सुनक्खत ! तू आ और मेरा शिष्य बनकर मेरे पास रह ?"

१०. "भगवान् ! नहीं । ऐसा आपने नही कहा था ।"

११. "अथवा तूने ही मुझे कभी कहा था कि मैं तथागत को अपना 'गुरु' स्वीकार करता हूँ !"

१२. "भगवान् ! नहीं ऐसा मैंने कभी नहीं कहा ।"

१३. "तब मैंने उसे पूछा—'जब न मैंने ही तुझे कहा और न तूने ही मुझे कहा तो क्या तो मैं हूँ और क्या तू है, जो तू त्यागने की बात कर रहा है ! मूर्ख कहीं के, क्या इसमें तेरा अपना ही दोष नहीं है ?"

१४. सुनक्खत्त बोला—"लेकिन भगवान् ! आप मुझे सामान्य मनुष्यों की शक्ति से परे कोई चमत्कार प्रातिहार्य नहीं दिखाते ?"

१५. "सुनसक्खत्त ! क्या मैंने कभी तुझे कहा था कि सुनक्खत्त तू आकर मेरा शिष्य बन जा, मैं तुझे सामान्य मनुष्यों की शक्ति से परे कोई प्रातिहार्य दिखाऊंगा ?"

१६. "भगवान् ! ऐसा आपने कभी नहीं कहा ।"

१७. "अथवा सुनक्खत्त ! तूने ही मुझे कभी कहा था कि मैं भगवान् का 'शिष्यत्व' स्वीकार करता हूँ क्योंकि भगवान् मुझे सामान्य आदमियों की शक्ति से परे कोई प्रातिहार्य दिखायेंगे ।"

१८. "भगवान् ! नहीं । मैंने ऐसा नहीं कहा था ।"

१९. "जब न मैंने ही तुझे कहा और न तूने ही मुझे कहा तो क्या तो मैं हूँ और क्या तू है, जो तू त्यागने की बात कर रहा है ?

२०. "सुनक्खत्त ! तू क्या सोचता है, चाहे सामान्य मनुष्यों की शक्ति से

परे प्रातिहार्य दिखाये जायें और चाहे न दिखाये जायें, क्या मेरे धर्म का यही उद्देश्य नहीं है कि जो मेरे धर्म के अनुसार आचरण करेगा, वह अपने दुःख का नाश कर सकेगा ?"

२१. "भगवान् ! चाहे प्रातिहार्य दिखाये जायें और चाहे न दिखाये जायें, निश्चय से तथागत की धर्म-देशना का यही उद्देश्य है कि जो कोई भी तथागत के धर्म के अनुसार आचरण करेगा, वह अपने दुःख का नाश कर सकेगा ।"

२२. "लेकिन भग्गव ! सुनक्खत्त मुझे कहता रहा, 'भगवान ! मुझे सृष्टि के आरम्भ का पता नहीं देते ।'

२३. "अच्छा तो सुनक्खत्त ! मैं ने तुझे कब कहा था कि आ सुनक्खत्त ! तू मेरा शिष्य बन जा, मैं तुझे सृष्टि के आरम्भ का पता बताऊंगा ?"

२४. "भगवान् ! आपने नहीं कहा था ।"

२५. "अथवा तूने ही मुझे कभी कहा था कि मैं आपका शिष्य बनूंगा क्योंकि आप मुझे सृष्टि के आरम्भ का पता देंगे ?"

२६. "भगवान् ! मैंने नहीं कहा था ।"

२७. "जब न मैंने ही तुझे कहा और न तूने ही मुझे कहा तो क्या तो मैं हूँ और क्या तू है, जो तू त्यागने की बात कर रहा है ! सुनक्खत्त ! तू क्या सोचता है, चाहे मैं सृष्टि के आरम्भ का पता बताऊं और चाहे न बताऊं, क्या मेरे धर्म का यही उद्देश्य नहीं है कि जो मेरे धर्म के अनुसार आचरण करेगा, वह अपने दुःख का नाश कर सकेगा ?"

२८. "भगवान् ! चाहे आप सृष्टि के आरम्भ का पता बतायें और चाहे न बतायें, निश्चय से तथागत की धर्म-देशना का यही उद्देश्य है कि जो कोई भी तथागत के धर्म के अनुसार आचरण करेगा, वह अपने दुःख का नाश कर सकेगा ।"

२९. "सुनक्खत्त ! जब धर्म के उद्देश्य की सृष्टि से इसका कोई महत्व ही नहीं कि चाहे सृष्टि के आरम्भ का पता बताया जाय और चाहे न बताया जाय, तो तेरे लिये ही इसका क्या मूल्य है कि सृष्टि के आरम्भ का पता बताया जाय ?"

३०. "सुनक्खत्त ! तूने नाना प्रकार से वज्जियों में मेरी प्रशंसा की है ।

३१. "सुनक्खत्त ! तूने नाना प्रकार से वज्जियों में 'धर्म' की प्रशंसा की है ।

३२. "सुनक्खत्त ! तूने नाना प्रकार से वज्जियों में संघ की प्रशंसा की है ।

३३. "सुनक्खत्त ! मैं तुझे बताता हूँ । सुनक्खत्त ! मैं तुझे जताता हूँ । बहुत से लोग ऐसे होंगे जो तुम्हारे बारे में कहेंगे कि सुनक्खत्त लिच्छवी तथागत की अधीनता में पवित्र जीवन व्यतीत करने में असमर्थ रहा । और असमर्थ होने के ही कारण उसने श्रेष्ठ-जीवन त्याग दिया और हीन-जीवन अपना लिया ।"

३४. "हे भग्गव ! इस प्रकार मेरे कहे जाने पर, सुनक्खत्त लिच्छवी इस धर्म-विनय को छोड़कर चला गया, जैसे उसका अकल्याण सुनिश्चित हो।"

३५. तथागत के धर्म-विनय को छोड़ कर चले जाने के कुछ ही समय बाद सुनक्खत्त लोगों को यह बताता फिरता था कि तथागत के धर्म-विनय में कुछ भी परा-प्राकृतिक नहीं है, तथागत का धर्म उनकी अपनी 'बोधि' का ही फल है, और जो कोई इस धर्म को श्रवण करता है उसे दुःख का अन्त करने के लिये केवल इस धर्म के अनुसार चलना पड़ता है।

३६. यद्यपि सुनक्खत्त अपनी समझ में बुद्ध की निन्दा कर रहा था, लेकिन वह जो कुछ लोगों को कह रहा था, वह सच ही था। क्योंकि भगवान् ने अपने धर्म-प्रचार में किसी परा-मानुषिक बात वा किसी चमत्कार आदि का कभी सहारा नहीं लिया।

३. जोर-जबर्दस्ती से धर्म-परिवर्तन नहीं

१. एक बार पाँच सौ भिक्षुओं के महान् भिक्षुसंघ के साथ भगवान् बुद्ध राजगृह और नालन्दा के बीच की सड़क पर जा रहे थे। और उसी समय अपने शिष्य ब्रह्मदत्त के साथ सुप्पिय परिव्राजक भी राजगृह और नालन्दा के बीच के महापथ पर चला जा रहा था।*

२. उस समय सुप्पिय परिव्राजक नाना प्रकार से बुद्ध की निन्दा कर रहा था, धर्म की निन्दा कर रहा था, संघ की निन्दा कर रहा था। लेकिन उसका शिष्य तरुण ब्रह्मदत्त नाना प्रकार से बुद्ध की प्रशंसा कर रहा था, धर्म की प्रशंसा कर रहा था, तथा संघ की प्रशंसा कर रहा था।

३. इस प्रकार वे दोनों गुरु-शिष्य परस्पर विरोधी मत प्रकाशित करते हुए भिक्षुसंघ और तथागत के पीछे-पीछे चले जा रहे थे।

४. अब भिक्षुसंघ सहित तथागत रात्रि-विश्राम के निमित्त अम्बलट्ठिका वन के राज्योद्यान में ठहरे। इसी प्रकार तरुण शिष्य ब्रह्मदत्त और उसके गुरु सुप्पिय परिव्राजक ने भी वहीं निवास किया। और वहाँ उस विश्राम-स्थल पर भी गुरु-शिष्य का वह विवाद जारी ही रहा।

५. प्रातःकाल होने पर जब भिक्षु उठे तो उनकी बातचीत का विषय सुप्पिय और ब्रह्मदत्त का परस्पर का विवाद ही था।

६. भगवान् बुद्ध ने चर्चा के विषय का अनुमान किया और वे भी वहाँ पहुंचे तथा बिछे आसन पर बैठे। वहाँ बैठने पर उन्होंने पूछा :—"बातचीत का विषय क्या है ? चर्चा किस विषय की हो रही है ?" उन्होंने तथागत को सारी बात बता दी। तब तथागत ने कहा :

७. "भिक्षुओं, यदि कोई मेरी निन्दा करे, धर्म की निन्दा करे अथवा संघ की

निन्दा करे तो इसका तुम्हें बुरा नहीं मानना चाहिये, इससे तुम्हारे हृदय में जलन नहीं होनी चाहिये, इससे तुम्हें क्रोध नहीं आना चाहिये ।

८. "यदि तुम इस कारण क्रोध या द्वेष को अपने मन में स्थान दोगे, तो इससे तुम्हारी ही हानि है । यदि जब कोई बुद्ध, धर्म या संघ की निन्दा करे और तुम उससे क्रोधित तथा उद्विग्न हो जाओ, तो क्या तुम इसका विचार कर सकोगे कि उसने जो कुछ कहा है वह ठीक कहा है या नहीं ?"

९. "भगवान् ! हम विचार नहीं कर सकेंगे ।"

१०. "लेकिन जब दूसरे लोग मेरी निन्दा करें, धर्म की निन्दा करें, संघ की निन्दा करें तो जो बात अयथार्थ हो, उसे तुम्हें अयथार्थ कहना चाहिये । तुम्हें बता देना चाहिये कि अमुक कारण से, यह बात ऐसी नहीं है, यह बात हममें नहीं पाई जाती, यह बात हममें नहीं होती ।

११. "लेकिन दूसरे लोग मेरी प्रशंसा भी कर सकते हैं, धर्म की प्रशंसा भी कर सकते हैं, संघ की प्रशंसा भी कर सकते हैं । तुम पूछोगे कि वे क्या कहकर मेरी प्रशंसा कर सकते हैं ?

१२. "कोई कह सकता है कि श्रमण-गौतम प्राणी-हिंसा का त्याग कर जीव-हिंसा से विरत रहते हैं । उन्होंने दण्ड और तलवार का सर्वथा त्याग कर दिया है । वह कठोर व्यवहार से विरत है । वह करुणा की मूर्ति है । उसमें सभी प्राणियों के प्रति दया है । कोई भी सामान्य आदमी तथागत की चर्चा करते हुए इस प्रकार प्रशंसा कर सकता है ।

१३. "अथवा वह कह सकता है कि श्रमण-गौतम अदिन्नादान (=चोरी) से विरत हो, जो उसका नहीं है उसे लेने की इच्छा से रहित हो विहार करता है । जो दिया जाता है, उसे ही वह ग्रहण करता है । उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति का विश्वास है । वह अपना जीवन हृदय की स्वच्छता और पवित्रता से व्यतीत करता है ।

१४. "अथवा वह कह सकता है कि श्रमण-गौतम अब्रह्मचर्य से विरत हो, ब्रह्मचर्य-युक्त हो विहार करता है । वह अपने आप को मैथुन-धर्म से, हीन-धर्म से बहुत दूर दूर रखता है ।

१५. "अथवा वह कह सकता है कि श्रमण-गौतम मिथ्या-भाषण का त्याग कर मृषावाद से दूर दूर रहता है । वह सत्य ही बोलता है । वह सत्य से नहीं हटता है । वह विश्वसनीय है । वह कभी अपने वचन को भंग नहीं करता ।

१६. "अथवा वह कह सकता है कि श्रमण-गौतम अपने आप को किसी की झूठी निन्दा से दूर दूर रखता है । वह यहाँ सुनकर, यहाँ के लोगों से झगड़ा लगाने के लिये, उस बात को वहाँ नहीं कहता, और वहाँ सुनकर, वहाँ के लोगों से झगड़ा लगाने के लिये, उस बात को यहाँ नहीं कहता । इस प्रकार वह झगड़ने वालों का मेल

कराने वाला है, मित्रों की मैत्री बढ़ाने वाला है, शान्ति का प्रशंसक है, शान्ति के लिये प्रयत्नशील रहता है तथा ऐसे ही शब्दों का व्यवहार करता है, जिससे शान्ति की स्थापना हो।

१७. "अथवा वह कह सकता है कि श्रमण-गौतम कटु शब्दों का त्याग कर कठोर वाणी से दूर दूर रहता है। जो वाणी निर्दोष होती है, जो वाणी कर्ण-प्रिय होती है, जो वाणी अच्छी लगने वाली होती है, जो वाणी हृदय को आकर्षित करने वाली होती है, शिष्ट होती है, लोगों को खुश करती है, लोगों का मन हर लेती है—ऐसी ही वाणी वह बोलता है।

१८. "अथवा वह कह सकता है कि श्रमण-गौतम व्यर्थ बातचीत का त्याग कर बेकार बातचीत से दूर दूर रहता है। वह समयानुसार बोलता है, वह यथार्थ बात बोलता है, उसकी वाणी अर्थ-भरी होती है, धार्मिक होती है, विनयानुकूल होती है। वह समय पर बोलता है, ऐसी वाणी बोलता है जो दिल में घर बना लेती है, उदाहरण-सहित बोलता है, जितना बोलना आवश्यक हो, उतना ही बोलता है।

१९. "अथवा वह कह सकता है कि श्रमण-गौतम बीजों या पौधों की हानि करने से अपने को दूर दूर रखता है। वह केवल एक बार ही भोजन ग्रहण करता है, वह रात को भोजन ग्रहण नहीं करता, वह अपराह्न में भोजन ग्रहण करने से विरत रहता है।

'वह नृत्य-गीत और वादित युक्त खेल-तमाशों को देखने से विरत रहता है।

'वह माला, सुगन्धियों तथा लेपों से अपने आप को अलंकृत करने तथा सजाने से विरत रहता है।

'वह ऊंची-ऊंची महान् शय्याओं का उपयोग नहीं करता।

'वह चाँदी-सोना स्वीकार नहीं करता।

'वह कच्चा अन्न स्वीकार नहीं करता।

'वह स्त्रियों या लड़कियों को स्वीकार नहीं करता।

'वह दास-दासियों को स्वीकार नहीं करता।

'वह भेड़-बकरियों को स्वीकार नहीं करता।

'वह मुर्गे-मुर्गियों तथा सुअरों को स्वीकार नहीं करता।

'वह हाथियों, गाय-बैलों, घोडों तथा घोड़ियों को स्वीकार नहीं करता।

'वह ऊसर या बोई हुई जमीन को स्वीकार नहीं करता।

'वह (शादी कराने आदि में) मध्यस्थ बनना स्वीकार नहीं करता।

'वह खरीदना-बेचना स्वीकार नहीं करता।

'वह तराजू या नटखरों से किसी को ठगना स्वीकार नहीं करता।

'वह रिश्वत, वंचना और ठगी के टेढ़े-मेढ़े रास्तों से बचता है।

'वह किसी का अंग-भंग करने, किसी को मार डालने, किसी को बांध डालने, किसी को लूट लेने तथा किसी की हिंसा करने से विरत रहता है।

२०. "भिक्षुओ ! ऐसी कुछ बातें हैं जो एक सामान्य आदमी तथागत की प्रशंसा करते हुए कह सकता है। लेकिन ऐसा होने पर भी न तुम्हें विशेष हर्ष होना चाहिये, न तुम्हारा हृदय खुशी से फूल जाना चाहिये। यदि तुम ऐसे होगे तो इससे भी तुम्हारी साधना में बाधा पड़ेगी। जब दूसरे लोग मेरी, वा धर्म की वा संघ की प्रशंसा करें, तो तुम्हें जो बात यथार्थ हो उसे स्वीकार करना चाहिये। तुम्हें कहना चाहिये: 'इस इस कारण से यह ऐसा ही है। यह बात हमारे बीच है। यह गुण हममें हैं।"

४. भिक्षु को धर्म-प्रचार के लिये संघर्ष करना चाहिये

१. भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए एक बार भगवान् बुद्ध ने कहा :—

२. "भिक्षुओ ! मैं संसार से नहीं झगड़ता हूँ। बल्कि संसार ही मुझसे झगड़ता है। सत्य का उपदेशक संसार में कभी किसी से नहीं झगड़ता।"

३. "योधा, योधा, हम अपने आपको कहते हैं। भगवान् ! हम योधा किस प्रकार हैं ?"

४. "भिक्षुओं, हम युद्ध करते हैं, इसलिये योधा कहलाते हैं।"

५. "भगवान् ! हम किस बात के लिये युद्ध करते हैं ?"

६. "भिक्षुओ ! हम श्रेष्ठशील के लिये युद्ध करते हैं, श्रेष्ठ अप्रमाद के लिये युद्ध करते हैं, श्रेष्ठ प्रज्ञा के लिये युद्ध करते हैं।"

७. जहां शील को खतरा हो, संघर्ष से मत घबराओ। ऐसे समय भीगी बिल्ली बने मत बैठे रहो।

१. संयुत्त-न० ४, १४; महावग्ग १।
२. तण्हावग्गो (धम्मपद २४।२१)।
३. तण्हावग्गो (२४—२३, २४, २५, २६)।
४. पासिक सुत्त (दीर्घ निकाय २४)।
५. दीघनिकाय, ब्रह्मजाल सुत्त १।

चौथा भाग

भिक्षु और गृहस्थ

१. भिक्षा का बन्धन

१. भिक्षु-संघ एक संगठित संस्था थी, जिसका दरवाजा हर किसी के लिये खुला न था।

२. केवल प्रव्रजित हो जाने से ही कोई संघ का सदस्य नहीं बन सकता था।

३. 'उपसम्पदा' प्राप्त करने से ही कोई भी आदमी संघ का सदस्य बन सकता था।

४. संघ एक स्वाधीन संस्था थी। यह अपने संस्थापक से भी स्वाधीन थी।

५. यह स्वतन्त्र थी। यह जिसे चाहे उसे अपना सदस्य बना सकती थी। यदि कोई सदस्य विनय-विरुद्ध चले तो यह उस सदस्य की सदस्यता छीन भी ले सकती थी।

६. केवल भिक्षा ही वह डोरी थी, जिससे भिक्षु और गृहस्थ परस्पर बंधे थे।

७. भिक्षु भिक्षा पर निर्भर करते थे और गृहस्थ उन्हें भिक्षा देते थे।

८. गृहस्थ संगठित न थे।

९. संघ-दीक्षा थी, जिसका मतलब था किसी की भी भिक्षु-संघ में दीक्षा।

१०. संघ-दीक्षा से आदमी 'संघ' तथा 'धर्म' दोनों में दीक्षित हो जाता था।

११. लेकिन ऐसे लोगों के लिये जो प्रव्रजित बन 'संघ' की दीक्षा तो न चाहते थे, केवल 'धर्म' की दीक्षा चाहते थे, कोई पृथक 'धर्म-दीक्षा' न थी।'

१२. यह एक बड़ी गम्भीर कमी रह गई। यह कभी उन कारणों में से एक थी जो अन्त में जाकर भारत से बौद्ध-धर्म के लुप्त हो जाने के कारण बने।

१३. इसी पृथक धर्म-दीक्षा के न होने के कारण गृहस्थ एक धर्म से दूसरे धर्म में भटक सकते थे और उससे भी बुरी बात यह कि बौद्ध-धर्म को अपनाये रहते समय ही कोई दूसरा धर्म भी अपनाये रह सकते थे।

२. परस्पर-प्रभाव

१. लेकिन 'भिक्षा' का बन्धन भी ऐसा था कि जिससे 'कोई' भिक्षु किसी पथ-भ्रष्ट 'गृहस्थ' को फिर सही रास्ते पर ला सकता था।

२. इस सम्बन्ध में अंगुत्तर-निकाय में वर्णित नियम ध्यान देने योग्य है।

३. इन प्रतिबन्धों के अतिरिक्त किसी भी गृहस्थ का यह सामान्य अधिकार था कि वह किसी भी भिक्षु के सदोष आचरण की शिकायत दूसरे भिक्षुओं से कर सके।

४. जब भी भगवान् बुद्ध को किसी की ऐसी शिकायत सुनने को मिली उन्होंने इसकी जांच की है कि सही है या नहीं। और बात के सही होने पर उन्होंने 'विनय' के नियमों में ऐसा परिवर्तन कर दिया है कि भविष्य के लिये वह 'दोष' संघ के नियमों के विरुद्ध किया गया एक 'अपराध' बन जाय।

५. सारा विनय-पिटक गृहस्थों द्वारा की गई शिकायतों के मार्जन का ही परिणाम है।

६. भिक्षुओं और गृहस्थों में ऐसा ही आपसी सम्बन्ध था।

३. भिक्षु का 'धर्म' तथा उपासक का 'धर्म'

१. बौद्ध-धर्म के कुछ आलोचकों का कहना है कि बौद्ध-धर्म कोई 'मजहब' नहीं है।

२. इस तरह की आलोचना की ओर ध्यान देने की जरूरत नहीं। लेकिन यदि कोई उत्तर देना ही हो तो कहा जा सकता है कि केवल बौद्ध-धर्म ही असली 'मजहब' है और जिन्हें यह बात स्वीकृत न हो उन्हें अपनी 'मजहब' की परिभाषा बदलनी चाहिये।

३. दूसरे आलोचक इतनी दूर तक नहीं जाते। वे इतना ही कहते हैं कि एक मजहब के रूप में बौद्ध-धर्म केवल भिक्षुओं का धर्म है। इसका सर्व-साधारण से कोई सम्बन्ध नहीं। बौद्ध-धर्म ने जन-साधारण को अपने दायरे से बाहर ही रखा है।

४. भगवान बुद्ध के प्रवचनों में 'भिक्षु' शब्द इतनी अधिक बार आता है कि इससे आलोचकों की आलोचना का समर्थन होता है।

५. इसीलिये, यह आवश्यक है कि इस बात को स्पष्ट कर दिया जाय।

६. क्या भिक्षुओं और गृहस्थों के लिये 'धर्म' एक ही है? अथवा 'धर्म' का कोई एक ऐसा भाग भी है जो भिक्षुओं के लिये ही है और गृहस्थों के लिये नहीं?

७. क्योंकि 'प्रवचन' प्रायः भिक्षुओं को ही सम्बोधित करके किये गये, इसलिये इससे यह अनुमान नहीं निकालना चाहिये कि तमाम 'प्रवचन' भिक्षुओं के लिये ही थे। नहीं, भगवान बुद्ध के उपदेश भिक्षुओं तथा गृहस्थों—दोनों के लिये थे।

८. जिस समय भगवान् बुद्ध ने पंच-शीलों, अष्टांगिक-मार्ग तथा दस पार-मिताओं का उपदेश दिया, तो उनकी नजर गृहस्थों पर ही रही होगी—यह बात इतनी अधिक स्पष्ट है कि इसके लिये किसी तर्क की अपेक्षा नहीं।

९. जिन्होंने घर-बार का त्याग नहीं किया है, जो क्रिया-शील गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हैं, एक प्रकार से उन्हीं के लिये पंच-शील, अष्टांगिक-मार्ग तथा दस-पारमितायें आवश्यक हैं। जिस भिक्षु नें गृह-त्याग कर दिया है, उसकी अपेक्षा एक गृहस्थ से (जो क्रिया-शील गृहस्थ-जीवन व्यतीत करता है) ही इस बात की अधिक संभावना है कि वह शील भंग करेगा।

१०. इसलिये भगवान् बुद्ध नें जब धर्म-प्रचार आरम्भ किया तो यह मुख्य रूप से गृहस्थों के लिये ही रहा होगा।

११. केवल अनुमान प्रमाण पर ही निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं है। इस आलोचना का खण्डन करने के लिये हमारे पास प्रत्यक्ष साक्षी है।

१२. निम्नलिखित 'प्रवचन' का भी उल्लेख किया जा सकता है।

१३. एक बार जब भगवान् बुद्ध अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे, उस समय दूसरे पांच सौ उपासकों के साथ धम्मिक नाम का उपासक वहाँ आया और तथागत को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।[२] एक ओर बैठे हुए धम्मिक उपासक ने तथागत को इस प्रकार सम्बोधन किया---

१४. "भगवान् ! भिक्षुओं और उपासकों का वा घर से बेघर हुए लोगों का तथा गृहस्थों का क्या 'शील' है ?

१५. "भगवान् ! उपासकों सहित उपस्थित भिक्षुओं को अपने अपने 'शील' की जानकारी देनें की कृपा करें।"

१६. तथागत ने कहा---"भिक्षुओ ! ध्यान देकर सुनो। बताये हुए नियमों का पालन करो।

१७. "मध्याह्नान्तर पिण्डपात (भिक्षाटन) के लिये मत जाओ। असमय भिक्षाटन करनें वाले के लिये जाल बिछा रहता है।

१८. "भिक्षाटन से पहले अपने मन को रूप, ध्वनि, गन्ध, रस तथा स्पर्श की आसक्ति से मुक्त कर लो।

१९. "भिक्षाटन कर चुकने पर, अकेले लौटो और एकान्त में बैठ कर स्थिर चित्त से विचार करो।

२०. "सज्जनों से बातचीत करो तो धर्म के ही विषय में बातचीत करो।

२१. "भिक्षा, विहार, शयनासन और पानी से सफाई करने आदि को साधनों से अधिक और कुछ महत्व न दो।

२२. "यदि कोई भिक्षु इन सभी चीजों का अनासक्त होकर उपयोग करेगा तो वह ऐसे ही अलिप्त रहेगा जैसे पानी में रहने वाला कँवल पानी की बूंदों से।

२३. "अब मैं गृहस्थों के 'शील' की बात करता हूँ। उनसे मुझे कहना है।

२४. "किसी प्राणी की हत्या न करो, किसी की जान न लो। न किसी की

जान लिये जाने का समर्थन करो। सबल हो या दुर्बल हो—कैसा भी कोई प्राणी हो, किसी की हिंसा न करो। सभी प्राणियों से प्रेम करो।

२५. "किसी गृहस्थ को जान-बूझ कर न चोरी करनी चाहिये, न करानी चाहिये। दिया ही हुआ ग्रहण करना चाहिये।

२६. "व्यभिचार को वह आग का गढ़ा समझे। पर-स्त्री गमन से दूर रहे।

२७. "चाहे कोई सभा हो और चाहे कचहरी हो, उसे चाहिये कि वह असत्य को प्रोत्साहन न दे, उसे असत्य का त्याग कर देना चाहिये।

२८. "इस नियम का पालन करे: शराब न पिये, किसी को शराब न पिलाये, शराब पीने का समर्थन न करे। इस बात का विचार करे कि शराब आदमी को कितना पागल बना देती है।

२९. "नशे में आकर मूर्ख लोग पाप करते हैं, तथा दूसरों को पाप में प्रवृत्त करते हैं। इसलिये इस पागल बना देने वाले व्यसन से दूर दूर रहे—यह मूर्खों का स्वर्ग है।

३०. "प्राणी-हिंसा न करे, चोरी न करे, झूठ न बोले, नशीले पदार्थों से बचे, और व्यभिचार से दूर रहे।

३१. "उपोसथ-दिनों में उपोसथ-व्रत ग्रहण करे और उस दिन अष्ट-शीलों का पालन करे।

३२. "प्रातःकाल के समय पवित्र श्रद्धा-युक्त चित्त के साथ (आठ) शीलों को ग्रहण करे। बुद्धि-पुरस्सर व्यवहार करे। भिक्षुओं को यथा सामर्थ्य-भोजन तथा पेय पदार्थों का दान करे।

३३. "अपने माता-पिता की भली प्रकार सेवा करे। जीविका का कोई अच्छा साधन अपनाये।

३४. "इस प्रकार जो गृहस्थ दृढ़ता-पूर्वक धर्म का पालन करेगा, वह दिव्य-लोक को प्राप्त होगा।"

३५. इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भिक्षुओं और गृहस्थों का 'धर्म' एक ही था।

३६. हाँ, इसमें थोड़ा भेद अवश्य है कि भिक्षुओं से अधिक आशा रखी गई है और गृहस्थों से उतनी नहीं।

३७. भिक्षु के लिये पाँच 'व्रत' अनिवार्य हैं।

३८. उसे प्राणी-हिंसा से विरत रहने का 'व्रत' लेना पड़ता है।

३९. उसे अदिन्नादान से अर्थात् जो चीज उसे नहीं दी गई है, उसके न लेने का 'व्रत' ग्रहण करना पड़ता है।

४०. उसे कभी भी झूठ न बोलने का 'व्रत' लेना पड़ता है।

४१. उसे यह 'व्रत' लेना होता है कि वह किसी भी स्त्री से काम-संसर्ग नहीं रखेगा।

४२. उसे यह 'व्रत' लेना होता है कि वह कभी किसी नशीले पदार्थ को ग्रहण नहीं करेगा।

४३. यूं ये सभी नियम गृहस्थ पर भी लागू होते ही हैं।

४४. भेद इतना है कि भिक्षु के लिये वे अनुल्लंघनीय 'व्रत' हैं, किन्तु गृहस्थ के लिये वे स्वेच्छा से ग्रहण किये गये 'शील' हैं।

४५. दो और भी ध्यान देने लायक भेद हैं।

४६. एक भिक्षु निजी सम्पत्ति नहीं रख सकता—

एक गृहस्थ रख सकता है।

४७. एक भिक्षु 'परिनिर्वाण' में प्रवेश पाने के लिये भी स्वतन्त्र है। एक गृहस्थ के लिये 'निर्वाण' पर्य्याप्त है।

४८. एक भिक्षु और गृहस्थ में ये ही समानतायें और असमानतायें हैं।

४९. लेकिन, 'धर्म' दोनों का एक ही है।

१. त्रिशरण तथा पंचशील ग्रहण गृहस्थों की धर्म-दीक्षा ही तो है।
२. देखो धम्मिक सुत्त (संयुक्त निकाय)।
३. यह 'निर्वाण' और 'परिनिर्वाण' का भेद चिन्त्य है—अनु०।

पाँचवाँ भाग

गृहस्थों के जीवन-नियम (विनय)

१. धनियों के लिये जीवन-नियम

१. भगवान् बुद्ध ने 'दरिद्रता' को 'जीवन का सौभाग्य' कह कर उसे ऊपर उठाने का प्रयास नहीं किया।

२. न उन्होंने गरीबों को यही कहा कि तुम संतुष्ट रहो क्योंकि तुम ही सारी पृथ्वी के उत्तराधिकारी हो।

३. बल्कि, इसके विरुद्ध उन्होंने धन का स्वागत किया। जिस बात पर उन्होंने जोर दिया वह यह थी कि धन पर भी जीवन- मर्यादा का अंकुश लगा रहना चाहिये।

(११)

१. एक बार जहाँ भगवान् बुद्ध विराजमान् थे, वहीं अनाथपिण्डिक पहुंचा। आकर उसने तथागत को अभिवादन किया और एक ओर बैठकर बोला— "क्या भगवान्! आप कृपया बतायेंगे कि वे कौन सी बातें हैं जो गृहस्थी के अनुकूल हैं, गृहस्थ को अच्छी लगने वाली हैं, गृहस्थ के द्वारा स्वागतार्ह हैं, लेकिन जिनका प्राप्त करना कठिन है।"

२. अनाथपिण्डिक का प्रश्न सुना तो तथागत ने उत्तर दिया—"ऐसी बातों में पहली बात है न्यायत: धन प्राप्त करना।

३. "दूसरी बात है यह देखना कि सगे-सम्बन्धी भी न्यायत: धन प्राप्त कर सकें।

४. "तीसरी बात है दीर्घ-जीवी होना।

५. "इन तीन बातों की प्राप्ति से पहले, जो गृहस्थी के अनुकूल हैं, गृहस्थ को अच्छी लगने वाली हैं, गृहस्थ के द्वारा स्वागतार्ह हैं, चार बातें पूर्व-करणीय हैं। वे हैं श्रद्धारूपी सौभाग्य का होना, शील रूपी सौभाग्य का होना, उदारता रूपी सौभाग्य का होना तथा प्रज्ञारूपी सौभाग्य का होना।

६. श्रद्धारूपी धन का मतलब है तथागत के बारे में इस पदार्थ जानकारी का होना कि 'वे भगवान् अर्हत हैं। सम्यक् सम्बुद्ध हैं। विद्या तथा आचरण से युक्त हैं। सुगत हैं। लोक (= विश्व) के जानकार हैं। अनुत्तर हैं। (दुर्दमनीय) पुरुषों का दमन करनेवाले सारथी हैं तथा वे देव-मनुष्यों के शास्ता हैं।'

७. "शीलरूपी सौभाग्य प्राणातिपात (=जीव हिंसा) अदिन्नादान (=चोरी) काम-मिथ्याचार (=व्यभिचार), मृषावाद (=असत्य) तथा नशीली वस्तुओं के त्याग में हैं।

८. "उदारता रूपी सौभाग्य कंजूसपन के कलंक से दूर रहने में है, उदार बने रहने में है, खुला हाथ रखने में है, दूसरों को देने में आनन्द मनाने में है, दाता और दान-शील होने में है।

९. "प्रज्ञा का सौभाग्य किस बात में है ? प्रज्ञा का सौभाग्य इस बात के जान लेने में है कि जिस गृहस्थ का मन लोभ के वशीभूत रहता है, लालच के वशीभूत रहता है, द्वेष के वशीभूत रहता है, आलस्य के वशीभूत रहता है, तन्द्रा के वशीभूत रहता है, तथा चित्त की व्यग्रता के वशीभूत रहता है, वह पाप-कर्म करता है, जो करना चाहिये वह नहीं करता है। इसके फलस्वरूप उसे न सुख की प्राप्ति होती है और न सम्मान की।

१०. "लोभ, लालच, द्वेष, आलस्य, तन्द्रा, चित्त की अस्थिरता तथा संशया-लुपन—ये सब चित्त के धब्बे हैं। जो गृहस्थ अतने चित्त को इन धब्बों से मुक्त कर लेता है, वह बहुल-प्रज्ञ हो जाता है, पृथुल-प्रज्ञ हो जाता है, उसकी बुद्धि निर्मल हो जाती है, वह पूर्ण ज्ञानी हो जाता है।

११. "इस प्रकार न्यायतः, बड़े परिश्रम से, बाहुबल से, पसीना बहाकर जो धन कमाता है वह बड़ा सौभाग्य है। ऐसा गृहस्थ अपने आप को सुखी और आनन्दित करता है तथा आनन्द-मग्न रहता है। वह अपने माता-पिता, अपने स्त्री-बच्चों, अपने नौकरों और कमकरों तथा अपने यार-दोस्तों को सुखी और आनन्दित करता है तथा सभी को आनन्द-मग्न रखता है।"

२. गृहस्थ के जीवन के लिये नियम

इस विषय में भगवान् बुद्ध के विचार उस सुत्तन्त में आ गये हैं जो 'श्रृगाल को दिया गया उपदेश' के नाम से प्रसिद्ध है।"[१]

१. उस समय भगवान् बुद्ध राजगृह के वेळुवन में कलन्दक-निवाप में विहार करते थे।

२. अब उस समय गृहपति-पुत्र तरुण श्रृगाल समय से उठा और राजगृह से बाहर जाकर गीले-केश, गीले-वस्त्र, दोनों हाथ ऊपर उठाकर जोड़े हुए पृथ्वी और आकाश की सभी दिशाओं को नमस्कार करने लगा—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण तथा ऊपर और नीचे।

३. उस दिन तथागत समय रहते ही, चीवर पहन, पात्र तथा चीवर ले राजगृह में भिक्षाटन के लिये निकले : उन्होंने तरुण श्रृगाल को इस प्रकार नमस्कार करते

हुए देखा। पूछाः—"तू इस प्रकार पृथ्वी और आकाश की सभी दिशाओं की पूजा क्यों कर रहा है ?"

४. "मरते समय मेरे पिता ने कहा था कि तुम पृथ्वी और आकाश की सभी दिशाओं की पूजा करना। इसलिये, भगवान् ! अपने पिता के वचनों के प्रति आदर होने के कारण मैं ऐसा कर रहा हूँ।"

५. तथागत ने पूछा—"लेकिन यह आदमी का सच्चा धर्म-कैसे हो सकता है?" श्रृगाल बोला—"तो फिर आदमी का दूसरा और सच्चा धर्म-क्या होगा ? यदि कोई है तो भगवान् की बड़ी कृपा होगी, यदि भगवान् बतायें।"

६. "तो तरुण गृहपति ! मेरी बात ध्यान से सुनो। मैं बताता हूँ।" "भगवान् ! बहुत अच्छा।" तब तथागत ने कहा :—

७. "कोई भी धर्म आदमी का सद्धर्म तभी कहला सकता है जब वह उसे बुरी बातों का त्याग करने की शिक्षा दे। प्राणियों की हिंसा करना, चोरी, व्यभिचार तथा झूठ—ये चार बुरी बातें हैं, जिनका परित्याग करना चाहिये।

८. "श्रृगाल ! यह बात तू जान ले कि पाप-कर्म, पक्षपात, शत्रुता, मूर्खता तथा भय के कारण किये जाते हैं। यदि आदमी इनसे मुक्त हो तो वह कोई पाप-कर्म न करेगा।

९. "कोई भी धर्म आदमी का धर्म तभी हो सकता है जब वह उसे अपने धन को बरबाद करने की शिक्षा न दे। आदमी का पैसा शराब पीने की आदत पड़ जाने से बरबाद होता है, अनुचित समय पर रात को बाजारों में घूमने से बरबाद होता है, मेले-तमाशे देखते-फिरने से बरबाद होता है, जुए की आदत पड़ जाने से बरबाद होता है, कुसंगति में पड़ जाने से बरबाद होता है और आलसी बन जाने से बरबाद होता है।

१०. "श्रृगाल ! शराब की लत पड़ जाने से छः हानियाँ हैं—(१) धन की हानि, (२) कलह होना, (३) रोग की सम्भावना, (४) दुश्चरित्रता, (५) भद्दी नग्नता, तथा (६) बुद्धि की हानि।

११. "अनुचित समय पर रात को बाजारों में घूमने की छः हानियाँ हैं—(१) वह स्वयं अरक्षित होता है, (२) उसके स्त्री-बच्चे अरक्षित होते हैं, (३) उसकी सम्पत्ति अरक्षित रहती है, (४) जिन अपराधों के करने वालों का पता नहीं लगता, उस पर उनका सन्देह किया जाता है, (५) उसके बारे में झूठी अफवाह फैल जाती है, तथा (६) और भी अनेक दुःख भुगतने पड़ते हैं।

१२. मेले-तमाशे देखते फिरने की आदत में छः दोष हैं—(१) वह हमेशा यही सोचता रहता है कि नाच कहाँ है? (२) गाना कहाँ है? (३) बजाना कहाँ है? (४) काव्य-गान कहाँ है? (५) घंटियों का बजाना कहाँ है? टॅम-टॅम बाजा कहाँ है ?

१३. "जुआ खेलने की लत पड़ जाने की छः हानियां हैं—(१) जीतने पर घृणा का पात्र बनता है, (२) हारने पर अपनी हार से दुःखी होता है, (३) उसका गुजारा ही नष्ट हो जाता है, (४) अदालत में उसके वचन का कोई मूल्य नहीं होता, (५) वह मित्रों तथा राजकर्मचारियों की घृणा का पात्र बन जाता है, (६) कोई शादी करने वाला उससे सम्बन्ध स्थापित करना नहीं चाहता, क्योंकि उसका कहना होता है कि जुआरी कभी अपनी पत्नि का पालन-पोषन नहीं कर सकता।

१४. "कुसंगति के छः दोष हैं—(१) कोई जुआरी, (२) कोई आवारा-गर्द, (३) कोई शराबी, (४) कोई ठग, (५) कोई वंचक अथवा (६) कोई भी हिंसक उसका मित्र बन जाता है।

१५. "आलसी होने में छः दोष हैं—(१) बहुत ठंड है, कहकर वह काम नहीं करता; (२) बहुत गरमी है, कहकर वह काम नहीं करता; (३) बहुत जल्दी है, कहकर वह काम नहीं करता; (४) बहुत देर हो गई है, कहकर वह काम नहीं करता; (५) बहुत भूख लगी है, कहकर काम नहीं करता; तथा (६) बहुत खा लिया है, कहकर काम नहीं करता। और क्योंकि जो जो उसे करना चाहिये था, वह सब बिना किया ही रहता है, इसलिये वह कुछ नया भी अर्जित नहीं कर सकता; जो अर्जित रहता है, वह भी नष्ट हो जाता है।

१६. "कोई भी धर्म आदमी का सद्धर्म तभी कहला सकता है जब वह आदमी को अच्छे-बुरे मित्र की पहचान कराये।

१७. "चार जनों को 'मित्र' रूप में शत्रु समझना चाहिये—(१) जो लोभी हो, (२) जो कहता हो, लेकिन करता न हो, (३) जो खुशामदी हो, (४) जो फजूल-खर्ची का साथी हो।

१८. "इनमें से प्रथम को इसलिये 'मित्र' के रूप में शत्रु समझना चाहिये, क्योंकि वह लोभी होता है, वह देता कम है और मांगता अधिक है। वह जो कुछ करता है, वह भय के मारे करता है। वह अपने स्वार्थ का ही ध्यान रखता है।

१०. "जो कहता है, किन्तु करता नहीं, उसे भी 'मित्र' रूप में शत्रु समझना चाहिये, क्योंकि वह अपनी भूत-काल की मित्रता की बात करता है, वह भविष्य में मैत्री-पूर्ण व्यवहार की बात करता है, वह वचन-मात्र से ही लाभ उठाना चाहता है, किन्तु जब कुछ भी करने का समय आता है, वह अपनी असमर्थता प्रकट कर देता है।

२०. "जो खुशामदी है, उसे भी 'मित्र' रूप में शत्रु ही समझना चाहिये, क्योंकि वह बुराई में साथ देने वाला बन जाता है, भलाई में साथ देने वाला नहीं बनता, वह मुंह पर प्रशंसा करता है, पीठ पीछे निन्दा करता है।

२१ "जो फजूल-खर्ची का साथी हो, उसे भी 'मित्र' रूप में शत्रु ही समझना चाहिये, क्योंकि असमय बाजार घूमने के समय ही वह साथी होता है; जब तुम

मेले-तमाशे देखते फिरते हो, उसी समय वह तुम्हारा साथी होता है; जब तुम जुआ खेलने में लगे होते हो, उसी समय वह तुम्हारा साथी होता है।

२२. "चार तरह के मित्रों को यथार्थ-मित्र जानना चाहिये— (१) जो सहायक हो, (२) जो सुख-दुःख दोनों का साथी हो, (३) जो अच्छा परामर्श देता हो तथा (४) जो सहानुभूति रखता हो।

२३. "जो सहायक हो उसे यथार्थ मित्र जानना चाहियेः क्योंकि जब तुम अरक्षित अवस्था में होते हो, उस समय वह तुम्हारा संरक्षण करता है; जब तुम्हारी सम्पत्ति अरक्षित रहती है उस समय वह उसका संरक्षण करता है, तुम्हारी विपन्नावस्था में वह तुम्हारा शरण-स्थान होता है— जब तुम्हें आवाह-विवाह जैसा कोई काम करना होता है तो वह तुम्हारी आवश्यकता से दुगुनी वस्तुयें तुम्हें लाकर देता है।

२४. "जो सुख-दुःख दोनों में साथी हो उसे यथार्थ-मित्र जानना चाहिये क्योंकि वह तुम्हें अपने 'रहस्य' बता देता है, क्योंकि वह तुम्हारी 'रहस्य' की बातों को छिपा कर रखता है, तुम्हारी मुसीबत में वह तुम्हारा साथ नहीं छोड़ता, वह तुम्हारे लिये अपने जीवन तक का बलिदान कर देता है।

२५. "जो-सद्-परामर्श देता हो उसे 'यथार्थ-मित्र' जानना चाहिये; क्योंकि वह तुम्हें बुराई से रोकता है, वह तुम्हें शुभ-कर्म करने के लिये प्रेरित करता है, जो बातें तुमने पहले नहीं सुनीं, ऐसी बातें सुनाता है—वह तुम्हारे लिये स्वर्ग का मार्ग खोलता है।

२६. "जो सहानुभूति रखता हो, उसे भी 'यथार्थ-मित्र' जानना चाहिये, क्योंकि तुम्हें दुःखी देखकर वह सुखी नहीं होता, तुम्हें सुखी देखकर वह सुखी होता है, तुम्हारी बुराई करने वाले को वह रोकता है। तुम्हारी प्रशंसा करने वाले का वह समर्थन करता है।

२७. "किसी को छः दिशाओं की पूजा करने की शिक्षा देने के बजाय जो धर्म आदमी का धर्म कहलाने के योग्य हो, उस धर्म की उसे शिक्षा देनी चाहिये कि वह अपने माता-पिता की सेवा और उनका सत्कार करे, अपने गुरुओं तथा आचार्यों का आदर करे, अपनी स्त्री तथा अपने बच्चों को प्यार करे, अपने मित्रों तथा अपने साथियों से स्नेहपूर्ण बरताव करे तथा अपने नौकरों और कमकरों की सहायता करे।"

३. बालकों के लिये जीवन-नियम

१. "एक बालक को अपने माता-पिता की सेवा करनी चाहिये। उसे सोचना चाहियेः एक समय इन्होंने मेरा पोषण किया, अब मैं इनका पोषण करूंगा। इनके प्रति जो मेरा कर्तव्य है, मैं उसे पूरा करूंगा। मैं अपनी वंश-परम्परा को कायम

रखूंगा। मैं अपने आप को उत्तराधिकार के योग्य बनाऊंगा । क्योंकि माता-पिता नाना प्रकार से सन्तान के प्रति अपना प्रेम प्रकट करते हैं, वे उसे बुराई से बचाते हैं, वे उसे भला काम करने के लिये प्रेरित करते हैं, वे उसे किसी जीविका के योग्य बनाते हैं, वे उसका यथायोग्य विवाह करते हैं और उचित समय पर वे उसे उसका उत्तराधिकार सौंप देते हैं।

४. शिष्य के लिये जीवन-नियम

१. "एक शिष्य को अपने आचार्यों के प्रति यथायोग्य बर्ताव करना चाहिये। उसे अपने स्थान से उठकर अभिवादन करना चाहिये, उसे पढ़ने-लिखने में विशेष उत्साह दिखाना चाहिये, उसे अपने आचार्य्य की व्यक्तिगत सेवा करनी चाहिये और शिक्षा ग्रहण करते समय विशेष ध्यान देना चाहिये। क्योंकि आचार्य्य अपने शिष्यों से प्रेम करते हैं। जो कुछ उन्होंने सीखा है, वह उसे सिखाते हैं; जो कुछ उन्होंने दृढ़तापूर्वक ग्रहण किया है, वह उसे ग्रहण कराते हैं। वे उसे हर प्रकार के शिल्प का अच्छी तरह ज्ञान कराते हैं। वे उसके मित्रों और साथियों में उसकी प्रशंसा करते हैं। वे हर तरह से उसकी आरक्षा की चिन्ता करते हैं।

५. पति-पत्नी के लिये जीवन-नियम

१. "एक पति को अपनी पत्नी का सत्कार करना चाहिये, उसके प्रति आदर-भाव प्रदर्शित करना चाहिये, पत्नि-व्रत पालन करना चाहिये, उसे अधिकारी बनाना चाहिए, तथा उसे गहने आदि बनवाकर देने चाहिये। क्योंकि स्त्री उसे प्यार करती है, उसके सभी कार्य अच्छी तरह करती है, वह उसके तथा अपने मायके सभी सम्बन्धियों का आतिथ्य करती है, वह पति व्रता होती है, उसके लाये सामान की रक्षा करती है और अपने तमाम कर्तव्यों को बड़ी होशियारी तथा दक्षता से पूरा करती है।

२. "एक कुल-पुत्र को अपने मित्रों तथा साथियों के साथ उदारता का व्यवहार करना चाहिये, शालीनता तथा उदाराशयता से पेश आना चाहिये। उसे उनके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये जैसा वह अपने साथ करता है और उसे अपने वचन का पक्का होना चाहिये। क्योंकि उसके मित्र और उसके परिचित उसे प्यार करते हैं, उसकी अरक्षित-स्थिति में वह उसकी रक्षा करते हैं और ऐसे समय में उसकी सम्पत्ति की रक्षा करते हैं। खतरे के समय वे उसके शरण-स्थान होते हैं। मुसीबत पड़ने पर वे साथ नहीं छोड़ते। वे उसके परिवार का ख्याल रखते हैं।

मालिक और नौकर के लिये जीवन-नियम

१. "एक मालिक को चाहिये कि वह अपने नौकरों तथा कमकरों को उनकी

सामर्थ्य के अनुसार काम दे, उन्हें भोजन तथा मजदूरी दे, बीमारी में उनकी देख-भाल करे, असाधारण स्वादिष्ट चीजें बाँट कर खाए और समय समय पर उन्हें छुट्टी भी दे। क्योंकि नौकर और कमकर अपने मालिक से प्रेम करते हैं, वे उससे पहले सोकर उठते हैं, उसके सो जाने पर सोने जाते हैं, जो कुछ मिलता है उसीसे संतुष्ट रहते हैं। वे अपना काम अच्छी तरह से करते हैं और सर्वत्र उसका यश फैलाते हैं।

२. "एक कुल-पुत्र को चाहिये कि वह अपने गुरुओं की मन-वचन तथा कर्म से प्रेमपूर्वक सेवा करे, उनके लिये सदैव अपने घर के द्वार खुले रखे तथा उनकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करे। क्योंकि गुरुजन उसे बुराई से बचाते हैं, उसे भलाई करने की प्रेरणा करते हैं, वे उससे मैत्री रखते हैं, जो उसने अभी तक नहीं सुना वह उसे सुनाते हैं तथा जो सुना है उसे ठीक और निर्दोष बनाते हैं।"

७. उपसंहार

१. तथागत के इस प्रकार कहने पर तरुण गृहपति श्रृगाल बोला—"भगवान् अद्भुत है! जैसे कोई उखड़े को जमा दे, अथवा ढके को उघाड़ दे, अथवा किसी पथ-भ्रष्ट को रास्ता दिखा दे, अथवा अन्धेरे में रास्ता दिखा दे कि आँखवाले रास्ता देख लेंगे। इसी प्रकार तथागत ने नाना तरह से सत्य का प्रकाश कर दिया है।"

२. "और मैं भी, बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण जाता हूँ। कृपया भगवान् आप मुझे प्राण रहने तक अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।"

८. कुमारियों के लिये जीवन-नियम

१. एक बार भगवान् बुद्ध भद्दिय के पास जातीय वन में ठहरे हुए थे।[1] मेण्डक का पौत्र उग्गह वहाँ आया और अभिवादन करके एक ओर बैठ गया। उस प्रकार बैठे हुए उग्गह ने तथागत से निवेदन किया:—

२. "भगवान्! अन्य तीन भिक्षुओं के साथ कल के लिये मेरा भोजन का निमंत्रण स्वीकार करें।"

३. तथागत ने अपने मौन से स्वीकार किया।

४. जब उग्गह ने देखा कि तथागत ने उसका निमंत्रण स्वीकार कर लिया, वह अपने स्थान से उठा, अभिवादन किया और तथागत की प्रदक्षिणा करके चला गया।

५. रात के बीत जाने पर, दूसरे दिन तथागत ने पूर्वाह्न के समय चीवर धारण किया और पात्र तथा (दूसरा) चीवर ले, जहाँ उग्गह का घर था वहाँ गये और बिछे आसन पर बैठे। उग्गह ने तथागत को अपने हाथ से नाना प्रकार के भोजनों से संतर्पित किया।

६. जब तथागत भोजन समाप्त कर चुके, तो वह एक ओर बैठ गया। इस प्रकार बैठे हुए उसने कहा :—

७. "भगवान् ! मेरी ये लड़कियां अपने अपने पति के घर चली जायेंगी। भगवान् ! आप उन्हें परामर्श दें, आप उन्हें उपदेश दें, जो चिरकाल तक उनके हित तथा सुख का कारण हो।"

८. तब भगवान् ने उन लड़कियों को उपदेश दिया—"लड़कियो ! इस प्रकार का अभ्यास डालो कि हमारा हित और भलाई चाहने वाले हमारे अनुकम्पक माता-पिता जिस किसी पति को भी हमें सौंप देंगे, हम उससे पहले सोकर उठने वाली होंगी और उससे पीछे सोने वाली होंगी, हम काम करने वाली होंगी और सभी चीजों को व्यवस्थित रखने वाली तथा मधुर-भाषिणी होंगी। लड़कियो ! तुम्हें ऐसा अभ्यास डालना चाहिये।

९. "लड़कियो ! और यह भी अभ्यास डालना चाहिये कि हमारे पति के माता-पिता, सगे सम्बन्धी तथा साधुगण—जो कोई भी घर आयें, उनका आदर करने वाली होंगी, उनका स्वागत करने वाली होंगी, उनके आने पर उन्हें आसन और जल देने वाली होंगी।

१०. "लड़कियों ! और यह भी अभ्यास डालना चाहिये कि हमारे पति का जो भी काम होगा—चाहे ऊन का हो और चाहे रुई का हो—हम उसमें दक्ष और होशियार होंगी। हम उस काम की समझ हासिल करेंगी जिससे हम उसे स्वयं कर सकें, करा सकें।

११. लड़कियो ! और यह भी अभ्यास डालना चाहिये कि घर के जितने नौकर-चाकर होंगे हम उन सबके काम की देख-भाल रखेंगी कि किसने क्या और कितना काम किया है और क्या और कितना काम नहीं किया है ? हम रोगियों का बलाबल जानेंगी, और जिसको जैसा भोजन देना चाहिये वैसा भोजन देंगी।

१२. "लड़कियो ! और यह भी अभ्यास डालना चाहिये कि जो रुपया, जो धान, जो सोना तथा जो चाँदी पति घर लायेंगे, हम उसे सुरक्षित रखेंगी, उसकी हिफाजत करेंगी ताकि कोई चोर, कोई उचक्का, कोई डाकू उसे न ले जा सके।"

१३. यह उपदेश सुनने को मिला तो उग्गह की लड़कियां बहुत प्रसन्न हुईं। वे तथागत की बड़ी कृतज्ञ थीं।

१. सिगालोवाद सुत्तन्त (दीघ निकाय—३१)
२. उग्गह सुत्तन्त (अंगुत्तर निकाय)।

षष्ठ काण्ड

भगवान् बुद्ध और उनके समकालिन

१. पहला भाग — उनके समर्थक

२. दूसरा भाग — उनके विरोधी

३. तीसरा भाग — उनके धर्म के आलोचक

४. चौथा भाग — मित्र तथा प्रशंसक

पहला भाग

उनके समर्थक

१. राजा बिम्बिसार का 'दान'

१. राजा बिम्बिसार तथागत का एक सामान्य अनुयायी न था, वह भगवान् बुद्ध के प्रति अत्यन्त श्रद्धावान था और धर्म के कार्यों में बहुत सहायक था।

२. गृहस्थ उपासक बन जाने पर बिम्बिसार ने कहा— "भगवान्! आप भिक्षु संघ सहित कल के भोजन के लिये मेरा निमंत्रण स्वीकार करें।"

३. तथागत ने मौन रहकर स्वीकार किया।

४. राजा बिम्बिसार ने जब जाना कि उसका निमंत्रण स्वीकृत हो गया, वह अपने स्थान से उठा और तथागत को अभिवादन किया तथा प्रदक्षिणा करके चला गया।

५. रात बीत जाने पर बिम्बिसार ने बढ़िया से बढ़िया भोजन तैयार कराये और समय हो जाने पर तथागत को सूचना दी, "भगवान्! भोजन तैयार है"

६. पूर्वाह्न में तथागत ने चीवर पहन, अपना पात्र-चीवर ले पूर्व जटिल भिक्षुओं के साथ राजगृह में प्रवेश किया।

७. तथागत राजा बिम्बिसार के महल में पहुंचे और भिक्षु संघ सहित बिछे आसन पर बैठे। राजा बिम्बिसार ने बुद्ध प्रमुख भिक्षु-संघ को अपने हाथ से भोजन परोसा। भोजन कर चुकने के बाद तथागत ने जब अपने हाथ और पात्र धो लिये, तो बिम्बिसार उनके पास आ बैठा।

८. उनके पास बैठकर राजा बिम्बिसार ने सोचा: "मैं तथागत के लिये निवासस्थान की व्यवस्था कहाँ करूँ? जगह ऐसी होनी चाहिये जो गाँव से बहुत दूर भी न हो, और ऐसी होनी चाहिये जो बहुत नजदीक भी न हो, जो लोग उनके पास आना-जाना चाहें उनके लिये आना-जाना सुगम हो, जहाँ दिन में बहुत भीड़ न हो और रात में बहुत शोर न हो, जो एकान्त हो, जन-समूह से प्रच्छन्न हो और शान्ति-जीवन बिताने के लिये बहुत अच्छी हो।"

९. तब राजा बिम्बिसार को ध्यान आया: "मेरा अपना वेळुवन उद्यान है, जो न नगर से बहुत दूर है और न नगर के बहुत समीप है, जो आने-जाने के लिये सुगम है। मैं क्यों न उसे बुद्ध-प्रमुख भिक्षु संघ को दान कर दूं?"

१०. तब राजा ने एक जलभरी स्वर्ण-झारी ली और भगवान् बुद्ध के हाथ पर जल डालते हुए कहा—"मैं यह वेळुवन उद्यान बुद्ध-प्रमुख भिक्षु संघ को दान देता हूँ।" तथागत ने उद्यान स्वीकार कर लिया।

११. तब तथागत ने राजा बिम्बिसार को अपने 'प्रवचन' से उत्साहित किया, आनन्दित किया और आह्लादित किया तथा अपने स्थान से उठकर चले गये।

१२. उसके बाद तथागत ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"भिक्षुओं! मैं विहार को स्वीकार करने की अनुमति देता हूँ।"[1]

२. अनाथपिण्डिक का 'दान'

१. उपासकत्व ग्रहण कर चुकने के अनन्तर अनाथपिण्डिक एक बार भगवान् बुद्ध के पास गया। अभिवादन कर चुकने के अनन्तर वह एक ओर बैठा और बोला :—

२. "भगवान्! आप जानते हैं कि मैं श्रावस्ती में रहता हूँ जो धन-धान्य से सम्पन्न है और जहाँ शान्ति विराजती है। वहाँ महाराज प्रसेनजित् का शासन है।

३. "मैं वहाँ एक विहार की स्थापना करना चाहता हूँ। आप कृपया वहाँ पधारें और उस विहार का दान स्वीकार करें।"

४. भगवान् बुद्ध ने मौन रहकर स्वीकार किया।

५. जब सेठ अनाथपिण्डिक घर लौटा तो उसने जेत राजकुमार का उद्यान देखा—हराभरा और निर्मल जल के स्रोतों से युक्त। उसने सोचा— "भगवान् बुद्ध के भिक्षु-संघ के लिये यह स्थान सब से अधिक उपयुक्त होगा।"

६. राजकुमार उद्यान बेचना नहीं चाहता था, इसीलिये उसने कीमत बहुत अधिक बताई। पहले तो उसने इनकार ही किया, लेकिन आखिर में कहा—"लेना ही हो तो सारी जमीन पर कार्षापण (श्री, सोने का सिक्का) बिछाण दो।"

७. अनाथपिण्डिक प्रसन्न हुआ, और कार्षापण बिछाने लगा। तब राजकुमार बोला— "रहने दो, मैं बेचना ही नहीं चाहता।" लेकिन अनाथपिण्डिक का आग्रह था कि अब जब तुम एक बार उसकी कीमत लगा चुके और मैं उतनी ही कीमत देने के लिये तैयार हूँ तो तुम्हें जमीन देनी पड़ेगी। बात यहाँ तक बढ़ी कि न्यायालय तक पहुंची।

८. इस बीच लोग इस असामान्य घटना की चर्चा करने लगे और राजकुमार को भी जब यह पता लगा कि अनाथपिण्डिक धनी तो था ही, किन्तु वह बड़ा श्रद्धावान तथा धार्मिक था, उसने अनाथपिण्डिक से जमीन लेने का उद्देश्य पूछा। जब उसे पता लगा कि जमीन तथागत के लिये विहार बनवाने को ली जा रही है तो उसने भी उस पुण्य-कार्य में हिस्सेदार बनने की इच्छा प्रकट की। उसने जमीन की आधी ही

कीमत स्वीकार की। बोला :—'जमीन तुम्हारी। पेड़ मेरे। मैं अपनी ओर से वृक्षों का दान करता हूँ।'

९. विहार का शिलान्यास हो चुकने पर वहाँ संघ के योग्य एक विशाल विहार बनवाया गया—जो बहुत ही सुन्दर लगता था।

१०. इस विहार का नाम पड़ा, 'अनाथपिण्डिक का जेवतनाराम'। संक्षिप्त रूप 'जेतवन बिहार' ही रह गया। अनाथपिण्डिक ने तथागत को कपिलवस्तु से श्रावस्ती पधारने और विहार को स्वीकार करने का निमंत्रण दिया।

११. जब तथागत जेतवन पधारे, अनाथपिण्डिक ने पुष्प-वर्षा की और सुगन्धित धूप जलाई। उसने एक सोने की झारी से तथागत के हाथ पर पानी डालते हुए कहा:— "मैं संसार-भर के भिक्षुसंघ को यह विहार समर्पित करता हूँ।"[२]

१२. तथागत ने विहार स्वीकार किया और दानानुमोदन करते हुए कहा— "सभी अमंगलों का नाश हो। यह दान 'दाता' के साथ-साथ सारी मानवता की कल्याण-वृद्धि का कारण बने।"

१३. अनाथपिण्डिक बुद्ध के प्रधान शिष्यों में से एक था—दान-दाताओं में प्रमुख।

३. जीवक का 'दान'

१. जब कभी तथागत राजगृह में होते, वैद्य जीवक दिन में दो बार तथागत के दर्शनार्थ जाता।

२. जीवक को लगा कि राजा बिम्बिसार ने तथागत को जिस वेळुवन का दान किया है, वह बहुत दूर है।

३. राजगृह में 'आम्रवन' नाम का उसका अपना एक बगीचा था, जो कि उसके अपने स्थान से नजदीक था।

४. उसने सोचा कि वह एक अंग-सम्पूर्ण विहार बनवाये और बिहार तथा बगीचा तथागत को समर्पित कर दे।

५. अपने मन में यह विचार लेकर वह तथागत के पास पहुंचा और उनसे प्रार्थना की कि वह उसकी कामना पूरी होने दें।

६. तथागत ने मौन रहकर स्वीकार किया।[३]

४. आम्रपाली का 'दान'

१. उस समय तथागत 'नादिका' में ठहरे हुए थे, और स्थान-परिवर्तन चाहते थे। उन्होंने आनन्द को सम्बोधित किया और कहा—"आनन्द! आ, हम वैशाली चलें।"

२. 'बहुत अच्छा' कह आनन्द ने स्वीकार किया।

३. तब महान् भिक्षुसंघ के साथ तथागत वैशाली पधारे। वहाँ वे वैशाली में आम्रपाली के आम्रवन में रहे।

४. तब आम्रपाली गणिका ने सुना कि भगवान् बुद्ध आये हैं और उसी के आम्रवन में ठहरे हैं। उसने कई राजकीय रथ जुतवाये और उनमें से एक में स्वयं बैठकर वह वैशाली की ओर से अपने उद्यान में गई। शेष रथों में उसकी अनुचर सेविकायें थीं। जहाँ तक रथ से जाया जा सकता था वह रथ से गई। उसके बाद वह रथ से उतर कर जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुंची और जाकर अभिवादनपूर्वक एक ओर बैठ गई। जब वह वहाँ बैठी थी, उसे भगवान् बुद्ध का कल्याणकारी 'प्रवचन' सुनने को मिला।

५. तब आम्रपाली गणिका ने तथागत को दूसरे दिन के भोजन के लिये निमंत्रित किया।

६. तथागत ने उसे मौन रहकर स्वीकार किया। जब आम्रपाली को मालूम हुआ कि उसका निमंत्रण स्वीकृत हो गया है, वह अपने स्थान से उठी और अभिवादन कर चुकने के अनन्तर प्रदक्षिणा कर चली गई।

७. अब वैशाली के लिच्छवियों ने सुना कि भगवान् बुद्ध वैशाली आये हैं और आम्रपाली के उद्यान में ठहरे हैं। वे भी भगवान् बुद्ध को निमन्त्रण देना चाहते थे। उन्होंने भी बहुत से राजकीय रथ जुतवाये और अपने वैशाली के सभी साथियों सहित तथागत की सेवा में उपस्थित हुए।

८. इधर से वे आ रहे थे और उधर से आम्रपाली आ रही थी।

९. और आम्रपाली लिच्छवियों के रथों से रथ, पहिये से पहिया और धुरी से धुरी टकराती हुई पास से गुजरी। लिच्छवियों ने पूछा—"आम्रपाली! क्या बात है जो आज तू हमसे रथ टकराती हुई जा रही है?"

१०. "स्वामियो! तथागत प्रमुख भिक्षुसंघ ने कल के लिये मेरा भोजन का निमंत्रण स्वीकार कर लिया है।"

११. "आम्रपाली! हमसे एक लाख ले ले, यह कल का भोजन हमें कराने दे।"

१२. "स्वामियो! यदि आप उप-नगरों सहित समस्त वैशाली भी मुझे दें, तब भी मैं यह कल का भोजन आपको नहीं कराने दे सकती।"

१३. लिच्छवि हाथ मलते हुए आगे बढ़े। वे कहते जा रहे थे:— "इस आम्रपाली ने हमें हरा दिया, इस आम्रपाली ने हमें हरा दिया।" अन्त में आम्रपाली के उद्यान में पहुंचे।

१४. यद्यपि वे जानते थे कि आम्रपाली बाजी मार ले गई है, तो भी उन्होंने सोचा कि हम भगवान् बुद्ध के पास चलें। हो सकता है कि वे अब भी हमारे निमन्त्रण को प्रथम स्थान दे दें।

१५. जब भगवान् बुद्ध ने लिच्छवियों को, दूर से ही, आते देखा तो उन्होंने भिक्षुओं को सम्बोधित करके कहा—"जिन भिक्षुओं ने कभी देवताओं को न देखा हो, वे इन लिच्छवियों को देखें। वे इस लिच्छवि-मण्डली को देखें, वे इस लिच्छवि-मण्डली से अनुमान लगा लें—यह दिव्यलोक के देवताओं के समान हैं।"

१६. जहाँ तक रथों से जा सकते थे, वहाँ तक रथों से जाकर लिच्छवी उतर पड़े और तब जहाँ तथागत थे वहाँ पहुंचे और अभिवादन करके अपना स्थान ग्रहण किया।

१७. तब उन्होंने तथागत से प्रार्थना की—"भगवान्! कल के लिये हमारा निमन्त्रण स्वीकार करें।"

१८. "लिच्छवियो! कल के लिये तो मैंने आम्रपाली का निमंत्रण स्वीकार कर लिया है।"

१९. तब लिच्छवियों को निश्चय हो गया कि आम्रपाली उन पर बाजी मार ले गई। उन्होंने तथागत के वचनों का अनुमोदन किया, अपने स्थान से उठे और तथागत की वन्दना की। तदनन्तर वे तथागत की प्रदक्षिणा कर वहाँ से विदा हुए।

२०. रात बीत जाने पर आम्रपाली ने अपने निवासस्थान पर मधुर खादनीय-भोजनीय की तैयारी कराई और समय की सूचना भिजवाई, "समय हो गया, और भोजन तैयार है।"

२१. तथागत ने चीवर पहना तथा पात्र-चीवर ले भिक्षुसंघ सहित जहाँ आम्रपाली का निवास-स्थान था, वहाँ पधारे। वहाँ पहुंचकर वे अपने लिये तैयार किये गये आसन पर विराजमान हुए। तब आम्रपाली ने बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसंघ को मधुर खादनीय-भोजन से संतर्पित किया। वह अन्त तक स्वयं आग्रहपूर्वक परोसती रही।

२२. भोजन समाप्त हो चुकने पर जब तथागत अपना पात्र और हाथ धो चुके, आम्रपाली एक नीचा आसन लेकर बैठ गई। तब उसने तथागत से निवेदन किया:—

२३. "भगवान्! मैं अपना उद्यान बुद्ध-प्रमुख भिक्षु संघ को अर्पित करती हूँ।" तथागत ने मौन रहकर स्वीकार किया। तदनन्तर भगवान् बुद्ध ने दानानुमोदन करते हुए प्रवचन किया। इसके बाद तथागत आसन से उठ कर चले गये।[४]

५. विशाखा की दान-शीलता

१. विशाखा श्रावस्ती की एक बड़ी धनी महिला थी। उसके पुत्र-पौत्र बहुत थे।

२. जब तथागत श्रावस्ती में विहार कर रहे थे विशाखा जहाँ तथागत थे

वहाँ पहुंची और उन्हें अगले दिन का निमंत्रण दिया, जिसे तथागत ने स्वीकार कर लिया।

३. उस रात और दूसरे दिन सुबह भी भारी वर्षा हुई। भिक्षुओं ने अपने चीवरों को सूखा रखने के लिये उतार दिया और सारी वर्षा अपने नंगे बदन पर पड़ने दी।

४. जब दूसरे दिन तथागत भोजन समाप्त कर चुके, तो विशाखा एक नीचा आसन लेकर नजदीक बैठ गई और बड़ी विनम्रतापूर्वक बोली—"भगवान्! मैं आपसे आठ वर चाहती हूँ।"

५. तथागत बोले—"विशाखा! तथागत (बिना जाने) वर नहीं देते।"

६. विशाखा ने फिर निवेदन किया—"भगवान्! जो वर मैं मांगने जा रही हूँ वे उचित हैं और आपत्ति-रहित हैं।"

७. 'वर' मांगने की अनुमति मिल जाने पर विशाखा बोली—"भगवान्! मैं चाहती हूँ कि वर्षा-काल में मैं भिक्षु-संघ को चीवरों का दान कर सकूं। बाहर से आने वाले तथा बाहर जाने वाले भिक्षुओं को भोजन दे सकूं। रोगियों को भोजन दे सकूं। रोगियों की सेवा करने वालों को भोजन दे सकूं। भिक्षुओं को खीर (=दूध-भात) दान कर सकूं और भिक्षुणियों के लिये नहाने के वस्त्र का दान कर सकूं।"

८. "हे विशाखा! इन आठ वरों को मांगने का तेरा क्या कारण है, क्या प्रयोजन है?"

९. विशाखा बोली:—"भगवान्! मैंने अपनी नौकरानी को आज्ञा दी कि वह विहार जाये और भिक्षु संघ को भोजन के तैयार हो जाने की सूचना दे आये। मेरी नौकरानी गई। लेकिन जब वह विहार पहुंची तो उसने देखा कि पानी बरसते समय भिक्षु निर्वस्त्र थे। उसने सोचा, 'मैं भिक्षु नहीं हैं। ये नग्न तपस्वी हैं जो अपने शरीर पर पानी पड़ने दे रहे हैं!' वह चली आई और मुझे यही कहा। तब मैंने उसे दुबारा भेजा।

१०. "भगवान्! नग्नता अशुचि पूर्ण है। भगवान्! नग्नता से जुगुप्सा पैदा होती है। भगवान्! यही कारण है और यही प्रयोजन है कि मैं जीवन भर भिक्षु संघ को वर्षा ऋतु में पहनने के लिये वस्त्र देना चाहती हूँ।

११. "मेरी दूसरी मांग का कारण यह है कि बाहर से आने वाले भिक्षु, सीधे रास्तों से अपरिचित होने के कारण थके-थकाये आते हैं, वे नहीं जानते कि भिक्षा कहाँ मिलेगी। भगवान्! यही कारण है और यही प्रयोजन है कि मैं जीवन-भर आगन्तुक भिक्षुओं को भिक्षा देना चाहती हूँ।

१२. "मेरी तीसरी मांग इसलिये है कि एक बाहर जाने वाला भिक्षु यदि भिक्षाटन के लिये जायगा तो वह शेष भिक्षुओं से पीछे रह जा सकता है अथवा जहाँ

वह पहुंचना चाहता है वहाँ विशेष विलम्ब से पहुँचेगा, और वह अपने यहाँ से ही थका-थकाया रवाना होगा।

१३. "चौथे, यदि एक बीमार भिक्षु को ठीक पथ्य न मिले तो उसका रोग बढ़ भी जा सकता है और वह मर भी जा सकता है।

१४. "पांचवें, जो भिक्षु रोगी की सेवा शुश्रूषा में लगा है, उसे अपने लिये भिक्षाटन का समय नहीं मिल सकता।

१५. "छठे, यदि रोगी भिक्षु को ठीक औषध न मिले तो उसका रोग बढ़ जा सकता है और वह मर भी जा सकता है।

१६. "सातवें, भगवान्! मैंने सुना है कि तथागत ने 'क्षीर-पायास' (=खीर) की प्रशंसा की है क्योंकि इससे बुद्धि को स्फूर्ति मिलती है और भूख-प्यास दूर होती है। स्वस्थ आदमी के लिये यह पूरा भोजन है और रोगी के लिये यह पथ्य है; इसलिये मैं अपने जीवन-भर संघ को क्षीर-पायास का दान देना चाहती हूँ।

१७. "अन्तिम मांग भगवान्! मैं ने इसीलिये की है कि भिक्षुणियाँ नग्न ही अचिरवती नदी के तट पर स्नान करती हैं जहां गणिकायें भगवान्! भिक्षुणियों का यह कह कर मजाक उड़ाती हैं कि 'इस तरुण अवस्था में तुम्हारे 'ब्रह्मचर्य' का क्या मतलब है। जब बूढ़ी हो जाना तब 'ब्रह्मचर्य'' की रक्षा करना इस से तुम्हारे दोनों हाथों में लड्डू रहेंगे। भगवान्! स्त्री के लिये नग्नता बहुत बुरी बात है, वह जुगुप्सा पैदा करने वाली है।

१८. "भगवान्! ये ही कारण थे और ये ही प्रयोजन थे।"

१९. तब तथागत ने प्रश्न किया "विशाखे!! लेकिन अपने लिये तूने कौन-सा लाभ सोचकर इन आठ बातों की मांग की ?"

२०. विशाखाने उत्तर दिया–"भगवान्! नाना स्थानों में वर्षावास करने वाले भिक्षु तथागत के दर्शनार्थ श्रावस्ती आयेंगे। और तथागत के पास आकर वे सूचना देंगे और पूछेंगे 'भगवान्! अमुक और अमुक भिक्षु का शरीरान्त हो गया है। अब उसकी क्या गति है?' तब भगवान् जैसी जिस को गति होगी वह बतायेंगे, यदि वह सोतापन्न आदि मार्ग-फल प्राप्त रहा है तो वह बतायेंगे और यदि वह अर्हत हो गया रहा है, तो वह बतायेंगे।

२१. "और तब मैं उन भिक्षुओं के पास जाकर उन से पूछूंगी कि क्या यह भिक्षु कभी श्रावस्ती में रहा है ? यदि वे कहेंगे कि 'हाँ' तो मैं इस परिणाम पर पहुँच जाऊँगी कि अवश्य या तो उस भिक्षु ने वर्षावास के लिये चीवर प्राप्त किया होगा, या आगन्तुक भिक्षुओं का आहार प्राप्त किया होगा, या जाने वाले भिक्षु का आहार प्राप्त किया होगा, या रोगी का भोजन प्राप्त किया होगा, या रोगी शुश्रूषक का भोजन प्राप्त किया होगा, अथवा रोगी होने के कारण औषध प्राप्त की होगी अथवा नित्य मिलने वाली खीर प्राप्त की होगी।

२२. "तब मेरे मन में प्रसन्नता पैदा होगी, प्रसन्नता से आनन्द उपजेगा और आनन्द होने से सारा शरीर शान्ति को प्राप्त करेगा। शान्ति का अनुभव होने से दिव्य सुख का अनुभव होगा और उस सुख की अनुभूति में मुझे हृदय की शान्ति प्राप्त होगी। यह एक प्रकार से मेरे लिये श्रद्धा-बल आदि तथा सात सम्बोधि-अंगों की प्राप्ति होगी। भगवान्! अपने लिये मैंने यही लाभ सोचकर इन आठ बातों की मांग की।"

२३. तब तथागत ने कहा—"विशाखे! यह बहुत अच्छा है। यह बहुत अच्छा है कि तूने यह लाभ सोचकर तथागत से यह आठ वर मांगें हैं। जो 'दान' के पात्र है उन्हें जो दान दिया जाता है वह अच्छी भूमि में फल डालने के समान है जिससे खूब फसल होती है। लेकिन जो राग-द्वेष के वशीभूत हैं उनको दिया गया दान खराब भूमि में बीज डालने के समान है। दान ग्रहण करने वाले के राग-द्वेष मानो पुण्य की वृद्धि में बाधक हो जाते हैं।"

२४. तदनन्तर तथागत ने इन शब्दो द्वारा पुण्यानुमोदन किया :—"शील सम्पन्न उपासिका श्रद्धायुक्त चित्त से, लोभरहित होकर जो कुछ भी दान देती है, उसका वह दिव्य दान, दुःख के नाश का तथा दिव्य सुख की प्राप्ति का कारण होता है।

"वह अपवित्रता और मल-रहित होकर सुखी जीवन को प्राप्त होती है।

"कुशल-कर्म करने की ही आकांक्षा वाली वह सुख को प्राप्त होती है और उसे दान देने में ही आनन्द आता है।"[५]

२५. विशाखा ने पूर्वाराम-विहार संघ को दान कर दिया। वह दानशील-गृहस्थ उपासिकाओं में प्रथम थी।

१. महावग्ग (चतुर्थ भाणवार)—विनय पिटक।
२. चुल्लवग्ग (विनय पिटक)।
३. श्रामण्यफल-सुत्त (दीघ निकाय—अट्ठकथा)।
४. ़ापरिनिब्बाण-सुत्त (दीघ निकाय)।
५. विसाखा भाणवार, महावग्ग (विनय पिटक)।

दूसरा भाग

भगवान बुद्ध के विरोधी

१. जादू-टोना करके लोगों को धर्म-दीक्षा देने का दोषारोपण

१. एक बार भगवान् बुद्ध वैशाली के महावन में कूटागार शाला में ठहरे हुए थे। अब भद्दिय लिच्छवी तथागत के पास आया और बोला, "भगवान् ! लोग कहते है कि श्रमण गौतम एक जादूगर है, वह जादू-टोना जानता है और उससे दूसरे मतों के अनुयायियों का मत बदल देता है।

२. "जो ऐसा कहते हैं, उनका कहना है कि हम किसी भी तरह कोई अन्यथा बात नहीं कहना चाहते। भगवान् ! हम लिच्छवि-गण के लोग इस आरोप में विश्वास नहीं करते। लेकिन हम जानना चाहेंगे कि तथागत का स्वयं विषय में क्या कहना है।"

३. "भद्दिय ! सुनो। किसी बात को इसलिये मत मानो कि लोग कहते हैं, किसी बात को इसलिये मत मानो कि यह परम्परा से चली आई है, किसी बात को इसलिये मत मानो कि यह सुनी-सुनाई है, किसी बात को इसलिये मत मानो कि वह (धर्म–) ग्रन्थों में लिखी हुई है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह तर्क (–शास्त्र) के अनुसार है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह न्याय (–शास्त्र) के अनुसार है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि ऊपरी तौर पर वह मान्य प्रतीत होती है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह अनुकूल दृष्टि की है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह ऊपरी तौर पर सच्ची प्रतीत होती है तथा किसी बात को केवल इसलिये भी मत मानो कि वह किसी ऐसे आदरणीय व्यक्ति की कही हुई है जिसके बारे में तुम सोचते हो कि 'उसकी बात माननी ही चाहिये।'

४. "लेकिन, भद्दिय, यदि तुम अपने ही अनुभव से यह जान लो कि अमुक कर्म पाप-कर्म है या अमुक कर्म अकुशल-कर्म है, या अमुक कर्म विज्ञ पुरुषों द्वारा निन्द्य है, और अमुक कर्म हानिकर है, तो भद्दिय, ऐसे कर्म का तुम त्याग कर दो।

५. "अब जहाँ तक तुम्हारे प्रश्न का सम्बन्ध है मैं तुम से ही पूछता हूँ कि जो

लोग मुझ पर जादूगर होने का आरोप लगाते हैं, क्या वे महत्वाकांक्षी लोग नहीं हैं ?" भद्दिय बोला--"भगवान् ! वे हैं।"

६. "तो भद्दिय! क्या ऐसा आदमी जो महत्वाकांक्षी हो और लोभ के वशीभूत हो अपनी महत्वाकांक्षा पूरी करने के लिये झूठ नहीं बोलता वा दूसरे अकुशल-कर्म नहीं करता ?" "भगवान् ! करता है।"

७. "तो भद्दिय! जब ऐसा आदमी द्वेष और बदला लेने की भावना के वशीभूत हो जाता है, तो क्या वह उन लोगों के विरुद्ध जिन्हें वह समझता है कि वह उस की महत्वाकांक्षा के पथ के बाधक हैं; झूठे आरोप लगाने के लिये दूसरों को प्रेरित नहीं करता ?"

भद्दिय बोला:--"भगवान् ! करता है।"

८. "तो भद्दिय ! मैं तो इतना ही कहता हूँ। मैं कहता हूँ कि आओ, लोभ-युक्त विचारों के वशीभूत मत होओ। यदि तुम उन पर काबू रखोगे, तो तुम मन, वचन, कर्म से कोई काम ऐसा न करोगे, जिस के मूल में लोभ हो। द्वेष और मोह (=अविद्या) के वशीभूत मत होओ।"

९. "इसलिये भद्दिय ! जो श्रमण-ब्राह्मण मुझ पर यह आरोप लगाते हैं कि 'श्रमण गौतम एक जादूगर है, वह जादू-टोना जानता है और उससे दूसरे मतों के अनुयायियों का मत बदल देता है' वे झूठे हैं, मृषावादी हैं।"

१०. "भगवान् ! आप का यह जादू बड़े भाग्य की बात है। आप का यह जादू बड़े सौभाग्य की बात है। भगवान् ! क्या अच्छा हो कि मेरे सभी सगे-सम्बन्धियों पर आपका जादू चल जाये। निश्चय से, यह उनके हित और सुख के लिये होगा। भगवान्! यदि सभी क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र इसी जादू के वशीभूत हो जायें तो निश्चय से यह उनके हित और सुख के लिये होगा।"

११. "इसमें कोई सन्देह नहीं है भद्दिय ! यह बात निश्चित है भद्दिय ! कि यदि इस जादू के वशीभूत होकर सभी अकुशल-कर्मों का त्याग कर दें तो यह संसार के हित और सुख के लिये होगा।"

२. समाज पर व्यर्थ का भार होने का दोषारोपण

१. भगवान् बुद्ध पर यह भी आरोप लगाया गया था कि वह समाज पर भार-स्वरूप हैं और काम करके अपनी जीविका नहीं कमाते। आरोप और उसका उत्तर यहां दिया है--

२. एक बार भगवान् बुद्ध मगध जनपद के दक्षिण-गिरि प्रदेश में एकनाला नाम के ब्राह्मण ग्राम में रहते थे। उसी समय कृषि-भारद्वाज ब्राह्मण के पांच सौ हल, खेत बोने के लिये, जोते जा रहे थे।

३. पूर्वाह्न समय तथागत चीवर पहन तथा पात्र हाथ में ले वहां पहुँचे जहां

ब्राह्मण अपना काम कराने में लगा था और जहां थोड़ी ही देर पहले भोजन लाया गया था। वहाँ पहुंचकर तथागत एक ओर खड़े हो गये।

४. भिक्षा के निमित्त तथागत को वहाँ खड़े देखकर ब्राह्मण बोला—"श्रमण! मैं (हल) जोतता हूँ, (बीज) बोता हूँ; और तब खाता हूँ; तुम्हें भी (हल) जोतना चाहिये, (बीज) बोना चाहिये और तब खाना चाहिये।"

५. "ब्राह्मण! मै भी जोत-बोकर ही खाता हूँ।"

६. "मैं न कहीं श्रमण-गौतम का जुआ देखता हूँ, न हल देखता हूँ, न हल की फाल देखता हूँ, न बैलों को हांकने की पैनी देखता हूँ और न बैलों की जोड़ी ही देखता हूँ, तब भी आप का कहना है कि आप जोत बो कर खाते हैं।

७. "आप कृषक होने का दावा करते हैं, किन्तु हम आप के पास कृषि का एक भी साधन नहीं देखते। हमें अपनी कृषि के सम्बन्ध में समझायें कि आप कैसे कृषि करते हैं। हम उसके बारे में सुनना चाहते हैं।"

८. "मेरे पास श्रद्धा का बीज है, तपस्या रूपी वर्षा है, प्रज्ञा रूपी जोत और हल है, पाप-भीरुता का दण्ड है, विचार रूपी रस्सी है, स्मृति (=चित की जागरूकता) रूपी हल की फाल और पैनी है।

९. "वचन और कर्म में संयत रहना तथा भोजन की उचित मात्रा का ज्ञान। मैं अपनी खेती को बेकार-घास से मुक्त रखता हूँ और आनन्द की फसल काट लेने तक प्रयत्नशील रहने वाला हूँ। अप्रमाद मेरा बैल है और जो बाधायें देखकर भी पीछे मुंह नहीं मुड़ता—वह मुझे सीधा शान्ति-धाम तक ले जाता है, उस शान्ति स्रोत तक जहां दुःख का लवलेश नहीं है। इस प्रकार मैं अमृत की खेती करता हूँ। जो कोई, मेरी तरह खेती करता है उसके दुःखों का अन्त हो जाता है।"

१०. ऐसा कहने पर उस ब्राह्मण ने खीर भरी कांसे की थाली भगवान् बुद्ध को सर्मापित करनी चाही। बोला—"श्रमण गौतम! इसे ग्रहण करें। निस्सन्देह आप भी कृषक ही हैं; क्योंकि आप अमृत की खेती करते हैं।"

११. तथागत का उत्तर था—"गाथा (=उपदेश) कहने से जो प्राप्य है, वह मेरे लिये अखाद्य है। बुद्धिमान इस का समर्थन नहीं करते। तथागतों को यह सर्वथा अस्वीकृत है। जब तक यह धर्म विनय विद्यमान है, तब तक यही प्रथा बनी रहनी चाहिये। दूसरे श्रमण ब्राह्मण हैं जो संयत हैं, जो शान्त हैं, जिनका सम्यक् आचरण है; जो निर्दोष हैं—ऐसे जो पुण्य क्षेत्र हैं, तू उन्हीं को यह दे।"

१२. यह बात सुनी तो ब्राह्मण ने तथागत के चरणों में सिर रखकर कहा—"अद्भूत है श्रमण गौतम! सर्वथा अद्भूत है। जैसे कोई आदमी गिरे को उठा दे, या छिपे को उघाड़ दे, या मार्ग-भ्रष्ट को रास्ता दिखा दे; या अन्धेरे में प्रदीप जला दे ताकि आँख वाले चारों ओर की चीजें देख सकें—इसी प्रकार तथागत ने नाना प्रकार से अपना धर्म स्पष्ट कर दिया है।

१३. "मैं बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण ग्रहण करता हूँ। मुझे आपके हाथों प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले।" इस प्रकार कृषि-भारद्वाज ब्राह्मण ने भी प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा ग्रहण की।[२]

३. सुखी गृहस्थियों को उजाड़ने का दोषारोपण

१. यह देखकर कि मगध के बहुत से कुल-पुत्र तथागत के शिष्य होते चले जा रहे हैं; कुछ लोग असंतुष्ट और क्रोधित हो गये। कहने लगे; 'श्रमण गौतम माता-पिता को सन्तान-विहीन बना रहा है, श्रमण गौतम स्त्रियों को विधवा बना रहा है, श्रमण गौतम कुलों को उजाड़ रहा है।'

२. "उसने एक हजार जटिलों को दीक्षित किया है, उसने सञ्जय के अनुयायी इन ढाई सौ परिव्राजकों को दीक्षित किया है और मगध के यह बहुत से कुल, पुत्र श्रमण गौतम की अधीनता में पवित्र जीवन व्यक्ति कर रहे हैं। अब आगे क्या होने वाला है ? कोई नहीं कह सकता।"

३. और लोग जब भिक्षुओं को देखते तो उन्हें यह कह कह कर चिढ़ाते भी थे: 'महाश्रमण मगधों के राजगृह आया है। वह सञ्जय के सभी अनुयायियों को अपने साथ लिये फिरता है। अब पता नहीं किसकी बारी है ?'

४. भिक्षुओं ने यह आरोप सुना तो तथागत को जाकर कहा।

५. तथागत ने उत्तर दिया:—"भिक्षुओं! यह हल्ला बहुत दिन नहीं रहेगा। यह सप्ताह भर रहेगा। उस के बाद अपने ही आप शान्त हो जायगा।"

६. "और भिक्षुओ, यदि वे तुम्हें चिढ़ायें तो तुम यह कहकर उनका उत्तर दे सकते हो कि जो महावीर हैं, जो तथागत हैं, वे सद्धर्म के ही रास्ते ले जाते हैं। यदि बुद्धिमान जन किसी को सद्धर्म के रास्ते ले जाते हैं तो उसमें किसी को भी शिकायत का कोई कारण नहीं होना चाहिये। मेरे धर्म में 'जबर्दस्ती' के लिये स्थान नहीं। आदमी चाहे तो घर छोड़कर प्रव्रजित हो सकता है और आदमी चाहे तो घर पर ही बना रह सकता है।"

७. जब भिक्षुओं ने तथागत के आदेशानुसार आलोचकों को उत्तर दिया तो लोग समझ गये—'शाक्यपुत्र श्रमण गौतम लोगों को धर्म के रास्ते ले जाते हैं, अधर्म के रास्ते नहीं।' उन्होंने तथागत को दोष देना बन्द कर दिया।[३]

४. तैर्थिकों द्वारा हत्या का मिथ्यारोप

१. अन्य सम्प्रदायों के साधुओं को ऐसा लगने लगा था कि श्रमण गौतम के कारण लोग उनका आदर-सत्कार कम करने लगे हैं, इतना ही नहीं यह भी नहीं जानते कि वे हैं भी या नहीं ?

२. "हम देखें कि किसी षड्यन्त्र की मदद से हम जनता में उसका प्रभाव घटा सकते हैं या नहीं ? शायद सुन्दरी की सहायता से हम ऐसा कर सकें" —तैर्थिक सोचने लगे।

३. वे सुन्दरी के पास गये और बोले—"बहन ! तुम बहुत ही सुन्दर और मनोरम हो। यदि तुम श्रमण गौतम के बारे में कुछ अपवाद फैला दो तो हो सकता है कि लोग उसका विश्वास कर लें और श्रमण गौतम का प्रभाव घट जाय।"

४. सुन्दरी प्रतिदिन शाम को हाथों में फूलों की मालायें तथा नाना प्रकार की सुगन्धियां लेकर जेतवन की ओर जाने लगी। जेतवन से लौटने वाले लोग पूछते —"सुन्दरी ! कहां जा रही है ?" वह उत्तर देती "मैं श्रमण गौतम के पास उसकी गन्धकुटी में रहने जा रही हूँ।"

५. और तैर्थिकों के उद्यान में रात बिता कर वह प्रातः काल होने पर उधर से लौटती। यदि कोई उस से पूछता कि तू रात भर कहां रही, तो वह उत्तर देती— 'श्रमण गौतम के पास।'

६. कुछ दिनों के बाद तैर्थिकों ने हत्यारों को कुछ ले देकर सुन्दरी की हत्या करवा दी और उसकी लाश को जेतवन के पास की कूड़े की ढेरी पर फिकवा दिया।

७. तब उन तैर्थिकों ने सरकारी कर्मचारियों तक यह सूचना भिजवाई कि सुन्दरी रोज जेतवन आया-जाया करती थी और अब वह दिखाई नहीं देती है।

८. सरकारी अफसरों को साथ लेकर उन्होंने सुन्दरी की लाश को कूड़े की ढेरी पर से खोज निकाला।

९. तब तैर्थिकों ने तथागत के श्रावकों पर आरोप लगाया कि अपने शास्ता की लज्जा ढकी रखने के लिये उन्होंने सुन्दरी को मार डाला।

१०. लेकिन हत्यारे आपस में इस रुपये के बटवारे के बारे में जो उन्हें सुन्दरी की हत्या करने के लिये मिला था, एक शराब की दुकान पर बैठे-बैठे लड़ने लगे।

११. अफसरों ने तुरन्त उन्हें पकड़ लिया। उन्होंने अपना अपराध स्वीकार किया और उन तैर्थिकों को भी फंसाया जिनकी प्रेरणा से उन्होंने वह अपराध किया था।

१२. इस प्रकार तैर्थिकों का रहा-सहा प्रभाव भी जाता रहा।

५. तैर्थिकों द्वारा अनैतिकता का मिथ्यारोप

१. सूर्योदय के साथ ही जैसे जुगनु अस्त हो जाते हैं, वह ही दशा तैर्थिकों की हुई। लोगों ने उनको भेंट-पूजा भी देनी बन्द कर दी और उनका आदर-सत्कार भी करना बन्द कर दिया।

२. वह चौरस्तों पर खड़े हो हो कर चिल्लाने लगे—"यदि श्रमण गौतम पूर्ण ज्ञानी (=बुद्ध) है तो हम भी हैं। यदि श्रमण गौतम को दान देने से पुण्य लाभ

होता है तो हमें भी दान देने से पुण्य लाभ होगा। इसलिये हमारी भेंट-पूजा करो।"

३. लोगों ने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया। तब उन्हों ने छिपकर एक षड्यन्त्र रचने की सोची जिससे लोगों की नजर में संघ को गिराया जा सके।

४. उस समय श्रावस्ती में चिञ्चा नाम की एक ब्राह्मणी (?) परिव्राजिका रहती थी। उसका रूप-रंग अत्यन्त आकर्षक था और उसकी भाव-भङ्गिमा मन को लुभाने वाली थी।

५. षड्यन्त्रकारियों में एक दुष्ट ने परामर्श दिया कि चिञ्चा की सहायता से बुद्ध के बारे में अपवाद फैलाना और उसका लाभ-यश घटाना आसान होगा। शेष लोग सहमत हो गये।

६. एक दिन चिञ्चा तैर्थिकों के उद्यान में आई और अभिवादन कर पास बैठ गई। लेकिन किसी ने उससे बातचीत नहीं की।

७. इस पर चकित होकर वह बोली:—"मैंने आप का कुछ अपराध किया है? मैंने आप को तीन बार अभिवादन किया है और आप मुझ से एक शब्द नहीं बोलते।"

८. तैर्थिक बोले—"बहन! क्या तू इतना भी नहीं जानती कि श्रमण गौतम की जन-प्रियता हमारे लाभ-सत्कार में बड़ी बाधक हो रही है?" "मैं नहीं जानती। क्या मैं इस विषय में कुछ कर सकती हूँ?"

९. "बहन! यदि तू हमारा कुछ भला करना चाहती है, तो अपने प्रयास से श्रमण गौतम के बारे में अपवाद फैला दे जिससे वह जन-प्रिय न रहे।" 'बहुत अच्छा, इस विषय में आप मुझ पर निर्भर रहें' कह वह वहां से चल दी।

१०. 'स्त्री चरित्र' दिखाने में चिञ्चा पारंगत थी। जब लोग जेतवन से बुद्ध के प्रवचन सुनकर लौटने वाले होते, तो रक्तावरणा चिञ्चा हाथ में फूलों की माला और सुगन्धियां लिये जेतवन की ओर जाती दिखाई देती।

११. यदि कोई प्रश्न करता—"इस समय कहां जा रही है?" वह उत्तर देती, "तुम्हें इससे क्या लेना-देना?" जेतवन के समीप तीर्थिकाराम में रात बिताकर वह सुबह के समय शहर की ओर लौटती, जब शहर के लोग बुद्ध के दर्शनार्थ जेतवन की ओर जाते होते।

१२. यदि कोई उससे पूछता—"रात कहां बिताई?" वह उत्तर देती, "तुम्हें इस से क्या लेना-देना? मैंने जेतवन में श्रमण गौतम के साथ (उसकी) गन्धकुटी में रात बिताई।" किसी किसी के मन में कुछ शंका पैदा हो जाती।

१३. चार महीने बीतने पर उसने अपने पेट के गिर्द कुछ पुराने चीथड़े लपेट कर उसे ऊँचा कर लिया और कहना आरम्भ किया कि श्रमण गौतम से उसे गर्भ ठहर गया है। कोई कोई शायद विश्वास भी कर लेते थे।

१४. नौवें महीने में उसने अपने पेट पर एक लकड़ी का टुकड़ा बांध लिया और विषैले कीड़ों से देह कटाकर हाथ-पैर फुला लिये और जिस समय तथा जिस स्थान पर भगवान् बुद्ध भिक्षुओं और गृहस्थों को प्रवचन दे रहे थे वहीं पहुँच कर कहने लगी: "हे महान् उपदेशक ! तुम लोगों को बहुत उपदेश देते हो। तुम्हारी वाणी बड़ी मधुर है और तुम्हारे होंठ बड़े कोमल हैं। तुम्हारे संसर्ग से मुझे गर्भ ठहर गया है और मेरा समय नजदीक आ गया है।

१५. "तुमने मेरी प्रसूति की कोई व्यवस्था नहीं की। उस अवस्था के योग्य पथ्य आदि भी मुझे कहीं दिखाई नहीं देता। यदि तुम स्वयं इसकी व्यवस्था नहीं कर सकते, तो अपने शिष्यों में से किसी को—चाहे कोशल नरेश को, चाहे अनाथ-पिण्डक को अथवा चाहे विशाखा को—कहकर इसकी व्यवस्था क्यों नहीं कराते ?

१६. "लगता है कि तुम किसी कुमारी को अंगीकार करना ही जानते हो, लेकिन उसके परिणाम-स्वरूप जो सन्तान जन्म ग्रहण कर ले उसकी पालन-विधि से अपरिचित हो।" उपस्थित जनता मूक बनी बैठी रही।

१७. भगवान् बुद्ध ने अपना प्रवचन बीच में रोक कर बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया—"बहन ! तूने जो कहा है उसके सत्यासत्य का ज्ञान केवल मुझे और तुझे ही है।"

१८. चिञ्चा जोर जोर से खांसते हुए बोली—"हां हां, ऐसी बात का ज्ञान हम दोनों को ही हो सकता है।"

१९. उसके खांसने से वह गांठ जिससे उसने वह लकड़ी पेट पर बांधी हुई थी, ढीली पड़ गई और वह लकड़ी खिसक कर उसके पांव पर आ पड़ी। चिञ्चा कहीं की न रही।

२०. लोगों ने उसे डण्डे और पत्थर मार मार कर वहां से भगा दिया।[४]

६. देवदत्त चचेरा-भाई तथा शत्रु

१. देवदत्त भगवान् बुद्ध का चचेरा भाई था। लेकिन आरम्भ से ही उसे उनसे ईर्षा थी और वह अन्तिम दर्जे की घृणा करता था।

२. जब बुद्ध घर छोड़ कर चले गये तो देवदत्त ने यशोधरा से प्रेम बढ़ाने का प्रयास किया।

३. एक बार जब यशोधरा के सोने का समय हो गया था, वह किसी से रोका नहीं गया और भिक्षु रूप में वह यशोधरा के शयनागार में पहुंच गया। यशोधरा ने पूछा—"श्रमण ! तू क्या चाहता है ? क्या तू मेरे लिये मेरे स्वामी के पास से कोई सन्देश लेकर आया है ?"

४. "तुम्हारा पति, उसे तुम्हारी क्या खाक चिन्ता है। वह तुम्हें निर्दयता-पूर्वक तुम्हारे सुख-निवास में छोड़ कर चला गया है।"

५. यशोधरा ने उत्तर दिया—"लेकिन ऐसा उन्होंने बहुतों के कल्याण के लिये किया।"

६. "जो भी हो, अब समय है, उससे इस क्रूर निर्दयता का बदला लो।"

७. "श्रमण ! जबान बन्द कर। तेरे विचार और वाणी दुर्गन्धि से भरी है।"

८. "यशोधरा ! क्या तू ने मुझे पहचाना नहीं ? मैं तेरा प्रेमी देवदत्त हूँ।"

९. "देवदत्त ! मैं तुझे झूठा और दुष्ट समझती थी। मैंने कभी यह नहीं सोचा था कि तू कोई अच्छा श्रमण बन सकेगा, लेकिन मुझे पता नहीं था कि तू इतना कमीना है।"

१०. देवदत्त चिल्लाया—"यशोधरा ! यशोधरा ! मैं तुझसे प्रेम करता हूँ। तेरे पति के मन में तो मेरे लिये घृणा छोड़ कर और कुछ नहीं। वह तुम्हारे प्रति निर्दयी रहा है। मुझसे प्रेम कर और उससे बदला ले।"

११. यशोधरा का खिंचा हुआ पीला चेहरा रंजित हो उठा। उसकी आंखों से आंसू बहने लगे।

१२. "देवदत्त ! क्रूर तुम हो। यदि तुम्हारे प्रेम में कुछ सचाई भी होती तो भी यह मेरा अपमान होता। तुम्हारा यह कहना कि तुम मुझसे प्रेम करते हो तो महज तुम्हारा मृषावाद है।

१३. "जब मैं तरुण और सुन्दर थी, तब तो तुमने मेरी ओर आंख उठा कर देखा नहीं। अब मैं जरा जीर्ण हो चली हूँ, रंज से दुखी हूँ, और तू रात के समय अपने पाप-पूर्ण प्रेम की बात करने आया है ! तू नीच है। तू कायर है।"

१४. और वह जोर से चिल्लाई—"देवदत्त ! निकल यहां से।" देवदत्त चला गया।

१५. देवदत्त भगवान् बुद्ध से बड़ा अप्रसन्न था क्योंकि उन्होंने संघ में उसे प्रधान पद न देकर सारिपुत्त को प्रधान बना दिया था। देवदत्त ने तीन बार तथागत के प्राणों का अन्त कर देने का प्रयास किया। लेकिन सफल नहीं हुआ।

१६. एक बार भगवान् बुद्ध गृध्रकूट पर्वत की छाया में ऊपर-नीचे चहल-कदमी कर रहे थे।

१७. देवदत्त ऊपर चढ़ा और जाकर एक बड़ा भारी पत्थर नीचे लुढ़का दिया ताकि तथागत का प्राणांत ही हो जाय। लेकिन वह पत्थर जाकर एक दूसरी चट्टान पर गिरा और वहीं गड़ गया। उसकी एक छोटी सी पच्चर आकर तथागत के पांव में लगी, जिससे रक्त बहने लग गया।[1]

१८. उसने भगवान् बुद्ध की जान लेने का दूसरी बार भी प्रयास किया।

१९. इस बार देवदत्त राजकुमार अजात-शत्रु के पास गया और बोला—

"मुझे कुछ आदमी दो ।" और अजातशत्रु ने अपने आदमियों को आज्ञा दी कि देवदत्त का कहना करें ।

२०. तब देवदत्त ने एक आदमी को आज्ञा दी—'मित्र ! जाओ श्रमण गौतम अमुक जगह है । जाकर उसे जान से मार आओ ।' आदमी जाकर वापस लौट आया और बोला—"मैं तथागत का प्राण लेने में असमर्थ हूँ ।"

२१. उसने तथागत के प्राणांत का एक तीसरा प्रयास भी किया ।

२२. इस समय राजगृह में नाळागिरी नाम का एक बड़ा भयानक, नर-हत्यारा हाथी था ।

२३. देवदत्त राजगृह पहुँचा और वहाँ हाथियों के अस्तबल में उसने हथवानों और हाथियों की देख-भाल रखने वालों को कहा:—"मित्रो ! मैं राजा का सम्बन्धी हूँ । मैं जिस आदमी को चाहूँ उसका पद बढ़वा सकता हूँ और जिस आदमी का चाहूँ उसकी वेतन वृद्धि या राशन वृद्धि करा सकता हूँ ।

२४. "इसलिये मित्रो ! जब श्रमण गौतम इस सड़क से गुजरे तो नाळागिरी को छोड़ दो ।"

२५. देवदत्त ने भगवान् बुद्ध की हत्या करने के लिये धनुष-बाण-धारियों को भी कहा । उसने मदमस्त हाथी भी छुड़वाया ।

२६. लेकिन, वह असफल रहा । जब लोगों को उसके इन दुष्ट प्रयासों की जानकारी हो गई तो जनता ने उसका सारा लाभ यश बंद कर दिया और राजा अजातशत्रु ने भी उससे मिलना-जुलना बंद कर दिया ।

२७. अब जीवित रहने के लिये उसे घर-घर भीख मांगनी पड़ती थी । अजातशत्रु से देवदत्त को बहुत कुछ प्राप्त होता था । लेकिन यह लाभ-सत्कार बन्द हो गया । नाळागिरी की घटना के बाद देवदत्त का रहा सहा प्रभाव भी समाप्त हो गया ।

२८. अपनी करतूतों से अप्रिय बन जाने के कारण देवदत्त मगध छोड़कर कोशल जनपद चला गया । वहां उसे राजा प्रसेनजित से आशा थी । लेकिन राजा प्रसेनजित ने भी उसे घृणा की दृष्टि से देखा और वहां से भगा दिया ।

७. ब्राह्मण तथा भगवान बुद्ध

१. एक बार जब भगवान् बुद्ध बहुत से भिक्षुओं के साथ कोशल-जनपद में चारिका कर रहे थे, वे थून नाम के एक ब्राह्मण-ग्राम में पहुंचे ।

२. थून के ब्राह्मण गृहपतियों ने समाचार सुना ! "श्रमण गौतम हमारे गांव के खेतों तक आ पहुँचा है ।"

३. वे ब्राह्मण गृहपति अश्रद्धालु थे, मिथ्या-दृष्टि थे और स्वभाव से क्रोधी थे ।

४. उन्होंने सोचा:—यदि श्रमण गौतम गांव में आ गया और दो तीन दिन यहाँ ठहर गया तो सभी लोग उसके उपासक हो जायेंगे। तब ब्राह्मण-धर्म के लिये कोई सहारा नहीं रहेगा। हमें उसका गांव में आना ही रोक देना चाहिये।"

५. गाँव तक पहुँचने के लिये एक नदी पार करनी पड़ती थी। तथागत का गांव में आना रोकने के लिये ब्राह्मणों ने नदी पार करने के सभी पत्तनों से नौकायें हटा ली और जो पुल आदि थे उन्हें निकम्मा बना दिया।

६. उन्होंने एक कुँए के अतिरिक्त शेष सभी कुओं को घास-फूस से भर दिया और पानी के प्याव तथा विश्राम गृहों आदि को छिपा दिया।

७. भगवान् बुद्ध ने उनकी करतूतों की कहानी सुनी तब भी उन पर दया कर अपने भिक्षुओं सहित उन्होंने नदी पार की। चलते चलते वे थून नामक ब्राह्मण ग्राम में आ पहुँचे।

८. सड़क छोड़कर वे एक वृक्ष के नीचे आ बैठे। उस समय पानी लिये बहुत सी स्त्रियाँ भगवान् बुद्ध के पास से गुजर रही थीं।

९. उस गाँव में एक निश्चय हो चुका था, "यदि श्रमण गौतम इस गाँव में आ जाय तो उसका कुछ भी स्वागत-सत्कार नहीं होना चाहिये। यदि वह किसी घर पर पहुंचे तो न उसे और न उसके भिक्षुओं को ही किसी भी प्रकार का अन्न-जल दिया जाय।"

१०. एक ब्राह्मण की दासी पानी का घड़ा लिये जा रही थी। उसने तथागत और भिक्षुओं को देखा तथा जाना कि वे थके और प्यासे हैं। श्रद्धा-प्रसन्न होने के कारण उसने उन्हें पानी देना चाहा।

११. उसने अपने मन में सोचा, "यद्यपि इस गांव के लोगों का निश्चय है कि श्रमण गौतम को कुछ भी न दिया जाय और उसके प्रति किसी भी प्रकार से सत्कार की भावना तक न प्रदर्शित की जाय, तो भी यदि मैं इन 'पुण्य-क्षेत्रों' को पाकर भी, इन्हें थोड़ा पानी देकर भी अपने कल्याण की आधार-शिला न रखूंगी तो मैं इस दुःख से कब मुक्त होऊंगी ?"

१२. "मालिको! चाहे जो हो, चाहे इस ग्राम के रहने वाले सभी लोग मिलकर मुझे मारें या बांध डालें, तब भी मैं ऐसे 'पुण्य-क्षेत्र' में पानी सींचूंगी ही।"

१३. यद्यपि दूसरी स्त्रियों ने उसे रोकने की कोशिश की, किन्तु अपने दृढ़-संकल्प के कारण अपनी जान तक की परवाह न करके, उसने अपने सिर से पानी का घड़ा उतारा, उसे एक ओर रखा और तथागत के पास आई। उसने उन्हें पानी दिया। तथागत ने पांव धोये और पानी पिया।

१४. उसके ब्राह्मण मालिक ने सुना कि उसने तथागत को पानी दिया है। "इसने गांव का नियम भंग कर दिया है, और लोग मुझे दोष दे रहे हैं' सोच वह गुस्से

के मारे दांत पीसता हुआ आया और उसे जमीन पर गिरा कर लातों और घूंसों से पीटने लगा। उस ब्राह्मण की मार से वह मर ही गई।[१]

(ii)

१. दोन नामक ब्राह्मण तथागत के पास आया और उन्हें अभिवादन किया। तदनन्तर कुशल-समाचार पूछा और एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए दोन ब्राह्मण नें तथागत से शिकायत की :–

२. 'श्रमण गौतम ! मैं ने लोगों को यह कहते सुना है कि श्रमण गौतम किसी वृद्ध, वयोवृद्ध आयु-प्राप्त-ब्राह्मण के आगमन पर न उठते हैं और न उन्हें बैठने के लिये आसन देते हैं।

३. "श्रमण गौतम ! क्या यह ऐसा ही है कि श्रमण गौतम किसी वृद्ध, वयोवृद्ध, आयु प्राप्त ब्राह्मण के आगमन पर न उठते हैं और न उन्हें बैठने के लिये आसन देते हैं। श्रमण गौतम ! यह तो ठीक नहीं है।"

४. "दोन ! क्या तुम अपने आप को ब्राह्मण समझते हो ?"

५. "श्रमण गौतम ! यदि कोई किसी ब्राह्मण के बारे में ठीक ठीक कुछ कहना चाहे तो उसे कहना चाहिये कि ब्राह्मण अपनी माता तथा पिता दोनों की ओर से सुजात होता है, सात पूर्व पीढ़ियों तक पवित्र होता है, जन्म की दृष्टि से सर्वथा निर्दोष अध्यायी, वेदमन्त्रज्ञ, अक्षर और प्रभेदों सहित तीनों वेदों में पारङ्गत, शद्व-शास्त्र का ज्ञाता, इतिहास-पुराण का जानकार, काव्य और व्याकरण का पण्डित, महापुरुष-लक्षणों का कोविद विश्व-चिंतक होता है, और श्रमण गौतम ! मेरे बारे में भी ठीक ठीक यह कहा जा सकता है क्योंकि मैं भी माता-पिता दोनों की ओर से सुजात हूँ. . . .विश्व-चिंतक हूँ।"

६. "दोन ! जो पुराने मन्त्र निर्माता, मन्त्र रचयिता, मन्त्र धर ब्राह्मण हैं, जिन्हें अपने मन्त्रों का अक्षरशः शद्वशः ज्ञान है :– जैसे अट्ठक, वामक, यमदेव, विश्वमित्र, यमदग्नि, अङ्गीरस, भारद्वाज का कहना है कि ब्राह्मण पांच तरह के होते हैं–(१) ब्रह्म-सदृश ब्राह्मण, (२) देव-सदृश ब्राह्मण, (३) बन्धन-युक्त ब्राह्मण, (४) बंधन भंजक ब्राह्मण तथा (५) अन्त्यज ब्राह्मण। अब तुम इन पांच प्रकार के ब्राह्मणों में से किस प्रकार के ब्राह्मण हो ?"

७. "श्रमण गौतम ! मुझे ब्राह्मणों के पांच प्रकारों की जानकारी नहीं है। किन्तु तब भी मैं मानता हूँ कि हम ब्राह्मण हैं। आप हमें धर्म का उपदेश दें, ताकि हमें पांच प्रकार के ब्राह्मणों की जानकारी हो।"

८. "ब्राह्मण ! तो ध्यान देकर सुनो। मैं कहता हूँ।"

९. "बहुत अच्छा" उसने कहा। तब तथागत बोले—

१०. "हे दोन ! अब एक ब्राह्मण ब्रह्म-सदृश कैसे होता है ?"

११. "हे दोन ! एक ब्राह्मण को लो जो माता पिता दोनों की ओर से सुजात हो, सात पूर्व-पीढ़ियों तक पवित्र हो, जन्म की दृष्टि से सर्वथा निर्दोष—वह अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य-वास करता है, वह अधर्मानुसार नहीं—बल्कि धर्मानुसार आचार्य को दक्षिणा चुकाने में रत रहता है।

१२. "और दोन ! धर्मानुसार का क्या मतलब है? वह न कृषि से, न व्योपार से, न ग्वालेपन से, न धनुर्धारी बन, न राजकर्मचारी बन और न किसी दूसरे पेशे से ही अपनी जीविका कमाता है। वह जीविका के लिये भिक्षाटन ही करता है, भिक्षा पात्र का आदर करता है।

१३. "वह अपनी गुरु-दक्षिणा चुकाता है, सिर दाढ़ी मुंड़वाता है, काषाय-वस्त्र धारण करता है और गृह त्याग कर अनागरिक हो जाता है।

१४. "इस प्रकार घर से बेघर हो वह एक दिशा को, दूसरी दिशा को, तीसरी दिशा को, चौथी दिशा को ऊपर, नीचे—सभी दिशाओं को मैत्री-भावना से युक्त होकर विहार करता है—दूर तक जाने वाली, प्रशस्त, असीम, घृणा वा द्वेष से सर्वथा शून्य।

१५. "वह करुणा युक्त हो विहार करता है........मुदिता युक्त हो विहार करता है.....उपेक्षा युक्त हो विहार करता है—दूर तक जाने वाली, प्रशस्त, असीम, घृणा वा द्वेष से सर्वथा शून्य।

१६. "इस प्रकार इस चारों ब्रह्म-विहारों में विहार कर, मृत्यु होने पर, शरीर के न रहने पर वह ब्रह्म-लोक गामी होता है। हे दोन ! इस प्रकार एक ब्राह्मण ब्रह्म-सदृश होता है।

१७. "हे दोन ! एक ब्राह्मण देव-सदृश कैसे होता है?

१८. "हे दोन ! अब एक ब्राह्मण को लो जो पहले ब्राह्मण की ही तरह माता तथा पिता दोनों की ओर से सुजात है......वह न कृषि से, न व्यापार से... अपनी जीविका कमाता है। वह जीविका के लिये भिक्षाटन......करता है। वह अपनी गुरु दक्षिणा चुकाता है और अधर्मानुसार नहीं बल्कि धर्मानुसार पत्नि ग्रहण करता है।

१९. "इस विषय में धर्मानुसार का मतलब क्या है? वह किसी ऐसी ब्राह्मणी को ग्रहण नहीं करता जो खरीदी-बेंची गई हो, बल्कि ऐसी ही जिस के हाथ पर जल डाला गया हो। वह एक ब्राह्मणी के ही पास जाता है, किसी अन्त्यज, किसी बहेलिये, किसी बंस-फोड़, किसी रथ-कार कथवा किसी आदिवासी की लड़की के पास नहीं। वह बच्चे वाली स्त्री के पास नहीं जाता, न दूध पिलाने वाली स्त्री के पास जाता है और न उसके पास जो ऋतुनी न हो।

२०. "दोन ! वह बच्चे वाली के पास क्यों नहीं जाता? यदि वह जाये तो निश्चय से बालक या बालिका का जन्म अपरिशुद्ध होगा। और वह दूध पिलाने

वाली के पास क्यों नहीं जाता ? यदि वह जाये तो निश्चय से बालक या बालिका का दूध-पान अपरिशुद्ध होगा।

२१. "और जो ऋतुनी नहीं है उसके पास भी वह क्यों नहीं जाता ? हे दोन ! यदि एक ब्राह्मण जो ऋतुनी नहीं है उसके पास नहीं जाता है तो वह कभी भी उसके लिये कामाग्नि की तृप्ति का साधन नहीं बनती, वह उस के लिये केवल सन्तान की जननी ही बनी रहती है।

२२. "और जब विवाहित जीवन से उसे सन्तान की प्राप्ति हो जाती है वह सिर दाढ़ी मुडवाता है......और गृह-त्याग अनागरिक हो जाता है...

२३. "और इस प्रकार घर से बेघर हो वह काम-भोगों की तृष्णा को त्याग प्रथम ध्यान प्राप्त कर विचरता है, द्वितीय ध्यान--..तृतीय ध्यान...चतुर्थ ध्यान प्राप्त कर विचरता है।

२४. "इन चारों ध्यानों को प्राप्त कर विचरने वाला वह मृत्यु होने पर, शरीर के न रहने पर देव-लोक में उत्पन्न होता है।

२५. "हे दोन ! इस प्रकार एक ब्राह्मण देव-सदृश होता है।

२६. "हे दोन ! और एक ब्राह्मण बन्धन-युक्त ब्राह्मण कैसे होता है ?

२७. "हे दोन ! एक ब्राह्मण को लो जो समान माता पिताको....और वैसे ही विवाह करता है.........

२८. "और जब विवाहित-जीवन से उसे सन्तान-प्राप्ति हो जाती है, तो वह अपनी सन्तान के प्रेम के वश में हो जाता है और वह घर पर ही रहता है। वह गृह-त्याग कर अनागारिक नहीं होता।

२९. "वह अपने परम्परा-गत ब्राह्मणी बन्धनों को निभाता है, उनका उल्लंघन नहीं करता। उस के बारे में कहा जाता है कि 'वह सीमा में रहता है, सीमोल्लंघन नहीं करता।' इसी लिये ऐसा ब्राह्मण बन्धन-युक्त ब्राह्मण कहलाता है।

३०. "दोन ! इस प्रकार ब्राह्मण बन्धन-युक्त होता है।

३१. "और दोन ! एक ब्राह्मण 'बन्धन-भंजक' कैसे होता है ?

३२. "हे ब्राह्मण ! एक ब्राह्मण को लो जो समान माता पिता का.... वह आचार्य की दक्षिणा चुकाता है और एक स्त्री ग्रहण करता है, धर्मानुसार वा अधर्मानुसार; एक खरीदी गई वा बेची गई ब्राह्मणी अथवा जो जलाभिषिक्त हुई।

३३. "वह एक ब्राह्मणी के पास भी जाता है या किसी क्षत्रिय-कुमारी के पास या किसी नीच-जाति वा दासी स्त्री के पास; किसी अन्त्यज कुमारी के पास, किसी बंसफोड की लड़की के पास; किसी रथकार या किसी आदिवासी की लड़की के पास, वह बच्चे वाली स्त्री के पास जाता है, वह दूध पिलाने वाली के पास जाता है और वह ऋतुनी के पास भी जाता है तथा जो ऋतुनी नहीं है उसके पास भी जाता है;

और उसके लिये ब्राह्मणी कामाग्नि को शान्त करने का, क्रीड़ा करने का, भोग का वा सन्तानोत्पति का साधन बन जाती है।

३४. "और वह पुरानी ब्राह्मणी-परम्परा के बन्धन में नहीं रहता, वह उस सीमा को लांघ जाता है। उसके बारे में कहा जाता है: 'वह सीमा में नहीं रहता, वह सीमोल्लंघन करता है।' इसलिये वह 'बंधन-भंजक' कहलाता है।

३५. "इस प्रकार दोन ! एक ब्राह्मण 'बंधन-भंजक' कहलाता है।

३६. "और दोन ! एक ब्राह्मण 'अन्त्यज-ब्राह्मण' कैसे होता है ?

३७. "हे दोन ! एक ब्राह्मण को लो जो समान माता पिता का....वह अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य पालन करता है, वह (वेद-) मन्त्रों का ज्ञाता बनता है, तब अपना विद्याध्ययन समाप्त करने के अनन्तर वह आचार्य-दक्षिणा खोजता है; (वह धर्मानुसार वा अधर्मानुसार जैसे भी अपनी जीविका चलाता है) कृषक बनकर, व्यापारी बनकर, ग्वाला बनकर, धनुषधारी बनकर, राजकर्मचारी बनकर अथवा किसी अन्य शिल्प द्वारा वा भिक्षापात्र की उपेक्षा न कर भिक्षाटन द्वारा।

३८. "आचार्य-दक्षिणा दे चुकने के अनन्तर वह धर्मानुसार वा अधर्मानुसार एक स्त्री प्राप्त करता है, एक खरीदी या बेची गई, अथवा हाथ पर जल डालकर ली गई। वह एक ब्राह्मणी के पास जाता है अथवा किसी अन्य स्त्री के पास...बच्चे वाली स्त्री के पास, दूध पिलाने वाली स्त्री के पास और वह उसके लिये कामाग्नि शान्त करने का साधन बन जाती है...अथवा सन्तानोत्पत्ति का। वह यह सभी बातें करता हुआ जीवन व्यतीत करता है।

३९. "तब ब्राह्मण पूछते हैं–'यह कैसे है कि एक श्रेष्ठ ब्राह्मण ऐसा जीवन व्यतीत करता है ?'

४०. "तब वह उत्तर देता है ! 'जैसे आग साफ या मैली सभी चीजों को जला डालती है लेकिन उससे अग्नि अशुद्ध नहीं होती; इसी प्रकार भद्रजन ! यदि एक ब्राह्मण इस प्रकार की सभी बातें करता हुआ भी जीवन व्यतीत करता है, तो उससे एक ब्राह्मण मलिन नहीं होता।"[1]

४१. "और यह कहा जाता है : 'वह ऐसी सभी बातें करता हुआ जीवन व्यतीत करता है,' इसीलिये वह अन्त्यज-ब्राह्मण कहलाता है।

४२. "हे दोन ! इस प्रकार एक ब्राह्मण अन्त्यज-ब्राह्मण हो जाता है।

४३. "निश्चय से दोन ! जो पुराने मन्त्र-निर्माता, मन्त्र-रचयिता, मन्त्र-धर ब्राह्मण हैं, जिन्हें अपने मन्त्रों का अक्षरशः शब्दशः ज्ञान है—उन्हीं का कहना है कि ब्राह्मण पांच प्रकार के होते हैं–(१) ब्रह्म-सदृश ब्राह्मण, (२) देवता-सदृश ब्राह्मण, (३) बंधन-युक्त ब्राह्मण, (४) बंधन-भंजक ब्राह्मण, तथा (५) अन्त्यज-ब्राह्मण।

४४. "दोन ! इन पांच प्रकार के ब्राह्मणों में से तुम्हारी गिनती किन में है ?"

४५. "श्रमण गौतम ! यदि ऐसा है तो कम से कम हम अन्त्यज-ब्राह्मणों में नहीं हैं।

४६. "लेकिन श्रमण गौतम ! आप का कहना अद्भुत है...आप मुझे प्राण रहने तक बुद्ध की शरण में गया हुआ उपासक समझें।[7]

१. अंगुत्तर निकाय।
२. कसी भारद्वाज सुत्त ।
३. धम्मपद अट्ठकथा ।
४. स० नि० १ : ४ : ८; अट्ठ कथा ।
५. चुल्लवग्ग (संघ-भेदक-खंध) ७ ।
६. विमानवत्थु तथा विमानवत्थु अट्ठकथा ।
७. अंगुत्तर निकाय ५ : ४ : ५ : २ ।

तीसरा भाग

उनके धर्म के आलोचक

१. सभी के लिये संघ का सदस्य बन सकने की आलोचना

१. किसी भी उपासक गृहस्थ को भिक्षु संघ अपना सदस्य बना सकता था।

२. कुछ लोग ऐसे थे जो भगवान बुद्ध की आलोचना करते थे कि उन्होंने सभी के लिये भिक्षु संघ का द्वार खोल रखा है।

३. उनका तर्क था कि इस व्यवस्था में यह दोष है कि कुछ लोग संघ में प्रविष्ट होने के अनन्तर फिर दुबारा गृहस्थ बन जा सकते हैं और उनके इस प्रकार निकल भागने से लोगों को यह कहने का अवसर मिलेगा कि श्रमण गौतम का धर्म निकम्मा होगा, तभी तो लोगों ने इसे त्याग दिया है।

४. यह आलोचना निराधार थी। जिस उद्देश्य से तथागत ने यह नियम बनाया था, वह उद्देश्य आलोचकों के ध्यान में आया ही न था।

५. तथागत का उत्तर था कि उन्होंने सद्धर्म की स्थापना करके अमृत भरे सरोवर का निर्माण किया है।

६. भगवान् बुद्ध की इच्छा थी कि मलिन चित्त वाला कोई भी हो इस सद्धर्म रूपी सरोवर में स्नान करके अपने आपको निर्मल बना सके।

७. और यदि कोई सद्धर्म रूपी सरोवर तक पहुंच कर भी उसमें स्नान नहीं करता और पूर्ववत् मलिन ही बना रहता है तो इसमें उसी का दोष है, सद्धर्म रूपी सरोवर का नहीं।

८. "अथवा क्या मैं," तथागत का कहना था, "ऐसा कर सकता हूँ कि सद्धर्म-रूपी सरोवर का निर्माण करने के अनन्तर कहूँ कि जो पहले से ही निर्मल चित्त हैं वे ही इसमें स्नान करने जायें, और जो पहले से ही निर्मल नहीं हैं, वे इसमें स्नान करने न जायें?

९. "तब मेरे इस सद्धर्म का उपयोग ही क्या होगा?"

१०. आलोचक भूल गये कि तथागत अपना धर्म चन्द लोगों तक ही सीमित

नहीं रखना चाहते थे। वे चाहते थे कि इसका द्वार सभी के लिये खुला रहे, सभी इसका परीक्षण कर सकें।

२. व्रत-ग्रहण करने की आलोचना

१. पंचशील ही पर्याप्त क्यों नहीं हैं ? उन्हें और दूसरे व्रतों को व्रत रूप में ग्रहण करने की क्या आवश्यकता है ?

२. तर्क करने वाले तर्क करते थे कि यदि बिना औषध के रोग का शमन हो सकता है, तो फिर वमन कराने वाली औषधियों, जुलाब देने वाली औषधियों तथा अन्य ऐसी ही औषधियों का क्या प्रयोजन ?

३. इसी प्रकार यदि गृहस्थ उपासक पंचशील ग्रहण करके ही इन्द्रियों के भोग भोगता हुआ भी शान्त, श्रेष्ठ निर्वाण को प्राप्त कर सकता है तो भिक्षु को उन शीलों तथा दूसरे व्रतों को व्रतरूप में ग्रहण करने की क्या आवश्यकता है ?

४. भगवान् बुद्ध ने इन्हें 'व्रतों' का स्वरूप इसलिये दिया है, क्योंकि नैतिकता की दृष्टि से इसका निश्चित मूल्य है।

५. जो जीवन व्रत-युक्त है उसका नैतिक पथ पर अग्रसर होना निश्चित है। व्रत अपने में ही पतन के विरुद्ध एक बड़ा संरक्षण है।

६. जो 'व्रत' ग्रहण करते हैं और उनका स्वतन्त्र रूप से पालन करते हैं, वे उन्नत होते हैं।

७. 'व्रतों' का पालन काम-तृष्णा, ईर्ष्या, अहंकार तथा अन्य कुविचारों का बाधक है।

८. जो 'व्रत' ग्रहण करते हैं तथा उनका पालन करते हैं वे निश्चित रूप से संरक्षित रहते हैं और उनका मन तथा कर्म निर्मल होता है।

९. मात्र शील ग्रहण करने से ऐसा नहीं होता।

१०. शील ग्रहण करना पतनोन्मुख होने से उतना नहीं बचाता, जितना व्रत बचाते हैं।

११. 'व्रती' का जीवन ज्यादा कठिन है, मात्र शील ग्रहण करने वाले का नहीं। मानवता के कल्याण के लिये यह आवश्यक है कि समाज में कुछ 'व्रती' भी रहें। इसीलिये भगवान् बुद्ध ने 'शीलों' तथा 'व्रतों' दोनों की व्यवस्था की है।

३. अहिंसा के सिद्धांत की आलोचना

१. ऐसे लोग थे जो 'अहिंसा' के सिद्धान्त के समर्थक न थे। उनका कहना था कि 'अहिंसा' का मतलब है 'अन्याय' तथा 'अत्याचार' के सामने सिर झुकाना।

२. भगवान् बुद्ध का 'अहिंसा' से जो आशय था, यह उसकी मूलतः गलत व्याख्या है।

३. भगवान् बुद्ध ने अनेक अवसरों पर अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी है जिससे किसी को किसी प्रकार की अस्पष्टता वा गलत-फहमी न रहे।

४. एक तो वह ही ऐसा अवसर है जिसका उल्लेख किया जाना चाहिये जब उन्होंने एक सैनिक के संघ में प्रविष्ट होने के बारे में नियम बनाया।

५. एक बार मगध के सीमान्त-प्रदेश में उत्पात मच गया था। तब मगध-नरेश सेनिय बिम्बिसार ने अपने सेनापति को आज्ञा दी; "अब जाओ और अपने सेना-नायकों को कहो कि वे सीमा-प्रान्त में ढूंढ ढूंढ कर अपराधियों का पता लगायें, उन्हें दण्ड दें और शान्ति स्थापित करें।" सेनापति ने आज्ञा का पालन किया।

६. सेनापति की आज्ञा पाकर सेना-नायक बड़ी दुविधा में पड़ गये। वे जानते थे कि तथागत की शिक्षा है कि जो 'युद्ध' में लड़ने जाते हैं और जिन्हें 'युद्ध' करने में आनन्द आता है वे 'पाप' करते हैं और बहुत 'अपुण्य' लाभ करते हैं। दूसरी ओर राजा की आज्ञा यह थी कि अपराधियों का पता लगाकर उन्हें मार डाला जाय। सेना-नायक अपने से पूछने लगे—हम क्या करें?

७. तब इन सेना-नायकों ने सोचा :—'यदि हम तथागत के भिक्षु-संघ में प्रविष्ट हो जायें, तो हम इस दुविधा से बच जायेंगे।'

८. तब ये सेना-नायक भिक्षुओं के पास पहुंचे और उन से प्रव्रज्या की याचना की। भिक्षुओं ने उन्हें प्रव्रजित तथा उपसम्पन्न कर दिया। सेना-नायक सेना से गायब हो गये।

९. सेनापति ने जब देखा कि सेना-नायक नहीं दिखाई देते तो उसने सैनिकों से पूछा—"क्या बात है कि सेना-नायक नहीं दिखाई देते ?" सैनिकों ने उत्तर दिया- "सेनापति ! सेना-नायक भिक्षु-संघ में सम्मिलित हो गये हैं।"

१०. सेनापति बहुत अप्रसन्न तथा बहुत क्रोधित हुआ, "राजकीय सेना के लोगों को भिक्षु कैसे प्रव्रजित कर सकते हैं ?"

११. सेनापति ने इस बात की सूचना राजा को दी। राजा ने न्यायाधीशों से प्रश्न किया—"कृपया बतायें कि जो राजकीय-सेना के आदमियों को प्रव्रजित करे, उसे क्या दण्ड मिलना चाहिये ?"

१२. "महाराज ! उपाध्याय का सिर काट डालना चाहिये, कम्मावाचा पढ़ने वाले की ज़बान निकाल डालनी चाहिये और संघ के उन सदस्यों की—जो किसी राजकीय सैनिक को प्रव्रजित करें—आधी पसलियां तोड़ डालनी चाहिये।"

१३. तब राजा वहां पहुंचा, जहां तथागत विराजमान थे; और अभिवादन कर चुकने के अनन्तर उसने भगवान् बुद्ध को सारी बात सुनाई।

१४. "भगवान् ! आप जानते हैं कि कई राजा धर्म के विरुद्ध हैं। ये विरोधी राजा बहुत मामूली मामूली बातों के लिये भिक्षुओं को कष्ट देने के लिये

तैयार रहते हैं। यदि ये जान जायेंगे कि भिक्षु सैनिकों को बरगला कर भिक्षु-संघ में भर्ती करते हैं तो फिर इसकी कल्पना कर सकना कठिन है कि ये भिक्षुओं के विरुद्ध क्या क्या कारंवाइयां कर सकते हैं ? इस विपत्ति से बचे रहने के लिये तथागत यथायोग्य करें।"

१५. तथागत ने उत्तर दिया—"मेरी यह कभी मंशा नहीं रही कि 'अहिंसा' का नाम लेकर वा 'अहिंसा' की आड़ में सैनिक अपने राजा वा देश के प्रति जो उनका कर्तव्य है, उससे विमुख हो जायँ।"

१६. तदनुसार भगवान् बुद्ध ने राजकीय सैनिकों के संघ में प्रविष्ट होने के विरुद्ध एक कानून बना दिया और इसकी घोषणा कर दी—"भिक्षुओ, किसी राजकीय सैनिक को प्रव्रज्या न मिले। यदि कोई देगा तो उसे दुष्कृत की आपत्ति (=दोष) होगी।"[१]

१७. एक बार श्रमण महावीर के अनुयायी सिंह सेनापति ने 'अहिंसा' के ही विषय में तथागत से प्रश्न किया था।

१८. सिंह ने पूछा :—"अभी भी एक सन्देह मेरे मन में शेष है। क्या आप कृपया मेरे मन के अन्धकार को दूर कर देंगे ताकि मैं धर्म को उसी रूप में समझ सकूं, जिस रूप में आपने उसका प्रतिपादन किया है।"

१९. तथागत के स्वीकार कर लेने पर सिंह सेनापति ने पूछा—"भगवान् ! मैं सेनापति हूँ। मुझे राजा ने युद्ध लड़ने के लिये और अपने कानूनों का जनता द्वारा पालन करवाने के लिये ही नियुक्त किया है। तो क्या तथागत जो दुखियों के प्रति दया और असीम करुणा की शिक्षा देते हैं, अपराधियों को दण्ड देने की अनुमति देते हैं ? और क्या तथागत का यह भी कहना है कि अपने घरों, अपने बीवी-बच्चों और अपनी सम्पत्ति की रक्षा के लिये युद्ध करना ठीक नहीं है ? क्या तथागत सम्पूर्ण आत्म-समर्पण की शिक्षा देते हैं कि हम आततायी को जो वह चाहे कर दें और जो जोर-जबर्दस्ती हमारी चीज हमसे छीनना चाहे उसे वह ले लेने दें ? क्या तथागत का यह कहना है कि सभी प्रकार के युद्ध—ऐसे युद्ध भी जो न्याय की रक्षा के लिये लड़े जाये हैं—वर्जित हैं ?"

२०. तथागत का उत्तर था :—"जो दण्डनीय है, उसे दण्ड मिलना ही चाहिये। जो उपहार देने योग्य हो, उसे उपहार दिया ही जाना चाहिये। साथ ही किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं दिया जाना चाहिये बल्कि उनके साथ प्रेम और दया का बर्ताव होना चाहिये। ये आदेश परस्पर विरोधी नहीं हैं। जो कोई अपने अपराध के लिये दण्ड भुगतता है, वह न्यायाधीश की द्वेष-बुद्धि के कारण नहीं, बल्कि अपने ही अकुशल-कर्म के परिणाम-स्वरूप। न्यायाधीश द्वारा दिया गया दण्ड उसके अपने कर्म का फल है। न्यायाधीश जब दण्ड देता है तो उसके मन में दण्डनीय व्यक्ति के प्रति किसी भी प्रकार की द्वेष की भावना नहीं होनी चाहिये, और एक हत्यारे

को भी जब फांसी की सजा दी जाय तो यही सोचना चाहिये कि यह उसके अपने कर्मों का फल है। जब वह समझेगा कि 'दण्ड' उसके अन्तरतम को 'शुद्ध' ही बनायेगा तो कोई भी दण्डनीय व्यक्ति अपने भाग्य को रोयेगा नहीं, बल्कि प्रसन्न ही होगा।"

२१. इन बातों पर अच्छी तरह विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि भगवान् बुद्ध की देशना में 'अहिंसा' का मुख्य-स्थान है; किन्तु वह निरपेक्ष नहीं ही है।

२२. उन्होंने सिखाया कि बुराई को भलाई से जीतो लेकिन यह कहीं नहीं सिखाया कि बुराई को ही भलाई को जीत लेने दो।

२३. वह अहिंसा के समर्थक थे और हिंसा के निन्दक। लेकिन उन्होंने इससे कहीं इनकार नहीं किया कि बुराई से भलाई की रक्षा करने के लिये आखिरी दर्जे कहीं कहीं हिंसा का भी आश्रय लेना पड़ सकता है।

२४. भगवान् बुद्ध ने किसी खतरनाक सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया। आलोचक ही उसके यथार्थ स्वरूप और क्षेत्र को ठीक ठीक समझ नहीं पाये।

४. शील का प्रचार संसार को अन्धकारावृत करने का दोषारोपण

१. दुक्ख का कपिल ने जो अर्थ किया था वह था चंचलता, अशान्ति, अस्थिरता।

२. आरम्भ में यह शब्द कुछ तात्विक अर्थ ही रखता था।

३. बाद में इसका अर्थ शरीर और मन का कष्ट हो गया।

४. दोनों अर्थ एक दूसरे से बहुत दूर दूर नहीं थे। दोनों पास पास थे।

५. अशान्ति से ही शरीर तथा मन के कष्ट उत्पन्न होते हैं।

६. अचिरकाल में ही इसका अर्थ सामाजिक तथा आर्थिक कारणों से शारीरिक और मानसिक कष्ट सहन हो गया।

७. भगवान् बुद्ध ने 'दु:ख' शब्द को किन अर्थों में प्रयुक्त किया है?

८. भगवान् बुद्ध का एक प्रवचन है, जिस से यह स्पष्ट होता है कि तथागत इस बात से अपरिचित नहीं थे कि दरिद्रता दु:ख की जननी है।

९. अपने उस प्रवचन में तथागत ने कहा है:—"भिक्षुओ, संसारी आदमी के लिये क्या दरिद्रता दु:खद वस्तु है?"

१०. "भगवान्! निश्चित रूप से।"

११. "और जब आदमी गरीब होता है, उसे गरज रहती है, उसका हाथ तंग रहता है, उसे कर्ज लेने की आवश्यकता आ पड़ती है, तो क्या वह अवस्था भी दु:खद है?

१२. "भगवान् ! निश्चित रूप से ।"

१३. "और जब उसे कर्जे की जरूरत होती है, वह उधार लेता है तो क्या यह भी दुःखद है ?"

१४. "भगवान् ! निश्चित रूप से ।"

१५. "और जब कर्जा चुकाने का समय आता है, वह कर्जा चुका नहीं सकता और लेने वाले उस पर जोर डालते हैं तो क्या यह भी दुःखद है ?"

१६. "भगवान् ! निश्चित रूप से ।"

१७. "और जब जोर डालने पर भी वह नहीं दे पाता, तो वे उसे पीटते हैं, तो क्या यह भी दुःखद है ?"

१८. "भगवान् ! निश्चित रूप से ।"

१९. "और जब पीटने पर भी नहीं दे पाता तो वे बांध डालते हैं, तो क्या यह भी दुःखद है ?"

२०. "भगवान् ! निश्चित रूप से ।"

२१. "इसलिये भिक्षुओ ! दरिद्रता, आवश्यकता, कर्जा लेना, जोर डाला जाना, पीटा जाना तथा बांधा जाना—ये सभी सांसारिक पुरुष के लिये कष्ट-प्रद हैं ।

२२. "संसार में दरिद्रता और ऋण बड़े दुःखद हैं ।"

२३. इससे स्पष्ट होता है कि भगवान् बुद्ध की दुःख की कल्पना भौतिक भी है ।[1]

(२)

'अनित्यता' को अन्धकार का कारण बताना

१. इस 'अन्धकारावृत्त' के आरोप का दूसरा कारण 'अनित्यता' का यह सिद्धान्त बताया जाता है कि जो कुछ भी किन्हीं चीजों के मेल से बना है वह सब अनित्य है ।

२. इस सिद्धान्त की सचाई को सभी स्वीकार करते हैं ।

३. हर कोई मानता है कि सभी चीजें अनित्य हैं ।

४. यदि कोई सिद्धान्त 'सत्य' है तो उसकी घोषणा होनी ही चाहिये, जैसे स्वयं 'सत्य' की; भले ही वह अरुचिकर ही क्यों न हो ।

५. लेकिन इससे एक निराशावादी परिणाम क्यों निकाला जाय ?

६. यदि जीवन 'थोड़े ही दिन के लिये है, तो यह 'थोड़े ही दिन के लिये' है; इस विषय में किसी को भी दुःखी होने की जरूरत नहीं ।

७. यह तो केवल अपने अपने दृष्टिकोण की बात है ।

८. धर्मियों का दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न है ।

९. किसी की मृत्यु का उत्सव बर्मी-परिवार में ऐसे ही मनाया जाता है जैसे यह कोई बड़ी खुश होने की बात हो ।

१०. जिस दिन किसी की मृत्यु होती है, गृहस्थ सभी परिचितों को एक 'भोज' देता है, और लोग नाचते-गाते मृत-देह को श्मशान भूमि तक ले जाते हैं। मृत्यु आने ही वाली थी—इसलिये कोई इसकी परवाह नहीं करता ।

११. यदि 'अनित्यता' का सिद्धान्त निराशाजनक है तो केवल इसलिये है कि 'नित्यता' को—जो वास्तव में असत्य है—सत्य मान लिया गया है ।

१२. इसलिये बुद्ध की देशना पर यह आरोप नहीं लगाया जा सकता कि यह आदमी को निराश बनाने वाली है ।

(३)

क्या बौद्ध धर्म निराशावादी है !

१. भगवान् बुद्ध के धर्म पर 'निराशावादी' धर्म होने का आरोप लगाया गया है ।

२. इस आरोप का कारण प्रथम आर्य-सत्य है जिसका कहना है कि संसार में दुःख (=चिन्ता-कष्ट) है ।

३. यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि दुःख का उल्लेख होने मात्र से बुद्ध-धर्म पर यह आरोप लगाया जाय ।

४. कार्ल मार्क्स ने भी कहा था कि संसार में शोषण है, गरीब और भी अधिक गरीब होते चले जा रहे हैं, अमीर और भी अधिक अमीर होते चले जा रहे हैं।

५. लेकिन तब भी किसी ने नहीं कहा कि कार्लमार्क्स का सिद्धान्त 'निराशावादी' सिद्धान्त है ।

६. तब बुद्ध-देशना के ही सम्बन्ध में एक भिन्न दृष्टिकोण क्यों रखा जाय ?

७. इसका एक कारण यह हो सकता है कि उन्होंने अपने प्रथम-उपदेश में ही यह कहा है कि जन्म भी दुःख है, जरा भी दुःख है और मरण भी दुःख है, और इसी से भगवान् बुद्ध के धर्म को कुछ गहरी निराशावादी रंगत दे दी गई है ।

८. लेकिन जो शब्द-शिल्पी हैं वे जानते हैं कि यह एक कलापूर्ण अतिशयोक्ति मात्र है और जो इस साहित्यिक कला में निष्णात हैं वे प्रभाव उत्पन्न करने के लिये इसका उपयोग करते ही हैं ।

९. यह कथन कि 'जन्म दुःख है' एक अतिशयोक्ति है यह भगवान् बुद्ध के ही एक दूसरे प्रवचन से सिद्ध किया जा सकता है जिसमें उन्होंने कहा है कि 'मनुष्यजन्म एक दुर्लभ वस्तु है ।'

१०. फिर यदि बुद्ध ने केवल 'दुःख' की ही बात की होती, तब भी शायद तथागत पर यह आरोप लग सकता था ।

११. लेकिन भगवान् बुद्ध का दूसरा आर्य सत्य इस बात पर जोर देता है कि इस दुःख का अन्त होना चाहिये। दुःख का अन्त करने की बात पर जोर देने के लिये ही तथागत को दुःख के अस्तित्व की चर्चा करनी पड़ी।

१२. भगवान् वुद्ध ने दुःख को दूर करने की बात को ही सर्वाधिक महत्व दिया है। यही कारण है कि जब उन्होंने देखा कि कपिल ने दुःख के अस्तित्व की चर्चा भर की है और इससे अधिक कुछ नहीं किया, तो वे असन्तुष्ट हुए और उन्होंने आलार-कालाम का आश्रम तक छोड़ दिया।

१३. तब ऐसा धर्म निराशावादी धर्म कैसे कहला सकता है?

१४. निश्चय से जो शास्ता दुःख का अन्त देखने के लिये इतने उत्सुक थे, निराशावादी नहीं कहे जा सकते।

५. 'आत्मा' तथा 'पुनर्जन्म' सम्बन्धी आलोचना

१. भगवान् बुद्ध ने कहा—'आत्मा' नहीं है। भगवान् बुद्ध ने कहा—'पुनर्जन्म' है।

२. ऐसे लोगों की कमी नहीं थी जो भगवान् बुद्ध पर यह दोष लगाते थे कि वे परस्पर विरोधी सिद्धान्तों के प्रचारक हैं।

३. उनकी शंका थी—जब 'आत्मा' ही नहीं है तो 'पुनर्जन्म' कैसा हो सकता है?

४. इसमें कहीं कुछ भी विरोध नहीं है। बिना 'आत्मा' के पुनर्जन्म हो सकता है।

५. आम का बीज है। आम के बीज से आम का पेड़ पैदा होता है। आम के पेड़ पर आम के फल लगते हैं।

६. यह 'आम' का पुनर्जन्म है।

७. लेकिन यहाँ 'आत्मा' कहीं भी नहीं है।

८. इसी प्रकार बिना 'आत्मा' के पुनर्जन्म हो सकता है।

६. 'उच्छेद-वादी' होने का दोषारोपण

१. एक बार भगवान् बुद्ध जब श्रावस्ती के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे, तो उन्हें सूचना मिली कि अरिट्ठ नाम का एक भिक्षु ऐसे मत को, जो तथागत का मत नहीं है, तथागत का मत समझ रहा है।

२. एक विषय जिसके बारे में अरिट्ठ तथागत को गलत तौर पर समझे बैठा था, वह तथागत के 'उच्छेद-वादी' होने न होने का विषय था।

३. तथागत ने अरिट्ठ को बुला भेजा। अरिट्ठ आया। प्रश्न किये जाने पर उसका मुंह बन्द हो गया।

४. तब तथागत ने उसे कहा—"कुछ श्रमण-ब्राह्मण मुझ पर गलत तौर से, मिथ्यारूप से, झूठे रूप से—उच्छेदवादी होने का 'दोषारोपण' करते हैं। कहते हैं कि मैं प्राणियों के उच्छेद की, अभावात्मक विनाश की शिक्षा देता हूँ। यह वास्तविकता के सर्वथा विरुद्ध है।

५. यही तो मैं नहीं हूँ, यही तो मैं नहीं सिखाता हूँ।"[1]

६. पहले भी और आज भी मैं यही सिखाता हूँ कि दुःख है और दुःख का निरोध है।

१. अलगद्दूपम-सुत्त, मज्झिम निकाय

चौथा भाग

समर्थक और प्रशंसक

१. धानंजानी ब्राह्मणी की श्रद्धा

१. तथागत के अनगिनत समर्थक और प्रशंसक थे। उनमें से एक धानंजानी थी ।

२. वह भारद्वाज ब्राह्मण की पत्नी थी। उसका पति तथागत से घृणा करता था। लेकिन धानंजानी भगवान् बुद्ध की भक्त थी। उसकी श्रद्धा उल्लेख करने योग्य है।

३. एक बार भगवान् बुद्ध राजगृह के समीप वेळुवन विहार के कलन्दक-निवाप नामक स्थान पर ठहरे हुए थे।

४. उसी समय भारद्वाज परिवार के एक ब्राह्मण की धानंजनी नामक पत्नी अपने पति के साथ राजगृह में रहती थी।

५. पति तो तथागत का बड़ा ही विरोधी था, लेकिन धानंजानी बुद्ध धम्म और संघ के प्रति उतनी ही प्रसन्न थी। उसे त्रि-रत्न की स्तुति करने में आनन्द आता था। जब कभी वह इस प्रकार मुंह खोल कर प्रशंसा करने लगती, उसका पति कान बंद कर लेता।

६. एक बार जब उसने बहुत से ब्राह्मणों को भोजन के लिये निमंत्रित किया था, उसने ब्राह्मणी से कहा कि वह और जो चाहे करे किन्तु बुद्ध की स्तुति सुनाकर वह उसके अतिथियों को अप्रसन्न न करे।

७. धानंजानी ऐसा कोई वचन देने के लिये तैयार न थी। उसने उसे धमकाया कि तलवार से केले को काट डालने की तरह वह उसके टुकड़े टुकड़े कर देगा। वह आत्म-बलिदान के लिये तैयार थी। इस प्रकार उसने अपनी वाणी की स्वतंत्रता की रक्षा की, और उसने भगवान् बुद्ध की स्तुति में पांच सौ गाथायें कह सुनाईं। ब्राह्मण ने बिना शर्त के पराजय स्वीकार की।

८. भोजन पात्र तथा सुनहरी चम्मच रख दिये गये थे। अतिथि भोजन करने बैठे। अतिथियों को भोजन कराते समय ही उसकी बलवती भावना ने जोर मारा। वह वेळुवणाभिमुख हुई और उसने त्रि-रत्न की स्तुति की।

९. अपमानित अतिथि उठ खड़े हुए। एक नास्तिका की उपस्थिति से सारा भोजन अपवित्र हो गया था। थू थू करते हुए वे वहाँ से विदा हुए। ब्राह्मण ने सारा 'भोज' चौपट कर देने के लिये ब्राह्मणी को बहुत गालियां दीं।

१०. उसने फिर भारद्वाज ब्राह्मण को भोजन कराते समय त्रि-रत्न की स्तुति की 'बुद्ध को नमस्कार है, धर्म को नमस्कार है, संघ को नमस्कार है।'

११. उसके ऐसा कहने पर भारद्वाज ब्राह्मण बहुत क्रोधित हुआ और चिल्लाया "चण्डालिनी कहीं की, हर समय उसी सिर-मुण्डे के गीत गाती रहती है। हे चाण्डालिनी ! मैं तेरे गुरु को जाकर सबक़ सिखाता हूँ।'

१२. तानञ्जानी का उत्तर था "हे ब्राह्मण ! सदेव, समार, स-ब्रह्म लोक में किसी श्रमण-ब्राह्मण, किसी देवता या किसी मनुष्य को भी मैं नहीं पाती जो उस अर्हत सम्यक सम्बुद्ध को इस प्रकार भला-बुरा कह सके। लेकिन तुम उनके पास जाओ, तब तुम स्वयं देखोगे।"

१३. तब खिन्न हुआ और अप्रसन्न ब्राह्मण तथागत की खोज में निकला। वहाँ पहुंच कर, जहां तथागत ठहरे थे, उसने शिष्टाचार की बातचीत की और तब एक ओर जा बैठा।

१४. इस प्रकार बैठे हुए ब्राह्मण ने तथागत से प्रश्न पूछे—"सुखपूर्वक रहने के लिये हमें किसकी हत्या करनी चाहिये ? और रोना न पड़े, इसके लिये हमें किसकी हिंसा करनी चाहिये ? गौतम ! वह क्या है जिसकी हत्या का तुम सबसे अधिक समर्थन करते हो ?"

१५. तथागत ने उत्तर दिया:—"सुखपूर्वक रहने के लिये क्रोध की हत्या करनी चाहिये। और रोना न पड़े, इसके लिये हमें क्रोध की हिंसा करनी चाहिये। हे ब्राह्मण ! क्रोध की—जिसका विषैला मूल है, जिसका उत्तेजनापूर्वक शिखर है, और जिस में हत्यारा माधुर्य्य है। श्रेष्ठ जनों ने इसी प्रकार की 'हिंसा' की प्रशंसा की है। यदि भविष्य में और रोना-पीटना न हो, तो क्रोध की हिंसा कर डालनी चाहिये।"

१६. भगवान् बुद्ध के प्रवचन के श्रेष्ठत्व को समझ भारद्वाज ब्राह्मण बोला —"भगवान् अद्भुत है। भगवान् अद्भुत है। जैसे कोई आदमी गिरी पड़ी वस्तु को स्थिर कर दे, अथवा प्रच्छन्न को प्रकट कर दे, अथवा मार्ग-भ्रष्ट को ठीक रास्ता दिखा दे, अथवा अन्धेरे में प्रदीप प्रज्ज्वलित कर दे ताकि आंखवाले बाहर की चीजें देख लें—इसी प्रकार भगवान् बुद्ध ने मुझे नाना प्रकार से अपना सद्धर्म प्रकट कर दिया है। भगवान् ! मैं बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण ग्रहण करता हूँ ? मैं गृहस्थी त्याग कर प्रव्रजित होना चाहता हूँ।

१७. इस प्रकार धानञ्जानी न केवल स्वयं भगवान् बुद्ध की भक्त थी, किन्तु उसने औरों को भी भक्त बनाया।[१]

२. विशाखा की दृढ़ श्रद्धा

१. विशाखा अङ्ग जनपद के भद्दिय नगर में जन्मी थी।

२. पिता का नाम धनञ्जय और माता का नाम सुमना था।

३. एक बार सेल ब्राह्मण के निमंत्रण पर बहुत से भिक्षुओं सहित तथागत ने भद्दिय की यात्रा की। सेल ब्राह्मण की पोती विशाखा की आयु उस समय सात वर्ष की थी।

४. यद्यपि विशाखा की आयु केवल सात वर्ष की ही थी तब भी उसने भगवान् बुद्ध के दर्शन करने की इच्छा प्रकट की। मेण्डक ने उसे अनुज्ञा दे दी कि वह तथागत के दर्शन कर आये। साथ के लिये उसने पांच सौ साथी पांच सौ दास और पांच सौ रथ भी दिये।

५. रथ को कुछ दूरी पर खड़ा करके वह पैदल तथागत के पास पहुंची।

६. भगवान् बुद्ध ने उसे धर्म का उपदेश दिया और वह उन की गृहस्थ शिष्या (=उपासिका) बन गई।

७. इसके बाद पन्द्रह दिन तक मेण्डक भगवान् बुद्ध और उनके भिक्षुसंघ को प्रतिदिन निमंत्रित करके भोजन कराता रहा।

८. अन्त में जब प्रसेनजित् के कहने पर बिम्बिसार ने धनञ्जय को कोशल जनपद में रहने के लिये भेज दिया तो विशाखा भी अपने माता-पिता के साथ गई और साकेत में रहने लगी।

९. श्रावस्ती का एक सेठ था। नाम था मिगार। वह अपने पुण्यवर्धन नामक पुत्र का विवाह करना चाहता था। उसने कुछ लोगों को योग्य लड़की खोज में भेज रखा था।

१०. लड़की की खोज करने वाली मण्डली घूमते घूमते साकेत आ पहुंची। उन्होंने देखा कि किसी त्योहार के दिन विशाखा सरोवर पर स्नान करने जा रही है।

११. उसी समय जोर की वर्षा आई। विशाखा की सखियां भाग खड़ी हुई। लेकिन विशाखा नहीं भागी। वह अपनी समान गति से चलती हुई उस जगह जा पहुंची जहां मिगार के 'दूत' खड़े थे।

१२. उन्होंने उससे पूछा—'तूने दौड़ कर अपने कपड़े क्यों नहीं बचाये?' उसने उत्तर दिया कि उसके पास कपड़ों की कमी नहीं है, किन्तु दौड़ने से फिसल कर गिर पड़ने और अंग-भंग हो जाने तक का डर रहता है। 'अविवाहित लड़कियां' वह बोली 'उस सामान की तरह से हैं जो बिक्री के लिये रखा है। उनकी शक्ल-सूरत ठीक रहनी चाहिये।'

१३. जिन्हें उसके सौन्दर्य ने पहले ही प्रभावित कर दिया था वे उसकी बुद्धि

से और भी प्रभावित हुए। दूतों ने उसे एक पुष्प गुच्छ भेंट किया, जो विवाह के प्रस्ताव का प्रतीक था—स्वीकृत हुआ।

१४. विशाखा के घर लौटने पर दूत भी पीछे पीछे घर आये। उन्होंने पुष्य-वर्धन से विवाह करने का प्रस्ताव विशाखा के पिता धनञ्जय के सम्मुख उपस्थित किया। प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और पत्रों की अदला-बदली द्वारा स्थिर हुआ।

१५. जब राजा प्रसेनजित् ने सुना तो उसने साथ साकेत चलने के लिये कहा। यह असाधारण सम्मान की बात थी। धनञ्जय ने राजा, उसके राजाधिकारियों, मिगार, पुष्यवर्धन तथा सब बारातियों का बड़ा ही आदर-सत्कार किया। आतिथ्य में किसी तरह की कमी न होने दी।

१६. बधु के लिये गहने बनाने को पांच सौ सुनार नियुक्त किये गये। धनञ्जय ने अपनी लड़की के दहेज में धन से भरी पांच सौ गाड़ियां तथा सोने और पशुओं से भरी पाँच सौ गाड़ियां दीं।

१७. जब विशाखा के विदा होने का समय आया तो धनञ्जय ने उसे दस उप-देश दिये, जिन्हें मिगार ने भी साथ के कमरे में ही होने के कारण सुन लिया। ये दस उपदेश थे– (१) घर की आग बाहर नहीं जाने देना, (२) बाहर की आग घर में नहीं आने देना, (३) जो बदले में दे उन्हें ही देना, (४) जो बदले में न दें, उन्हें नहीं देना, (५) जो दे उसे देना, (६) जो नहीं दे उसे न देना, (७) प्रसन्नता पूर्वक बैठना, (८) प्रसन्नता पूर्वक खाना-पीना, (९) आग को संभालना, तथा (१०) गृह-देवताओं का सम्मान करना।

१८. दूसरे दिन धनञ्जय ने आठ गृहस्थों को अपनी लड़की के गुण-दोषों का विवेचन करने के लिए नियुक्त किया और उनका कर्तव्य था कि यदि विशाखा पर कोई आरोप लगाया जाय तो उसकी जांच करें।

१९. मिगार चाहता था कि उसकी पुत्र-बधु को श्रावस्ती की जनता देखे। लोग सड़क के दोनों ओर खड़े थे और विशाखा ने रथ में खड़े खड़े श्रावस्ती में प्रवेश किया। जनता ने उस पर से तरह तरह की चीजें न्योछावर कीं, किन्तु वे सभी चीजें उसने लोगों में बांट दीं।

२०. मिगार निगण्ठों का उपासक था। विशाखा के घर पर आने के बाद शीघ्र ही उसने उन्हें बुला भेजा। उनके आने पर मिगार ने विशाखा को उनका स्वागत करने के लिये कहा। लेकिन उनकी नग्नता देखकर ही विशाखा उद्विग्न हो उठी। उसने उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित करने से इनकार कर दिया।

२१. निगण्ठों ने आग्रह किया कि विशाखा को वापिस भेज दिया जाय, किन्तु मिगार ने प्रतीक्षा करना उचित समझा।

२२. एक दिन जब मिगार खा रहा था और विशाखा पास खड़ी पंखा झल रही थी, घर के बाहर एक भिक्षु खड़ा दिखाई दिया। विशाखा एक ओर हट गई

कि मिगार की नजर उस पर पड़ जाय। लेकिन मिगार ने 'भिक्षु' की ओर देखा तक नहीं। वह अपना खाना खाता रहा।

२३. यह देख विशाखा ने भिक्षु से कहा—भन्ते ! आगे बढ़ जायें, मेरा श्वसुर बासी भोजन खाता है। मिगार को बहुत क्रोध आया। उसने उसे वापिस भेजना चाहा। किन्तु विशाखा के कहने पर मामला उन आठ 'पंचों' के सामने उपस्थित किया गया।

२४. विशाखा के विरुद्ध जितने भी आरोप लगाये गये थे, उन्होंने उन सब की जांच की। किन्तु विशाखा को निर्दोष पाया।

२५. विशाखा ने तब आज्ञा दी कि उसे उसके पिता के घर भिजवाने की तैयारी की जाय। तब मिगार और उसकी पत्नी ने क्षमा मांगी। विशाखा ने इस शर्त पर रहना स्वीकार किया कि मिगार भगवान् बुद्ध और उनके भिक्षुओं को घर पर निमंत्रित करेगा।

२६. यह उसने किया। किन्तु निगण्ठों के दबाव के कारण उसने तथागत को भोजन कराने का काम विशाखा को ही सौंपा. अपने पर्दे की ओट से तथागत का 'प्रवचन' सुनता रहा।

२७. उस 'प्रवचन' का उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह उपासक हो गया।

२८. वह विशाखा के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ था। इसके बाद से वह उसको अपनी माता के समान समझने लगा और उसी प्रकार आदर सत्कार करने लगा। इसी लिये इसके बाद से विशाखा का नाम मिगार-माता पड़ गया।[१]

२९. विशाखा की ऐसी ही दृढ़ श्रद्धा थी।

३. मल्लिका की श्रद्धा

१. एक बार जब भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे, एक गृहस्थ का प्रिय-पुत्र मर गया। पिता उसके शोक से इतना सन्तप्त हुआ कि उसका खाना-पीना और कारोबार सब छूट गया।

२. वह हमेशा श्मशान-भूमि में जाता था और जोर जोर से चिल्लाता था। 'पुत्र ! तुम कहाँ हो ? पुत्र ! तुम कहां हो ?'

३. शोक-सन्तप्त पिता भगवान् बुद्ध के पास आया और अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

४. यह देख कि उसका दिमाग सर्वथा खाली था, उसकी किसी भी चीज में दिलचस्पी नहीं थी, वह यह भी नहीं बताता था कि वह क्यों आया; उसकी ऐसी अवस्था देख तथागत ने कहा—"तुम अपने आप में नहीं हो। तुम्हारा चित्त स्थिर नहीं है।"

५. "मेरा चित्त स्थिर कैसे रह सकता है, जब मेरा इकलौता प्रिय-पुत्र चल बसा ?"

६. "हां गृहपति ! हमारे प्रियजन शोक, संताप, कष्ट, दुःख और अनुताप का कारण होते ही हैं ।"

७. गृहपति को क्रोध आ गया । बोला—"ऐसी बात कौन स्वीकार कर सकता है ! हमारे प्रिय-जन हमारे लिये आनंद और सुख का कारण होते हैं ।"

८. यह कहता हुआ असन्तुष्ट गृहपति भगवान बुद्ध के कथन को अस्वीकार कर, उठकर चला गया ।

९. समीप ही कुछ जुआरी बैठे जुआ खेल रहे थे । गृहपति उनके पास पहुंचा और उन्हें अपनी सब बात कह सुनाई कि कैसे वह तथागत के पास गया, कैसे तथागत ने उसका स्वागत किया, कैसे तथागत ने उसे क्या कहा और फिर कैसे वह उठकर चला आया ।

१०. जुआरी बोले—"तुम्हारा कहना एकदम ठीक है । हमारे प्रिय जन हमारे लिये आनन्द और सुख का कारण होते हैं ।" गृहपति को लगा कि उसे उन जुआरियों का समर्थन प्राप्य है ।

११. धीरे धीरे यह बात फैलती फैलती राजा के रनिवास तक पहुंच गई । वहां राजा ने मल्लिकारानी को कहा कि तुम्हारे श्रमण गौतम ने कहा कि प्रियजन शोक, सन्ताप, कष्ट, दुःख और अनुताप का कारण होते ही हैं ।

१२. "स्वामी ! यदि तथागत ने ऐसा कहा है, तो ठीक ही कहा है ।"

१३. "मल्लिका ! जैसे कोई शिष्य अपने गुरु की हर बात को 'जी ऐसा ही है' कहकर स्वीकार कर लेता है, उसी प्रकार तू भी जो कुछ श्रमण गौतम कहते हैं उसे 'यदि तथागत ने ऐसा कहा है तो ठीक ही कहा है' कह कर स्वीकार कर लेती है । जा दूर हट ।"

१४. तब मल्लिका ने नली-धान ब्राह्मण को बुलाया और कहा—'भगवान बुद्ध के पास जाओ । मेरी ओर से चरणों में सिर रखकर नमस्कार करो । तब कुशल-समाचार पूछ चुकने के बाद पूछो कि क्या जो कुछ भगवान् बुद्ध के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने कहा है, वह उन्हों ने सचमुच कहा है ?"

१५. "और जो कुछ भी तथागत उत्तर दें, मुझे आकर ठीक ठीक वैसे ही बताना ।"

१६. मल्लिका-रानी की आज्ञा मान ब्राह्मण भगवान् बुद्ध के पास पहुंचा और आकर प्रश्न किया कि क्या उन्होंने वास्तव में वैसा कहा था ।

१७. "हां ब्राह्मण ! प्रियजन शोक, सन्ताप, कष्ट दुःख और अनुताप का कारण होते ही हैं । ये कुछ प्रमाण हैं ।"

१८. "एक बार, यहीं श्रावस्ती में ही, एक स्त्री की मां मर गई । बेटी

होश-हवास गँवाये, पागल बनी एक बाजार से दूसरे बाजार, एक चौरास्ते से दूसरे चौरास्ते चिल्लाती घूमती थी—"क्या किसी ने मेरी माँ को देखा है ? क्या किसी ने मेरी माँ को देखा है ?"

१९. "एक दूसरा प्रमाण, श्रावस्ती की ही वह स्त्री है, जिसका पिता मर गया, भाई मर गया—बहन मर गई—बेटा मर गया—बेटी मर गई—पति मर गया। वह होश-हवास गँवाये, पागल बनी एक बाजार से दूसरे बाजार, एक चौरास्ते से दूसरे चौरास्ते चिल्लाती घूमती थी—"क्या किसी ने मेरे इन प्रियजनों को देखा है ?"

२०. "एक तीसरा प्रमाण, श्रावस्ती का ही वह आदमी है जिसकी माँ मर गयी, पिता मर गया, भाई मर गया, बहन मर गई, बेटा मर गया, बेटी मर गई—स्त्री मर गई। वह होश-हवास गँवाये, पागल बना एक बाजार से दूसरे बाजार, एक चौरास्ते से दूसरे चौरास्ते चिल्लाता हुआ घूमता था—'क्या किसी ने मेरे इन प्रियजनों को देखा है ?'

२१. एक और प्रमाण श्रावस्ती की वह स्त्री है जो अपने मायके गई, उसके माता-पिता उसे उसके पति से छीन कर किसी दूसरे आदमी से ब्याह देना चाहते थे, जिसे वह पसन्द नहीं करती थी।

२२. "उसने अपने पति को यह बात बता दी। उसके पति ने उसके दो टुकड़े कर दिये और उसके बाद स्वयं भी आत्म-हत्या कर लिया ताकि उन दोनों का मरण साथ साथ हो सके।"

२३. ब्राह्मण नली-जान ने यह सब कुछ जाकर शब्दशः रानी मल्लिका को कह सुनाया।

२४. तब रानी मल्लिका राजा के पास पहुंची और बोली—"स्वामी ! क्या आपको अपनी इकलौती पुत्री वजिरा प्रिय है ?" "हाँ ! प्रिय है।"

२५. "यदि आपकी वजिरा को कुछ हो जाय तो आपको कष्ट होगा या नहीं ?" "यदि वजिरा को कुछ हो जाय तो इसका मेरे जीवन पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ेगा।"

२६. "स्वामी ! क्या आपको मैं प्रिय हूँ ?" "हाँ ! प्रिय हो।"

२७. "यदि मुझे कुछ हो जाय तो आपको दुःख होगा या नहीं ?" "यदि तुम्हें कुछ हो जाय तो इसका मेरे जीवन पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ेगा।"

२८. "स्वामी ! क्या आपको काशी-कोशल की जनता प्रिय है ?" "हाँ प्रिय है।" "यदि उसे कुछ हो जाय तो आपको अनुताप होगा या नहीं।"

२९. "यदि काशी-कोशल की जनता को कुछ हो जाय तो मुझे बड़ा अनुताप होगा; यह हो ही कैसे सकता है कि ऐसा न हो।"

३०. "तो भगवान् बुद्ध ने क्या इससे कोई भिन्न बात कही थी ?" राजा ने पश्चाताप प्रकट करते हुए उत्तर दिया—"मल्लिका ! नहीं, यही कहा था।"*

४. एक गर्भिणी की तीव्र अभिलाषा

१. एक बार भगवान् भग्ग-देश के, सुंसुमार-पर्वत पर भेसकलावन के मृगदाय में ठहरे हुए थे। 'पद्म' नाम का बोधि-राजकुमार का प्रासाद अभी बनकर समाप्त हुआ था। उसमें किसी श्रमण-ब्राह्मण वा अन्य किसी भी व्यक्ति का वास नहीं हुआ था।[४]

२. राजकुमार ने संजिक-पुत्र नाम के एक ब्राह्मण को कहा :—"भगवान् बुद्ध के पास जाकर मेरी ओर से उनके चरणों में नमस्कार करो। उनका कुशल-समाचार पूछो, और उन्हें भिक्षु-संघ सहित कल के भोजन का निमंत्रण दो।"

३. निमंत्रण भगवान् बुद्ध तक पहुंचा, जिन्होंने उसे मौन रहकर स्वीकार किया और जिसकी सूचना राजकुमार को मिल गई।

४. रात के बीत जाने पर राजकुमार ने अपने 'पद्म' नाम के महल में श्रेष्ठ भोजन तैयार कराया और सीढ़ियों पर सफेद वस्त्र बिछवाया। इसके बाद उसने उस तरुण ब्राह्मण की जबानी भोजन की तैयारी की सूचना भिजवाई।

५. यह हो जाने पर, उस दिन पूर्वाह्न में चीवर पहन तथा पात्र (—चीवर) हाथ में ले तथागत वहाँ आये जहाँ अपने महल के दरवाजे के बाहर राजकुमार प्रतीक्षा कर रहा था।

६. तथागत को आता देखकर, राजकुमार आगे बढ़ा, अभिवादन किया और तथागत के पीछे पीछे महल की ओर वापस आया।

७. सीढ़ियों के नीचे भगवान् बुद्ध चुपचाप रुक गये। राजकुमार बोला—"मैं प्रार्थना करता हूँ कि बिछे धुस्सों पर चरण-रज पड़ने दें। मैं तथागत से प्रार्थना करता हूँ कि इस धुस्से पर चरण-रज पड़ने दें—जो कि चिरकाल तक मेरे हित तथा सुख के लिये होगा।" लेकिन तथागत चुप रहे।

८. दूसरी बार भी राजकुमार ने प्रार्थना की। तब भी तथागत आगे नहीं बढ़े। तीसरी बार भी उसने प्रार्थना की, तब तथागत ने आनन्द की ओर देखा।

९. आनन्द समझ गये और उन्होंने कहा कि वह धुस्से लपेट दिये जायें, क्योंकि तथागत पीछे आने वाले लोगों का ख्याल कर—भावी जनता का ख्याल कर—उस धुस्से पर पैर नहीं रखेंगे।

१०. राजकुमार ने धुस्से इकट्ठे करवा दिये और महल में ऊपर बैठने के लिये आसन लगवाये।

११. तब भिक्षु-संघ सहित भगवान् बुद्ध ऊपर पधारे और बिछे आसनों पर विराजमान हुए।

१२. राजकुमार ने अपने हाथ से भिक्षुसंघ और तथागत को भोजन परोसा।

१३. भोजन की समाप्ति पर राजकुमार एक नीचा आसन ग्रहण कर एक

ओर बैठ गया और बोला—"भगवान् ! क्या वास्तविक कल्याण आराम के रास्ते पर चलने से प्राप्त होता है वा कष्ट सहन के रास्ते पर चलने से ?"

१४. तथागत ने उत्तर दिया, "पूर्व में, बोधि-लाभ करने से पूर्व मैं भी इस बारे में विचार करता था। जिस समय, मेरे काले काले बाल थे, तारुण्य के मध्य में था, अपने रोते माता-पिता को छोड़कर मैंने सिर के बाल और दाढ़ी मुण्डा ली थी तथा काषाय वस्त्र धारण कर प्रव्रजित हो गया था—एक परिव्राजक कल्याण-पथ का पथिक, अनुपम शान्ति की तलाश करने वाला।

१५. "अब मेरा निश्चित मत है। यदि आदमी सद्धर्म को जानता है, तो वह दुःख का अन्त कर सकता है।"

१६. राजकुमार बोला—"क्या अद्भुत सद्धर्म है! क्या अद्भुत सद्धर्म की व्याख्या है! यह समझने में कितना सुकर है।"

१७. तब तरुण ब्राह्मण बोल उठा—"राजकुमार। यद्यपि आपने इस प्रकार समर्थन किया है, किन्तु आपने बुद्ध धर्म तथा संघ की शरण नहीं ग्रहण की।"

१८. राजकुमार का उत्तर था:—"ऐसा मत कहो। ऐसा मत कहो। क्योंकि मैंने अपनी मातृश्री से सुना है कि जिस समय भगवान् बुद्ध कोसाम्बी के घोसिताराम में ठहरे हुए थे, वह गर्भिणी अवस्था में ही भगवान् बुद्ध के पास गई और जाकर एक ओर बैठ गई। एक ओर बैठ कर उसने कहा—'भगवान् ! चाहे लड़का हो और चाहे लड़की हो, जिस शिशु को मैं इस समय अपने गर्भ में धारण किये हुए हूँ, वह मेरी अनुत्पन्न संतान बुद्ध धर्म, तथा संघ की शरण ग्रहण कर रही है। भगवान् ! इस शिशु को इसके जीवन भर अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।'

१९. "दूसरी बार जब भगवान् बुद्ध यहाँ इस भग्गदेश में ही सिसुभार-गिरि पर भेसकलावन में ठहरे हुए थे, मेरी दाई मुझे तथागत के पास ले गई और सामने खड़ी होकर बोली—"यह बोधि राजकुमार बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण ग्रहण करता है।'

२०. "अब मैं तीसरी बार, स्वयं यह शरण ग्रहण करता हूँ और तथागत से प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।"

५. केनिय द्वारा किया गया स्वागत

१. आपण में सेल नाम का एक ब्राह्मण रहता था, जो तीनों वेदों में पारंगत था, व्याख्या सहित कर्मकाण्ड का पण्डित था, शब्द-शास्त्र तथा शब्दों की व्युत्पत्ति का ज्ञाता था, पांचवीं विद्या इतिहास से परिचित था। वह व्याकरण जानता था,

और लोकायत-शास्त्र भी जानता था तथा महापुरुष लक्षणों की भी जानकारी रखता था। वह तीन सौ तरुण ब्राह्मणों को वेदमन्त्र सिखाता था।"

२. अग्नि-पूजक केनिय ब्राह्मण इस सेल ब्राह्मण को मानने वाला था। अपने तीन सौ शिष्यों के साथ जब वहाँ पहुँचा कि सभी अग्नि-पूजक भिन्न भिन्न कार्यों में व्यस्त हैं और स्वयं केनिय पृथक पृथक खाने बना रहा है।

३. यह देखा तो सेल ब्राह्मण केनिय ब्राह्मण से बोला :—"यह सब क्या है? क्या कोई बारात जिमाई जाने को है? या कोई यज्ञ रचा है? अथवा उसके सब राजकर्मचारियों के साथ मगध-नरेश बिम्बिसार को ही कल के दिन भोजन के लिये निमंत्रित किया है?"

४. "सेल! यह कोई बारात भी नहीं जिमाई जा रही है और न मैंने सभी राजकर्मचारियों सहित मगध-नरेश बिम्बिसार को निमंत्रित किया है। लेकिन मैंने एक बड़ा यज्ञ रचा है। श्रमण गौतम साढ़े बारह सौ भिक्षुओं के साथ चारिका करते करते आपण पधारे हैं।

५. "श्रमण गौतम के बारे में यह कीर्ति-शब्द सुना गया है कि वे अर्हत हैं. सम्यक् सम्बुद्ध हैं।"

६. "मैंने कल उन्हीं को अपने भिक्षु-संघ सहित यहाँ भोजन के लिये निमंत्रित किया है। यह जो तैयारी हो रही है, यह सब उन्हीं के लिये है।"

७. सेल ने प्रश्न किया—"केनिय! क्या तू ने कहा कि वे सम्यक् सम्बुद्ध हैं?" "हाँ, मैंने कहा कि वे सम्यक्-सम्बुद्ध हैं।" "क्या तूने सचमुच कहा कि वे सम्यक्-सम्बुद्ध हैं?" "हाँ, मैंने सचमुच कहा कि वे सम्यक्-सम्बुद्ध हैं।"

६. तथागत की राजा प्रसेनजित द्वारा की गई स्तुति

१. एक बार भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में अनाथ पिण्डिक के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे।

२. उस समय कोशल-नरेश प्रसेनजित् उस बनावटी-युद्ध से लौटे ही थे, जिसमें वे विजयी हुए थे। उद्यान में पहुंचकर वे उधर घूम गये। जहाँ तक रथ से जाया जा सकता था, वे रथ से गये। आगे जाकर रथ से उतर गये और पैदल गये।

३. उस समय कुछ भिक्षु खुले में चहल-कदमी कर रहे थे। कोशल-नरेश प्रसेनजित उनके पास गया और बोला—"भन्ते! इस समय तथागत भगवान् अर्हत सम्यक् सम्बुद्ध किस जगह विराजमान हैं? मैं उनके दर्शन करना चाहता हूँ।"

४. "महाराज! वे वहाँ हैं। द्वार बन्द है। बिना घबराये आप धीरे से

वहाँ चले जायें, बरामदे में प्रवेश करें, खांसें और दरवाजे की कुण्डी खटखटायें। तथागत तुम्हारे लिये दरवाजा खोल देंगे।"

५. तब कोशल-नरेश प्रसेनजित्, जैसा बताया गया था, उसी प्रकार वहाँ पहुंचा, खांसा और दरवाजे की कुण्डी खटखटाई। तथागत ने दरवाजा खोल दिया।

६. तब प्रसेनजित ने तथागत की 'गन्ध-कुटी' में प्रवेश किया, तथागत के चरणों पर अपना सिर रखा, उन चरणों को चूमा और हाथ से स्पर्श किया और अपने आगमन की सूचना दी, "भगवान्! मैं कोसल-नरेश प्रसेनजित् हूँ।"

७. भगवान् बुद्ध ने पूछा—"लेकिन, महाराज! इस शरीर में ऐसी क्या विशेषता है कि आप इस शरीर के प्रति इतना भक्ति-भाव प्रदर्शित कर रहे हैं?"

१. संयुत्त निकाय।
२. धम्मपद अ०क० ४ : ८।
३. मज्झिम निकाय ३ : ४ : ७।
४. मज्झिम निकाय ४ : ४५।
५. सेल सुत्त (मज्झिम निकाय)।
६. मज्झिम निकाय।

सप्तम् काण्ड

महान परिव्राजक की अन्तिम चारिका

पहला भाग	–	निकटस्थ जनों से भेंट
दूसरा भाग	–	वैशाली से विदाई
तीसरा भाग	–	महापरिनिर्वाण

पहला भाग

निकटस्थ जनों से भेंट

१. धर्म-प्रचार के केन्द्र

१. धर्म-दूतों की नियुक्ति के बाद भगवान् बुद्ध स्वयं किसी एक जगह नहीं बैठ गये थे। वे भी स्वयं धर्म-दूत बने रहे।

२. ऐसा लगता है कि भगवान् बुद्ध ने कुछ विशेष स्थानों को धर्म-प्रचार का केन्द्र बना लिया था।

३. ऐसे केन्द्रों में प्रधान थे श्रावस्ती और राजगृह।

४. उन्होंने लगभग ७५ बार श्रावस्ती की यात्रा की होगी और कोई २४ बार राजगृह की।

५. कुछ दूसरे स्थान धर्म-प्रचार के छोटे केन्द्र थे।

६. जैसे कपिलवस्तु, जहाँ तथागत ६ बार गये, वैशाली भी छः बार गये और कम्मासदम्म ४ बार।

२. भगवान बुद्ध कहाँ कहाँ पधारे ?

१. अपनी चारिका करते करते उक्त प्रधान और छोटे केन्द्रों के अतिरिक्त ऐसे और बहुत से स्थान हैं जहाँ भगवान् बुद्ध गये ;।

२. वे उकट्ठा, नादिका, साला, अस्सपुर, घोषितराम, नालन्दा, आपण तथा एतुमा पधारे।

३. वे ओपसाद, इच्छा-नङ्गल, चण्डाल-कप्प, तथा कुसीनारा गये।

४. वे देवदह, पावा, अम्बसण्डा, सेतव्या, अनूपिया तथा उजुञ्ञा गये।

५. जिन जिन जगहों पर तथागत गये उनके नामों को देखने से पता लगता है कि वे शाक्य-जनपद, कुरु जनपद तथा अङ्ग जनपद में पधारे।

६. मोटे रूप से यह कह सकते हैं कि उन्होंने समस्त उत्तरी-भारत की यात्रा की।

७. इन स्थानों की संख्या बहुत अधिक प्रतीत नहीं होती। लेकिन इनके बीच की भी दूरी कितनी है ? लुम्बिनी से राजगृह कोई ढाई सौ मील से कम दूर नहीं है। इससे स्थानों की दूरी का कुछ अन्दाजा लग जाता है।

८. इन सभी स्थानों पर भगवान् बुद्ध पैदल ही गये हैं। उन्होंने बैलगाड़ी तक का भी उपयोग नहीं किया।

९. जब वे चारिका करते थे तो रास्ते में ठहरने के लिए भी कोई जगह नहीं थी। आगे चलकर तो उनके गृहस्थ उपासकों ने उनके रहने-ठहरने के लिए विहार बनवा दिये थे। तथागत बहुधा सड़क के किनारे के वृक्षों की छाया में ही रात बिताते थे।

१०. जिनके मन में सन्देह थे, उनके सन्देह मिटाते हुए, जो विरोधी थे, उनके तर्कों का उत्तर देते हुए, जो बच्चों की तरह उनका विश्वास करते थे उन्हें सत्पथ दिखाते हुए तथागत एक जगह से दूसरी जगह, एक गाँव से दूसरे गाँव विचरते थे।

११. भगवान् बुद्ध जानते थे कि जितने लोग उनका उपदेश सुनने आते थे वे सब न समान रूप से बुद्धिमान होते थे और न ऐसे ही कि जिनकी पहले से कुछ पूर्व-धारणायें न बनी हुई हों।

१२. उन्होंने भिक्षुओं को बता तक दिया था कि श्रोतागण तीन प्रकार के होते हैं :—

१३. "खाली-दिमाग, जिस मूर्ख को कुछ भी दिखाई नहीं देता; यद्यपि वह बार-बार भिक्षुओं के पास जाता है; आदि, मध्य और अन्त तक उनके प्रवचन सुनता है; लेकिन कुछ नहीं समझ सकता। उसे बुद्धि ही नहीं होती।

१४. "लेकिन उससे अच्छा वह आदमी होता है, जिसका चित्त एकाग्र नहीं होता, वह बार-बार भिक्षुओं के पास जाता है; आदि, मध्य और अन्त तक उनके 'प्रवचन' सुनता है, और जब तक वहाँ बैठा रहता है तब तक सब कुछ समझता भी है; लेकिन वहाँ से उठने पर उसके दिमाग में कुछ टिका नहीं रहता। उसका दिमाग कोरा हो जाता है।

१५. "इन दोनों से प्रशस्त-प्रज्ञ आदमी अच्छा है। वह भी बार-बार भिक्षुओं के पास जाता है; आदि, मध्य और अन्त तक उनके प्रवचन सुनता है; वहाँ बैठे-बैठे सब कुछ समझता है; सब कुछ ध्यान में रखता है, स्थिर-चित्त, एकाग्र-चित्त और धर्म तथा धार्मिक विषयों में दक्ष।"[१]

१६. इन सब के बावजूद भगवान् धर्मोपदेश के उद्देश्य से एक स्थान से दूसरे स्थान पर विचरते ही रहे। उन्होंने कभी क्लान्ति अनुभव नहीं की।

१७. एक 'भिक्षु' की तरह ही भगवान् बुद्ध के पास तीन चीवरों से अधिक कभी नहीं रहे। वे [illegible] में एक बार भोजन ग्रहण करते थे। वे हर रोज घर घर से भिक्षाटन करते थे।

१८. किसी भी मानव ने इससे कड़े 'कर्तव्य' को नहीं निभाया होगा—और इतनी प्रसन्नता के साथ।

३. माता और पुत्र तथा पति और पत्नी की अन्तिम भेंट

१. मृत्यु से पहले महाप्रजापति और यशोधरा तथागत से भेंट कर सकीं।

२. यही कदाचित् उनकी अन्तिम भेंट थी।

३. पहले महाप्रजापति गई और उसने जाकर तथागत की पूजा की।

४. वह उनकी ऋणी थी, क्योंकि तथागत ने उसे सद्धर्म का पान कराया था, क्योंकि उसके (अध्यात्म-) शरीर ने तथागत के माध्यम से जन्म ग्रहण किया था, क्योंकि उसके शरीर में धर्म ने तथागत के माध्यम से ही विकास पाया था, क्योंकि उसने तथागत के धर्मरूपी दुग्ध का पान किया था, क्योंकि उसने इन्हीं की सहायता से संसार-सागर को तैर कर पार किया था---यह कितनी बड़ी बात थी कि वह बुद्ध जननी मानी गई !

५. और तब उसने अपनी बात कही---

"अब मैं इस देह का त्याग कर मृत्यु को प्राप्त होना चाहती हूँ। हे दुःख का अन्त करने वाले भगवान्! मुझे अब इसकी अनुमति दें।"

६. यशोधरा ने भगवान् बुद्ध से बात करते हुए कहा कि अब वह अठहत्तर वर्ष की हो गई है। तथागत ने कहा कि यह उनका अस्सीवां वर्ष है।

७. यशोधरा ने कहा कि आज की रात ही उसको अन्तिम रात्रि है। महाप्रजा-पति की अपेक्षा उसका स्वर अधिक संयत था। उसने तथागत से न मरने की अनुमति मांगी और न महाप्रजापति की तरह उसने उन्हीं की शरण ही ग्रहण की।

८. बल्कि उसके प्रति-विरुद्ध उसने कहा---मैं अपनी शरण आप हूँ।'

९. वह अपने जीवन के सभी बंधन काट चुकी थी।

१०. वह अपनी कृतज्ञता प्रकट करने आई थी, क्योंकि तथागत ही उसके पथ-प्रदर्शक थे और तथागत से ही उसने धर्म-बल प्राप्त किया था।

४. पिता और पुत्र में अन्तिम भेंट

१. एक बार जब भगवान् बुद्ध राजगृह के वेळुवन में निवास कर रहे थे, उसी समय राहुल अम्बलट्ठिका में ठहरे थे।

२. अपराह्न के बाद जब भगवान् बुद्ध समाधि से उठे तो वह राहुल की ओर गये। उन्हें दूर से ही आता देख राहुल ने उनके लिए आसन बिछा दिया तथा पैर धोने के लिये पानी रख दिया।

३. राहुल द्वारा बिछाये आसन पर बैठ कर तथागत ने अपने पांव धोये, और राहुल ने भी तथागत को अभिवादन कर एक ओर स्थान ग्रहण किया।

४. राहुल को सम्बोधित कर के तथागत ने कहा---"जिसे जान बूझ कर झूठ

बोलने में लज्जा नहीं, वह कुछ भी पाप-कर्म कर सकता है, इसलिए राहुल ! यह सीखना चाहिए कि हम हंसी-मज़ाक़ में भी कभी झूठ न बोलेंगे।

५. "इसी प्रकार कोई भी काम करने लगो, पहले उसके बारे में सोचो, कोई भी शब्द मुंह से निकालने लगो, पहले उसके बारे में सोचो, कोई भी बात मन में पैदा हो, पहले उसके बारे में सोचो।

६. "जब कोई भी काम करने लगो तो पहले उसके बारे में सोचो कि यह तुम्हारे तथा दूसरों के लिए अहितकर तो नहीं होगा, एक दुष्ट-कर्म कष्टदायी होता है। यदि तुम्हारा विचार कहे कि यह काम ऐसा ही है, तो उससे विरत रहो।

७. "लेकिन यदि सोचने-विचारने से लगे कि यह काम अहितकर नहीं है, हितकर है तो तुम उसे कर सकते हो।

८. "मैत्री का अभ्यास करो; क्योंकि मैत्री-भावना के अभ्यास से द्वेष का शमन हो जायगा।

९. "करुणा का अभ्यास करो; क्योंकि करुणा-भावना का अभ्यास करने से खीझ का शमन हो जायगा।

१०. "मुदिता का अभ्यास करो– क्योंकि मुदिता-भावना का अभ्यास करने से अरति का शमन हो जायगा।

११. "उपेक्षा का अभ्यास करो; क्योंकि उपेक्षा -भावना का अभ्यास करने से चंचलता का शमन हो जायगा।

१२. "शरीर के अशुभ रूप का चिन्तन करो; क्योंकि ऐसा करने से काम-राग का शमन हो जायगा।

१३. "सभी चीजों की 'अनित्यता' की भावना करो, क्योंकि ऐसा करने से अहंकार का शमन हो जायगा।"

१४. ऐसा भगवान् बुद्ध ने कहा। राहुल ने सुना तो उसने प्रसन्न हो अभिनन्दन किया।

५. भगवान बुद्ध और सारिपुत्र की अन्तिम भेंट

१. भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन विहार में गन्ध-कुटी में विराजमान थे।

२. पांच सो भिक्षुओं को साथ लिये सारिपुत्र वहाँ पहुंचे।[४]

३. तथागत को अभिवादन कर सारिपुत्र ने निवेदन किया कि अब मेरा अन्तिम समय समीप आ पहुंचा है। क्या तथागत अब मुझे शरीर-त्याग की अनुमति देते हैं

४. भग[illegible] [illegible]ुद्ध ने सारिपुत्र से पूछा—"क्या तूने अपने निर्वाण के लिये कोई स्थान-विशेष चुना है ?"

५. सारिपुत्र का उत्तर था—"मैं मगध के नालक नाम के गांव में पैदा हुआ

था। जिस घर में पैदा हुआ था, वह अभी भी है। मैंने उसी को चुना है।"

६. तथागत बोले—"प्रिय सारिपुत्र ! जो अच्छा लगे सो करो।"

७. सारिपुत्र तथागत के चरणों पर गिर कर बोले—"मैंने एक हजार कल्प तक पारमिताओं का अभ्यास केवल एक ही अच्छा को लेकर किया और वह यह कि मुझे आपके चरणों की वन्दना करनी मिले। मेरी यह इच्छा पूरी हो गई। मेरी प्रसन्नता का कोई ठिकाना नहीं।

८. "हमारी पुनरुत्पत्ति की सम्भावना नहीं है। इसलिये यही हमारी अन्तिम भेंट है। तथागत मेरे अपराधों को क्षमा करें।

९. तथागत बोले—"सारिपुत्र ! क्षमा करने के लिए कुछ है ही नहीं।"

१०. जब सारिपुत्र चलने लगे तो तथागत भी उनके प्रति गौरव प्रकट करने के लिए गन्धकुटी के बाहर आये और बराम्दे में खड़े हो गये।

११. तब सारिपुत्र बोले—"जब मुझे प्रथम बार दर्शन हुआ, मैं अत्यधिक आनन्दित हुआ। यह इस समय का दर्शन भी मेरे लिये अत्यन्त आनन्ददायक है। क्योंकि मैं जानता हूँ कि यही अन्तिम दर्शन है।"

१२. बिना पीठ पीछे किये, सारिपुत्र हाथ जोड़े जोड़े वहाँ से विदा हुए।

१३. तब भगवान् बुद्ध ने उपस्थित भिक्षु-मण्डली को कहा—'अपने ज्येष्ठ भ्राता के पीछे-पीछे जाओ।' उस बार—और पहली बार—भिक्षुसंघ तथागत को छोड़ कर सारिपुत्र के पीछे-पीछे गया।

१४. अपने गाँव पहुँच कर सारिपुत्र ने ठीक उसी कोठरी में जिसमें जन्म ग्रहण किया था, परिनिर्वाण प्राप्त किया।

१५. सारिपुत्र का दाह-संस्कार किया गया। उनकी अस्थियाँ तथागत के पास ले जाई गईं।

१६. सारिपुत्र के 'फूल' सामने आये तो तथागत बोले—'वह सब से अधिक बुद्धिमान था, उसमें संग्रह-वृत्ति का लेश भी न था, वह उत्साही और परिश्रमी था। उसे 'पाप' से घृणा थी। भिक्षुओ! उसके 'फूल' देखो। क्षमाशीलता में वह पृथ्वी के समान था। उसने क्रोध को जीत लिया था। वह कभी किसी इच्छा के वशीभूत न होता था। वह इन्द्रिय-जयी था। वह करुणा तथा मैत्री की मूर्ति था।'

१७. उसी समय महामौद्गल्यायन भी राजगृह के समीप एक एकान्त-विहार में रहते थे। तथागत के शत्रुओं द्वारा नियुक्त हत्यारों ने महामोग्गल्लान की हत्या कर डाली।

१८. महामोग्गल्लान की मृत्यु का दुःखद समाचार तथागत तक पहुंचा। सारिपुत्र और मोग्गल्लान उनके दो मुख्य शिष्य थे। सारिपुत्र धर्म सेनापति कहलाते थे। तथागत अपनी धर्म-परम्परा चालू रखने के लिए कदाचित् उन्हीं पर निर्भर करते थे।

१९. उन दोनों की मृत्यु से तथागत के मन में बहुत संवेग उत्पन्न हुआ।

२०. उसके बाद उन्हें श्रावस्ती में रहना अच्छा नहीं लगा। वे श्रावस्ती से विदा हुए।

१. तिक निपात (अंगुत्तर निकाय)।
२. थेरी-गाथा तथा थेरी-गाथा अट्ठकथा।
३. राहुलोवाद सुत्तन्त (म० नि० २ :२ : १)।
४. सं० नि० ४५ : २ : ३; तथा अट्ठकथा।
५. चुन्दसुत्त।

दूसरा भाग

वैशाली से विदाई

१. वैशाली को नमस्कार

१. अपनी अन्तिम चारिका के लिये निकलने से पूर्व तथागत राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर ठहरे हुए थे ।

२. कुछ समय वहां रह चुकने के बाद तथागत ने कहा—"आओ आनन्द ! अम्बलट्ठिका चलें ।"[1]

३. "जो आज्ञा", आनन्द ने कहा । महान् भिक्षु संघ के साथ तथागत अम्ब-लट्ठिका के लिये चल दिये ।

४. कुछ समय अम्बलट्ठिका में ठहर कर तथागत नालन्दा चले गये ।

५. नालन्दा से वह मगध की राजधानी पाटली ग्राम (=पाटलीपुत्र) गये ।

६. पाटली-ग्राम से वह कोटि-ग्राम गये और कोटि-ग्राम से नादिका ।

७. इनमें से हर जगह वे कुछ दिन रुके और वहां भिक्षु संघ अथवा उपासकों को प्रवचन दिये ।

८. नादिका से तथागत वैशाली गये ।

९. वैशाली निगण्ठनाथ पुत्र (=महावीर) का जन्म-स्थान था । इसलिये जैन मत का एक गढ़ भी ।

१०. लेकिन तथागत शीघ्र ही उन लोगों को अपना अनुयायी बनाने में सफल हो गये ।

११. कहा जाता है कि अनावृष्टि के कारण वैशाली में एक ऐसा अकाल पड़ा कि बहुत से लोग मर गये ।

१२. वैशाली के लोगों ने अपनी सभा में इसकी चर्चा की ।

१३. बड़े वाद-विवाद के बाद सभी ने तथागत को नगर में आमन्त्रित करने का निश्चय किया ।

१४. वैशाली के पुरोहित-पुत्र, राजा बिम्बिसार के मित्र महाली नाम के लिच्छवी को, सिद्धार्थ को निमन्त्रण देने के लिये भेजा ।

१५. भगवान् बुद्ध ने निमन्त्रण स्वीकार किया और पांच सौ भिक्षुओं को

साथ ले चल दिये। जैसे ही उन्होंने वज्जियों की सीमा में प्रवेश किया, बड़ी ज़ोर का तूफान आया, मूसलाधार वर्षा हुई और अकाल समाप्त हो गया।

१६. वैशाली के लोगों ने जो तथागत का इतना स्वागत किया उसका मूल कारण यही था।

१७. जब भगवान् बुद्ध ने वैशाली के लोगों के दिलों को जींत लिया था, तो उनके लिए यह स्वाभाविक था कि वे उनकी अधिक से अधिक आओ-भगत करते।

१८. तब वर्षावास (=चातुर्मास) का समय आ गया। भगवान् बुद्ध वर्षावास के लिए वेळुवन चले गये और उन्होंने भिक्षुओं को वैशाली में ही वर्षावास करने को कहा।

१९. वेळुवन (राजगृह) में वर्षावास समाप्त कर तथागत फिर वैशाली आये कि वैशाली से अपनी चारिका आरम्भ करें।

२०. एक दिन तथागत ने पूर्वाह्न में चीवर पहना तथा पात्र-चीवर ले भिक्षाटन के लिए वैशाली में प्रवेश किया। भिक्षाटन के अनन्तर, जब वे भिक्षा ग्रहण कर चुके तो उन्होंने एक गज-राज की तरह वैशाली की ओर देखा और आनन्द से कहा—"आनन्द! यह अन्तिम बार है कि तथागत वैशाली को देख रहे हैं।"

२१. यह कहते हुए उन्होंने वैशाली के लोगों से विदा ली।

२२. विदा होते समय तथागत ने वैशाली के लोगों को अपना भिक्षा-पात्र 'स्मृति' के रूप में दे दिया।

२३. यह तथागत की वैशाली की अन्तिम यात्रा थी। इसके बाद तथागत वैशाली नहीं ही आये।

२. पावा में पड़ाव

१. वैशाली से तथागत भण्ड ग्राम गये।[२]

२. भण्ड ग्राम से हट्ठी नगर और तब भोग-नगर।

३. और भोग-नगर से पावा।

४. पावा में भगवान् बुद्ध चुन्द नामक सुनार के आम्रवन में ठहरे।

५. चुन्द ने सुना कि भगवान् बुद्ध पावा आये हैं और उसके आम्रवन में ठहरे हैं।

६. चुन्द आम्रवन पहुंचा और जाकर तथागत के समीप बैठ गया। तथागत ने उसे 'धर्मोपदेश' दिया।

७. इससे प्रसन्न होकर चुन्द ने भगवान् बुद्ध को निमंत्रित किया—"भिक्षु संघ सहित भगवान् बुद्ध कल मेरे घर पर भोजन करने की कृपा करें।"

८. भगवान् बुद्ध ने 'मौन' द्वारा स्वीकृति दी। यह देख कि उसका निमंत्रण स्वीकृत हुआ, चुन्द वहां से चला गया।

९. दूसरे दिन चुन्द ने अपने घर पर खीर आदि स्वादिष्ट भोजनों के साथ

'सूकर-मद्दव' भी तैयार कराया। समय होने पर उसने सूचना भिजवाई— 'भगवान्' ! समय हो गया है। भोजन तैयार है।'

१०. भगवान् बुद्ध ने चीवर धारण किया, पात्र हाथ में लिया और चुन्द के निवास-स्थान पर पहुंचे। वहाँ उन्होंने चुन्द का तैयार किया हुआ भोजन ग्रहण किया।

११. भोजनानन्तर भी भगवान् बुद्ध ने चुन्द को धर्मोपदेश दिया और तब वहाँ से चले गये।

१२. चुन्द द्वारा दिया गया भोजन तथागत को अनुकूल नहीं पड़ा। उन्हें रोग ने आ घेरा। रक्त-स्राव होने लगा और साथ मर्मान्तिक वेदना।

१३. लेकिन तथागत ने उसे 'स्मृति-सम्प्रजन्य' के साथ जैसे तैसे सहन कर लिया।

१४. आम्रवन लौटकर, कुछ स्वस्थ होने पर भगवान् बुद्ध ने आनन्द को कहा—'आओ आनन्द ! कुसीनारा चलें।' भिक्षु संघ सहित भगवान् बुद्ध कुसीनारा पधारे।

३. कुसीनारा पहुंचना

१. भगवान् बुद्ध थोड़ी ही दूर चले थे कि उन्हें विश्राम की आवश्यकता अनुभव हुई।[३]

२. रास्ते में ही वे सड़क से एक ओर हट कर एक वृक्ष की छाया में जा बैठे और आनन्द से कहा—"आनन्द ! संघाटी की तह लगा कर बिछा दो। थका हूँ, कुछ देर विश्राम करूँगा।"

३. "बहुत अच्छा", कह आनन्द ने तथागत की आज्ञा स्वीकार की और चीवर को चौहरा कर के बिछा दिया।

४. तथागत उस बिछे आसन पर विराजमान हुए।

५. वहाँ बैठकर तथागत ने आनन्द को सम्बोधित किया और कहा—"आनन्द ! कुछ पानी ला। प्यासा हूँ। पानी पीऊँगा।"

६. आनन्द का उत्तर था—"ककुत्थ नदी समीप ही है। इसका जल साफ और स्वच्छ है। पानी निर्मल है। आसानी से नीचे उतरा जा सकता है। वहाँ भगवान बुद्ध चलें, पानी भी पी लें और हाथ मुंह धो भी लें। इस जलाशय का जल साफ नहीं, गन्दला है।"

७. तथागत का शरीर इतना दुर्बल हो गया था कि वे वहां तक चल न सकते थे। वह पास के जलाशय के पानी से ही संतुष्ट थे।

८. आनन्द पानी लाये और तथागत ने पिया।

९. कुछ देर विश्राम करके भिक्षु संघ सहित तथागत ककुत्थ नदी पर पहुंचे।

वहाँ पहुंच कर वे पानी में उतरे तथा स्नान किया और जल-पान किया। फिर दूसरी ओर बाहर आकर वे आम्रवन की ओर बढ़े।

१०. वहाँ पहुंच कर उन्होंने आनन्द को फिर आज्ञा दी कि उनका चीवर बिछा दे। कहा— "थका हूं, लेटूंगा।" आज्ञानुसार चीवर बिछा दिया गया और तथागत ने उस पर विश्राम किया।

११. थोड़ी देर विश्राम कर चुके तो तथागत उठे और आनन्द से कहा— "आनन्द! हम मल्लों के शाल-वन में चलें। यह हिरण्यवती के दूसरे किनारे पर कुसीनारा का उपवन है।"

१२. वहाँ पहुंच कर तथागत ने आनन्द को फिर कहा—"आनन्द! इन जोड़े शाल वृक्षों के बीच मेरी संघाटी बिछा दो। मैं थका हूँ और विश्राम करूँगा।"

१३. आनन्द ने संघाटी बिछा दी और तथागत ने अपने आपको उस पर लिटा दिया।

१. महापरिनिब्बाण सुत्त।
२. महापरिनिब्बाण सुत्तन्त (दीघनिकाय १६)।
३. महापरिनिब्बाण सुत्त (दीघनिकाय १६)।

तीसरा भाग

महा-परिनिर्वाण

१. उत्तराधिकारी की नियुक्ति

१. एक समय भगवान् बुद्ध शाक्यों में चारिका कर रहे थे। उस समय वे धनुर्धारी नामक शाक्य परिवार के आम्रवन में ठहरे हुए थे।[1]

२. उस समय पावा में निगण्ठनाथ पुत्र (=महावीर) का देहान्त हुए थोड़ा ही समय हुआ था। उसकी मृत्यु पर निर्गन्थ (=जैन) लोगों में आपस में झगड़ा हो गया। वे दो दलों में विभक्त होकर परस्पर एक दूसरे को शब्दरूपी बाणों से बींधने लगे।

३. अब चुन्द श्रामणेर पावा में वर्षावास समाप्त कर आनन्द स्थविर से मिलने आया। उस ने सूचना दी। "निगण्ठनाथ पुत्र का अभी अभी पावा में शरीरान्त हो गया है। उस की मृत्यु हो जाने पर निर्ग्रन्थ लोगों में आपस में झगड़ा हो गया है। वे दो दलों में विभक्त हो गये हैं। एक दूसरे को परस्पर शब्द रूपी बाणों से बींधते हैं। इसका कारण यही है कि उनका कोई शास्ता नहीं रहा है।"

४. तब आनन्द स्थविर ने कहा—"चुन्द ! यह तथागत के ध्यान में लाने लायक एक महत्वपूर्ण विषय है। हम उनके पास चलें और यह बात बता दें।"

५. "बहुत अच्छा," चुन्द ने कहा।

६. तब आनन्द और चुन्द दोनों मिलकर तथागत के पास पहुंचे और अभिवादन कर तथागत को निगण्ठनाथ पुत्र की मृत्यु की सूचना दी और साथ ही आग्रहपूर्वक निवेदन किया कि तथागत अपना कोई उत्तराधिकारी नियुक्त कर दें।

७. चुन्द की बात सुनी तो तथागत ने उत्तर दिया ! "चुन्द ! विचार करो कि लोक में एक शास्ता उत्पन्न होता है अर्हत, सम्यक् सम्बुद्ध; यदि वह सद्धर्म की देशना करता है, जो सु-आख्यात है, जो प्रभावशाली पथ--प्रदर्शक है, जो शान्ति की ओर ले जाता है; लेकिन यदि उसके श्रावक सद्धर्म में सम्यक् प्रतिष्ठित नहीं हुए हैं, यदि वह सद्धर्म उस शास्ता के न रहने पर उनका त्राण नहीं कर सकता। तो...

८. "तो हे चुन्द ! ऐसे शास्ता का न रहना उसके श्रावकों के लिये भी बड़े दु:ख की बात है और उसके धर्म के लिए भी बड़ा खतरा है।

९. "लेकिन चुन्द ! जब लोक में एक ऐसा शास्ता उत्पन्न हुआ हो जो अर्हत् हो, जो सम्यक्-सम्बुद्ध हो; जिसने सद्धर्म की देशना की हो; जिसका सद्धर्म सु-आख्यात हो, जो सद्धर्म प्रभावशाली पथ-प्रदर्शक हो, जो शान्ति की ओर ले जाता हो, और जहां श्रावक सद्धर्म में सम्यक्रूप से प्रतिष्ठित हो गये हों और जब शास्ता के न रहने पर भी वह सद्धर्म उन श्रावकों को सम्यक् रूप से प्रकट रहता हो; तो....

१०. "तो चुन्द ! ऐसे शास्ता का न रहना उसके श्रावकों के लिये दुःख की वात नहीं है। तब किसी उत्तराधिकारी की क्या आवश्यकता है ?"

११. जब आनन्द ने एक दूसरे अवसर पर भी यही बात दोहराई तो तथागत ने कहा—"आनन्द ! क्या दो भिक्षु भी तुम्हें ऐसे दिखाई देते हैं, जिनका धर्म के विषय में एक मत न हो ?"

१२. "नहीं, लेकिन जो तथागत के आस-पास हैं, हो सकता है कि वे तथागत के मरने के बाद 'विनय' के सम्बन्ध में , संघ के नियमों के संबंध में विवाद खड़ा कर दें और ऐसा विवाद बहुत लोगों के दुख के लिये होगा, बहुत लोगों के अहित के लिये होगा ।"

१३. "आनन्द ! 'विनय' सम्बन्धी विवाद, भिक्षुओं के नियमों के सम्बन्ध में विवाद बहुत महत्व के नहीं हैं, लेकिन हो सकता है कि भिक्षु संघ में 'धर्म' को लेकर भी विवाद उठ खड़ा हो —यह सचमुच चिन्ता की बात होगी ।

१४. "लेकिन 'धर्म' सम्बन्धी विवादों के विषय में कोई 'डिक्टेटर' कुछ नही कर सकता। और एक उत्तराधिकारी भी यदि 'डिक्टेटर' नहीं बनता तो कर क्या सकता है ?

१५. "धर्म सम्बन्धी विवादों का निर्णय किसी डिक्टेटर का विषय नहीं है।

१६. "किसी भी विवाद के बारे में स्वयं संघ को ही निर्णय करना होगा। संघ को इकट्ठे होकर विचार करना चाहिये और जब तक किसी निर्णय पर न पहुँचा जाये, तब तक उस सम्बन्ध में अच्छी तरह ऊहा-पोह करनी चाहिये, और बाद में उस निर्णय को स्वीकार करना चाहिये ।

१७. "विवादों का निर्णय बहुमत से होना चाहिये। उत्तराधिकारी की नियुक्ति इसका इलाज नहीं है ।"

२. अन्तिम धर्म-दीक्षा

१. उस समय सुभद्र परिब्राजक कुसीनारा में ठहरा हुआ था।[*] सुभद्र परिब्राजक ने सुना "कहा जाता है कि आज की ही रात पिछले पहर में तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे ।" तब सुभद्र परिब्राजक के मन में आया ।

२. "मैंने कुछ दूसरे वयोवृद्ध परिव्राजकों से—गुरुओं तथा शिष्यों से—सुना है कि लोक में तथागत, अर्हत, सम्यक् सम्बुद्ध रोज रोज जन्म ग्रहण नहीं करते।

और आज ही रात के पिछले पहर को श्रमण गौतम का परिनिर्वाण हो जायगा। अब मेरे मन में एक सन्देह पैदा हुआ है। मुझे श्रमण गौतम पर विश्वास है कि वह मुझे ऐसा उपदेश दे सकते हैं जिससे मेरे सन्देह की निवृत्ति हो जाय।"

३. तब सुभद्र परिव्राजक छोटी सड़क से मल्लों के शाल वन पहुंचा। वह वहाँ गया, जहां आनन्द स्थविर थे और बोला—'आनन्द स्थविर! मैं जरा देर के लिये तथागत का दर्शन कर पाता।'

४. उसके ऐसा कहने पर आनन्द स्थविर ने सुभद्र परिव्राजक को कहा—"सुभद्र! अब रहने दो। सुभद्र! अब तथागत को कष्ट मत दो। सुभद्र अब तथागत विश्राम कर रहे हैं और बहुत थके हैं।"

५. सुभद्र परिव्राजक ने दूसरी ओर तीसरी बार भी अपनी बात दोहराई। तीनों बार आनन्द स्थविर ने सुभद्र परिव्राजक को एक ही उत्तर दिया।

६. आनन्द स्थविर और सुभद्र परिव्राजक के बीच की बात-चीत को तथागत ने सुना लिया। उन्हों ने आनन्द स्थविर को सम्बोधित करके कहा—'आनन्द! सुभद्र को मत रोको। सुभद्र को तथागत का दर्शन कर लेने दो। सुभद्र जो भी प्रश्न मुझ से करेगा वह मुझ से कुछ जानने के लिये ही करेगा, मुझे कष्ट देने के लिये नहीं करेगा। जो कुछ मैं उसे उत्तर में कहूंगा, उसे भी वह शीघ्र ही समझ लेगा।'

७. तब आनन्द स्थविर ने सुभद्र परिव्राजक को कहा—"सुभद्र! भीतर जाओ। तथागत ने तुम्हें अनुमति दे दी है।"

८. तब सुभद्र परिव्राजक तथागत के समीप पहुँचा, अभिवादन किया और स्वास्थ्य समाचार पूछ कर एक ओर बैठ गया। इस प्रकार बैठे हुए सुभद्र परिव्राजक ने तथागत से प्रश्न किया:—

९. "श्रमण गौतम! ये जितने भी श्रमण ब्राह्मण हैं, जिन के पीछे जमात है, जो गणाचार्य हैं, जो प्रसिद्ध हैं, जो मतों के संस्थापक के रूप में ज्ञात हैं, जिन्हें जनता धर्मात्मा मानती है जैसे पूर्णकाश्यप, मक्खली गोशाल, अजित केशकम्बली पकुध कच्चायन, सञ्जय, वेलट्ठी-पुत्र तथा निगुण्ठ-नाथ पुत्र—इन सब ने जैसा वे कहते हैं अपने आपसे सत्य ज्ञान प्राप्त किया है वा नहीं किया? क्या उनमें से किसी ने नहीं किया? अथवा किसी ने किया है और किसी ने नहीं किया?"

१०. "सुभद्र! इस चक्कर में मत पड़ो कि किसी ने भी ज्ञान प्राप्त किया है, वा नहीं किया? मैं तुम्हें धर्म का उपदेश देता हूँ। इसे ध्यान से सुनो। इधर चित्त दो। मैं कहता हूँ।"

११. "भगवान्! बहुत अच्छा" कह सुभद्र परिव्राजक ने तथागत की ओर ध्यान दिया। तब तथागत ने कहा:—

१२. "सुभद्र – जिस धर्म-विनय (=मत) में आर्य अष्टांगिक मार्ग नहीं है,

उसमें कोई श्रमण भी नहीं है। जिस धर्म-विनय (=मत) में आर्य अष्टांगिक मार्ग है उसी में श्रमण भी हैं।

१३. "सुभद्र! तथागत के धर्म-विनय (=मत) में आर्य अष्टांगिक मार्ग है। इसलिये तथागत के धर्म-विनय में श्रमण भी हैं श्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी तथा अर्हत हैं। दूसरे मत श्रमणों से शून्य हैं। लेकिन हे सुभद्र! यदि इस धर्म-विनय में सम्यक् जीवी होंगे तो संसार कभी अर्हतों से शून्य न होगा?

१४. "उन्तीस वर्ष की आयु में मैं कल्याण-पथ का पथिक बना।

१५. "सुभद्र! अब पचास वर्ष से अधिक हो गये हैं जबसे मैं सद्धर्म का पक्ष ग्रहण किये हूँ।"

१६. तथागत के ऐसा कहने पर सुभद्र परिव्राजक बोला—अद्भूत है श्रमण गौतम! अद्भुत है श्रमण गौतम!

१७. "जैसे कोई फेंके हुए को फिर प्रतिष्ठित कर दे, अथवा ढके को उघाड़ दे, अथवा पथ-भ्रष्ट को मार्ग दिखा दे अथवा अन्धेरे में प्रदीप प्रज्ज्वलित कर दे ताकि आंख वाले देख सकें।

१८. "इसी प्रकार तथागत ने मुझे सत्य का ज्ञान करा दिया। इसलिये मैं बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण ग्रहण करता हूँ।"

१९. "सुभद्र! जो कोई पहले किसी दूसरे धर्म में दीक्षित रहा हो, वह यदि संघ में प्रविष्ट होना चाहता है तो उसे चार महीने प्रतीक्षा करनी पड़ती है।"

२०. "यदि यह नियम है, तो मैं प्रतीक्षा करने के लिये तैयार हूँ।"

२१. लेकिन तथागत ने कहा—'आदमी आदमी में भेद भी होता है।' उन्होंने आनन्द को बुलाकर कहा—'आनन्द! सुभद्र को संघ में दाखिल कर लो।'

२२. 'बहुत अच्छा', कह आनन्द ने तथागत की आज्ञा स्वीकार की।

२३. और तब सुभद्र परिव्राजक ने आनन्द स्थविर को कहा—'आनन्द! तुम्हारा बड़ा लाभ है। आनन्द! तुम्हारा बड़ा सुलाभ है। आनन्द! तुम बड़े भाग्यवान हो, तुम्हें तथागत ने स्वयं अपने हाथ से भिक्षु-संघ में दीक्षित किया है, धर्म-जल से अभिसिञ्चित किया है।"

२४. आनन्द स्थविर का उत्तर था—'सुभद्र! तुम्हारे वारे में भी तो यही सत्य है।"

२५. इस प्रकार तथागत की अनुज्ञा से सुभद्र परिव्राजक भिक्षु-संघ में सम्मिलित हुआ। स्वयं तथागत द्वारा दीक्षित वह तथागत का अंतिम श्रावक था।

३. अन्तिम वचन

१. उस समय भगवान् बुद्ध ने आनन्द को कहा :—

२. "आनन्द! हो सकता है कि तुम यह सोचने लगो कि अब हमारे शास्ता

चले गये। अब हमारा मार्ग-दर्शक नहीं रहा ! लेकिन आनन्द ! तुम्हें ऐसे नहीं सोचना चाहिये। मेरे बाद जो कुछ मैंने धर्म-विनय सिखाया-पढ़ाया है, वही तुम्हारा शास्ता होगा।[३]

३. "आनन्द ! इस समय परस्पर एक दूसरे को समान सम्बोधन से ही पुकारने की प्रथा है। बड़े छोटे का भेद नहीं। मेरे बाद यह प्रथा बन्द हो जानी चाहिये। बड़ा छोटे को नाम लेकर वा आवुसो (=आयुष्यमान) कहकर पुकार सकता है, किन्तु छोटा जब अपने से बड़े को पुकारे तो उसे या तो उसके 'गोत्र' से पुकारना चाहिये अथवा 'भन्ते' कह कर पुकारना चाहिये।

४. "और आनन्द ! यदि संघ चाहे तो मेरे मरने के बाद जो छोटे-मोटे नियम हैं उन्हें छोड़ भी सकता है।

५. "आनन्द ! तुम जानते हो कि छन्न कैसा जिद्दी, उल्टे-मार्ग पर चलने वाला तथा 'विनय' को न मानने वाला है ?

६. "आनन्द ! मेरे बाद छन्न को 'ब्रह्म-दण्ड' दिया जाय।"

७. "भगवान् ! 'ब्रह्म-दण्ड' से आपका क्या अभिप्राय है ?"

८. "आनन्द ! छन्न चाहे कुछ भी कहे, उसे कहने दिया जाय, उसके साथ बोला न जाय, उसे कुछ कहा न जाय, उसे कुछ भी शिक्षा न दी जाय। हो सकता है कि इस तरह उस का कुछ सुधार हो जाय।"

९. तब तथागत ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया :—

१०. "हो सकता है कि किसी भी भिक्षु के मन में बुद्ध के विषय में, धर्म के विषय में, संघ के विषय में, कुछ भी शंका हो, सन्देह हो, विचिकित्सा हो। अथवा मार्ग के ही विषय में कुछ भी शंका हो, सन्देह हो, विचिकत्सा हो। यदि हो, तो भिक्षुओ ! अब समय है, पूछ लो। बाद में न पछताना कि 'हमारा शास्ता हमारे सम्मुख था, हमने पूछकर अपनी शंका न मिटाई।"

११. ऐसा कहने पर भिक्षु चुप रहे।

१२. तब दूसरी बार और तीसरी बार भी तथागत ने अपनी बात दोहराई। तीसरी बार भी भिक्षु मौन ही रहे।

१३. तब तथागत ने कहा—"हो सकता है कि मेरे प्रति गौरव होने के कारण तुम मौन हो। मित्र के मित्र से पूछने की तरह पूछो।"

१४. तब भी भिक्षु चुप ही रहे।

१५. तब आनन्द स्थविर ने तथागत को कहा—"भगवान् ! अद्भुत है। भगवान् ! आश्चर्य है ! मुझे अपने इस संघ' का विश्वास है। इतने भिक्षुओं में कोई एक भी नहीं है, जिस बुद्ध के बारे में शंका हो, धर्म के बारे में शंका हो, संघ के बारे में शंका हो अथवा (आर्य-) मार्ग के बारे में शंका हो।"

१६. "आनन्द ! तुम्हें तो इस बात का विश्वास है। किन्तु तथागत को इस

बात का ज्ञान है कि इन भिक्षुओं में से किसी एक को भी, किसी एक भी विषय में शंका नहीं है। मेरे इन पांच सौ भिक्षुओं में से जो सब से कम उन्नत है वह भी कम से कम स्रोतापन्न अवश्य है, अर्थात् स्रोत में आ पड़ा है और उसकी बोधि-प्राप्ति सुनिश्चित है।"

१७. तब तथागत ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया—

१८. "भिक्षुओं ! मैं फिर तुम्हें स्मरण करा रहा हूँ। सभी संस्कार अनित्य हैं। अप्रमादपूर्वक अपने लक्ष्य की प्राप्ति में लगे रहो।"

१९. तथागत के अन्तिम-शब्द ये ही थे।

४. आनन्द का शोक

१. आयु कुछ अधिक हो चली तो भगवान् बुद्ध को किसी निजी सेवक की आवश्यकता पड़ी।

२. उन्होंने पहले नन्द को चुना। उसके बाद आनन्द को चुना। आनन्द तथागत के अन्तिम समय तक तथागत की सेवा में ही रहे।

३. आनन्द केवल सेवक ही न थे, बल्कि उनके दिन-रात के प्रियतम साथी भी थे।

४. जब भगवान् बुद्ध कुसीनारा पहुँचे और दो शाल-वृक्षों के मध्य विश्राम करने लगे, तो भगवान् को लगा कि उनका अन्त समय समीप है और उन्हें यह भी लगा कि उन्हें कम से कम आनन्द को कह देना चाहिये।[४]

५. इसलिये उन्होंने आनन्द को सम्बोधित किया और बोले:— 'हे आनन्द ! इन्हीं साल वृक्षों के मध्य, इसी कुशीनारा के उपवन में, रात्रि के तीसरे पहर तथागत का परिनिर्वाण हो जायगा।"

६. तथागत के ऐसा कहने पर आनन्द स्थविर ने कहा—"भगवान् ! आप बहुत जनों के हित के लिये, बहुत जनों के सुख के लिये, लोगों पर अनुकम्पा करने के लिये तथा देवताओं और मनुष्यों के कल्याण के लिये कल्प भर तक (जीवित) रहने की कृपा करें।"

७. तीन बार आनन्द ने अत्यन्त आग्रहपूर्वक यही प्रार्थना की। तथागत का उत्तर था 'आनन्द ! अब रहने दो ! अब ऐसी प्रार्थना मत करो। ऐसी प्रार्थना करने का समय बीत चुका।'

८. "आनन्द ! अब मैं बूढ़ा हो गया, वय-प्राप्त हो गया, अब अन्त समय समीप है। मेरे दिन पूरे होने को आये हैं। मैं अस्सी वर्ष का हो गया हूँ। जिस प्रकार कोई पुराना छकड़ा एक न एक दिन शीर्ण-विशीर्ण हो ही जाता है, वही गति तथागत के शरीर की भी है।" यह सुना तो आनन्द स्थविर वहाँ रूके न रह सके।

९. जब आनन्द स्थविर दिखाई नहीं दिये तो भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं से

पूछा— "आनन्द कहां है ?" भिक्षु बोले—"आनन्द स्थविर यहाँ से चले गये हैं और खड़े रो रहे हैं ।"

१०. तथागत ने एक भिक्षु को बुलाकर कहा—"जाओ, और आनन्द को कहो कि तथागत बुला रहे हैं ।"

११. "बहुत अच्छा" कहकर भिक्षु नें स्वीकार किया ।

१२. आनन्द वापिस आये तो आकर तथागत के समीप बैठ गये ।

१३. "आनन्द ! रोओ मत । क्या मैंनें अनेक बार पहले ही नहीं कहा कि यह चीजों का स्वभाव ही है कि हम को अपनें सभी प्रिय जनों से पृथक् होना ही पड़ता है, विदा लेनी ही पड़ती है, सम्बन्ध तोड़ना ही पड़ता है !

१४. "आनन्द ! इतनें दीर्घ काल तक तुम अपनें मैत्री-पूर्ण वचनों तथा मैत्री-पूर्ण व्यवहार के कारण मेरे बहुत समीप रहे हो ।

१५. "आनन्द ! तुम बड़े कुशल रहे हो ! आनन्द ! प्रयास करो, तुम भी आस्रवों से पूर्ण मोक्ष प्राप्त करोगे ।"

१६. तब आनन्द के ही बारे में बोलते हुए तथागत ने भिक्षुओं से कहा—"भिक्षुओ ! आनन्द बुद्धिमान है । भिक्षुओ ! आनन्द ।

१७. "वह जानता है कि तथागत से भेंट करनें का ठीक समय कौन सा है ? भिक्षु-भिक्षुणियों के लिये ठीक समय कौन सा है, उपासक-उपासिकाओं के लिये ठीक समय कौन सा है, राजा अथवा राजा के मन्त्रियों के लिये ठीक समय कौन सा है ? तथा दूसरे आचार्य्यों-शिष्यों के लिये कौन सा है ?

१८. "भिक्षुओ ! आनन्द की ये चार विशेषतायें हैं ।

१९. "सभी आनन्द से मिलकर प्रसन्न होते हैं । सभी को आनन्द के देखने से आनन्द होता है । सभी को आनन्द का बोलना अच्छा लगता है । सभी को आनन्द का चुप रहना अच्छा नहीं लगता ।"

२०. उस समय आनन्द नें तथागत के परिनिर्वाण की ही बात करते हुए कहा—"तथागत ! आप इस जंगल के बीच, इस उजाड़ नगरी में 'परिनिर्वाण' प्राप्त न करें । चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कोसाम्बी तथा वाराणसी जैसे बड़े बड़े नगर हैं । भगवान् उनमें से किसी एक नगर में परिनिर्वाण प्राप्त करें ।"

२१. "आनन्द ! ऐसा मत कहो ! आनन्द ! ऐसा मत कहो ! आनन्द ! यह कुसीनारा ही किसी समय महासुदर्शन राजा की राजधानी रहा है । उस समय इसका नाम केशवती रहा है ।"

२२. तब तथागत नें आनन्द को दो बातें करने को कहा :—

२३. उन्होंने आनन्द को कहा कि चुन्द अथवा अन्य किसी को यह ख्याल न हो कि उसी का भोजन खाने के परिणामस्वरूप तथागत का परिनिर्वाण हो गया ।

उन्होंने सोचा कि इससे चुन्द मुसिबत में पड़ सकता है। उन्होंने कहा कि देखना, जनता में यह ख्याल न फैलने पाये।

२४. दूसरी बात उन्होंने आनन्द से कही कि कुसीनारा के मल्लों को सूचित कर दे कि तथागत उनके उपवन में ठहरे हैं और रात्रि के तीसरे पहर में परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे।

२५. "ऐसा न हो कि बाद में मल्ल तुम्हें ही दोष दें, कहें कि हमारे अपने गांव में ही तथागत का परिनिर्वाण हुआ, हमें पता भी नहीं लगा। हम अन्त समय दर्शन भी नहीं कर पाये।"

२६. उसके बाद अनुरुद्ध स्थविर तथा आनन्द स्थविर ने धार्मिक चर्चा में ही शेष रात व्यतीत की।

२७. जैसा पहले ही ज्ञात था, रात्रि के तीसरे पहर में ही तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये।

२८. जब तथागत का परिनिर्वाण हो गया तो कुछ भिक्षु और आनन्द बाहें पसार-पसार कर रोने लगे, कुछ दुःखाभिभूत होकर जमीन पर भी गिर पड़े :— "तथागत अत्यन्त शीघ्र परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये। तथागत अत्यन्त शीघ्र आंखों से ओझल हो गये। यह भुवन-प्रदीप बहुत ही शीघ्र बुझ गया।"

२९. वैशाख-पूर्णिमा की रात्रि के तीसरे पहर में तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। उनका परिनिर्वाण ईसा पूर्व ४८३ (चार सौ त्रासी) में हुआ।

३०. पाली में कहा है—

दिवा तपति आदिच्चो
रत्तिं आभाति चन्दिमा
सन्नद्धो खत्तियो तपति
झायी तपति ब्राह्मणो
अथ सब्बं अहोरत्तिं
बुद्धो तपति तेजसा॥

३१. 'सूर्य केवल दिन में ही चमकता है और चन्द्रमा केवल रात्रि में। क्षत्रिय तभी चमकता है, जिस समय वह शस्त्रधारी रहता है। ब्राह्मण तभी चमकता है जब वह ध्यान-रत रहता है। लेकिन बुद्ध अपने तेज से दिन और रात हर समय प्रकाशित रहते हैं।'

३२. इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि बुद्ध भुवनप्रदीप थे—समस्त लोक का प्रकाश स्तम्भ थे।

५. मल्लों का विलाप, एक भिक्षु की प्रसन्नता

१. तथागत के आदेशानुसार आनन्द ने जाकर मल्लों को सूचित कर दिया।[१]

२. जब मल्लों ने यह सुना तो उन्हें दुःख हुआ, उनकी स्त्रियां दुःखी हुईं, उनके तरुण दुःखी हुए तथा उनकी कुमारियां दुःखी हुईं—सभी के चित्त को बड़ा आघात पहुँचा ।

३. कुछ अपने बाल बिखेर कर रोने लगीं, कुछ हाथों से छाती पीट कर रोने लगीं और कुछ जमीन पर लोटने लगीं ।

४. तब अपने कुमार, कुमारियों सहित मल्ल अपने उपवन में वहाँ गये जहां शाल-वृक्ष थे ताकि तथागत के अन्तिम दर्शन कर सकें ।

५. तब आनन्द स्थविर ने सोचा "यदि कुसीनारा के मल्ल एक एक करके तथागत के मृत-शरीर की वन्दना करेंगे, तो बड़ा विलम्ब होगा ।"

६. इसलिये उसने एक एक मण्डली से, एक एक परिवार से, एक साथ वन्दना कराने की व्यवस्था की । प्रत्येक परिवार एक एक साथ तथागत के चरणों की वन्दना कर विदा लेने लगा ।

७. उस समय बहुत से भिक्षुओं के साथ महास्थविर महाकाश्यप पावा से कुसीनगर की ओर ही बढ़े चले आ रहे थे ।

८. उसी समय एक नग्न परिव्राजक पावा की ओर चला जा रहा था ।

९. महास्थविर महाकाश्यप ने नग्न-परिव्राजक को दूर से आते देखा । पास आने पर पूछा—"आप निश्चय से हमारे शास्ता से परिचित होंगे ।

१०. "हाँ ! निश्चित रूप से । आज श्रमण गौतम का परिनिर्वाण हुए सातवां दिन है ।"

११. यह समाचार सुनते ही भिक्षु-गण दुःखाभिभूत हो गये और रोने लगे ।

१२. उस समय एक वृद्ध-प्रव्रजित सुभद्र नामका एक भिक्षु भी वहाँ था ।

१३. वह बोला—"मत रोओ, मत विलाप करो । हम अब श्रमण गौतम से मुक्त हुए । हमें उसके इस कहने से बड़ी हैरानी होती थी कि 'यह तुम कर सकते हो, और यह नहीं कर सकते' । अब हम जो चाहेंगे करेंगे और जो नहीं चाहेंगे, नहीं करेंगे । क्या यह अच्छा नहीं है कि वह चल बसा है ! रोना किस लिये ! विलाप किस लिये ! यह तो खुशी की बात है !"

१४. तथागत अपने भिक्षुओं को इतनी कठोरता पूर्वक नियमों के बन्धन में बांधने वाले थे ।

६. अन्तिम संस्कार

१. तब कुसीनारा के मल्लों ने आनन्द स्थविर से पूछा– "अब तथागत के शरीर के प्रति क्या करणीय है ?"

२. आनन्द स्थविर का उत्तर था—जैसे लोग राजाओं के राजा—महा-राजाओं—की दाह-क्रिया करते हैं, वैसे ही तथागत की होनी चाहिये ।"

३. "और राजाओं के राजा के मृत शरीर के प्रति क्या क्या करणीय होता है?"

४. आनन्द स्थविर ने उत्तर दिया "महाराजाओं की देह को एक नये कपड़े से लपेटा जाता है। फिर रूई—ऊन से लपेटा जाता है। फिर दूसरे नये कपड़े से लपेटा जाता है और यह क्रम तब तक जारी रहता है जब तक वह एक के बाद दूसरे क्रम से पांच सौ बार नहीं लपेट लेते। तब वे शरीर को एक लोहे की तेल भरी बड़ी कड़ाही में रख देते हैं। उसके बाद उसे एक वैसे ही दूसरे लोहे के ढक्कन से ढक देते हैं। तब वे अनेक सामग्रियों से चिता का निर्माण करते हैं। यह वह तरीका है जिस प्रकार लोक किसी महाराजा का अन्तिम-संस्कार करते हैं।"

५. मल्ल बोले:—"ऐसा ही होगा।"

६. तब मल्लों ने कहा:—"आज तथागत के शरीर की दाह-क्रिया करने के लिये बहुत बिलम्ब हो गया है। हम इसे कल करें।"

७. तब कुसीनारा के मल्लों ने अपने आदमियों को आज्ञा दी—"तथागत की अन्त्येष्ठि की तैयारी करो। सुगन्धियों, फूलों तथा कुसीनगर के बाजे बजाने वालों का संग्रह करो।"

८. लेकिन तथागत के शरीर के प्रति आदर, सत्कार, गौरव प्रदर्शित करते हुए तथा उसकी पूजा करते हुए नृत्यों द्वारा, गीतों द्वारा, बाजों द्वारा, फूल मालाओं द्वारा और सुगन्धियों द्वारा—तथा कपड़ों के चन्दवे बनाते हुए और उन पर लटकाने के लिये फूलों की मालायें गूंथते हुए उन्होंने दूसरा दिन भी गुजार दिया, इसी प्रकार तीसरा दिन, चौथा दिन, पांचवां दिन और छठा दिन भी।

९. तब सातवें दिन कुसीनारा के मल्लों ने सोचा, 'आज हम तथागत के शरीर को ले चलें— आज हम उसकी अन्त्येष्ठि कर लें।

१०. तदनन्तर मल्लों के आठ मुखियों ने सिर से स्नान किया, नये वस्त्र पहने ताकि वे तथागत की अर्थी को कन्धा लगा सकें।

११. वे तथागत को मुकुट-बंधन स्थान पर ले गये, जहां नगर के पूर्व की ओर मल्लों का चैत्य था। वहां तथागत के शरीर को रखकर उसे अग्नि-स्पर्श करा दिया गया।

१२. कुछ समय बाद तथागत की नश्वर देह राख परिणत हो गई।

७. भगवान बुद्ध के 'फूलों' के लिये कलह

१. जब तथागत का शरीर अग्नि द्वारा भस्म में परिणत कर दिया गया कुसीनारा के मल्लों ने समस्त राख और अस्थियां इकट्ठी कर लीं और अपने सन्थागार में रखकर उन्हें भालों से घेर दिया और उन पर धनुर्धारियों का पहरा बैठा दिया ताकि कोई उनका एक हिस्सा भी चुरा कर न ले जा सके।

२. सात दिन तक मल्लों ने नृत्य, गीत, वाद्य, माला तथा सुगन्धियों द्वारा उनके प्रति आदर, सत्कार तथा गौरव प्रदर्शित किया और उनकी पूजा की ।

३. अब मगध-नरेश अजातशत्रु ने समाचार सुना कि कुशीनारा में तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये ।

४. इसलिये उसने मल्लों के पास अपना दूत भेज ताकि वे उसे कृपया अवशेषों में से एक हिस्सा दे दें ।

५. इसी प्रकार वैशाली के लिच्छवियों ने दूत भेजा, कपिलवस्तु के शाक्यों ने भेजा, अहकप्प के वल्लियों ने भेजा, रामगाम के कोलियों ने भेजा तथा पावा के मल्लों ने भेजा ।

६. अस्थियों का एक हिस्सा मांगने वालों में वेठ द्वीप का एक ब्राह्मण भी था ।

७. जब कुसीनारा के मल्लों ने इतनी मांगों की बात सुनी तो वे बोले :—"हमारी सीमा में तथागत का परिनिर्वाण हुआ है । हम किसी को कोई हिस्सा न देंगे । इस पर केवल हमारा अधिकार है ।"

८. परिस्थिति को बिगड़ते देखकर द्रोण नामके एक ब्राह्मण ने मध्यस्थता की । बोला—"मेरे दो शब्द सुन लें ।"

९. द्रोण बोला—"तथागत ने शान्ति और सहन-शीलता की शिक्षा दी है । यह उचित नहीं है कि उन्हीं तथागत की अस्थियों के लिये—जो प्राणियों में सर्व श्रेष्ठ थे—झगड़ा हो, कलह हो, लड़ाई हो ।

१०. "हम सब सहमत होकर अस्थियों को आठ बराबर-हिस्सों में बांटें और हर जनपद में उन पर स्तूप बनायें जायें ताकि हर जनपद में उन की पूजा हो सके ।"

११. कुसीनारा के मल्ल सहमत हो गये । बोले:—'अच्छा तो ब्राह्मण ! तू ही इन्हें सही सही आठ बराबर हिस्सों में बांट दे ।"

१२. "बहुत अच्छा" कह द्रोण ने स्वीकार किया ।

१३. उसने तथागत के अवशेषों के बराबर बराबर आठ हिस्से कर दिये ।

१४. बँटवारा कर चुकने पर उस ने कहा कि मुझे यह बर्तन मिल जायें, तो मैं इस पर एक स्तूप बनवाऊँगा ।

१५. सबने मिलकर ब्राह्मण को बर्तन देना स्वीकार किया ।

१६. इस प्रकार तथागत की अस्थियों के हिस्से हो गये और जिस झगड़े का अन्देशा था, वह शान्ति से निपट गया ।

८. बुद्ध-भक्ति

१. यह बात श्रावस्ती में ही घटी. . .

२. उस समय बहुत से भिक्षु यह सोचकर कि जब चीवर तैयार हो जायगा,

तीन महीने के बाद, तथागत चारिका के लिये निकल पड़ेंगे, तथागत के लिये एक चीवर तैयार कर रहे थे ।[१]

३. उसी समय इसिदत्त तथा पूर्ण नाम के दो राज्याधिकारी किसी काम से साधुका में ठहरे हुए थे । तब उन्होंने यह समाचार सुना—"कहते हैं कि बहुत से भिक्षु यह सोचकर कि जब चीवर तैयार हो जायगा, तीन महीने के बाद, तथागत चारिका के लिये निकल पड़ेंगे, तथागत के लिये एक चीवर बना रहे हैं ।"

४. तब इसीदत्त और पूर्ण ने एक आदमी को सड़क पर नियुक्त कर दिया । उसे कहा—"ज्यों ही तुम उन भगवान् अर्हत, सम्यक् सम्बुद्ध को आते देखो, तुरन्त आकर इसकी हमें सूचना दो ।"

५. दो तीन दिन तक वहीं रहकर प्रतीक्षा करते रहने के बाद उसने कुछ दूर से ही तथागत को आते देखा । वह दौड़ा दौड़ा इसीदत्त तथा पूर्ण राज्याधिकारियों के पास गया और सूचना दी । "भगवान्, अर्हत, सम्यक्-सम्बुद्ध चले आ रहे हैं । अब आप जो इच्छा हो करें ।"

६. तब इसिदत्त और पूर्ण दोनों राज्याधिकारी तथागत की ओर आगे बढ़े । पास पहुंच कर उन्होंने तथागत को अभिवादन किया और तथागत के पीछे पीछे हो लिये ।

७. तब तथागत सड़क से हट कर एक वृक्ष के नीचे बिछे एक आसन पर जा बैठे । तथा इसीदत्त और पूर्ण राज्याधिकारी भी तथागत को नमस्कार कर एक ओर बैठ गये । बैठ चुकने पर उन्होंने तथागत से कहा—

८. "भगवान् ! जब हमने सुना कि तथागत कोशल जनपद में चारिका करेंगे तो हम निराश हो गये और हमारा दिल छोटा हो गया कि हाय ! अब तथागत हम से दूर हो जायेंगे ।

९. "भगवान् ! जब हमने सुना कि तथागत कोशल जनपद में चारिका करने के लिये श्रावस्ती से निकल रहे हैं तो हम निराश हो गये और हमारा दिल छोटा हो गया कि हाय ! अब तथागत हमसे दूर हो जायंगे ।

१०. "भगवान् ! फिर जब हमने सुना कि तथागत कोशल जनपद को छोड़ मल्ल जन-पद में चारिका के लिये चले जायेंगे. . .कि वे चले गये हैं, तो हम निराश हो गये. . .हो जायेंगे ।

११. "भगवान् फिर जब हम ने सुना कि तथागत मल्लजनपद को छोड़ वज्जी जनपद में चले जायेंगे. . .कि वे वास्तव में चले गये हैं. . .कि वे वज्जी छोड़ काशी चले जायेंगे. . .कि वे वास्तव में चले गये हैं. . .कि वे काशी के लोगों को भी छोड़ मगध में चारिका करने के लिये चले जायेंगे. . .कि वे वास्तव में चले गये हैं तो हम निराश हो गये और हमारा दिल छोटा हो गया कि हाय ! तथागत हम से बहुत दूर हो गये ।

१२. "लेकिन भगवान् ! जब हमने सुना कि तथागत मगध छोड़कर काशी पधारेंगे तो हम बड़े प्रसन्न हुए और हमारा दिल बल्लियों उछलने लगा कि अब तथागत हमारे नजदीक आ रहे हैं।

१३. "और जब हमने सुना कि वे काशी आ गये हैं तो हम बड़े प्रसन्न हुए. . .

१४. (उन्होंने तथागत के काशी से वज्जी. . .वज्जी से मल्लों के जनपद में. . मल्लों के जनपद से कोशलों के जनपद में आने का इसी तरह वर्णन किया।)

१५. "लेकिन भगवान् ! जब हमने सुना कि तथागत कोशल जनपद से भी श्रावस्ती की ओर चारिका करने के लिये चले आ रहे हैं तो हम बड़े प्रसन्न हुए और हमारा दिल बल्लियों उछलने लगा कि तथागत अब हमारे बहुत समीप आ गये।

१६. "तब जब हमने सुना कि तथागत श्रावस्ती के अनाथ पिण्डिक के जेत-वनाराम में ठहरे हुए हैं तो हमें असीम प्रसन्नता हुई, हमें असीम आह्लाद हुआ कि अब तथागत हमारे समीप हैं।"

१. सामगाम सुत्त (मज्झिम निकाय १०४) में 'सामगाम में विहार करते थे' आया है।

२. महापरिनिब्बाण सुत्तन्त (दीघनिकाय १६)।

३. महापरिनिब्बाण सुत्तन्त (दीघनिकाय १६)।

४. महापरिनिब्बाण सुत्त (दीघनिकाय १६)।

५. ब्राह्मण वग्गो (धम्मपद २५।५)।

६. महापरिनिब्बाण सुत्त (दीघनिकाय १६)।

७. महापरिनिब्बाण सुत्त (दीघनिकाय १६)।

८. महापरिनिब्बाण सुत्त (दीघनिकाय १६)।

९. सं० नि० ५४ : १ : ६ ।

अष्टम् काण्ड

महामानव सिद्धार्थ गौतम

पहला भाग – उनका व्यक्तित्व

दूसरा भाग – उनकी मानवता

तीसरा भाग – उनको क्या पसन्द था और क्या नहीं ?

पहला भाग

उनका व्यक्तित्व

१. उनकी व्यक्तिगत आकृति इत्यादि

१. जितने भी वर्णन मिलते हैं उनसे यही ज्ञात होता है कि तथागत एक सुन्दर शरीर वाले थे।

२. वह एक स्वर्ण-पर्वत के शिखर के समान थे। उनका कद ऊंचा था, शरीर सुडौल था, आकार-प्रकार आकर्षक था।

३. उनकी लम्बी-लम्बी बाहें, उनकी शेर की सी चाल, उनकी वृषभ की सी आंखें, उनका सौन्दर्य, उनकी स्वर्ण समान दीप्ति, उनकी चौड़ी छाती---सभी को अपनी ओर आकर्षित करती थी।

४. उनकी भौंहें, उनका माथा, उनका चेहरा और उनकी आंखें, उनका वदन, उनके हाथ, उनके पांव अथवा उनकी चाल---उनके शरीर के किसी भी हिस्से पर जिसकी भी आंखें पड़ीं वे फिर वहां से हिल न सकीं।

५. जिस किसी ने भी उन्हें देखा, उस पर उन की तेजस्विता, उनकी सामर्थ्य, उनके अनुपम सौन्दर्य का प्रभाव पड़ा है।

६. उनका दर्शन होने पर कहीं जाने वाले रुक जाते, जो खड़े होते वे पीछे चल देते, जो शान्तिपूर्वक धीरे धीरे चलते होते वे तेजी से दौड़ने लगते और जो बैठा होता वह तुरन्त खड़ा हो जाता।[1]

७. जो भी उनके दर्शनार्थ आता, कोई हाथ जोड़कर नमस्कार करता, कोई सिर झुका कर नमस्कार करता, कोई स्नेहसिक्त शब्दों से सम्बोधित करता---कोई भी बिना गौरव प्रदर्शित किये न जाता।[1]

८. वे सभी के प्रिय-पात्र थे और सभी के आदर-भाजन।

९. स्त्री-पुरुष सभी उनके वचन सुनने के लिये उत्सुक रहते थे।

१०. उनका स्वर असाधारण रूप से मधुर था, गम्भीर था, आकर्षक था, गतिमान था और स्पष्ट था। उनकी वाणी दिव्य-संगीत के समान थी।

११. उनका स्वर ही श्रोता के मन में आश्वासन पैदा कर देता था, उनकी तेजस्विता रोबीली थी।

१२. उनका व्यक्तित्व ही ऐसा था कि न केवल वे लोगों के स्वाभाविक नेता थे, बल्कि उनके दिलों के देवता थे।

१३. उनको कभी श्रोताओं की कमी न होती थी।

१४. यह बात विशेष महत्व की नहीं थी कि वे क्या कहते थे, वे कुछ भी कहें, सुनने वाले की भावनायें बदल जाती थीं और उसकी इच्छा-शक्ति उनकी प्रबल इच्छाशक्ति के सामने झुकती थी।

१५. उनकी वाणी से ही उनके श्रोताओं को यह विश्वास हो जाता था कि जो कुछ वे कह रहे हैं वह अक्षरशः सत्य तो है ही, साथ ही उनकी 'मुक्ति' का एकमात्र मार्ग भी वही है।

१६. उनके श्रोताओं को उनकी वाणी में उस सत्य के दर्शन होते थे जिसमें दासों को मुक्त कर देने की सामर्थ्य थी। गुलामों को आजाद बना देने की ताकत थी।

१७. जब भी वे स्त्री-पुरुषों से बात-चीत करते उनका गम्भीर-शान्त स्वरूप लोगों के मन में एक आदर की भावना का सञ्चार करता और उनकी मधुर वाणी लोगों को आश्चर्य और आनन्द से विभोर कर देती।

१८. डाकू अंगुलिमाल और आळवी के आदम-खोर को कौन धर्म की दीक्षा दे सकता था ? एक शब्द के द्वारा कौन राजा प्रसेनजित तथा रानी मल्लिका का मेल करा सकता था ? जिस पर उनका मन्त्र चल जाता, वह सदा के लिये उन्हीं का हो जाता। उनका व्यक्तित्व ऐसा ही आकर्षक था।

२. आँख से देखने वालों की साक्षी

१. इस परम्परागत मत का समर्थन उन लोगों की साक्षी से भी होता है जिन्होंने भगवान् बुद्ध को उनके जीवनकाल में देखा है, जिन्होंने उनसे भेंट की है।

२. एक ऐसा प्रत्यक्ष साक्षी साल नाम का ब्राह्मण था। भगवान् बुद्ध को आमने सामने देखकर उसने उनकी इस प्रकार स्तुति की थी।

३. जब तथागत के सामने आया, तो उस ब्राह्मण ने बैठने तथा कुशल-समाचार पूछ लेने के अनन्तर भगवान् बुद्ध के शरीर पर बत्तीस महापुरुष लक्षणों के होने न होने की जांच की।

४. बत्तीस महापुरुष लक्षणों के विषय में असन्दिग्ध होकर भी उसका यह सन्देह बना रहा कि वह 'बुद्ध' हैं या नहीं ? लेकिन उसने पुराने वृद्ध ब्राह्मणों से, आचार्यों -प्राचार्यों से यह सुन रखा था जो अर्हत होते हैं, सम्यक् सम्बुद्ध होते हैं, वे अपनी स्तुति सुनने पर अपने आप को प्रकट करते हैं। इसलिये उसने निम्न-लिखित शब्दों से तथागत की स्तुति करने की ठानी।

५. "भगवान् ! आप का शरीर अंग-सम्पूर्ण है, श्रेष्ठ है, समृद्ध है, आकर्षक है।

स्वर्ण-वर्ण है, दान्तों से स्वर्ण रश्मियां निकलती हैं, अंग अंग सशक्त हैं, पूरे बत्तीस-महापुरुष लक्षणों से युक्त है।

६. "स्पष्ट दृष्टि, सुन्दर, ऊंचे और सीधे हैं आप। अपने अनुयायियों में सूर्य-समान प्रज्वलित हैं। आप ऐसे प्रकाश-युक्त, ऐसे स्वर्णिम-वर्ण—अपने तारुण्य को आप अनागरिक श्रमण बनकर क्यों व्यर्थ गँवा रहे हैं ?

७. "आप को चक्रवर्ती नरेश बनाना चाहिये और समुद्र पर्यन्त आप का राज्य होना चाहिये। अभिमानी राजाओं को आपके सम्मुख नतमस्तक होना चाहिये और आप को समस्त जगत का चक्रवर्ती-राजा होना चाहिये।"[२]

८. आनन्द स्थविर के अनुसार तथागत का शरीर इतना अधिक स्वच्छ और ज्योतित था कि यदि उन के बदन पर किसी स्वर्णिम-वस्त्र का जोड़ा रखा जाता तो उस की ज्योति शरीर की ज्योति के सम्मुख म्लान पड़ जाती।

९. तब इसमें क्या आश्चर्य्य है यदि तथागत के विरोधी तथागत को एक जादूगर समझते थे !

३. उनके नेतृत्व की सामर्थ्य

१. भिक्षु संघ का कोई वैधानिक अध्यक्ष आदि नहीं था। तथागत का संघपर कोई अधिकार नहीं था। भिक्षु-संघ एक स्वायत्त पूर्ण संस्था थी।

२. तो भी संघ और उसके सदस्यों पर तथागत का क्या अधिकार था ?

३. इस विषय में हमारे पास तथागत के समकालीन दो जनों के वक्तव्य उपलब्ध हैं।

४. एक बार तथागत राजगृह के वेळुवन में विहार कर रहे थे।

५. एक दिन तथागत राजगृह में भिक्षाटन के लिये चले किन्तु 'अभी कुछ जल्दी है' ऐसा समझ वह परिब्राजकाराम में सकलुदायी के पास चले गये।[३]

६. उस समय सकलुदायी बहुत से परिब्राजकों से घिरा हुआ था। वे 'है' अथवा 'नहीं है' की तात्विक चर्चा करके बड़ा हल्ला मचा रहे थे।

७. कुछ दूरसे ही जब सकलुदायी ने तथागत को आते देखा, उसने अपने साथियों से कहा "चुप करो। हल्ला मत मचाओ। श्रमण गौतम आ रहे हैं। उन्हें हल्ला प्रिय नहीं है।"

८. इस प्रकार वे चुप हो गये। तब तक तथागत आ पहुंचे। सकुलदायी ने कहा—"भगवान् ! आप से यहां पधारने की प्रार्थना है। आप का सच्चे हृदय से स्वागत है। चिरकाल से आपका इधर आगमन नहीं हुआ। आप के लिये आसन सुसज्जित है। कृपया आसन ग्रहण करें।"

९. तथागत ने आसन ग्रहण किया और पूछा कि क्या बात-चीत चल रही थी ?

१०. सकुलदायी बोला—"इसे जाने दें, कोई महत्वपूर्ण बात नहीं। यह कभी भी जान ले सकते हैं।

११. कुछ समय पूर्व, जब नाना मतों के श्रमण–ब्राह्मण संथागार में इकट्ठे हुए तो उनमें इस विषय पर चर्चा चली कि मगध के लोगों के लिये यह कितनी अच्छी बात है, कितनी अधिक अच्छी बात है कि जितने गणाचार्य हैं, जितने विख्यात विख्यात श्रमण हैं, जितने नाना मतों के संस्थापक हैं, जितने बहुत लोगों द्वारा आवृत है—वे सभी राजगृह में वर्षावास करने आये हैं।

१२. "उनमें पूर्ण काश्यप है, मक्खली-गोशाल है, अजित-केशकम्बल है, पकुधकच्चायन है, सञ्जय बेलट्ठिपुत्त है, निगंठनाथ पुत्त है—सभी विशिष्ट हैं और सभी यहां वर्षावास करने आये हैं। उन में श्रमण गौतम भी हैं, जो संघ के नायक हैं, ज्ञात-विख्यात धर्मानुशासक हैं, धर्म-संस्थापक हैं; अनेक लोगों के श्रद्धा भाजन हैं।

१३. अब इन ज्ञात विख्यात विशिष्ट पुरुषों में कौन है जो अपने शिष्यों द्वारा यथार्थ विधि से आदृत होता हैं, सत्कृत होता है तथा सम्मानित होता है? और वे कैसे तथा कितने गौरव की भावना के साथ अपने गुरु के पास रहते हैं?

१४. कुछ ने कहा—पूर्ण काश्यप का कोई आदर सत्कार नहीं करता, उसे अपने शिष्यों से कुछ गौरव प्राप्त नहीं होता। वे अपने गुरु के प्रति तनिक भी गौरव का भाव नहीं रखते।

१५. ऐसा भी अवसर रहा है कि पूर्ण काश्यप अपने कुछ सौ अनुयायियों को उपदेश दे रहा है, तब तक एक शिष्य बीच में ही बोल पड़ा है—"पूर्ण काश्यप से मत पूछो। वह इस विषय में कुछ नहीं जानता। मुझे पूछो। मैं जानता हूँ। मैं आप सब को सब बातें समझा दूंगा।"

१६. तब पूर्ण-काश्यप ने आंखों में आंसू भर कर और हाथ फैला कर कहा है—"चुप रहो। हल्ला मत करो।"

१. अश्वघोष कृत बुद्ध चरित।
२. सेलसुत्त (मज्झिम निकाय २:५:३)।
३. अंगुत्तर निकाय।

दूसरा भाग

उनकी मानवता

१. उनकी करुणा--महाकारुणिक

१. एक बार जब तथागत श्रावस्ती में ठहरे हुए थे, तो कुछ भिक्षुओं ने आकर शिकायत की कि कई देव-गण आते हैं और उन्हें हैरान करते हैं, तथा उनकी ध्यान-भावना में विघ्न उपस्थित करते हैं।

२. उनकी कष्ट-कथा सुनी तो भगवान् बुद्ध ने उन्हें निम्नलिखित उपदेश दिया :—

३. "जो परमार्थ के विषय में कुशल है, जो शान्ति-पद को प्राप्त करना चाहता है, उसे इस प्रकार बरतना चाहिये। उसे समर्थ होना चाहिये, उसे ऋजु-सुऋजु होना चाहिये, उसे सुवच होना चाहिये, उसे मृदु तथा विनम्र होना चाहिये।[1]

४. उसे सन्तोषी होना चाहिये, उसकी आवश्यकतायें अधिक नहीं होनी चाहिये, उसपर बहुत जिम्मेदारियां नहीं होनी चाहिये, उसकी वृत्ति (=जीविका) हलकी होनी चाहिये, उसे संयतेन्द्रिय होना चाहिये, उसे ज्ञानी होना चाहिये, उसे अप्रगल्भ होना चाहिये तथा उसे (गृहस्थ) जनों में आसक्त नहीं होना चाहिये।

५. "उसे कोई भी छोटी से छोटी ऐसी गलती नहीं करनी चाहिये कि विज्ञजन उसे दोष दे सकें। उसकी यही कामना होनी चाहिये कि 'सभी प्राणियों का मंगल हो, सभी प्राणी सकुशल रहें, सभी प्राणी सुखी रहें।'

६. "कैसे भी प्राणी हों—दुर्बल हों वा सबल हों, ऊंचे हों या नीचे हों, मध्यम क़द के हों वा छोटे क़द के हों, आकार के बड़े हों वा छोटे हों—कोई भी हों सभी—

७. "चाहे देखे गये हों और चाहे न देखे गये हों, चाहे समीप रहते हों और चाहे दूर रहते हों, चाहे पैदा हो गये हों, चाहे अभी पैदा होने वाले हों—सभी प्राणी सुखी रहें।

८. "कोई एक दूसरे को धोखा न दे। कोई किसी से घृणा न करें, कोई किसी का बुरा न चाहे, कोई किसी से द्वेष न करे।

९. "जैसे मां अपनी जान देकर भी अपने इकलौते पुत्र की रक्षा के लिये तैयार रहती है, वही भाव आदमियों का सभी प्राणियों के प्रति रहना चाहिये।

१०. "उसे समस्त लोक में अपनी असीम मैत्री का संचार करना चाहिये—ऊपर, नीचे, तिर्यक , बिना किसी बाधा के, द्वेष भाव से सर्वथा रहित ।

११. "चाहे वह खड़ा हो, चलता हो, बैठा हो, लेटा हो—जितने समय भी वह जागता रहे—उसे अपनी सतत जागरूकता बनाये रखनी चाहिये; यही श्रेष्ठ जीवन है ।

१२. "किसी (मिथ्या-) दृष्टि में न पड़े, शीलवान हो, ज्ञानी हो, इन्द्रिय-सुखों में आसक्त न हो—ऐसा होने से ही उसे पुनः पुनः गर्भ में नहीं आना पड़ता ।"

१३. थोड़े शब्दों में भगवान् बुद्ध ने उन्हें कहाः—"अपने शत्रुओं से भी प्रेम करो ।"

२. दुःखियों का दुःख दूर करने वाले मानसिक दुःखों के महान चिकित्सक

(i)

विशाखा को दी गई सान्त्वना

१. विशाखा एक उपासिका थी । वह रोज रोज भिक्षुओं को भिक्षा दिया करती थी ।

२. एक दिन उसके साथ रहने वाली उसकी पोती बीमार पड़ी और मर गई ।

३. विशाखा के लिये शोक असह्य हो गया ।

४. उसकी दाह-क्रिया के अनन्तर वह भगवान् बुद्ध के पास गई और आंखों से आँसू गिराती हुई एक ओर बैठ गई ।

५. तथागत ने पूछा—"विशाखे ! तू दुःखी और शोकाकुल, आंखों से आंसू गिराती हुई क्यों बैठी है ?"

६. उसने अपनी पोती की मृत्यु की बात कही और कहा कि "वह बड़ी आज्ञाकारिणी थी, और उस जैसी मिल नहीं सकती ।"

७. "विशाखे ! श्रावस्ती में कुल कितनी लड़कियां होंगी ?"

८. "भगवान् ! लोगों का कहना है कि करोडों !"

९. "यदि वे सभी तुम्हारी पोतियां हों, तो क्या तुम उन को प्यार नहीं करोगी ?

१०. "भगवान् ! निश्चय से ।"

११. "और प्रति दिन श्रावस्ती में कितनी लड़कियों की मृत्यु होती है ?"

१२. "भगवान् ! अनेकों की ।"

१३. "तब तो एक क्षण भी ऐसा न आयेगा, जब तुम किसी न किसी के शोक से व्याकुल न होगी ।"

१४. "भगवान् ! सत्य है !"
१५. "तब क्या तुम दिन-रात रोती ही रहोगी ?"
१६. "भगवान् ! आप ने ठीक ठीक समझा दिया। मैं समझ गई।"
१७. "तो अब फिर और शोक मत करो।"[२]

(ii)

किसा-गोतमी को संतोष

१. किसा गोतमी का विवाह श्रावस्ती के एक व्योपारी के पुत्र से हुआ था।[३]

२. विवाह के कुछ समय बाद वह पुत्रवती हुई।

३. दुर्भाग्य से अभी उसमें चलने-फिरने की ताकत भी नहीं आई थी कि उसे सांप ने डस लिया और वह चल बसा।

४. सांप के काटे का छोटा सा दाग बच्चे की मृत्यु का कारण कैसे हो सकता था ?

५. उसे यह विश्वास ही नहीं होता था कि उसका बच्चा वास्तव में मर गया है, क्योंकि इस से पहले उसने 'मृत्यु' देखी ही न थी।

६. इसलिये उसने अपने पुत्र की मृत-देह ली और एक घर से दूसरे घर घूमने लगी। उसकी दशा ऐसी विचित्र थी कि लोगों ने समझा कि वह पागल हो गई है।

७. अन्त में एक वृद्ध पुरुष ने उसे श्रमण गौतम के पास जाने का परामर्श दिया। उसके भाग्य से तथागत श्रावस्ती में ही थे।

८. इसलिये वह तथागत के पास आई और अपने मृत-पुत्र के लिये दवाई चाही।

९. तथागत ने उसकी कष्ट-गाथा और उसका विलाप सुना।

१०. तब तथागत ने कहा —"नगर में जाओ और किसी ऐसे घर से जहां कोई मरा न हो, सरसों के कुछ दाने ले आओ। मैं तुम्हारे बच्चे को जिला दूंगा।"

११. उसे यह बात अत्यन्त सरल मालूम दी। अपने मृत-पुत्र की देह लिये उसने नगर में प्रवेश किया।

१२. लेकिन उसे शीघ्र ही पता लगा कि वह कितने भ्रम में थी। उसे एक भी घर ऐसा न मिला जहां कोई न कोई मरा न हो।

१३. एक गृहस्थ ने उसे कहा—"जो जीते हैं वे थोड़े हैं, जो मर गये हैं वे ही अधिक हैं ?"

१४. वह तथागत के पास वापस लौट आई—निराश और खाली हाथ।

१५. तब तथागत ने पूछा—"किसी गोतमी ! क्या मृत्यु सभी के लिये नहीं है, क्या केवल उसी के साथ यह अप्रिय घटना घटी है ?"

१६. वह तब गई और बच्चे की अन्तिम क्रिया कर दी। किसा गोमती कह रही थी—"सभी कुछ अनित्य है। यही नियम है।"

३. रोगी शुश्रूषक तथागत

१. एक समय एक भिक्षु को अतिसार हो गया था और वह अपने ही मल-मूत्र में पड़ा था।*

२. आनन्द स्थविर को साथ लिये घूमते-घूमते भगवान् बुद्ध उस भिक्षु के निवास-स्थान पर पहुंचे।

३. तथागत ने उस भिक्षु को देखा कि वह अपने ही मल-मूत्र में पड़ा है। यह देख वे उसकी ओर गये और जाकर पूछा—"भिक्षु ! तुझे क्या कष्ट है।"

४. "भगवान् ! मैं अतिसार से पीड़ित हूँ।"

५. "भिक्षु ! क्या कोई तुम्हारी सेवा नहीं कर रहा है ?"

६. "भगवान् ! नहीं !"

७. "भिक्षु ! ऐसा क्यों है कि दूसरे भिक्षु तुम्हारी सेवा नहीं करते ?"

८. "भगवान् ! मैं भिक्षुओं के लिये किसी भी तरह उपयोगी नहीं हूँ, इसलिये भिक्षु मेरी सेवा नहीं करते।"

९. तब तथागत ने आनन्द स्थविर को कहा—"आनन्द ! जा पानी ले आ। मैं इस भिक्षु का मल-मूत्र साफ करूँगा।"

१०. "बहुत अच्छा" कह आनन्द स्थविर ने स्वीकार किया। जब पानी आ गया तो तथागत ने पानी गिराया और आनन्द स्थविर ने उस भिक्षु का शरीर मल-मल कर धोया। तब तथागत ने उसे सिर की ओर से उठाया और आनन्द स्थविर ने पांव की ओर से। दोनों ने मिलकर उसे उठाकर बिस्तर पर लिटा दिया।

११. तब तथागत ने इस अवसर पर सभी भिक्षुओं को इकट्ठा किया और उनसे पूछा—

१२. "भिक्षुओं, अमुक आवास (=कमरे) में कोई बीमार भिक्षु है ?"

१३. "भगवान् ! है।"

१४. "उस भिक्षु को क्या कष्ट है ?"

१५. "भगवान् ! उस भिक्षु को अतिसार है।"

१६. "लेकिन भिक्षुओ ! क्या कोई भी उसकी देख-भाल कर रहा है ?"

१७. "भगवान् ! नहीं।"

१८. "क्यों नहीं ? भिक्षु उसकी देख-भाल क्यों नहीं करते ?"

१९. "भगवान् ! वह भिक्षु भिक्षुओं के किसी काम नहीं आता। इसीलिये भिक्षु उसकी देख-भाल नहीं करते।"

२०. भिक्षुओं ! तुम्हारी देख-भाल करने वाले तुम्हारे माता-पिता नहीं हैं। यदि तुम आपस में ही एक दूसरे की सेवा नहीं करोगे, तो कौन करेगा ? भिक्षुओं ! जो रोगी की सेवा करता है, वह मेरी सेवा करता है ।

२१. "यदि उपाध्याय हो तो उसे जीवन भर रोगी भिक्षु की सेवा करनी चाहिये और उसके स्वास्थ्य-लाभ तक प्रतीक्षा करनी चाहिये । यदि आचार्य हो, यदि नेवासिक भिक्षु हो, यदि शिष्य हो, यदि साथ रहने वाला हो, यदि गुरु-भाई हो——हर किसी को दूसरे के स्वास्थ्य-लाभ तक उसकी देख-भाल करनी चाहिये । यदि कोई रोगी की देख-भाल नहीं करता, तो यह उसका दोष माना जायगा ।"

(iii)

१. एक बार भगवान् बुद्ध राजगृह के महावन में कलन्दक निवाप में ठहरे हुए थे ।[५]

२. उस समय स्थविर वक्कली एक कुम्हार के छाये हुए स्थान पर पड़े थे, रुग्ण, पीड़ित, भयंकर बीमारी से ग्रस्त ।

३. तब स्थविर वक्कली ने अपने उपस्थापकों को बुलाया और कहा "मित्रो ! यहां आओ । तथागत के पास जाओ । मेरा नाम लेकर उनके चरणों की वन्दना कर कहो ।——"भगवान् ! भिक्षु वक्कली रुग्ण है, पीड़ित है, भयंकर बीमारी से ग्रस्त है । वह तथागत के चरणों की वन्दना करता है ।" और तुम यह भी कहना, भगवान् यह अच्छा होगा, यदि आप वक्कली पर दया करके, उसे देख आने की कृपा करेंगे ।

४. भगवान् बुद्ध ने मौन रहकर स्वीकार कर लिया । तदनन्तर तथागत चीवर पहन, पात्र-चीवर ग्रहण कर स्थविर वक्कली को देखने के लिये चले ।

५. स्थविर वक्कली ने तथागत को दूर से ही आते देखा । उन्हें देख स्थविर वक्कली बिस्तर पर ही हिलने-डोलने लगे ।

६. तब तथागत ने वक्कली स्थविर को कहा, "वक्कली । हिल डोल मत ! आसन सज्जित है । मैं इस पर बैठूंगा ।" वे बिछे आसन पर विराजमान हुए । बैठकर तथागत ने वक्कली स्थविर से कहा——

७. "वक्कली ! मैं समझता हूँ कि तुम अपने कष्ट को सहन कर रहे हो । मैं समझता हूँ तुम बड़ी सहनशीलता से काम ले रहे हो । अब क्या तुम्हारी पीड़ा घट रही है, बढ़ तो नहीं रही है ? इसके घटने के लक्षण हैं, बढ़ने के तो नहीं ?"

८. "भगवान् ! नहीं मैं सह नहीं सक रहा हूँ । मैं सहनशीलता से काम नहीं ले सक रहा हूँ । मुझे तीव्र वेदना होती है । कष्ट घट नहीं रहा है । कष्ट के घटने का कोई लक्षण नहीं । बढ़ने का ही है ।"

९. "वक्कली । तेरे मन में किसी प्रकार का कोई सन्देह है, कोई अनुताप है?"

१०. "भगवान् ! मेरे मन में कोई सन्देह नहीं, कोई अनुताप नहीं ।"

११. "वक्कली ! कोई ऐसी बात तो नहीं जिससे तुम अपने शील की ओर देख कर स्वयं आप अपनी गर्हा करते हो ?"

१२. "भगवान् ! नहीं कोई ऐसी बात नहीं कि मैं अपने शील की ओर देख कर आप अपनी गर्हा करूँ ।"

१३. "तब भी वक्कली ! तुम्हें कुछ चिन्ता अवश्य होगी । कोई न कोई अनुताप अवश्य होगा ?"

१४. "भगवान् ! मैं बहुत समय से तथागत के दर्शनों की कामना कर रहा था लेकिन तथागत के दर्शनार्थ आ सकने की मेरे शरीर में ताकत नहीं थी ।"

१५. "वक्कली ! इस मेरे गन्दे शरीर के दर्शन करने में क्या रखा है । जो धर्म को देखता है, मुझे देखता है । जो मुझे देखता है, धर्म को देखता है । वक्कली ! जो धर्म को देखता है, मुझे देखता है । जो मुझे देखता है, धर्म को देखता है ।"

(iv)

१. ऐसा मैंने सुना एक समय भगवान् बुद्ध भग्गी जनपद में, मृगदाय में, भेसुकला वन में सिसुमार गिरि पर विराजमान थे । तब गृहपति नकुल-पिता आया और तथागत को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ।[६]

२. वहां बैठकर गृहपति नकुल-पिता ने तथागत से निवेदन किया: "भगवान् ! जरा जीर्ण हूँ, वय प्राप्त हूँ, जीवन की घड़ियां गिन रहा हूँ, मैं बीमार रहता हूँ और हर घड़ी कष्ट में रहता हूँ । और भगवान् मुझे बड़ी मुश्किल से बुद्ध तथा संघ का दर्शन करना मिलता है । भगवान् आप कृपया मुझे सांत्वना के ऐसे दो शब्द कहें जो मेरे आनन्द में वृद्धि करने वाले हों तथा चिरकाल तक मेरे हित और सुख के लिये हों ।"

३. "यह ठीक है, यह ठीक है, गृहपति कि तुम्हारा शरीर दुर्बल है और कष्टों से लदा हुआ है । इस तरह की शारीरिक अवस्था होने पर स्वास्थ्य की आशा नहीं ही की जा सकती । लेकिन तब भी गृहपति ! तुम्हें ऐसी भावना करनी चाहिये कि 'यद्यपि मेरा शरीर रोगी है, लेकिन मैं मन से निरोग रहूँगा । गृहपति ! तुम्हें ऐसा अभ्यास करना चाहिये ।"

४. गृहपति नकुलपिता ने बड़े प्रसन्न मन से तथागत के वचन सुने । फिर अपने स्थान से उठ, तथागत को अभिवादन किया और प्रदक्षिणा कर चला गया ।

(v)

१. एक बार तथागत शाक्यों के कपिलवस्तु में अंजीरों के उद्यान में ठहरे हुए थे ।

२. उस समय बहुत से भिक्षु तथागत के लिये चीवर बनाने में लगे थे । उनका

कहना था, "चीवर तैयार हो जाने पर, और तीन महीने समाप्त हो जाने पर, तथागत चारिका के लिये निकल पड़ेंगे।"

३. तब महानाम शाक्य ने सुना कि बहुत से भिक्षु तथागत के लिये चीवर बना रहे हैं और उन का कहना है.....और तब वह तथागत के पास पहुँच एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए महानाम शाक्य ने तथागत से निवेदन किया—

४. "भगवान्! मैं सुनता हूँ कि बहुत से भिक्षु तथागत के लिये चीवर बनाने में लगे हैं और उनका कहना है चीवर तैयार हो जाने पर, और तीन महीने समाप्त हो जाने पर, तथागत चारिका के लिये निकल पड़ेंगे। अब भगवान्! हमने आप के श्रीमुख से यह कभी नहीं सुना कि एक समझदार गृहस्थ अपने साथी रोगी, पीड़ित, दुःखी गृहस्थ को किस प्रकार सान्त्वना दे सकता है, क्या कहकर उसका मन प्रसन्न कर सकता है?"

५. "एक समझदार गृहस्थ को अपने साथी रोगी, पीड़ित, दुःखी गृहस्थ को चार तरह से सान्त्वना देनी चाहिये: "भाई, धर्म और संघ में श्रद्धा रखो और उस शील में जो अखण्डित रहने से परिशुद्ध रहने से, चित्त को शान्ति देता है।

६. "महानाम एक समझदार गृहस्थ दूसरे रोगी, पीड़ित दुःखी गृहस्थ को इस प्रकार सान्त्वना दे चुके तो इससे आगे उसे इस प्रकार बोलना चाहिये :—

७. "मान लो कि वह मरणासन्न रोगी अपने माता पिता को देखने के लिये व्याकुल है, तो उसे कहना चाहिये कि 'मित्र! चाहे तुम अपने माता-पिता को देखने के लिये व्याकुल हो और चाहे व्याकुल न हो, तुम्हारा मरण समीप है। इसलिये अच्छा होगा कि तुम अपने माता-पिता से मिलने की इच्छा छोड़ दो।

८. "यदि रोगी कहे कि मैंने माता-पिता की कामना छोड़ दी तो उससे कहना चाहिये कि मित्र! अभी तुम्हारे मन में बच्चों को देखने की कामना है। क्योंकि हर हालत में तुम मरणासन्न हो, इसलिये यह भी अच्छा ही होगा यदि तुम बच्चों की कामना को भी त्याग दो।

९. "इसी प्रकार उसे पांचो इन्द्रियों के सुख-भोगों के बारे में भी कहना चाहिये। मान लो कि रोगी कहता है, मुझे पांचों इन्द्रियों के सुखों की कामना है। तो उसे कहना चाहिये कि मित्र! इन पांच इन्द्रियों के सुखों की अपेक्षा दिव्य-लोक के सुख अधिक प्रणीत हैं। यह भी अच्छा ही होगा कि इन पांच इन्द्रियों के सुखों का त्याग कर आप दिव्यलोक के सुखों पर मन लगायें।"

१०. "तब यदि रोगी कहे कि मेरा ध्यान दिव्य-लोक के सुखों पर ही केन्द्रित है, तो उससे कहना चाहिये कि अच्छा होगा कि तुम अपना ध्यान ब्रह्म-लोक के सुखों पर केन्द्रित करो। और तब यदि रोगी का मन वहीं केन्द्रित है, तब उससे कहना चाहिये—

११. "मित्र ! ब्रह्म लोक भी अनित्य है, परिवर्तनशील है, उसमें भी ममत्व हो सकता है। मित्र ! यह अच्छा होगा कि तुम ब्रह्मलोक की आशा का भी त्याग कर दो और ममत्व का मूलोच्छेद करने की ओर ध्यान दो।

१२. "और यदि उस रोगी ने ऐसा कर लिया है, तो जहां तक आस्रवों से मुक्ति की बात है, तो जो सद्‌गृहस्थ इस प्रकार ममत्व से मुक्त हो सकता है उसमें और जिस श्रावक ने आश्रव क्षय किया है उसमें—दोनों में कोई अन्तर नहीं।"

४. असहनशीलों के प्रति सहनशीलता

१. एक बार भगवान् बुद्ध आळवक यक्ष की राज्य-सीमा में आळवी में रहते थे।* तब आळवक यक्ष तथागत के पास आया और बोला—

"श्रमण ! यहां से निकल।"

२. तथागत का उत्तर था "मित्र ! बहुत अच्छा।" इतना कहा और वे बाहर चले गये।

३. तब यक्ष ने आज्ञा दी, "श्रमण ! भीतर आओ।"

४. तथागत भीतर चले आये। बोले: "मित्र ! बहुत अच्छा।"

५. दूसरी बार भी आळवक यक्षने ने तथागत को कहा—"श्रमण ! निकल यहाँ से।"

६. तथागत बाहर चल गये। बोले:—"मित्र ! बहुत अच्छा।"

७. दूसरी बार भी यक्ष ने आज्ञा दी:—"श्रमण ! भीतर आओ।"

८. तथागत भीतर चले आये बोले:—"मित्र ! बहुत अच्छा।"

९. तीसरी बार भी आळवक यक्ष ने तथागत को कहा :—
"श्रमण ! निकल यहां से।"

१०. तथागत बाहर चले गये। बोले:— "मित्र ! बहुत अच्छा।"

११. तीसरी बार फिर यक्ष ने आज्ञा दी:— "श्रमण ! भीतर चले आओ।"

१२. "तथागत भीतर चले आये। बोले:—"मित्र ! बहुत अच्छा"

१३. चौथी बार भी आळवक यक्ष ने कहा—"श्रमण ! निकल यहां से !"

१४. इस बार तथागत ने कहा—"मित्र ! मैं नहीं निकलूंगा। तुझे जो करना हो कर।"

१५. यक्ष को क्रोध आ गया। बोला—"मैं एक प्रश्न पूछूंगा श्रमण ! यदि मेरे प्रश्न का उत्तर न दे सके तो या तो मैं तुझे पागल बना दूंगा, या हृदय फाड़ डालूंगा और नहीं तो पांव से पकड़ कर नदी के उस पार फेंक दूंगा।"

१६. "मित्र ! मुझे इस लोक में कोई ऐसा नहीं दिखाई देता जो या तो मुझे

घायल बना दे, या मेरा हृदय फाड़ डाले और या मुझे पांव से पकड़कर नदी के उस पार फेंक दे। लेकिन तब भी तुझे जो प्रश्न पूछना हो पूछ।"

१७. तब आळवक यक्ष ने तथागत से निम्नलिखित प्रश्न पूछा—

१८. "इस संसार में आदमी के लिये सर्व श्रेष्ठ धन कौन सा है ? कौन सा कुशल-कर्म सुखदायक है ? रसों में मधुरतम रस कौन सा है ? किस तरह का जीवन सर्वश्रेष्ठ जीवन कहा जाता है ?"

१९. तथागत ने उत्तर दिया—"श्रद्धा सर्व-श्रेष्ठ धन है। धर्मानुसार रहने से सुख मिलता है। सत्यका रस भी रसों से मधुरतम है। प्रज्ञामूलकजीवन से बढ़ कर कुछ नहीं।"

२०. आळवक यक्ष ने पूछा—"आदमी बाढ़ को कैसे पार करता है ? आदमी समुद्र को कैसे लांघता है ? आदमी दुःख का अन्त कैसे करता है।"

२१. तथागत ने उत्तर दिया—"आदमी श्रद्धा से बाढ़ को पार करता है। आदमी अप्रमाद से (भव) सागर को लांघ जाता है। आदमी प्रयत्न से दुःख का नाश करता है। आदमी प्रज्ञा से परिशुद्ध होता है।"

२२. तब आळवक यक्ष ने पूछा—"आदमी ज्ञान कैसे प्राप्त करता है ? आदमी धन कैसे प्राप्त करता है ? आदमी यश कैसे प्राप्त करता है ? आदमी मित्र कैसे प्राप्त करता है ? इस लोक से परलोक को जाने पर आदमी को अनुताप कैसे नहीं होता ?"

२३. तथागत ने उत्तर दिया—"निर्वाण-प्राप्ति के लिये अर्हतों तथा धर्म में श्रद्धा रखने से, आज्ञाकारी होने, से अप्रमादी होने से, ध्यान लगाकर सुनने वाला होने से, आदमी ज्ञान प्राप्त करता है।"

२४. "जो उचित ही करता है, जो दृढ़ निश्चयी है, जो जागरूक है, वह धन प्राप्त करता है। जो देता है वह मित्र प्राप्त करता है।

२५. "जिस श्रद्धावान उपासक में सत्य, सदाचार, सबर और सदाशयता तथा उदारता होती है, उसे मरने पर अनुताप नहीं होता।

२६. "आओ ! जो दूसरे बहुत से श्रमण-ब्राह्मण हैं, उनसे भी पूछ लो कि क्या सत्य, संयम, दान-शीलता तथा सबर से भी बढ़कर कुछ है ?"

२७. आळवक यक्ष बोला—"अब मैं किसी दूसरे श्रमण ब्राह्मण से भी क्या पूछूं ? आज मैं अपने भावी ऐश्वर्य्य से परिचित हो गया हूं।

२८. "निश्चय से, तथागत मेरे ही कल्याण के लिये आळवी पधारे हैं। आज मैं जानता हूं कि किन्हें (दान) देने से अधिक से अधिक फल मिलता है।

२९. "आज से मैं तथागत तथा उनके धर्म को नमस्कार करता हुआ, एक गांव से दूसरे गांव, एक नगर से दूसरे नगर विचरूंगा।"

५. समानता तथा समान-व्यवहार के समर्थक

१. तथागत ने जितने भी नियम भिक्षु संघ के लिये बनाये, स्वेच्छा से उन सभी नियमों को उन्होंने अपने ऊपर भी लागू किया।

२. इसलिये कि वे ही 'संघ' के मूल हैं, या वे ही संघ के नायक हैं, उन्होंने अपने लिये कभी किसी नियम में भी अपवाद नहीं चाहा। यदि वे चाहते तो उस असीम आदर और प्रेम की भावना के कारण जो संघ के सदस्यों के मन में उनके लिये थी, वे तथागत को बड़ी प्रसन्नता से उन नियमों से मुक्त करते।

३. भिक्षु एक ही बार भोजन ग्रहण कर सकते हैं—यह नियम अन्य सभी भिक्षुओं के साथ साथ तथागत को भी स्वीकृत था।

४. भिक्षु के पास कोई निजी सम्पत्ति नहीं रहनी चाहिये—यह नियम अन्य सभी भिक्षुओं के साथ-साथ तथागत को भी स्वीकृत था।

५. भिक्षु के पास केवल तीन चीवर ही होने चाहिये—यह नियम सभी भिक्षुओं के साथ-साथ तथागत को भी स्वीकृत था।

६. एक बार जब भगवान् बुद्ध शाक्य जन पद के कपिलवस्तु नगर में न्यग्रोधाराम में रहते थे, तो भगवान् बुद्ध की मौसी प्रजापति गौतमी अपने हाथ का कता, हाथ का बुना धुस्सा जोड़ा लाई और तथागत से उसे स्वीकार करने की प्रार्थना की।[1]

७. तथागत ने उसे उत्तर दिया, "प्रजापति ! उसे संघ को दे।"

८. दूसरी और तीसरी बार भी प्रजापति गौतमी ने अपनी प्रार्थना दोहराई। उसे हर बार वही उत्तर मिला।

९. तब आनन्द ने आग्रह किया —"भगवान्। प्रजापति गौतमी आप की मौसी है। प्रजापति गौतमी ने आप को दूध पिलाया है। आप उसका दिया धुस्सा जोड़ा स्वीकार कर लें।" लेकिन तथागत का यही आग्रह रहा कि धुस्सा जोड़ा संघ को ही दिया जाय।

१०. आरम्भ में भिक्षुसंघ का यही नियम था कि कूड़ों की ढेरियों पर पड़े मिले चीथड़ों से ही भिक्षु-संघ के वस्त्र बनाये जायें। यह नियम इसी लिये बना था कि जिसमें धनी-वर्ग के लोग ही संघ में आकर न भर जायें।

११. लेकिन एक बार जीवक तथागत को नये वस्त्र का बना चीवर देने में सफल हो गया। जब तथागत ने वह चीवर स्वीकार किया, उन्होंने उसी समय सभी भिक्षुओं के लिये भी चीथड़ों के बने चीवर ही पहनने का नियम ढीला कर दिया।[1]

१. करणीयमेत्त सुत्त, खुद्दकपाठो (खुद्दकनिकायो) ।

२. विसाखा सुत्तन्त (उदान ८ : ८) । इस सुत्त में 'पोतो' के स्थान पर नत्तो है—अनुवादक ।

३. थेरो—अपादान, तृतीय भाणवार ।

४. महावग्ग (विनय पिटक) ।

५. संयुत्त निकाय ।

६. नकुल पिता सुत्त (संयुत्त निकाय) ।

७. सुत्त निपात अट्ठकथा ।

८. म० निकाय का दक्खिणा विभंग सुत्तन्त (३ : ४ : १२) ।

९. महावग्गो (विनय पिटक) ।

तीसरा भाग

उन्हें क्या नापसन्द था और क्या पसन्द?

१. उन्हें दरिद्रता नापसन्द थी

१. एक वार भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार कर रहे थे। उस समय अनाथपिण्डिक गृहपति तथागत के दर्शनार्थ आया। आकर, अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। बैठकर उसने तथागत से प्रश्न किया—"आदमी को धनार्जन क्यों करना चाहिये ?"[1]

२. "तुम पूछ रहे हो, तो मैं तुम्हें बताता हूँ।"

३. "किसी एक आर्य-श्रावक को लो, जिसने मेहनत करके धन कमाया है, जिसने हाथों से परिश्रम करके धन कमाया है, जिसने पसीना बहा कर धन कमाया है तथा जिससे न्यायत: धन कमाया है, वह उस धन से अपने आप को प्रसन्न बनाता है, आनन्दित बनाता है, उस प्रसन्नता तथा आनन्द को बनाये रखता है; वह अपने माता-पिता को सुख और आनन्द देता है तथा उन्हें सुखी और आनन्दित बनाये रखता है; इसी प्रकार अपने स्त्री-बच्चों को, अपने दासों को तथा अपने कमकरों को। धनार्जन करने का पहला उद्देश्य यही है।

४. "जब इस प्रकार धन प्राप्त होता है, वह अपने मित्रों, अपने साथियों को सुख और आनन्द देता है तथा उन्हें सुखी और आनन्दित बनाये रखता है यह दूसरा उद्देश्य है।

५. "जब इस प्रकार धन प्राप्त हो जाता है, तो वह अग्नि या पानी से अपनी हानि नहीं होने देता, राजाओं या चोरों से अपनी हानि नहीं होने देता, शत्रुओं या उत्तराधिकारियों से अपनी हानि नहीं होने देता—वह अपने माल को सुरक्षित रखता है। यह तीसरा उद्देश्य है।

६. "जब इस प्रकार धन प्राप्त होता है, तो वह अतिथि-यज्ञ कर सकता है, पितृ-यज्ञ कर सकता है, राज-यज्ञ कर सकता है तथा देव-यज्ञ कर सकता है, यह चौथा उद्देश्य है।

७. "जब इस प्रकार धन प्राप्त होता है, तो गृहपति उन सब श्रमणों तथा सन्त-पुरुषों को दान देता है जो अहंकार तथा प्रमाद से बचते हैं, जो सभी बातों को

विनम्रता-पूर्वक सहन कर लेते हैं, जो संयत हैं, जो शान्त हैं तथा जो आत्म-विकास में लगे हैं। उसका वह दान ऊंचे सदुद्देश्य सहित होता है, सुख देने वाला और स्वर्ग की ओर ले जाने वाला। यह धनार्जन का पांचवां उद्देश्य है।"

८. अनाथपिण्डिक समझ गया कि भगवान् बुद्ध दरिद्रों की दरिद्रता की प्रशंसा करके उन्हें सान्त्वना नहीं देते। वे 'दरिद्रता' को ऊंचा उठाकर उसके बारे में यह भी नहीं कहते कि दरिद्रता का जीवन सुखी जीवन होता है।

२. उन्हें संग्रह-वृत्ति नापसन्द थी

१. भगवान् बुद्ध एक बार कुरु जनपद के कम्मासदम्म नामक नगर में ठहरे हुए थे।[१]

२. आनन्द स्थविर, जहां भगवान् बुद्ध थे, वहां पहुंचे और अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

३. इस प्रकार बैठे हुए आनन्द स्थविर ने कहा—"तथागत द्वारा उपदिष्ट प्रतीत्य-समुत्पाद का नियम अद्भुत है। यह अत्यन्त गम्भीर है। किन्तु मुझे यह स्पष्ट दिखाई देता है।"

४. "आनन्द ! ऐसा मत कहो। आनन्द ! ऐसा मत कहो। यह प्रतीत्यसमुत्पाद का नियम बहुत गम्भीर है। इसी प्रतीत्य-समुत्पाद के नियम को ही न समझ सकने के कारण, इसी प्रतीत्य-समुत्पाद के नियम के भीतर ही प्रवेश न कर सकने के कारण यह संसार उलझन में पड़ गया है, यह दुःख का अन्त नहीं कर सकता है।

५. "मैंने कहा है कि तृष्णा होने से उपादान होता है। जहां किसी के मन में किसी भी चीज के लिये कोई तृष्णा न हो तो क्या किसी प्रकार का भी उपादान होगा ?"

६. "भगवान्। नहीं होगा।"

७. "तृष्णा होने से ही आदमी लाभ के पीछे जाता है।

८. "लाभ के पीछे भागने से काम और राग उत्पन्न होते हैं।

९. "काम और राग होने से वस्तुओं के लिये आग्रह हो जाता है।

१०. "आग्रह होने से अधिकार (=मलकीयत) हो जाता है।

११. "मलकीयत होने से लोभ तथा और भी अधिक सम्पत्ति का स्वामित्व पैदा होता है।

१२. "मलकीयत होने से सम्पत्ति की देख-भाल करनी होती है।

१३. "सम्पत्ति की देख-भाल में से ही बहुत से अकुशल-धर्म पैदा हो जाते हैं जैसे मुक्के तथा जख्म, झगड़े, कलह, बदनामी और झूठ।

१४. "आनन्द ! यह प्रतीत्य-समुत्पाद का नियम है। आनन्द ! यदि तृष्णा

न हो तो क्या लाभ के पीछे भागना होगा ? यदि लाभ के पीछे भागना न हो तो क्या कामना उत्पन्न होगी ? यदि कामना न हो तो क्या आग्रह होगा ? यदि सम्पत्ति के लिये आग्रह न हो तो क्या व्यक्तिगत सम्पत्ति के लिये प्रेम होगा ? यदि सम्पत्ति ही न हो तो क्या अधिक सम्पत्ति के लिये लोभ होगा ?"

१५. "भगवान् ! नहीं होगा ।"

१६. "यदि निजी सम्पत्ति के लिये आसक्ति न हो तो क्या संसार में शान्ति नहीं होगी ?"

१७. "भगवान् ! होगी ।"

१८. तब तथागत ने कहा—"मैं पृथ्वी को पृथ्वी मानता हूँ । लेकिन मेरे मन में इसके लिये तृष्णा नहीं है ।

१९. "इसीलिये मैं कहता हूँ कि तमाम तृष्णाओं का मूलोच्छेद कर देने से, उनके पीछे न भागने से, बल्कि उनका नाश कर देने से, उनका त्याग कर देने से, उनका परित्याग कर देने से ही मैंने 'बुद्धत्व' लाभ किया है ।

२०. "भिक्षुओ, भौतिक वस्तुओं के नहीं, किन्तु मेरे धर्म के उत्तराधिकारी बनो । क्योंकि तृष्णा से आसक्ति पैदा होती है और आसक्ति से मानसिक दासता ।"

२१. इन शब्दों में भगवान् बुद्ध ने आनन्द स्थविर तथा अन्य भिक्षुओं को संग्रह करने की प्रवृत्ति के दुष्परिणाम समझाये ।

३. उन्हें सुसंगति पसन्द थी

१. भगवान् बुद्ध को सुसंगति इतनी अधिक प्रिय थी कि उनको सुसंगति-प्रिय बुद्ध का नाम ही दिया जा सकता है ।

२. इसीलिये उन्होंने अपने अनुयायियों को कहा—"कल्याण मित्रों की संगति करो ।"

३. भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा :—

४. 'भिक्षुओ ! मैं कोई दूसरी ऐसी बात नहीं जानता तो अनुत्पन्न कुशल धर्मों में वृद्धि कर दे अथवा उत्पन्न अकुशल-धर्मों में ह्रास पैदा कर दे, जैसी कि यह कल्याण-मित्रता ।[3]

५. "जो सुसंगति में रहता है, उसमें अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल धर्मों का ह्रास हो जाता है। अकुशल धर्म तथा अकुशल-प्रवृत्ति का ह्रास हो जाता है, कुशल-धर्मों के प्रति प्रवृत्ति की कमी का ह्रास हो जाता है, कुशल-धर्म तथा कुशल धर्मों के प्रति प्रवृत्ति बढ़ जाती है तथा अकुशल-धर्मों के प्रति प्रवृत्ति की कमी में वृद्धि होती है ।

६. "भिक्षुओं, मैं दूसरी कोई ऐसी बात नहीं जानता जो अनुत्पन्न बोधि अंगों

को उत्पन्न न होने दे अथवा उत्पन्न बोधि अंगों को पूर्णता तक न पहुंचने दे, जैसे कि यह बे-ढंगा-विचार।

७. "भिक्षुओ, जो बेढंगे-ढंग से विचार करता है उसमें अनुत्पन्न बोधि-अंग उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न बोधि-अंग परिपूर्णता को प्राप्त नहीं होते।

८. "भिक्षुओं, सगे-सम्बधियों की हानि कोई बड़ी हानि नहीं है। प्रज्ञा की हानि बड़ी हानि है।

९. "भिक्षुओं, सगे-सम्बन्धियों की वृद्धि कोई बड़ी अभिवृद्धि नहीं है। प्रज्ञा की वृद्धि बड़ी अभिवृद्धि है।

१०. "इसलिये भिक्षुओ ! तुम्हें यही अभ्यास करना चाहिये कि हम प्रज्ञा का लाभ करेंगे। तुम्हें प्रज्ञावान बनना चाहिये।

११. "भिक्षुओ ! धन की वृद्धि को बड़ी अभिवृद्धि नहीं है। सभी अभिवृद्धियों में श्रेष्ठ है प्रज्ञा की अभिवृद्धि। इस लिये भिक्षुओं ! तुम्हें यही अभ्यास करना चाहिये कि हम प्रज्ञा का लाभ करेंगे। तुम्हें प्रज्ञावान बनना चाहिये।

१८. भिक्षुओं ! यश की हानि कोई बड़ी हानि नहीं है, प्रज्ञा हानि बड़ी हानि है।"

४. वे सुसंगति से प्रेम करते थे

१. एक बार तथागत शाक्य जनपद में शाक्यों के एक नगर सक्कर में ठहरे हुए थे।[३]

२. तब स्थविर आनन्द तथागत के पास आये, अभिवादन किया और एक ओर बैठ गये। इस प्रकार बैठे हुए आनन्द स्थविर ने कहा :—

३. भगवान् ! सत्संगति आधा श्रेष्ठ-जीवन है, कल्याण-मित्रता आधा श्रेष्ठ-जीवन है, भलों की संगति आधा श्रेष्ठ-जीवन है।"

४. "आनन्द ! ऐसा मत कहो। सत्संगति आधा नहीं पूरा श्रेष्ठ-जीवन है। कल्याण-मित्रता आधा नहीं पूरा श्रेष्ठ-जीवन है। भलों की संगति आधा नहीं पूरा-श्रेष्ठ जीवन है।

५. "भिक्षुओ, जो भिक्षु सत्संगति में रहता है, जिसके कल्याण-मित्र हैं और जो भलों की संगति में रहता है—उससे हम यह आशा कर सकते हैं कि वह आर्य अष्टांगिक मार्ग पर अधिक से अधिक प्रगति करेगा।

६. "आनन्द ! ऐसा भिक्षु आर्य अष्टांगिक-मार्ग पर अधिक से अधिक प्रगति कैसे करता है ?

७. "आनन्द ! वह सम्यक्-दृष्टि का अभ्यास करता है, जो त्यागाश्रित है, जो विरागाश्रित है, जो निरोधाश्रित है, वह सम्यक्-संकल्प का अभ्यास करता है। वह सम्यक्-वाणी का अभ्यास करता है। वह सम्यक् कर्मान्त का अभ्यास करता

है। वह सम्यक्-आजीविका का अभ्यास करता है। वह सम्यक् व्यायाम का अभ्यास करता है। वह सम्यक्-स्मृति का अभ्यास करता है तथा वह सम्यक् समाधि का अभ्यास करता है—ये सभी त्यागाश्रित हैं, विरागाश्रित हैं तथा निरोधाश्रित हैं।

८. "आनन्द ! जो भिक्षु सत्संगति में रहता है, जिसके कल्याण्-मित्र हैं और जो भलों की संगति में रहता है, वह आर्य अष्टांगिक-मार्ग पर अधिक से अधिक प्रगति करता है।

९. "इस तरह से आनन्द ! तुम्हें यह समझना चाहिये कि यह जो सत्संगति में रहना है, यह जो कल्याण-मित्रता है, यह जो भलों की संगति में रहना है, यह पूरा श्रेष्ठ जीवन है।

१०. "निश्चय से आनन्द ! जो जरा-धर्म प्राणी हैं, जो मरण-धर्म प्राणी हैं, जो दुःख, शोक, रोने पीटने वाले हैं, वे कल्याण-मित्रता के परिणाम-स्वरूप इन सब से मुक्त हो जाते हैं।

११. "इस तरह से आनन्द ! तुम्हें यह समझना चाहिये कि यह जो सत्संगति में रहना है, यह जो कल्याण-मित्रता है, यह जो भलों की संगति में रहना है—यह पूरा श्रेष्ठ-जीवन है।"

१. अंगुत्तर निकाय (पंचक निपात)।

२. आनंज-सप्पाय-सुत्तन्त (मज्झिम निकाय १०६)।

३. अंगुत्तर-निकाय (एकक निपात)।

समाप्ति

१. भगवान् बुद्ध की प्रशस्ति

१. भगवान् बुद्ध का जन्म पच्चीस सौ वर्ष हुए हुआ था।

२. आधुनिक विचारक और वैज्ञानिक उनके तथा उनके धर्म के बारे में क्या कहते हैं ? उनके विचारों का यह संग्रह उपयोगी होगा।

३. प्रो० एस० एस० राघवाचार्य कहते हैं—

४. "भगवान् बुद्ध के अविर्भाव से ठीक पहले का समय भारतीय इतिहास का सर्वाधिक अन्धकारमय युग था।

५. "चिन्तन की दृष्टि से यह पिछड़ा हुआ युग था। उस समय का विचार धर्म-ग्रन्थों के प्रति अन्धविश्वास से जकड़ा हुआ था।

६. "नैतिकता की दृष्टि से भी अन्धकारपूर्ण युग था।

७. "विश्वासी हिन्दुओं के लिये नैतिकता का मतलब इतना ही था कि धर्म-ग्रन्थों के अनुसार यज्ञादिकों को ठीक ठीक कर सकना।

८. "आत्म-त्याग या चित्त की पवित्रता आदि जैसे यथार्थ नैतिक विचारों को उस समय के नैतिक-चिन्तन में कोई उपयुक्त स्थान प्राप्त न था।"

९. श्री० आर० जे० जैक्सन का कहना है :—

१०. "भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं का अनुपम रूप भारतीय धार्मिक विचार-धारा के अध्ययन से ही स्पष्ट होता है।

११. "ऋग्वेद की ऋचाओं में हम पाते हैं कि आदमी बहिर्मुख है—उसका सारा चिन्तन देवताओं की ओर अभिमुख है।

१२. बौद्ध धर्म ने आदमी के अन्दर जो सामर्थ्य छिपी हुई है, उसकी ओर ध्यान आकर्षित किया।

१३. "वेदों में हमें प्रार्थना, प्रशंसा और पूजा ही मिलती है।

१४. "बौद्ध धर्म में ही हमें प्रथम बार चित्त को सही रास्ते पर चलाने के शिक्षा-क्रम की शिक्षा मिलती है।"

१५. श्री० विनवुड रीड का कहना है :—

१६. "जब हम प्रकृति की पुस्तक खोलकर देखते हैं, जब हम लाखों-करोड़ों वर्षों का खून तथा आंसुओं में लिखा हुआ 'विकास' का इतिहास पढ़ते हैं, जब हम

जीवन का नियंत्रण करने वाले नियमों को पढ़ते हैं, और उन नियमों को, जो विकास को जन्म देते हैं, तो हमें यह स्पष्ट दिखाई देता है कि यह सिद्धान्त कि परमात्मा प्रेम-रूप है, कितना भ्रामक है।

१७. "हर चीज में बदमाशी भरी पड़ी है और अपव्यय का कहीं कोई ठिकाना नहीं है। जितने भी प्राणी पैदा होते हैं उनमें बचने वालों की संख्या बहुत ही थोड़ी है।

१८. "चाहे समुद्र में देखो, चाहे हवा में देखो और चाहे जंगल में देखो—हर जगह यही नियम है, दूसरों को खाओ तथा दूसरों के द्वारा खाये जाने के लिये तैयार रहो। हत्या ही विकास-क्रम का कानून है।"

१९. श्री० रीडे ने यह बात अपनी 'मारटायरडम आफ मैन' (Martyrdom of Man) नाम की पुस्तक में कही है। भगवान् बुद्ध का धर्म इससे कितना भिन्न है!

२०. डा० रंजन राय का कहना है :—

२१. "उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में तीन कानूनों की तूती बोलती थी। किसी ने उन्हें अस्वीकार करने का साहस नहीं किया।

२२. "ये कानून थे—(१) जड़-पदार्थ का कानून, (२) जड़ पदार्थ के समूह का कानून, (३) शक्ति का कानून।

२३. "यह उन आदर्श-वादी चिन्तकों के जयघोष थे, जो समझते थे कि ये तीनों अविनाशी हैं।

२४. 'उन्नीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिकों के अनुसार ये तीन कानून ही सृष्टि के संचालक थे।

२५. "उन्नीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिकों के अनुसार ये तीन कानून ही सृष्टि के मूल तत्व थे।

२६. "उनकी कल्पना थी कि विश्व अविनाशी अणुओं (Atoms) का समूह है।

२७. उन्नीसवीं शताब्दी समाप्त होने को आई श्री० जे० जे० थामसन और उनके अनुयायियों ने अणुओं पर हथौड़े चलाने आरम्भ किये।

२८. "आश्चर्य की बात हुई—अणुओं के भी टुकड़े टुकड़े होने लगे।

२९. "इन टुकड़ों को परमाणु कहा जाने लगा—सभी समान और सभी में ऋणात्मक विद्युत्।

३०. "जिन अणुओं को मैक्सवैल विश्व के अथवा वास्तविकता के अविनाशी आधार-स्तम्भ मानता था, वे खण्ड-खण्ड हो गये।

३१. "उनके बहुत छोटे-छोटे खण्ड हुए—प्रोटोन तथा एलैक्ट्रोन (Protons & Electrons); धनात्मक तथा ऋणात्मक विद्युत लिये हुए।

३२. "एक निश्चित अविनाशी जड़ पदार्थ-समूह की कल्पना विज्ञान से बिदा हुई। इस शताब्दी में सभी का विश्वास है कि जड़-तत्व का प्रतिक्षण निरोध हो रहा है।

३३. "भगवान् बुद्ध के अनित्यता के सिद्धान्त को समर्थन प्राप्त हुआ है।

३४. "विज्ञान ने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि विश्व की गति (चीजों के) मेल से किसी चीज के बनने, उनके खण्ड-खण्ड हो जाने तथा फिर मिलने के नियमों पर ही आश्रित है।

३५. "आधुनिक विज्ञान के अनुसार अन्तिम तत्व अनेक होकर एक भासित होनेवाला है।

३६. "आधुनिक विज्ञान भगवान् बुद्ध के अनित्यता तथा अनात्मवाद के सिद्धान्त की प्रतिध्वनि है।

३७. श्री. ई० जी० टेलर ने अपने 'बुद्धिज्म एण्ड माडर्न थाट (Buddhism and modern thought) में लिखा है :—

३८. "काफी समय से आदमी बाहरी ताकतों के दबाव में रहा है। यदि उसे 'सभ्य' शब्द के वास्तविक अर्थों में सभ्य बनना है तो उसे अपने ही नियमों द्वारा अनुशासित रहना सीखना होगा। बौद्ध धर्म ही वह प्राचीनतम नैतिक विचार-धारा है जिसमें आदमी को स्वयं अपना आप अनुशासक बनने की शिक्षा दी गई है।

३९. "इसलिये इस प्रगतिशील संसार को बौद्ध धर्म की आवश्यकता है ताकि वह इससे यह ऊँची शिक्षा हासिल कर सके।"

४०. श्री. लेसली बोलटन (The Rev. Leslie Bolton) नाम के ईसाई धर्म के यूनिटेरियन सम्प्रदाय के पुरोहित का कहना है :—

४१. "बौद्धों की तरह हम यूनिटेरियन सम्प्रदाय के मानने वाले भी परम्परा, पुस्तकों वा मतों के बाह्य अधिकार को प्रमाण नहीं मानते। हम आदमी के अपने भीतर ही उसका मार्ग-दर्शक प्रदीप देखते हैं।

४२. "यूनिटेरियन मत के अनुयाइयों को ईसा और बुद्ध दोनों ही श्रेष्ठ जीवन के श्रेष्ठ व्याख्याकार प्रतीत होते हैं।"

४३. प्रो० डेविट गोडर्ड का कथन है :—

४४. "संसार में जितने भी धर्म संस्थापक हुए हैं, उनमें भगवान् बुद्ध को ही यह गौरव प्राप्त है कि उन्होंने आदमी में मूलत: विद्यमान उस निहित शक्ति को पहचाना जो बिना किसी बाह्य निर्भरता के उसे मोक्ष पथ पर अग्रसर कर सकती है।

४५. "यदि किसी वास्तविक महान् पुरुष का महात्म्य इसी बात में है कि वह मानवता को कितनी मात्रा में महानता की ओर अग्रसर करता है, तो तथागत से बढ़कर दूसरा कौन सा आदमी महान हो सकता है ?"

४६. "भगवान् बुद्ध ने किसी 'बाह्य शक्ति' को आदमी के ऊपर बिठाकर

उसका दर्जा नहीं घटाया, बल्कि उसे प्रज्ञा और मैत्री के शिखर पर ले जाकर बिठा दिया है।"

४७. "बुद्धिज्म" ग्रन्थ के लेखक श्री ई० जे० मिलर का कहना है :—

४८. "किसी दूसरे धर्म में "विद्या" को इतना महत्व नहीं दिया गया और 'अविद्या' की इतनी गर्हा नहीं की गई, जितनी बुद्ध-धर्म में।

४९. "कोई दूसरा धर्म अपनी आंख खुली रखने पर इतना जोर नहीं देता।

५०. "किसी दूसरे धर्म ने आत्म-विकास की इतनी विस्तृत, इतनीं गहरी तथा इतनी व्यवस्थित योजना पेश नहीं की।"

५१. अपने 'बुद्धिस्ट एथिक्स' नामक ग्रन्थ में प्रो० उब्ल्यू० टी० स्टास ने लिखा है :—

५२. "बौद्ध धर्म का नैतिक आदर्श-पुरुष—अर्हत—न केवल सदाचार की दृष्टि से बल्कि मानसिक विकास की दृष्टि से भी महान होना चाहिये।

५३. उसे दार्शनिक तथा श्रेष्ठ आचारवान्—दोनों एक साथ होना चाहिये।

५४. "बौद्धधर्म ने 'विद्या' को हमेशा मुक्ति के लिये अनिवार्य माना है और 'अविद्या' तथा 'तृष्णा' को मोक्ष के प्रधान बाधक कारण स्वीकार किया है।

५५. "इसके विरुद्ध ईसाई आदर्श पुरुष के लिये ज्ञानी होना कभी आवश्यक नहीं माना गया है।

५६. "क्योंकि संस्थापक का अपना स्वरूप ही अदार्शनिक था। इसलिये ईसाइयत में दार्शनिकता का आदमी की नैतिकता से कोई सम्बन्ध नहीं मान गया है।

५७. "संसार के दुखों के मूल में शरारत से कहीं अधिक अज्ञान और अविद्या ही है।

५८. "भगवान् बुद्ध ने इनके लिये जगह नहीं रखी।"

५९. यह दिखाने के लिये कि भगवान् बुद्ध और उनका धर्म कितना महान् है और कितना अनुपम है—इतना पर्य्याप्त है।

६०. कौन है जो ऐसे भगवान् बुद्ध को अपना शास्ता स्वीकार न करना चाहेगा?

२. उनके धर्म के प्रचार की शपथ

१. अनन्त प्राणी हैं,
हम शपथ ग्रहण करें कि हम सभी को भवसागर के पार उतारेंगे।

२. हम में अनन्त कमजोरियां हैं,
हम शपथ ग्रहण करें कि हम एक एक करके सबको दूर करेंगे।

३. अगणित सत्य है;
हम शपथ ग्रहण करें कि हम सभी का बोध प्राप्त करेंगे।

४. भगवान् बुद्ध का अनुपम मार्ग है,
हम शपथ ग्रहण करें कि हम उस पर पूरी तरह चलेंगे ।

३. भगवान् बुद्ध के पुनः स्वदेश लौट आने की प्रार्थना

१. हे पुरुषोत्तम ! मैं सर्व भावना से तथागत की
शरण ग्रहण करता हूँ, जिन की ज्योति
निर्बाध रूप से दसों दिशाओं में व्याप्त है;
और कामना करता हूँ कि मैं आपके उस
सुखावति लोक में जन्म ग्रहण करूँ ।
२. आप के उस लोक को जब मैं अपने मानस चक्षु
से देखता हूँ तो जानता हूँ कि यह तीनों भवों की समस्त भूमियों से
प्रकृष्टतर है ।
३. कि यह आकाश के समान सर्वग्राही है—
अनन्त और असीम ।
४. आपकी धर्मानुसारिणी करुणा तथा मैत्री
सभी भौतिक-वस्तुओं से श्रेष्ठतर उस
पुण्य-राशि का परिणाम है, जिसे अपने
अनन्त जन्मों में संचित किया है ।
५. आपका प्रकाश सूर्य तथा चन्द्रमा रूपी दर्पण
के समान सर्वव्याप्त है ।
६. मेरी कामना है कि जितने भी प्राणी उस
सुखावति-व्यूह में जन्म ग्रहण करें वे सभी
तथागत के समान ही सद्धर्म की घोषणा करें ।
७. यहां मैं यह निबन्ध लिख रहा हूँ और ये
पुण्य श्लोक भी; मेरी प्रार्थना है कि मुझे
तथागत का साक्षात् दर्शन हो सके,
८. और मैं समस्त प्राणियों सहित सुखावति-व्यूह में
जन्म ग्रहण कर सकूँ ।



अनुवादक

डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन

जन्म : ५ जनवरी १९०५ सुहाना, चंडीगढ़ (पंजाब)

१९२४ लाहोर कौमी विद्यापीठ से स्नातक उपाधि। महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायनजी के व्यक्तित्त्व की गहरी छाप पड़ी। ५.२.१९२८ नायकपाद लुणुपोकुणे धम्मानन्द महास्थविर श्रीलंका से प्रव्रज्या-उपसम्पदा प्राप्त। पालि-बौद्ध धर्म का अध्ययन किया। १९३२-३४ बौद्ध धर्म प्रचार के उद्देश से इंग्लैण्ड। सन् ३६ में सारनाथ रहकर मासिक 'धम्मदूत' का संपादन कार्य किया। मूल पालि भाषा के त्रिपिटक ग्रंथ जातक ६ खण्ड, अंगुत्तरनिकाय चार भाग, महावंश तथा अभिधम्मत्थ संगहो आदि का अनुवाद हिन्दी में किया। सन् १९४१ से ५१ तक हिन्दी राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के प्रथम प्रधानमंत्री। मलेशिया के पिनांग एवं बैंकाक में बैठकर The Buddha And His Dhamma का हिन्दी अनुवाद किया।

५६ में वे एक अंतर्राष्ट्रीय बौद्ध भिक्षुओं का प्रतिनिधि मंडल लेकर चीन गये। १९५९ से ६८ तक श्रीलंका के विद्यालंकार विश्वविद्यालय में हिन्दी विभागाध्यक्ष का पद विभूषित किया।

पालि-हिंदी शब्दकोष पर उत्तरप्रदेश सरकार ने 'मानपत्र' से, नवनालन्दा महाविहार (बिहार) ३१.१०.१९७१ ने 'विद्यावारिधि' (डी.लिट्) तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने उनकी अमूल्य हिन्दी सेवा के उपलक्ष्य में सन्मानार्थ 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि देकर ताम्रपट प्रदान किया।

१९६८-८१ तक दीक्षाभूमि में रहकर छह वर्ष तक पाक्षिक 'दीक्षाभूमि' का प्रकाशन-संपादन किया।

५.१.१९८५ में बौद्ध प्रशिक्षण संस्थान, बुद्धभूमि अंतर्राष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र का परम पावन दलाई लामा के हस्ते अनावरण करांया।

वे अखिल भारतीय भिक्षु संघ के १० साल तक संघानुशासक रहे।

महाप्रयाण : २२ जून १९८८

"Wherever the Buddha's teachings have flourished,
either in cities or countrysides,
people would gain inconceivable benefits.
The land and people would be enveloped in peace.
The sun and moon will shine clear and bright.
Wind and rain would appear accordingly,
and there will be no disasters.
Nations would be prosperous
and there would be no use for soldiers or weapons.
People would abide by morality and accord with laws.
They would be courteous and humble,
and everyone would be content without injustices.
There would be no thefts or violence.
The strong would not dominate the weak
and everyone would get their fair share."

THE BUDDHA SPEAKS OF
THE INFINITE LIFE SUTRA OF
ADORNMENT, PURITY, EQUALITY
AND ENLIGHTENMENT OF
THE MAHAYANA SCHOOL

Samantabhadra's Admonition



This day is done,
And life dwindles accordingly.
Like fish with little water,
what joy is there !

Endeavor for good progress,
As if to fight a fire burning on one's own head.
Just keep impermanence in mind,
And guard against looseness and indifference.

Namo Amita Buddha !

The Teachings Of Great Master Yin Guang



Whether one is a layperson or has left the home-life, one should respect elders and be harmonious to those surrounding him. One should endure what others cannot, and practice what others cannot achieve. One should take others' difficulties unto oneself and help them succeed in their undertakings. While sitting quietly, one should often reflect upon one's own faults, and when chatting with friends, one should not discuss the rights and wrongs of others. In every action one makes, whether dressing or eating, from dawn to dusk and dusk till dawn, one should not cease to recite the AMITABHA Buddha's name. Aside from Buddha recitation, whether reciting quietly or silently, one should not give rise to other improper thoughts. If wandering thoughts appear, one should immediately dismiss them. Constantly maintain a humble and repentful heart; even if one has upheld true cultivation, one should still feel one's practice is shallow and never boast. One should mind one's own business and not the business of others. Only look after the good examples of others instead of bad ones. One should see oneself as mundane and everyone else as Bodhisattvas. If one can cultivate according to these teachings, one is sure to reach the Western Pure Land of Ultimate Bliss.

Homage to Amitabha! Amitabha!

With bad advisors forever left behind,
From paths of evil he departs for eternity,
Soon to see the Buddha of Limitless Light
And perfect Samantabhadra's Supreme Vows.

The supreme and endless blessings
of Samantabhadra's deeds,
I now universally transfer.
May every living being, drowning and adrift,
Soon return to the Pure Land of
Limitless Light!

~The Vows of Samantabhadra~

I vow that when my life approaches its end,
All obstructions will be swept away;
I will see Amitabha Buddha,
And be born in His Western Pure Land of
Ultimate Bliss and Peace.

When reborn in the Western Pure Land,
I will perfect and completely fulfill
Without exception these Great Vows,
To delight and benefit all beings.

~The Vows of Samantabhadra
Avatamsaka Sutra~

DEDICATION OF MERIT

May the merit and virtue
accrued from this work
adorn Amitabha Buddha's Pure Land,
repay the four great kindnesses above,
and relieve the suffering of
those on the three paths below.

May those who see or hear of these efforts
generate Bodhi-mind,
spend their lives devoted to the Buddha Dharma,
and finally be reborn together in
the Land of Ultimate Bliss.
Homage to Amita Buddha!

NAMO AMITABHA
南無阿彌陀佛

【印度文 HINDI：THE BUDDHA AND HIS DHAMMA】
財團法人佛陀教育基金會 印贈
台北市杭州南路一段五十五號十一樓
Printed and donated for free distribution by
The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation
11F., 55 Hang Chow South Road Sec 1, Taipei, Taiwan, R.O.C.
Tel: 886-2-23951198 , Fax: 886-2-23913415
Email: overseas@budaedu.org
Website:http://www.budaedu.org
This book is strictly for free distribution, it is not for sale.
यह पुस्तिका विनामूल्य वितरण के लिए है बिक्री के लिए नही ।
Printed in Taiwan
6,000 copies; October 2012
IN012-10781